"कालिंजर का सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व तथा पर्यटन विकास की सम्भावनाएं"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ०प्र०)

इतिहास विषय के अन्तर्गत

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2001

निर्देशक :

प्रो०बी०एन०राय

सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष

एवं शिक्षक (मानदेय पर)
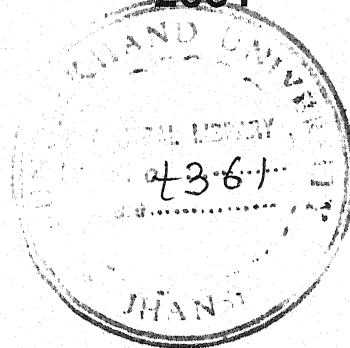
शोधार्थिनी :

(कु०) रमिता सिंह

इतिहास विभाग

अनुसंधान केन्द्र :

परास्नातक इतिहास विभाग

पं० जवाहरलाल नेहरू पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, बाँदा

प्रो0 बी0एन0रॉय

सेवा निवृत्त अध्यक्ष
इतिहास विभाग
पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा (उ0प्र0)

दिनांक : ....

प्रमाण-पत्र

1. प्रमाणित किया जाता है कि कु0 रमिता सिंह ने मेरे निर्देशन में ''कालिंजर का सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व तथा पर्यटन विकास की सम्भावनाएं'' नामक शीर्षक पर शोध कार्य किया है।
2. कु0 रमिता ने मेरे यहां निर्धारित अवधि तक उपस्थिति दी है तथा मेरे निर्देशन का अनुपालन शोध कार्य की समाप्ति तक किया है।
3. इनका शोध प्रबन्ध कार्य मौलिक है।
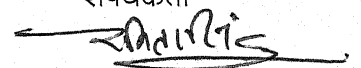
अतः यह शोध प्रबन्ध अब इस स्थिति में है कि इसे पी0एच-डी0 उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिये प्रस्तुत किया जा सकता है।

(बी0एन0रॉय)
शोध-पर्यवेक्षक

घोषणा-पत्र

मैं कु0 रमिता सिंह पुत्री श्री अमर सिंह निवासिनी-महेश्वरी देवी, कोतवाली रोड़, गोसांईगंज, बाँदा की हूँ। मैं शपथपूर्वक यह घोषणा करती हूँ कि यह शोध प्रबन्ध जिसका शोध प्रारूप विश्वविद्यालय में दिनांक 8 जनवरी 1999 को शोध हेतु स्वीकृत हुआ था। यह मेरी एक मात्र मौलिक कृति है। मैने इसके लेखन में किसी अन्य शोध प्रबन्ध की अनुकृति नहीं की है। केवल अपने कथन को प्रमाणित करने के लिये अन्य सन्दर्भ ग्रन्थों का सहारा उदाहरण के रूप में लिया गया है। इसके लेखन में मैने शोध निर्देशक (प्रो0) बी0एन0 रॉय, सेवानिवृत्त इतिहास विभागाध्यक्ष के निर्देशों का पूर्ण अनुपालन किया है। अतः यह मेरी ही कृति है।

दिनांक : 2। अगस्त 2001।

शपथकर्ती

रमिता सिंह

(कु0 रमिता सिंह)

भूमिका

विश्व विख्यात युगों-युगों से चर्चित कालिंजर एक ऐसा ऐश्वर्यवान स्थल रहा है, जिसने सम्पूर्ण विश्व की मानवता को ज्ञान की नवीन दृष्टि प्रदान की है। यह वह स्थल है, जहां से ज्ञान का उदय होता है अर्थात् कालिंजर परिक्षेत्र में उन ऋषियों का वास रहा, जिन्होंने अपने महान ग्रंथों से विश्व को नवीन दृष्टि प्रदान की है। विश्व के महानतम् अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, सारंग, अत्रि, व्यास, चरक, च्यवन, माण्डव ऋषियों आदि ने जिन ग्रंथों की रचना की उन्होंने विश्व में नवीन सिद्धान्तों का सृजन किया। यहां बृहस्पति सूत्र, नारद संहिता आदि ग्रंथों का सृजन हुआ। ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में उनके आश्रम इसी स्थल में मौजूद थे जिनकी स्मृतियाँ आज भी जागृत हैं।

कालिंजर परिक्षेत्र तीन विशिष्ट सिद्धान्तों का सृजेता है-

1. सर्वप्रथम सिद्धान्त ज्ञान का सिद्धान्त है जिसकी प्रेरणा सूर्योपासना में उपलब्ध स्मृति चिन्हों से मिलती है। सूर्य सम्पूर्ण चराचर का एक ऐसा नक्षत्र है, जो पृथ्वी लोक को आलोक और दिव्यता प्रदान करता है। यह विस्तृत अंधकार को तथा आच्छादित कालिमा को हटाकर नवीन दिव्यता प्रदान करता है। दिव्यता ज्ञान का परिचायक है। इसके प्रकाश से ही यथार्थ बोध, रंग बोध, ज्ञान बोध और ऊष्णता बोध हमें ज्ञान दृष्टि के रूप में उपलब्ध होते हैं। सूर्य से हमें काल का बोध भी होता है। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक चार पहर, आठ याम होते हैं। यह सम्पूर्ण चराचर के अंकुरण से लेकर उसको विकसित करता है तथा पंचत्व से युक्त प्राणी को नाना प्रकार की अनुभूतियाँ प्रदान करता है। इसलिए यह एक ऐतिहासिक साक्ष्य है कि विश्व में कालिंजर से ही सूर्योपासना के रूप में ज्ञान बोध का उदय हुआ।

2. कालिंजर परिक्षेत्र ने सम्पूर्ण विश्व को सृष्टि-सृजन के सिद्धान्त को प्रदान किया। शिव उपासना का मुख्य उद्देश्य सृष्टि बीज की उपासना है। विश्व में कोई भी ऐसी वस्तु जड़ और चेतन में नहीं है, जो बिना बीज के उत्पन्न हो, इसलिए शिव उपासना को विश्व सृजन के बीज के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। संसार में यदि मानव बीज न होता तो किसी भी प्राणी का कोई अस्तित्व न होता। शिव उपासना बीज भूमि के सिद्धान्त पर आधारित है। इसलिए शिव को आदि देव के रूप में मान्यता मिली। यह सृष्टि बीज उन बाधाओं को दूर करने में भी सक्षम है, जो सृष्टि सृजन में बाधा उत्पन्न करती है। भगवान शिव ने बाधाओं का गरलपान किया, जिससे वे तीनों लोकों में नीलकण्ठ के नाम से विख्यात हुए। समुद्र मंथन से उत्पन्न विष को पान करने की घटना जो शिव के साथ जोड़ी गई, उसका अर्थ है कि सृष्टि बीज अथवा लिंग उपासना संसार की उन समस्त बाधाओं को नष्ट कर देती है, जो सृष्टि सृजन के सामने उपस्थित हो जाती है। इसलिए सम्पूर्ण सृष्टि-सृजन के सिद्धान्त का सूत्रपात कालिंजर से ही प्रारम्भ हुआ।

3. कालिंजर परिक्षेत्र से उदित तीसरा सिद्धान्त शक्ति का सिद्धान्त है। पौराणिक गाथाओं के अनुसार यह क्षेत्र शक्ति उपासना का केन्द्र था। बाद में यह शिव और सूर्य उपासना का केन्द्र बना। शक्ति उपासना से

तात्पर्य उस अदृश्य शक्ति से है जो सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों में आत्मा के रूप में समाई रहती है। वही व्यक्ति को पल्लवित करती है। उसमें कार्य करने का साहस उत्पन्न करती है और उसे ऐश्वर्य शाली बनाती है। इस शक्ति के तीन स्वरूप देखने को मिलते हैं- **प्रथम स्वरूप-** बौद्धिक शक्ति अथवा सरस्वती के रूप में दिखाई देता है। कोई भी प्राणी बिना बुद्धि और ज्ञान के कोई कार्य सम्पन्न नहीं कर पाता। इसलिए बुद्धि की शक्ति प्राणी की प्रथम महानतम् शक्ति है। **द्वितीय स्वरूप-** संसाधन की शक्ति है, जिसे लक्ष्मी अथवा धन के रूप में पहचाना जाता है तथा जिनकी उपासना गणेश के साथ में सभी स्थानों में की जाती है। बिना संसाधन के मानव द्वारा किए गए प्रयास सफल नहीं हो सकते। इसलिए शक्ति की उपासना संसाधन देवी के रूप में की जाती है। **तृतीय स्वरूप-** शारीरिक शक्ति और संगठन की शक्ति है। व्यक्ति शारीरिक शक्ति तथा संगठन की शक्ति के माध्यम से विश्व की अनेक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकता है। यह शक्ति देवासुर संग्राम में देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त संसार में अनेक आपदाओं से जूझकर जो व्यक्ति सफल हुए हैं उनमें भी यह शक्ति देखने को मिलती है। इस शक्ति के सिद्धान्त का उदय भी कालिंजर परिक्षेत्र से हुआ। इन्हीं तीनों सिद्धान्तों के कारण यह आध्यात्मिक दृष्टि से विख्यात और अजर-अमर हो गया। प्रत्येक युग में कालिंजर को अलग-अलग नामों से पुकारा गया।

सद्युगे कीर्तिको नाम, त्रेतायां च महद्गिरिः।

द्वापरे पिंगले नाम, कलौ कालिंजरो गिरिः।।

विश्व प्रसिद्ध स्थल कालिंजर को नये ढंग से परिभाषित करने की भी आवश्यकता है। व्याकरणाचार्यों, धर्माचार्यों और इतिहासवेत्ताओं ने इसे चाहे जिस रूप में परिभाषित किया हो, किन्तु शोध छात्रा होने के नाते मैंने इसे परिभाषित करने के नाते एक नया दृष्टिकोण अपनाया है। सर्वप्रथम कालिंजर को परिभाषित करते हुए, मैं इसे दो शब्दों से बनने वाला संयुक्त शब्द मानती हूँ। **प्रथम शब्द कालम्** और दूसरा शब्द **अजरा** है। इसका शब्दार्थ होता है कि यह परिक्षेत्र प्रत्येक युग में अजर रहा है अर्थात् इसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। इसे अमरता का वरदान प्राप्त है। इसी का दूसरा अर्थ यह भी निकलता है कि सृष्टि के आदि काल से यह क्षेत्र विभिन्न देवी-देवताओं के उपासना का केन्द्र रहा, जिनके स्मृति चिन्ह कालिंजर क्षेत्र में उपलब्ध होते हैं। इस क्षेत्र में उपलब्ध होने वाले प्रारम्भिक मानव के स्मृति चिन्ह इस बात के प्रतीक हैं कि इसने एक युग दृष्टा के रूप में अपने नेत्रों से सभी युगों का अवलोकन किया है। **कालिंजर का दूसरा शब्द** निकलता है। कालम् जरः अर्थात् जिस स्थान पर भगवान शिव ने विषपान करके अपनी मृत्यु बाधा को दूर किया था और काल को भस्म कर दिया था। इस परिभाषा के अनुसार कालिंजर प्रमुख रूप से शिव उपासना का केन्द्र बन जाता है। **कालिंजर का तीसरा शब्द** निकलता है। कालीम् जरः अर्थात् जिस स्थान पर भगवान शिव ने शक्ति को भस्म किया था अथवा शक्ति को अपने वश में किया था, वह स्थान कालिंजर ही है। इस सन्दर्भ में शोध छात्रा ने अपने शोध प्रबन्ध में उपलब्ध पौराणिक कथाओं का उल्लेख यत्र-तत्र किया है। उसी समय से शिव को

शक्ति के साथ जोड़ दिया गया तथा उनकी उपासना उमा-महेश्वर, अर्ध नारीश्वर, गौरी शंकर आदि के रूपों में होने लगी। यही सब कारण कालिंजर की प्राचीनता और धार्मिक महत्व को और अधिक स्पष्ट एवं प्रमाणित करते हैं।

राजनीतिक दृष्टि से भी कालिंजर का महत्व विश्व के अन्य स्थानों से श्रेष्ठ दिखलाई पड़ता है। यदि पुराण और महाभारत का अध्ययन करें तो हमें ऐसा साक्ष्य उपलब्ध होता है कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम के युग में यह क्षेत्र कौशल राज्य में था। द्वापर युग में यह क्षेत्र चेदि राजाओं के आधीन था। उसके पश्चात यह क्षेत्र मौर्यों, शुंगों, नागों, पाण्डवों आदि के आधीन रहा। जब सम्पूर्ण भारत में गुप्तों की सत्ता का शुभारम्भ हुआ उस समय यह क्षेत्र गुप्तों के अधीन हो गया, फिर यह क्षेत्र गुर्जर प्रतिहारों, कल्चुरियों, वाकाटकों के आधीन रहा। अपनी शक्ति का परिचय देते हुए चंदेलों ने इसे अपने बाहुबल से जीता और अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की। इस युग में इसका सर्वांगीण विकास हुआ, किन्तु इसका पतन चंदेल वंश के अंतिम शासक परमार्दिदेव के समय में हो गया। अब यहां पर बघेलों, मुगलों और बुन्देलों का शासन भी रहा। अंत में इसे अंग्रेजों के आधीन भी रहना पड़ा। कालिंजर परिक्षेत्र ने अनेक आक्रमणकारियों के आक्रमणों के दुःख को सहा और वह हर परिस्थिति में अपने अस्तित्व को बचाता रहा तथा आज भी यह दुर्ग अपने ऐश्वर्य को दिखला रहा है। वर्तमान भले ही विकृत और जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हो, किन्तु उसका अतीत अत्यन्त गौरवशाली एवं महत्वपूर्ण था।

शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री चयन हेतु मुझे कठिन परिश्रम करना पड़ा है। कालिंजर से सम्बन्धित पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक सामग्री किसी एक ग्रंथ में नहीं मिलती है, किन्तु कुछ इतिहासकारों ने सम्पूर्ण कालिंजर विषय को एक पुस्तक में बांधने का प्रयत्न किया है, परन्तु ये पुस्तकें पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक साक्ष्य को प्रस्तुत नहीं कर पाती और उनकी लेखन शैली शोध परख नहीं है, फिर भी मैंने विभिन्न ऐतिहासिक साक्ष्यों को एकत्र कर प्रकाशित ग्रंथों, पाण्डुलिपियों के आधार पर संकलित किया है तथा उन्हें अपने शोध प्रबन्ध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाकर ही प्रस्तुत किया है।

सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है-

1. कालिंजर का परिचय
2. कालिंजर का सांस्कृतिक महत्व
3. कालिंजर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
4. कालिंजर परिक्षेत्र में उपलब्ध ऐतिहासिक स्थल
5. कालिंजर क्षेत्र के सुरम्य प्राकृतिक स्थल
6. पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में वर्णित कालिंजर
7. पर्यटन की दृष्टि से कालिंजर को विकसित करने के लिए किए गये प्रयासों की समीक्षा

प्रथम अध्याय में कालिंजर का सामान्य परिचय दिया गया है। यह दर्शाया गया है कि भारतवर्ष, उत्तर प्रदेश और बाँदा के मानचित्र में कालिंजर किस स्थान पर है। इसी अध्याय में कालिंजर के ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे इस परिक्षेत्र की प्राचीनता दृष्टिगोचर होती है। कालिंजर की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सौन्दर्य और पर्यावरण की दृष्टि से उसके महत्व को उजागर किया गया है। अध्याय के अंत में कालिंजर से जुड़ी हुई विशिष्ट समस्याओं का भी उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व को स्पष्ट करता है। धार्मिक दृष्टि से यह क्षेत्र विविध उपासना का केन्द्र रहा तथा इसमें शैव धर्म का विशेष महत्व रहा है और आज भी है। उन धार्मिक स्थलों का भी वर्णन है, जिनके कारण यह क्षेत्र आदि काल से प्रसिद्ध है। कालिंजर की धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का भी अध्ययन किया गया है। साथ ही उन परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों का विशिष्ट अध्ययन किया गया है जो अन्य क्षेत्रों से पृथक विशेषतायें रखती हैं। कालिंजर निवासियों की आवासीय व्यवस्था, वंश, जाति, वर्ण व्यवस्था का भी विस्तार से अध्ययन किया गया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत कालिंजर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पुरापाषाण युग से लेकर मौर्य युग तक, मौर्य युग से लेकर सम्राट हर्षवर्धन तक उसके पश्चात राजपूत युग, कुतुबुद्दीन ऐबक के आक्रमण तक उसके पश्चात सल्तनत काल से लेकर मुगल काल तक मुगल काल से लेकर अंग्रेजों के शासन काल तक तथा अंग्रेजों के शासन काल से लेकर वर्तमान समय तक की सम्पूर्ण ऐतिहासिक गतिविधियों और घटनाओं का वर्णन इस अध्याय में शामिल किया गया है।

चतुर्थ अध्याय पर्यटकों को यहां के ऐतिहासिक स्थलों की ओर आकर्षित करता है। इसमें मड़फा, रौलीगोंडा, रसिन, बिलहरिया मठ, कालिंजर, रिसौरा, शेरपुर स्योढ़ा, रनगढ़, अजयगढ़ व अन्य ऐतिहासिक स्थलों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में दर्शनीय स्थलों का ऐतिहासिक एवं वास्तुशिल्प के आधार पर महत्व दर्शाया गया है, जिन्हें देखकर इतिहास एवं पुरातत्व में स्नेह रखने वाले व्यक्ति आकर्षित हो सकते हैं।

पंचम अध्याय कालिंजर परिक्षेत्र की प्राकृतिक सुरम्यता को दर्शाता है। यह प्राकृतिक सौन्दर्य भरतकूप, व्यास कुण्ड, बानगंगा, पाथरकछार, बृहस्पति कुण्ड, लखनसेहा, किशनसेहा, सारंग, सकरो और मगरमुहा आदि में देखा जा सकता है जिनका विस्तार से वर्णन किया गया है। सर्वाधिक प्राकृतिक सौन्दर्य बानगंगा में देखने को मिलता है जिसे देखकर कोई भी पर्यटक या दर्शक बार-बार यहां आने का मन बनायेगा।

षष्टम अध्याय पर्यटकों की जिज्ञासा को पूरा करने वाला है। इसमें उन ग्रंथों का वर्णन किया गया है, जिसमें कालिंजर परिक्षेत्र का वर्णन मिलता है। सबसे पहले वेदों और पुराणों में वर्णित उन आख्यानों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है, जिनका सम्बन्ध कालिंजर परिक्षेत्र से है, जिन साहित्यिक ग्रंथों में कालिंजर को

विशिष्ट स्थान मिलता है उनका वर्णन भी किया गया है। मुख्य रूप से **"आल्हखण्ड"** और **"पृथ्वीराजरासो"** आदि ग्रंथों का विशिष्ट उल्लेख किया गया है। प्राचीन काल से अब तक लिखे गये ऐतिहासिक ग्रंथों का भी उल्लेख प्रस्तुत किया गया है, जो व्यक्ति कालिंजर परिक्षेत्र से आकर्षित हुए और उन्होंने कालिंजर परिक्षेत्र के सन्दर्भ में जो शोध किये उनका उल्लेख भी इस अध्याय में है।

सप्तम अध्याय में पर्यटन की दृष्टि से कालिंजर को विकसित करने के लिए किये गये प्रयत्नों की समीक्षा की गई और वे उपाय भी सुझाये गये हैं जिनके आधार पर कालिंजर का विकास पर्यटन की दृष्टि से हो सकता है। इस क्षेत्र का धार्मिक, ऐतिहासिक महत्व भी पर्यटन की दृष्टि सें उजागर हुआ है। यदि पर्यटक किसी उद्योग एवं व्यवसाय से सम्बन्धित हैं तो उसके सन्दर्भ में भी उसे जानकारी दी गई है।

इसी अध्याय में उन प्रयत्नों को दर्शाया गया है, जो प्रयत्न इस ऐतिहासिक धरोहर को पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करने के लिए किये गये हैं। सबसे आवश्यक सुझाव दुर्ग की सुरक्षा, ऐतिहासिक स्थलों की सुरक्षा, उपलब्ध दुर्लभ मूर्तियों की सुरक्षा, महलों एवं जलाशयों की सुरक्षा, उपलब्ध हस्तलिखित ग्रंथों की सुरक्षा आदि हैं। इसके अतिरिक्त उन पर्यटकों के विचारों को भी ध्यान में रखा गया है जो कालिंजर परिक्षेत्र में कभी आये तथा उन्हें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनका उल्लेख भी है, पर्यटकों का मानना है कि इस परिक्षेत्र में आवागमन के साधनों का अभाव है। पर्यटकों की किसी प्रकार की कोई सुरक्षा व्यवस्था नहीं है। यहां मनोरंजनों के साधनों का अभाव है। पर्यटकों के रुकने के लिए उत्तम स्थान नहीं है। पर्यटकों के लिए ऐसा कोई साहित्य नहीं है जो कालिंजर के सन्दर्भ में पूर्ण जानकारी प्रदान करे। यहां ऐसा कोई मार्ग दर्शक (गाइड) नहीं है जो उनकी भाषा में कालिंजर के महत्व को समझ सके। इसके अतिरिक्त यहां की संस्कृति से जुड़ी हुई लोक कलाओं को भी प्रोत्साहन नहीं दिया जाता इसलिए पर्यटक उसे नहीं देख पाते।

शोध प्रबन्ध के अंत में उपसंहार प्रस्तुत किया गया है, जिसमें उपरोक्त अध्यायों का संक्षेपीकरण किया गया है और अंत में मेरे द्वारा कुछ उपाय सुझाये गये हैं जो इस परिक्षेत्र को पर्यटन स्थल के रूप में विकसित कर सकते हैं। मेरा यह मानना है कि यह क्षेत्र विश्व ऐतिहासिक धरोहर घोषित किया जाये, यहां आवागमन के साधनों का विस्तार किया जाये, पर्यटकों के आवास की व्यवस्था हो, कालिंजर में विकास प्राधिकरण की स्थापना हो तथा इसे मॉडल टाउन घोषित किया जाये, लोक परम्पराओं का विकास हो, कालिंजर के इतिहास का पुनर्लेखन एवं प्रचार-प्रसार हो, यहां प्रतिवर्ष कालिंजर महोत्सव हो, व्यवसायिक दृष्टि से विकसित किया जाये, संग्रहालय निर्मित हो तथा उपलब्ध आकर्षित मूर्तियों के मॉडल तैयार कराये जायें जिसे पर्यटक स्मृति चिन्ह के रूप में अपने साथ ले जा सकें।

मेरा यह शोध-शोध प्रबन्ध के उद्देश्यों के अनुकूल है जो नवीन वैज्ञानिक लेखन पद्धति के अनुसार विरचित है। इसमें उन स्थलों पर विशेष प्रकाश डाला गया है जिनका वर्णन किसी ऐतिहासिक ग्रंथ में नहीं है। पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए यह शोध प्रबन्ध अनेक रोचक सामग्रियों से भरा हुआ है। यही शोध

प्रबन्ध कालिंजर से जुड़े हुए लोगों को ऐसे सुझाव भी प्रदान करता है जो उनके विकास और औद्योगिक प्रगति में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

मेरा यह विश्वास है कि मेरे द्वारा शोध प्रबन्ध लेखन में जो अथक परिश्रम किया गया है वह उपयोगी सिद्ध होगा। इसके लेखन कार्य में मैंने अपने निर्देशक प्रो0 बी0 एन0 रॉय के महत्वपूर्ण निर्देशों का अनुशरण किया है।

विश्व में पुष्प सुगन्ध के लिए सराहे जाते हैं, इसी प्रकार वे व्यक्ति जो अपने सुकृत्यों से किसी स्थान विशेष को प्रकाशित करते हैं, उनकी स्मृतियाँ भी मानव मस्तिष्क में सदैव बनी रहती हैं। कालिंजर परिक्षेत्र देवताओं की वासभूमि रहा है। यहाँ पर अनेक देवताओं और देवियों ने अपने शौर्यमयी कृत्यों से इस भूमि की यशगाथा को सदैव के लिए अजर-अमर कर दिया। विशेष रूप से भगवान शिव जिन्हें नीलकण्ठ, पशुपतिनाथ आदि नामों से जाना जाता है। उन्होंने इसी स्थान पर जन कल्याणार्थ विषपान किया था, जिसके कारण हम उनके प्रति अपनी श्रृद्धा अर्पित करते हैं तथा अन्य देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों के प्रति भी अपने श्रृद्धा भाव प्रकट करते हुए उन्हें श्रृद्धांजलि अर्पित करते हैं। हम अपने देवों और पूर्वजों के बहुत ही आभारी हैं जिन्होंने इस पवित्र भूमि में रहकर इसका उद्धार किया और हमें कृतार्थ किया।

किसी स्थान विशेष की महत्ता उन व्यक्तियों से बढ़ती है जो इस क्षेत्र के लिए विशेष उल्लेखनीय कार्य करते हैं। यदि इस क्षेत्र में कौशल, चेदि, कलचुरि, चालुक्य, राष्ट्रकूट, वाकाटक आदि नरेशों ने अपनी सत्ता स्थापित न की होती तो कालिंजर को कौन जानता। इस क्षेत्र में चंदेलों ने अपनी सत्ता स्थापित की। यहाँ लगभग 300 वर्षों तक वे अकंटक राज्य करते रहे। उनके द्वारा दुर्गों का निर्माण, राजप्रासादों का निर्माण, धार्मिक स्थलों का निर्माण, जलाशयों का निर्माण तथा कलात्मक मूर्तियों का निर्माण कालिंजर में कराया गया। इस क्षेत्र में वे समस्त पुरावशेष आज भी विद्यमान हैं जो तद्‌युगीन गौरव गाथा को दोहरा रहे हैं। हम धंगदेव, गण्डदेव, यशोवर्मन, मदनवर्मन, परमार्दिदेव आदि के विशेष रूप से ऋणी हैं जिन्होंने अपने साहस और शौर्य से इस वसुन्धरा का सम्मान बढ़ाया तथा इनके आश्रय में रहने वाले आल्हा-ऊदल जैसे रणबांकुरों ने अपने युद्ध कौशल से इस क्षेत्र को अवलोकित किया, इनके सन्दर्भ में अनेक लोक कथायें ग्रामीण अंचलों में प्रचलित हैं। हम उपरोक्त सभी वीर महापुरुषों तथा शासकों के प्रति अपनी श्रृद्धा अर्पित करते हैं।

वे साहित्यकार और विद्वान भी श्रृद्धा के पात्र हैं जिन्होंने प्राचीन काल में कालिंजर की यशोगाथा को आगे बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथों का सृजन किया। इन ग्रंथों में **जगनिक** द्वारा रचित **परमालरासो (आल्हखण्ड), चन्दवरदाई** द्वारा रचित **पृथ्वीराजरासो** का विशेष महत्व है इनके अतिरिक्त चन्देलयुग में रचित **प्रबोधचन्द्रोदय, रूपकषटकम्** आदि ग्रंथ अत्यन्त महत्व रखते हैं। हम इन ग्रंथों के प्रति अपनी भावभीनी श्रृद्धांजलि अर्पित करते हैं। इनके अतिरिक्त वे रचनाकार जिन्होंने कालिंजर परिक्षेत्र में जन्म लेकर यहां की यशगाथा देश-विदेश में गाई, उनके प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं। वह वर्तमान समय में नहीं है फिर

भी उनकी कृतियाँ हमारे लिए प्रेरणाश्रोत रहीं हैं।

वे विदेशी इतिहासकार जिन्होंने भारतीय इतिहास लेखन को शोध परख लेखन शैली प्रदान की तथा उस युग में यहां आकर विविध शोध कार्य किये, मुख्य रूप से कनिंघम, वी0ए0 स्मिथ, काकबर्न जैसे विदेशी इतिहासकारों की वजह से कालिंजर विवरण **इण्डियन एन्टीक्वेरी, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, आर्क्योलाजिकल सर्वे इण्डिया रिपोर्ट** आदि जैसे ग्रंथों में आया।

भारतीय विद्वानों ने भी कालिंजर के सन्दर्भ में बहुत कुछ लिखा है। **आइने अकबरी** तथा अन्य ग्रंथों में कालिंजर का उल्लेख मिलता है। **तवारीख बुन्देलखण्ड, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, बुन्देलखण्ड का इतिहास, चन्देल और उनका राजत्वकाल, चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाएं, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, बाँदा वैभव, बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड** आदि ग्रंथों में कालिंजर को बहुत उभारा गया है। इसलिए मैं इन विद्वान मनीषियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने के लिए मुझे विशेष सहयोग दिया और प्रोत्साहित भी किया।

पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा इतिहास विभागाध्यक्ष के सेवा निवृत्त (प्रो0) बी0 एन0 रॉय की मैं बहुत ऋणी एवं आभारी हूँ क्योंकि वह मेरे गुरु भी हैं और शोध निर्देशक भी हैं। उन्होंने कालिंजर को विकसित करने के लिए विशेष प्रयास भी किये हैं। कालिंजर को विश्व धरोहर के मानचित्र में लाने के लिए एक पुस्तक ''कालिंजर ए हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल'' भी प्रकाशित की है। वे आज भी कालिंजर के लिए समर्पित भाव से कार्य करते रहते हैं। उन्होने अपना अमूल्य समय निकालकर मुझे उचित निर्देशन देते हुए मेरे शोध कार्य को पूरा करवाया। मैं गुरु जी और गुरु माता के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। गुरु माता ने मुझे हमेशा उत्साहित किया है।

पं0 जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा मेरे शैक्षिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है। वहां के प्राचार्यों और शिक्षकों ने मुझे जो स्नेह प्रदान किया है, वह मेरे लिये चिरस्मरणीय रहेगा। प्रातः स्मरणीय विद्यालय के प्राचार्य प्रो0 इन्द्रजीत सिंह, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ0 रामगोपाल गुप्त, डॉ. चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', डॉ0 ज्ञान प्रकाश तिवारी, समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष डॉ0 जसवन्त प्रसाद नाग, डॉ0 शिवशरण गुप्त, अर्थशास्त्र विभाग के डॉ0 सतीश कुमार त्रिपाठी, भूगोल विभाग के अध्यक्ष जयन्त कुमार बनर्जी आदि का सक्रिय सहयोग मिलता रहा। इसलिए मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ, महाविद्यालय का पुस्तकालय स्टाफ भी बधाई का पात्र है।

कुछ लोग मेरी स्मृतियों में हैं जिनका सम्बन्ध वर्तमान समय में है। संस्कृति विभाग के असिस्टेन्ट डायरेक्टर डॉ0 लवकुश द्विवेदी मेरे लिए सदैव प्रेरक रहे हैं। उनकी प्रेरणा से ही मैंने शोध कार्य प्रारम्भ किया। इनके अतिरिक्त श्री संतोष तिवारी का सहयोग भी मुझे मिलता रहा। पुरातत्व विभाग दिल्ली की विशेष

अनुकम्पा से मुझे कालिंजर में दुर्लभ मूर्ति सम्पदा का छायांकन करने की अनुमति मिली। मैं उनकी बहुत आभारी हूँ।

मुझे कालिंजर निवासियों का भी भरपूर सहयोग मिला। मुख्य रूप से श्यामबिहारी वैद्य उनके पुत्र अरविन्द छिरौलिया एवं ग्राम प्रधान की भी मैं आभारी हूँ। इनके माध्यम से कालिंजर से सम्बन्धित दस्तावेज और पुराऐतिहासिक सामग्री मुझे प्राप्त हुई।
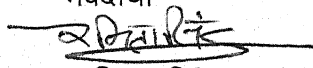
प्रत्येक माता-पिता अपनी सन्तान की उन्नति से प्रसन्न होते हैं। मेरे पूज्य पिता श्री अमर सिंह (प्रधानाध्यापक) एवं माता श्रीमती सिया सिंह ने मुझे भरपूर प्रोत्साहन दिया और आर्थिक सहयोग प्रदान किया तथा प्रत्येक आवश्यक सामग्री को समय से उपलब्ध कराया। मुझे किसी प्रकार की कोई कमी महसूस नहीं होने दी। मेरा यह शोध कार्य उन्ही के स्नेह और सहयोग का फल पूरा हुआ हैं इसके लिये मैं उनकी आजीवन आभारी रहूँगी। मेरे प्रिय स्व0 बाबा श्री हरिहर सिंह (मुखिया) एवं दादी श्रीमती भूरी देवी का आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा है। इन्ही के आशीर्वाद का फल है कि आज मेरा शोध कार्य पूरा हो गया है। इसलिए मैं उनकी दिल से आभारी हूँ। मेरे चाचा श्री अर्जुन सिंह (एडवोकेट) चाची श्रीमती मुन्नी देवी, प्रिय भाई निरन्जन सिंह, अतिरन्जन सिंह, धिरन्जन सिंह एवं मेरी प्रिय ज्येष्ठ बहन श्रीमती पुष्पा सिंह चौहान, राजश्री एवं किरन, नेह, वर्षा, आदित्य, अजय आदि का महत्वपूर्ण सहयोग मुझे हरबख्त मिलता रहा। इसके लिए मैं सदैव उनकी ऋणी रहूँगी। श्री अरुण कुमार सिंह चौहान एवं श्री ब्रजमोहन सिंह गौतम, श्री रामचन्द्र कीमतानी (एडवोकेट) की हृदय से आभारी हूँ जिन्होनें मेरे शोध कार्य में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

भविष्य में जो व्यक्ति मेरे शोध प्रबन्ध का लाभ उठायेंगे एवं इसका मेरी बौद्धिक क्षमता के अनुसार मूल्यांकन करेंगे, उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

कोई भी वस्तु यदि अति सुन्दर होती है तो उसके प्रति स्वाभाविक आकर्षण होता है। इण्डिया ग्रॉफिक्स, बलखण्डी नाका-बाँदा ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से इस शोध प्रबन्ध का कम्प्यूटर से मुद्रण किया तथा उनके ही उचित मार्ग दर्शन के कारण यह शोध प्रबन्ध विशिष्ट रूप सज्जा से अलंकृत हुआ है। मैं उनके प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। यदि बहुत अधिक सावधानी के बावजूद भी कुछ गल्तियाँ रह गई हों तो मैं उनके लिए माफी चाहती हूँ।

दिनाँक : 21 अगस्त 2001

स्थान : बाँदा

भवदीया

रमिता सिंह

(कु0) रमिता सिंह
इतिहास विभाग
पं0 जे0एन0पी0जी0 कॉलेज, बाँदा (उ0 प्र0)

अनुक्रमणिका

अध्याय	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय	कालिंजर का परिचय	1-37
द्वितीय अध्याय	कालिंजर का सांस्कृतिक महत्व	38-123
तृतीय अध्याय	कालिंजर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	124-209
चतुर्थ अध्याय	कालिंजर परिक्षेत्र में उपलब्ध ऐतिहासिक स्थल	210-258
पंचम अध्याय	कालिंजर क्षेत्र के सुरम्य प्राकृतिक स्थल	259-287
षष्ठम अध्याय	पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में वर्णित कालिंजर	288-325
सप्तम अध्याय	पर्यटन की दृष्टि से कालिंजर को विकसित करने के लिए किए गये प्रयासों की समीक्षा	326-341
	उपसंहार	342-354
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	355-368

नीलकण्ठेश्वर

कालिंजर

प्रथम
अध्याय

कालिंजर का परिचय

इस महानतम् विश्व में मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसने अपनी चिर स्मृतियां इतिहास के रूप में छोड़ी है। जिनकों देखकर तथा उसका विस्तृत अध्ययन करके हम उसके ऐतिहासिक महत्व को समझनें का प्रयास करते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार यह पृथ्वी करोड़ों वर्ष पुरानी है। इसी प्रकार मानव का इतिहास भी लाखों वर्ष पुराना प्रतीत होता है, किन्तु जो स्मृतियाँ हमें इतिहास के रूप में उपलब्ध होती है। वह दस हजार ईसा पूर्व से अधिक प्राचीन नहीं हैं, हमारा इतिहास हमें गरिमामण्डित करता है और साथ ही साथ अपने पूर्वजों के जीवन के संदर्भ में सोचने और समझने को मजबूर करता है।

विश्व इतिहास में भारतवर्ष एक अत्यधिक प्राचीन देश है। यहां सभ्यता का उदय अति प्राचीन काल से ही हो गया था। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में चीन की सभ्यता, ग्रीक की सभ्यता, बैबीलोनिया की सभ्यता तथा मिस्र की सभ्यता के साथ-साथ भारत की सिन्धु घाटी की सभ्यता, का उल्लेख सर्वत्र होता है। इस देश में आर्यो की सभ्यता का भी विकास हुआ तथा कालान्तर में विदेशी आक्रमणकारियों ने भी भारतवर्ष की भूमि को अपनी सभ्यता से प्रभावित किया है। कुषाण, हूण, शक, यूनानी, तुर्क आदि आक्रमणकारी इस भूमि पर आये। भारतवर्ष में प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता के ऐतिहासिक चिन्ह शैलाश्रयों के रूप में अब तक उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक युगों के स्मृति चिन्ह-भग्नावशेषों, दुर्गो, राजप्रासादों, धार्मिक अवशेषों, तथा मूर्तियों के रूप में अब तक उपलब्ध होते हैं इन्हीं स्मृति चिन्हों ने भारतवर्ष के इतिहास को गौरवान्वित किया है और इनके द्वारा ही पूर्वजों की जीवन शैली और आचार-विचार का हमें पूर्ण ज्ञान हो जाता है। स्मृति चिन्हों के अतिरिक्त उपलब्ध ऐतिहासिक दस्तावेजों, प्राचीन ग्रंथों, यात्रा विवरणों, प्रचलित परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों आदि से हमें प्राचीनकाल का युग बोध होता है। यह युग बोध ही हमारी प्रगति में सहायक होता है और भविष्य की परिकल्पना के साथ हम अपने पूर्वजों से अधिक प्रगति कर उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि प्रस्तुत करना चाहते हैं।

कालिंजर भारतवर्ष में विश्व का सर्वाधिक प्राचीन स्थल प्रतीत होता है, कालिंजर की प्राचीनता के विषय में यह श्लोक सारगर्भित है-

सद्युगे कीर्तिको नाम त्रेतायां च महद् गिरिः।
द्वापरे पिंगले नाम कलौ कालिंजरो गिरिः।।[1]

जो स्थल विश्व का प्राचीनतम् स्थल रहा हो, उसने निश्चित ही अनेक सभ्यताओं का अवलोकन अपने नेत्रों से किया होगा। यह स्थल केवल सभ्यता की दृष्टि से ही प्राचीनतम स्थल नहीं है अपितु धर्म की दृष्टि से भी इसका स्थान सदैव से महत्वपूर्ण रहा है।[2] शिव मूर्तियों का आधिक्य होने के कारण इसे मुख्य रूप से उत्तर भारत का शिव उपासना केन्द्र माना गया है। अनेक धार्मिक ग्रंथों में इसका उल्लेख अलग-अलग उपलब्ध होता है। इसे भगवान शिव के प्रसिद्ध नौ ऊखलों में से एक माना गया है।[3]

यथा-

रेणुका शूकरः काशी, काली काल बटेश्वरौ।

कालिंजर महाकाल, ऊखला नव मुक्तिदाः।।

विश्व उपासना के अतिरिक्त इस क्षेत्र में विष्णु, जैन तथा बौद्ध मत से सम्बन्धित अनेक मूर्तियां और स्थल उपलब्ध होते है। कुछ स्थल तांत्रिकों और निराकार ब्रह्म उपासकों के भी उपलब्ध होते हैं।[4]

कालिंजर का राजनीतिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्व रहा है। साथ ही यहां की राजनीति अत्यन्त प्राचीन भी है।महाभारत आदि ग्रंथों में पाण्डवों के निवास का उल्लेख यहां उपलब्ध होता है। ऐसा कौन सा आकर्षण था, जिसके कारण आदिकाल से लेकर अब तक हर नरेश कालिंजर का शासक बनने का स्वप्न देखता था। अति प्राचीन काल में जब से राज व्यवस्था का उदय हुआ, उस समय से यह क्षेत्र चेदि वंशीय नरेश उपरिचरि बसु के आधीन था और इसकी राजधानी सुक्तिमती नगरी थी।[5] त्रेतायुग में यह क्षेत्र कौशल राज्य के अन्तर्गत था। भगवान श्री राम ने कुत्ता मारने के अपराध में दण्ड स्वरूप ही कालिंजर भरवंशीय ब्राम्हणों को दे दिया था। इसके ऐतिहासिक साक्ष्य बाल्मीकि रामायण में उपलब्ध होते हैं।[6] द्वापर युग में यह क्षेत्र चेदि वंशियों के आधीन था। जिसका शासक शिशुपाल था। उसके पश्चात यह क्षेत्र राजा विराट के आधीन रहा।[7] ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में यह क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से चेदि जनपद का एक भाग था। पालि जातकों में महात्मा बुद्ध की यात्रा का वर्णन है। वे सुक्तिमती, भरहुत, कुचेहरा होते हुए विदिशा तक गये।[8] उसके पश्चात यह क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से मौर्यो के आधीन रहा। बाँदा गजेटियर तथा मौर्य काल के उपलब्ध इतिहास में अनेक ऐसे साक्ष्य हैं। जिनसे इस बात की पुष्टि होती है।[9] गुप्त युग में यह क्षेत्र गुप्तों के आधीन हो गया है उस समय यह बिन्ध्य आटवीं के नाम से विख्यात था। गुप्त कालीन शासक समुद्र गुप्त का जो अभिलेख (प्रयाग प्रसस्ति) के रूप में इलाहाबाद में उपलब्ध हुआ है। उसमें इस क्षेत्र को गुप्तों के आधीन स्वीकार किया गया है।[10] गुप्तों पश्चात यह सम्राट हर्षवर्धन के राज्य का एक अंग था। हर्ष वर्धन के युग में इस क्षेत्र का राजनीतिक महत्व कम नहीं था। सुप्रसिद्ध साहित्यकार बाणभट्ट ने हर्षचरित सार और कादम्बरी में इसे विन्ध्य आठवीं के अन्तर्गत रखा है। हर्षवर्धन की बहन राजश्री यहीं सती होनें के लिए आई थी। जिसे हर्षवर्धन ने सती नहीं होने दिया। हर्षवर्धन से लेकर नागभट्ट द्वितीय के समय तक यह क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से गुर्जर प्रतिहारों के ही आधीन रहा तथा चन्देल नरेश उनके ही अधीन कार्य करते रहे। गुर्जर प्रतिहारों के पतन के पश्चात जब गुर्जर प्रतिहार राजाओं से चन्देल सामंत स्वतन्त्र हुए तब यह क्षेत स्वतंत्र रूप से चन्देलों के आधीन हो गया और उस समय यह स्थल राजनीति का प्रमुख केन्द्र बन गया।[11] चन्देल नरेशों ने कालिंजर, अजयगढ़, मड़फा, रसिन, महोबा, मनियागढ़ , देवगढ़, तथा गोपीगढ़ (ग्वालियर) तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। पृथ्वीराज के आक्रमण के पश्चात जब परमर्दिदेव पराजित हुआ, उस समय इस राज्य का विभाजन हो गया। चन्देलों का पतन भी प्रारम्भ हो गया।

महाकवि जगनिक ने वीर योद्धा आल्हा-ऊदल का गुणगान करते हुए, कालिंजर दुर्ग के लिए यह ठीक ही कहा था-

किला कालिंजर का मांगत है।

बैठक मांगे ग्वालियर क्यार।।[12]

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो के अनेक स्थलों में कालिंजर के संदर्भ में वर्णन मिलता है। इसमें कवि चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज की महोबा विजय का गुणगान किया है।[13] इसके अतिरिक्त अनेक शिलालेख भी उपलब्ध हुए हैं, जिसमें कालिंजर की प्रशस्ति तथा चंदेल नरेशों का गुणगान है। यह अभिलेख दसवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक के हैं कालिंजर दुर्ग के अतिरिक्त यह खजुराहों, अजयगढ़ तथा चन्देल राज्य से सम्बन्धित स्थलों में उपलब्ध होते हैं।[14] कुतुबुद्दीन ऐबक के कालिंजर आक्रमण के पश्चात यह सत्ता पूरी तरह धरासाई हो गई।[15] इसी के आगमन से इस राज्य की शक्ति पूरी तरह से समाप्त हो गई। इसके बाद भी यहां का वैभव अति धीमी गति से सांस लेता रहा।[16] इस क्षेत्र में मुगल शासक हुमायूँ ने भी दो बार आक्रमण करने का प्रयत्न किया था।[17] फिर शेरशाह सूरी ने सन् 1544-45 के लगभग कालिंजर में आक्रमण किया और उसकी मृत्यु भी कालिंजर क्षेत्र में ही हुई।[18] उसके बाद यह क्षेत्र कुछ समय के लिए रामचन्द्र बघेल के अधिकार में आया। तत्पश्चात सम्राट अकबर के आधीन हो गया। औरंगज़ेब के समय तक यह मुगलों के अधिकार में रहा।उसके पश्चात बुन्देला नरेश छत्रसाल के आधीन हो गया। सन् 1812 तक यह क्षेत्र छत्रसाल के सामतों के आधीन रहा। जब रामकृष्ण चौबे यहां का किलेदार था, उस समय यह अंग्रेजों के आधीन हो गया।[19] उसके पश्चात ही इस क्षेत्र का राजनीतिक अस्तित्व समाप्त हो गया।

वस्तुकला की दृष्टि से इस क्षेत्र के महत्व पर प्रकाश डाला जाये तो निश्चित ही यहाँ का वस्तुशिल्प और मूर्तिशिल्प अत्यन्त उच्चकोटि का था। इसमें गुप्त शैली,गुर्जर प्रतिहार शैली तथा पंचायतन नागरीय शैली के दर्शन होते है।[20] ऐसा लगता है कि वास्तुकारों ने इस क्षेत्र की संरचना अग्निपुराण,बृहदसंहिता तथा अन्य वास्तु ग्रंथों से प्रेरणा लेकर की है। निश्चित ही कालिंजर विश्व की बहुमूल्य ऐतिहासिक धरोहर है।[21] इस प्राचीनतम स्थल कालिंजर में आज भी अनेक ऐसे स्थान हैं, जो न केवल बुद्धिजीवियों को अपितु विभिन्न पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, तथा मौन भाषा में अपने प्राचीनतम गौरवगाथा का गुणगान करते है।[22] यह सौभाग्य है कि कालिंजर भारत वर्ष का एक महत्वपूर्ण स्थल है और कालिंजर आज भी भारत को गरिमा मण्डित कर रहा है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि कालिंजर आदिकाल से ही विश्व विख्यात कैसे हुआ? अनेक विदेशी शासकों ने इसे जीतने की योजना क्यों बनाई? इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र की लोकप्रियता का कारण यहां की आर्थिक समृद्धि और यहां की अद्वितीय कला,संस्कृति है। इस संदर्भ में

ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते है।[23] यह ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी तक विश्व विख्यात हो चुका था। यहां के अधिपति केदार वर्मन का सम्बन्ध व प्रगाढ़ मित्रता फारस के बादशाह अफराशियाब से थी। इसके पश्चात अन्य देश भी कालिंजर की समृद्धि कला और संस्कृति से प्रभावित हुए। इसीलिए यह प्रमुख शैव संस्कृतिक का केन्द्र बन गया तथा बाद में बौद्ध,जैन,शक्ति,वैष्णव, आर्य तथा अनार्य संस्कृतियों ने भी इसे प्रभावित किया। इसीलिए वेदों, पुराणों तथा धार्मिक ग्रंथों ने इस क्षेत्र को महान तीर्थ स्थल की संज्ञा दी है। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम एवं महाभारत के प्रमुख नायक अर्जुन और अन्य पाण्डवों ने भी इस स्थल को देखा।[24] इसीलिए यह प्रचारित और प्रसारित भी हुआ।

आर्थिक दृष्टि से इसकी समृद्धि के कई कारण थे। जो वास्तुशिल्प यहां निर्मित हुआ। वह कोई निर्धन शासक नहीं करा सकता। जिस राज्य के आर्थिक स्रोत बहुत ही अच्छे होंगे वे ही इतने सुदृढ़ दुर्ग, देवालय एवं जलाशयों का निर्माण करा सकते हैं, इसकी अर्थिक सुदृढ़ता का एक और उदाहरण उपलब्ध होता है। महमूद गजनवी ने इस क्षेत्र में सन् 1022 में आक्रमण किया, उस समय वह अरबों की सम्पत्ति यहां से लूट कर ले गया परन्तु फिर भी इस क्षेत्र ने छः महीने में ही उस आक्रमण की क्षति को पूर्ण कर लिया। [25] सुप्रिसद्ध इतिहासकार अल्बरूनी ने इस क्षेत्र की आर्थिक सुदृढ़ता सम्पन्नता और विभिन्न प्रकार की संस्कृति का अनेक स्थलों में वर्णन किया है। सम्राट अकबर के नौ रत्नों में एक अबुल फजल ने अपनी सुप्रिसद्ध पुस्तक "आइने अकबरी" में लिखा है कि कालिंजर के आस-पास अच्छे किस्म के हीरे उपलब्ध होते थें। [26] इस बात की पुष्टि पूरी तरह से की जा सकती है। क्योंकि कालिंजर के सन्निकट पहाडी खेरा क्षेत्र में आज भी उत्तम कोटि के हीरे उपलब्ध होते हैं। ऐसे साक्ष्य भी मिले हैं कि कालिंजर के सन्निकट कुठला जवारी के जंगल में एक प्रकार का लाल कंकड प्राप्त होता था जिससे सोना बनाया जाता था। जब राजा अमान सिंह कालिंजर के शासक थे, उस समय उन्होंने स्वर्ण खदानें खुदवाईं थी तथा उन खदानों से अरबों-खरबों का स्वर्ण प्राप्त किया था। आज भी खैरार जाति के लोग इन लाल चमकीले कंकडों से स्वर्ण बनाते हैं। इसके अतिरिक्त रसिन,वीरगढ़ मड़फा तथा रौलीगोंडा क्षेत्र में अन्य कीमती पत्थर उपलब्ध होते हैं जो उस युग की आर्थिक समृद्धि के कारण थे। कालिंजर क्षेत्र के सन्निकट ही कीट पहाड़ी,चुम्बक पहाड़ी तथा कौहारी के आस-पास ताँबा ,लोहा तथा अन्य कीमती धातुओं का पता लगा है। निश्चित ही जिन स्थानों में बेसुमार खनिज सम्पदा होगी। वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न क्षेत्र होंगे। यहीं के अनेक क्षेत्रों में कीमती आभूषण, अति सुन्दर वस्त्र एवं धातु के बर्तन निर्मित होते थें। इन सब वस्तुओं का निर्यात व्यापारियों के द्वारा अन्य राज्यों में किया जाता था और व्यापारी उनके बदले में सोना,चांदी व कीमती रत्न इस क्षेत्र में लाते थे। जो राज्य की आय और समृद्धि के कारण थे।[27] इस धन से सामान्य जन-जीवन सुखी था, कलाकार प्रोत्साहित थे। राजसत्ता को प्रचुर मात्रा में कर की उपलब्धि होती थी। चंदेल नरेशों के समय की आर्थिक समृद्धि के बारे में यह कहा जा सकता है कि अनेक स्थलों में जो ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं। उनमें

नरेशों सामन्तों की दानवीरता के उत्कृष्ट उदाहरण उपलब्ध होते है। इसके अतिरिक्त अनेक अभिलेखों में उनकी उदास्ता तथा दानवीरता के वर्णन हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र की आर्थिक सुदृढ़ता ने ही यहां की कला और संस्कृति को जन्म दिया।

कालिंजर सुरक्षा की दृष्टि से भी ऐसे स्थल पर है जो उत्तर से दक्षिण जाने का मार्ग प्रसस्त करता है। इस संदर्भ मे एक साक्ष्य बाल्मीक रामायण में उपलब्ध होता है कि भगवान राम जब चित्रकूट छोड़कर अन्यत्र जाने की बात सोचनें लगे तो उन्होंने कालिंजर के सन्निकट स्थापित अगस्त्य ऋषि के आश्रम में आकर यह पूंछा कि हम आगे कहां और कैसे जायें। चूंकि अगस्त्य ऋषि विश्व भ्रमण कर चुके थे। इसीलिए उन्हें मार्गों का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने भगवान श्री राम को दक्षिण दिशा की ओर जाने की सलाह दी । यहीं से वह दक्षिण दिशा की ओर गयें।[28] पालिजातकों में कौशाम्बी से दक्षिण जाने के मार्ग को कालिंजर और चेदि राज्य के मध्य भाग से बतलाया है। चेदि राज्य की राजधानी गिरवाँ के सन्निकट शेरपुर स्यौढ़ा थी । जो सुक्तिमती नगरी के नाम से विख्यात थी। जब यह दुर्ग गुर्जर प्रतिहारों के अधिकार में आया उस समय इस दुर्ग ने उत्तर और दक्षिण दोनों स्थलों के नागरिकों की रक्षा शत्रुओं से की थी। नन्नुक देव से लेकर परमार्दिदेव तक चन्देल नरेशों ने अपनी सैन्य शक्ति का विस्तार किया। यह क्षेत्र भारतवर्ष की महान सैन्य शक्तियों में से एक हो गया। कालिंजर दुर्ग की सुदृढ़ता का वर्णन प्रसिद्ध विद्वान अल्बरूनी के अतिरिक्त आल्हाखण्ड के रचयिता जनकवि जगनिक ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ में की है। पृथ्वीराजरासो में भी कालिंजर दुर्ग की सुदृढ़ता का वर्णन है। इस बात के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते है। कि सैन्य शक्ति केन्द्र के अतिरिक्त कालिंजर कभी चन्देल नरेशों की प्रशसनिक एवं धार्मिक राजधानी भी रहा होगा। प्रशासनिक राजधानी के रूप में महोबा से ऐतिहासकि साक्ष्य अधिक उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार खजुराहों परिक्षेत्र को धार्मिक राजधानी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि इस क्षेत्र में हिन्दू एवं जैन सम्प्रदाय के सर्वाधिक धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है। जो वास्तुकला की दृष्टि से सम्पर्ण विश्व में अपने उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते है। ऐतिहासिक साक्ष्य की दृष्टि से कालिंजर दुर्ग सैन्य शक्ति का प्रमुख केन्द्र चंदेल शासन काल तक रहा। इसके पश्चात बघेलों और बुन्देलों के शासन काल में इसकी सैन्य शक्ति क्षीण हो गई। यह केवल धार्मिक स्थल के रूप में रह गया, और अनेक सामंतों के आधीन भी हो गया। अल्प समय के लिए यह क्षेत्र कलचुरियों, राष्ट्रकूटों, मुसलमानों के भी हाथ में रहा।[29] सन् 1812 के बाद यह क्षेत्र अंग्रेजों के आधीन हो गया। यह मात्र ऐतिहासिक साक्ष्य और हमारी स्मृतियों में ही शेष रह गया[30]

कालिंजर आज भले ही निष्प्राण हो समृद्धि हीन हो, किन्तु उसका जर्जर कलेवर आज भी उसकी वैभव गाथा को अपनी मौन वाणी से दोहरा रहा है, और हमें इस बात के लिए प्रेरित कर रहा है कि देश की आजादी के 50 वर्षो बाद भी उसके ही सपूत उसके उत्थान की कोई बात नहीं सोंच पायें । उत्थान की योजनायें तो बनती ही रहती हैं किन्तु वे शीघ्र ही कालकौलित हो जाती हैं आवश्यकता इस बात की है

कि कालिंजर के अतीत का मूल्यांकन करते हुए उसकी ऐतिहासिक गरिमा तथा उसकी संस्कृति और धार्मिक भावना को नष्ट होने से बचाया जायें। यहां की लोक संस्कृति,कला संस्कृति,पुरावशेषों तथा साहित्य को सुरक्षित रखा जाये। विश्व ऐतिहासिक धरोहर के रूप में इसे विकसित किया जोये और इस भूमि में अनेक स्थलों को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित करके आवागमन की सुविधाओं को बढ़ाया जाये।

1. कालिंजर का भारतवर्ष एवं उत्तर प्रदेश के मानचित्र में स्थान :-

भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहां ज्ञान का सूर्य सर्वप्रथम उदित हुआ। यह आलोक जो सूर्य की रश्मियों से हमें उपलब्ध हुआ था। वह सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करने में सफल हुआ। एशिया महाद्वीप के दक्षिण में अरब सागर बंगाल की खाड़ी तथा हिन्द महासागर से घिरा हुआ एक विशिष्ट संस्कृतियों वाला देश है। जिसे भारतवर्ष के नाम से पुकारा जाता है। इसके उत्तर में नीलाम्बर की ऊँचाई वाला हिमालय पर्वत है जो मात्रभूमि के किरीट के सदृश हैं। इसकी चोटियाँ सदैव तुषार और हिम से आच्छादित रहती हैं। इससे सटे हुए जम्मू काश्मीर ,पंजाब, असम,मेघालय,नागालैण्ड, आदि प्रदेश राष्ट्र की शोभा बढ़ाते हैं। इसके पूर्व में बंगाल,पश्चिम में महाराष्ट्र, गुजरात,दक्षिण में कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश,तमिलनाडु जैसे विशिष्ट संस्कृतियों वाले प्रदेश हैं। जिनकी भाषा और संस्कृति बिल्कुल पृथक हैं। भारतवर्ष के मध्य क्षेत्र में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, जैसे प्रान्त है, जिन्हें हृदय प्रदेश के रूप में मान्यता प्राप्त है। देवपुरूष और परमात्मा के रूप में अवतरित मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम, भगवान श्री कृष्ण और बौद्ध धर्म के प्रणेता महात्मा बुद्ध इसी क्षेत्र में अवतरित हुए। इस सम्पूर्ण क्षेत्र को जो कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और बंगाल से लेकर महाराष्ट्र तक फैला हुआ है। उसे हम भारत खण्ड, आर्यावर्त, ब्रह्मावर्त आदि नामों से पुकारते है।

प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त भारतवर्ष आज एक विभिन्न संस्कृतियों वाले देश के रूप में हमें उपलब्ध होता है। यहां पर लगभग तीस भाषायें बोली जाती है। और सभी रंगों के व्यक्ति यहां निवास करते हैं। ये व्यक्ति आर्य,अनार्य, राक्षस ,दैव-दनुज,यक्ष तथा मानव कुल के हैं। आवागमन के साधनों के अभाव में अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग संस्कृतियों ने जन्म लिया। शायद इसीलिये अलग-अलग भाषाओं को प्रोत्साहन भी मिला । यहां पर काले, गोरे, लम्बे और ठिगने सभी प्रकार के लोग निवास करते हैं। सांस्कृतिक भिन्नता के होते हुए भी यहां धर्म सामंजस्य और संस्कृति सामंजस्य के दर्शन होते हैं। जिस देश में किसी युग में केवल 32 करोड़ व्यक्ति ही निवास करते थे, उस देश में आज लगभग 97 करोड़ व्यक्ति निवास करते हैं।

यह देश विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों के दौर से गुजरा है। इन संस्कृतियों का काल आज से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व प्रतीत होता है। सुप्रसिद्ध इतिहासकारों ने इस क्षेत्र में द्रविण संस्कृति के अवशेष खोजे हैं ये अवशेष मोहन जोदाडों, हड़प्पा तथा राजस्थान के कुछ भागों में उपलब्ध हुए है।[31] इसके पहले का काल पूर्व पाषाण युग और उत्तर पाषाण युग के नाम से विख्यात था। इसके अवशेष भी सम्पूर्ण भारतवर्ष में उपलब्ध

होते है। कुछ अवशेष तो बाँदा जनपद में भी प्राप्त हुए है।[32] इसका उल्लेख बाँदा गजेटियर के अतिरिक्त एम0 एल0 निगम द्वारा रचित **''कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड''** [33] के0 डी0 बाजपेयी ने अपनी पुस्तक **''कल्चरल हिस्ट्री आफॅ इण्डिया''** [34] में किया है। भारतवर्ष के अनेक स्थानों में बहुत ही सुन्दर शैलाश्रय उपलब्ध हुए है। जिनमें अनेक प्रकार के शैलचित्र है। जिनसे आदिकालिक मानवों की रुचि का पता लगता है, रूचि के साथ-साथ यह तद्‌युगीन सभ्यता के सन्दर्भ में एक नया अध्याय खोलते हैं।

कालान्तर में भारतवर्ष में आर्यो का आगमन हुआ, जिन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनार्यो, यक्षों दानवों को परास्त करके आर्य सभ्यता को विकसित किया और दो प्रकार की शासन व्यवस्था इस देश को प्रदान की। पहली व्यवस्था गणराज्यों की थी, जिन्हें महाजनपदों के नाम से जाना जाता था, तथा दूसरी व्यवस्था राजतन्त्र अथवा सामन्तशाही व्यवस्था थी, जिनसे आगे चलकर अनेक राजवंशों का अभ्युदय हुआ। इनमें चोल, चालुक्य, कलचुरि, चन्देल, चौहान आदि प्रमुख थे। इन राजपूतों ने अपने शौर्य का प्रदर्शन किया। इनके सन्दर्भ में राजाश्रय में रहने वाले कवियों ने अनेक रासव ग्रंथों की रचना की थी। जिनमें पृथ्वीराज रासो, परमार्दिदेव रासो, वीसलदेव रासो, खुमान रासो, आदि प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस युग के कवियों में चन्दरवरदाई ,जगनिक ,नरपतिनाल्ह, आदि प्रसिद्ध कवि है। इन्होंने राजपूत कालीन इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। बाँदा जनपद के आस-पास कालिंजर परिक्षेत्र में चिरकाल तक चंदेलों का अस्तित्व रहा। इस बात का पता भी इन्हीं रासों ग्रन्थों से उपलब्ध होता है। चंदेल काल के पतन के पश्चात भी भारतवर्ष में अनेक राजनीतिक परिवर्तन समय-समय पर होते रहें है। चूंकि कालिंजर क्षेत्र भारतवर्ष का अंग रहा है इसलिए उसका प्रभाव भी यहां देखने को मिलता है।

उत्तर भारत का गठन अंग्रेजी शासन काल में हुआ था। इसके पहले यह प्रान्त मुगल काल में आगरा एवं अवध के नाम से प्रसिद्ध था, जो सयुंक्त प्रान्त के नाम से विख्यात हुआ। और उत्तर प्रदेश कहलाने लगा। यदि अति प्राचीन इतिहास को अवलोकित किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर प्रदेश, पांचाल देश, विन्ध्य आटवीं, डाभाल, युद्ध देश, मत्स्य देश तथा बज्र देश के नाम से विख्यात था। आर्यो के समय में उत्तर प्रदेश में कई गणराज्य थें। जो काफी सम्पन्न और विकसित थे।[35] महात्मा बुद्ध के समय तक इनका विकास चरम सीमा पर था। भारतवर्ष में जब सिकन्दर का आक्रमण हुआ उस समय गणराज्यों की शक्ति क्षीण हो गई थी और यहां भी राजतन्त्र स्थापित हो गया था। उत्तर प्रदेश में सूर्य वंश और चन्द्र वंश दोनों ही शक्तिशाली राज्य थे। सूर्य वंश का प्रभाव अयोध्या तथा सम्पूर्ण सूर्य वंश का प्रभाव यदुवंशियों, चेदि और कलचुरियों के प्रभाव अयोध्या तथा सम्पूर्ण कौशल क्षेत्र में था। चन्द्र वंश का प्रभाव युदवंशियों, चेदि और कलचुरियों के रूप में देखा जा सकता है। कालिंजर क्षेत्र जो वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश का एक अंश है वहां चन्द्र वंशीय चंदेलों का सर्वाधिक प्रभाव रहा। कुछ समय के लिए यह राष्ट्रकूटों, वाकाटकों और कलचुरियों के प्रभाव में भी रहा। दिल्ली नरेश पृथ्वीराज ने भी परमार्दिदेव के समय में इसे प्रभावित किया।

इसके पहले महमूद गजनबी ने भी यहां पर आक्रमण किया था। कालिजंर परिक्षेत्र उत्तर प्रदेश के दक्षिण में बाँदा जनपद का एक अंग है। इसकी सीमायें दक्षिण में मध्य प्रदेश के सतना-पन्ना-छतरपुर और रींवा जनपदों से मिलती है। उत्तर प्रदेश के मानचित्र में यदि कोई सर्वाधिक अति प्राचीन स्थल है तो वह केवल कालिंजर परिक्षेत्र ही है। जहां पर आदि काल से लेकर अब तक के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हो जाते है। विश्व में कोई ऐसा स्थान नहीं है जो प्राचीनता की दृष्टि से इससे अधिक प्राचीन हो। समस्त वेदों, पुराणों, धार्मिक ग्रंथों, ऐतिहासिक शौर्य गाथाओं, में कालिंजर क्षेत्र का एक विशिष्ट स्थान है। यह राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं अपतु धार्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल रहा है। यदि मानव सभ्यता और आने वाला भविष्य इसे भुलाना भी चाहेगा तो भी वह ऐसा नहीं कर पायेगा। कालिंजर स्थल चिरस्मरणीय रहा है और सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। जिसका अतीत गरिमा मण्डित रहा हो, उसे वर्तमान समय में भी गरिमा मण्डित बनाये रखना यहां के व्यक्तियों का पावन कर्त्तव्य है।

बाँदा जनपद उत्तर प्रदेश के महत्वपूर्ण जनपदों में से एक है। जिसकी सीमाएं पूर्व में इलाहाबाद,उत्तर में फतेहपुर ,पश्चिम में हमीरपुर तथा दक्षिण में रींवा,सतना, पन्ना तथा छतरपुर जनपदों से मिलती हैं। इस जनपद का इतिहास सदैव महत्वपूर्ण रहा है। इस जनपद में अनेक स्थलों पर अति प्राचीन सभ्यता के चिन्ह उपलब्ध होते हैं। डा0 कन्हैयालाल अग्रवाल ने अपनी सुप्रिसिद्ध पुस्तक **''विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल''** में इस क्षेत्र के ऐतिहासिक महत्व के स्थलों का वर्णन किया है।[36] इसके अतिरिक्त एस0 एम0 अली ने अपनी पुस्तक **''जाग्रफी ऑफ दी पुराणाज''** में इस क्षेत्र के अनेक स्थलों का वर्णन किया है। **''आइने अकबरी''** में अबुल फज़ल ने इस क्षेत्र को खनिज सम्पदा से युक्त बताया है। दीवान प्रतिपाल सिंह ने अपनी पुस्तक **''बुन्देलखण्ड का इतिहास''** में कई जगहों पर यहां के ऐतिहासिक महत्व के स्थलों का वर्णन किया है। गोरे लाल तिवारी ने **''बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास''** की रचना की है। उन्होने भी इस क्षेत्र के अगस्त्य ऋषि का आश्रम और कालिंजर के धार्मिक महत्व पर प्रकाश डाला है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र एवं अयोध्या प्रसाद पाण्डेय ने भी अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथों में इस क्षेत्र का उल्लेख किया है। डा0 के0 डी0 बाजपेयी ने अपने ग्रन्थों में इस क्षेत्र पर प्रकाश डाला है। राधा कृष्ण बुन्देली ने भी अपनी पुस्तक और योग्यता से इस क्षेत्र के अनेक ऐतिहासिक स्थलों का वर्णन करते हुए उन्हें उजागर किया है निश्चित ही बांदा जनपद और उससे जुड़ा हुआ कालिंजर क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसमें संदेह नहीं किया जा सकता।

कालिंजर क्षेत्र बांदा मुख्यालय से 56 किलोमीटर और सतना मुख्यालय से लगभग 82 किलोमीटर दूर है। इस क्षेत्र में पहुंचने के लिए सड़क यातायात उपलब्ध हैं। वायु एवं रेल मार्ग की सुविधायें अभी उपलब्ध नहीं है। इस क्षेत्र में ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व के अनेक स्थल है जिनका उल्लेख शोध प्रबन्ध के नियत स्थान पर किया जायेगा। यहां पहुंचने के लिए खजुराहो, पन्ना ,चित्रकूट, बदौसा, से भी साधन उपलब्ध

हो सकते है। आज यह क्षेत्र भले ही उपेक्षा का शिकार हो किन्तु जब भी कोई व्यक्ति इस स्थल को देखने आता है। वह यहां उपलब्ध पुरासम्पदा को देखकर प्रभावित होता है, और उसके महत्व को समझता हैं। किन्तु साथ ही साथ उन स्थलों की दुर्दशा को देखकर वह बहुत द्रवित और दुखी होता है। सम्पूर्ण विश्व भारत और उत्तर प्रदेश को प्रभावित करने वाला कालिंजर क्षेत्र निश्चित ही विश्व ऐतिहासिक धरोहर के रूप में संरक्षित किये जाने योग्य है। क्योंकि यहां की पुरासम्पदा, धर्म, संस्कृति और वास्तुकला की दृष्टि से बेजोड़ है [37] कालिंजर का महत्व किसी भी स्थिति में कम नहीं है।

2. कालिंजर के ऐतिहासिक साक्ष्य एवं उनका महत्वः-

यह महानतम् ऐतिहासिक स्थल कालिंजर केवल कोरी परिकल्पना नहीं है, अपितु अनादि काल से लेकर अनेक ऐसे साक्ष्य यहां पर उपलब्ध है जो इसकी प्राचीनतम् गरिमा को आलोकित करते हैं। यदि समस्त कालिंजर परिक्षेत्र में सर्वेक्षण करके देखा जाये तो इन ऐतिहासिक साक्ष्यों की संख्या अनगिनत होगी। ऐतिहासिक दृष्टि से इन साक्ष्यों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है और इनके आधार पर ही उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण भी किया जा सकता है। यह साक्ष्य निम्नलिखित है-

1.शैलाश्रय एवं शैलचित्र-

ऐतिहासिक दृष्टि से शैलाश्रय एवं शैलचित्र सर्वाधिक प्राचीन साक्ष्य माने जाते है, और इनका सीधा सम्बन्ध पाषाण युग से जोड़ा जाता है। यहां उपलब्ध शैलचित्र इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मानव की बस्तियां इस क्षेत्र में अति प्राचीन काल से थी। यह शैलाश्रय मड़फा दुर्ग, फतेह गंज के सन्निकट सकरों मगर मुहा में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त रसिन और कालिंजर दुर्ग की पहाड़ी में अनेक स्थलों पर शैलचित उपलब्ध हुए है । इस स्थल में नवीन शैलचित्रों की खोज भूतपूर्व पुलिस कप्तान श्री विजय कुमार ने की थी। इस सन्दर्भ में उन्होंने 'प्राग नामक एक पुस्तक भी प्रकाशित की है।[38] इसमें इस क्षेत्र के शैलचित्र उपलब्ध है। इसी प्रकार प्रसिद्ध इतिहासकार रौली ने कल्याणपुर के सन्निकट शैलचित्र खोजे हैं, जिनका उल्लेख "हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड" में मिलता है।[39] इन्हीं शैलचित्रों के साथ-साथ पत्थरों के कुछ टुकड़े भी उपलब्ध हुए है, जिन्हें इतिहासकार प्रस्तर कालीन अस्त्र-शस्त्र मानते है।[40] इसके अतिरिक्त कुछ शैलचित्र और शैलाश्रय बृहस्पति कुण्ड के सन्निकट पुतरही घाटी में उपलब्ध हुए है।

शैलचित्रों का निर्माण अधिकतर गेरुए रंग से हुआ हैं। इनमें अधिकतर पशुओं का छायांकन हैं।कहीं-कहीं मनुष्य और उनके द्वारा उपयुक्त सामग्री का चित्रांकन भी मिलता है।वास्तुकला की दृष्टि से फतेहगंज के शैलाश्रय में प्राप्त शैलचित्र अत्यन्त सजीव प्रतीत होते हैं।

2.आवासीय बस्तियों के अवशेष -

कालिंजर और उसका परिक्षेत्र अनेक स्मृतियाँ समेटे हुए है जिससे उसकी प्राचीनता का बोध आसानी से हो जाता है। कालिंजर में ही तरहटी,कटरा,बहादुरपुर तथा आस-पास के अनेक गावों में आवासीय

बस्तियों के अनेक खण्डहर उपलब्ध होते हैं। ये स्थल चन्देलयुग से लेकर बुन्देलों के युग तक के हैं। कालिंजर के अतिरिक्त मड़फा, फतेहगंज, रौलीगोंडा, रसिन, बिलहरिया मठ, सिधौरा, हुमायूँ की छावनी, नरदहा, पाथर कद्दार ,पहाड़ी खेरा, लखन सेहा, किशन सेहा आदि क्षेत्रों में प्राचीन बस्तियों के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। यदि इन स्थलों का व्यापक उत्खनन कराया जाये तो निश्चित ही इतिहास के नये प्रसंग इस क्षेत्र से जुडेगें। डा0 कन्हैया लाला अग्रवाल ने कालिंजर परिक्षेत्र को अति प्राचीन सिद्ध किया है। इसके अनेक उदाहरण भी उपलब्ध हुए है,[41] जो भी पुरावशेष कालिंजर परिक्षेत्र में प्राप्त हुये हैं यदि उनका मूल्यांकन वास्तुशास्त्र के अनुसार किया जाये तो वास्तव में इनका निर्माण अग्नि पुराण एवं बृहद्संहिता के अनुसार किया गया होगा। सभी वर्गों के अलग-अलग आवास, भिन्न-भिन्न व्यवस्था के अनुसार थे। निर्धनों के मकान छोटे व मिट्टी आदि के होते थे। मध्यम और धनीवर्ग के मकान चंदेल युग में प्रस्तर से निर्मित थे। उनमें विविध प्रकार की कारीगरी थी।मकानों में ड्योढ़ी ,स्तम्भ, द्वार तथा आवासीय कमरे थें। भवनों के मध्य में विशालकाय आंगन होता था। राजा और उसके मंत्रियों के आवास और भी सुन्दर हुआ करते थे। कलाकारों तथा धातुकर्मियों के मकान अलग होते थे।

चन्देल युग समाप्त होने के पश्चात इस क्षेत्र में तुर्कों और मुगलों का व्यापक प्रभाव पड़ा तथा बुन्देलों के समय तक निर्माण शैली में अनेक परिवर्तन होते रहे। बुन्देलों के समय में पतली ईटों और प्रस्तरों से मकानों का निर्माण होने लगा था। उनमें चूनें का पलस्तर किया जाने लगा था और अनेक प्रकार की कसीदाकारी का प्रयोग भवनों में होने लगा था। के0 सी0 मिश्रा ने अपनी पुस्तक में इसका व्यापक वर्णन किया है।[42] बृहद्संहिता के निर्देशों का पालन वास्तुनिर्माण में किया जाता था। ताकि मानवीय आवास किसी प्रकार से अमंगल सूचक न हों।[43] इस परिक्षेत्र में उपलब्ध आवासीय वस्तुओं के अवशेष चन्देल काल से लेकर मुगल काल और उसके बाद तक के प्राप्त होते हैं। यहां पर आवश्यकता केलव व्यापक उत्खनन की हैं। यदि इतिहास एवं पुरातत्व विभाग अपने निर्देशन में व्यापक परियोजना के साथ पाथर कद्दार ,नरदहा फतेहगंज और मड़फा के निकट उत्खनन करायेगा। तो निश्चित ही इन स्थलों में उन वस्तुओं की उपलब्धि प्रचुर मात्रा में होगी। जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होंगे। अभी तक इस परिक्षेत्र में सन् 1870 के बाद कोई विशेष सर्वेक्षण एवं शोध कार्य सम्पन्न नहीं हुआ है। इसीलिए इस क्षेत्र का नवीन ऐतिहासिक दृष्टि कोण भी सामने नहीं आ सकें हैं।

3. दुर्गावशेष -

कालिंजर मुख्य रूप से अपने सृदृढ़ दुर्ग के लिए ही सदैव से प्रसिद्ध रहा है। इस समय जो दुर्ग यहां उपलब्ध है, उसका अस्तित्व दूसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी के मध्य प्रकाश में आया। रक्षा की दृष्टि से सर्वोत्तम पर्वतीय और वनीय दुर्गों में से एक था जो शत्रुओं को उत्तर से दक्षिण की ओर किसी भी सूरत में आगे नहीं बढ़ने देता था। इसका निर्माण केदार वर्मन ने कराया था। कतिपय विद्वानों का मत है

कि यह दुर्ग महाभारत कालीन था तथा यह चेदि नरेश शिशुपाल के अधिकार में था, किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता है।

सुदृढ़ता की दृष्टि से यह दुर्ग प्राचीरवेष्टित (दिवारों से घिरा हुआ) था। इसकी दीवारें बहुत चौड़ी और बहुत ऊंची थीं। यदि इन दीवारों की तुलना चीन की दीवारों से की जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। दुर्ग के संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान केशव चन्द्र मिश्र ने व्यापक प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि कालिंजर दुर्ग मध्य कालीन भारत का सर्वोत्तम दुर्ग माना जाता था।[44] कालिंजर के संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे ने भी काफी प्रशंसा की हैं उनका मत है कि कालिंजर दुर्ग के प्राचीरों से कालिंजर नगर भी घिरा हुआ था। यह दुर्ग सामरिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसमें प्रवेश के लिए सात द्वार थे, जो अलग-अलग नामों से प्रसिद्ध थे।[45]

मड़फा दुर्ग-

मड़फा दुर्ग भी बहुत अधिक प्रसिद्ध था। चंदेलों का अस्तित्व समाप्त होने के पश्चात यह दुर्ग बघेलों के अधिकार में रहा। अकबर के समय में यहां का शासक रामचन्द्र बघेल था। इस दुर्ग के विषय में यह किवदन्ति है कि कालिंजर दुर्ग और मड़फा दुर्ग का निर्माण साथ-साथ हुआ था।

रसिन दुर्ग-

रसिन दुर्ग चंदेल कालीन है। यहां पर चंदेल शासक राज्य करते थे। यह दुर्ग भी एक पहाड़ी पर है। इसके ऊपर चन्द्रामाहेश्वरी का मंदिर तथा अनेक प्राचीन स्थल हैं। दुर्ग के नीचे भी आवासीय बस्तियों के अवशेष उपलब्ध होते है।

वीरगढ़ दुर्ग-

यह दुर्ग फतेहगंज की एक पहाड़ी पर है। कहते हैं कि बघेल राजा व्याघ्र देव जब प्रारम्भ में यहां आये तो उन्होंने सर्वप्रथम वीरगढ़ दुर्ग में अपना अधिकार जमाया । बाद में उनके उत्तराधिकारियों ने मड़फा,कालिंजर तथा बाद में सम्पूर्ण बघेल खण्ड क्षेत्र में अपने राज्य का विस्तार किया।

पथरीगढ़ दुर्ग-

यह दुर्ग फतेहगंज के सन्निकट पाथर कद्दार में है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह दुर्ग चंदेल युग के बाद का प्रतीत होता है। तुर्कों के शासन काल में यह दुर्ग तुर्कों के आधीन था उसके पश्चात यह मुगलों के कब्जे में आ गया बाद में यह दुर्ग छत्रसाल के अधिकार में रहा। इस दुर्ग में अनेक प्राचीन स्थल उपलब्ध हुए हैं।

इस क्षेत्र के मगरमुहा में शैलाश्रय एवं शैलचित्र प्राप्त हुए है। मगरमुहा दुर्ग के ऊपर अनेक पुरावशेष उपलब्ध हुये हैं। यह दुर्ग प्राचीरवेष्टित था और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भी था। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर परिक्षेत्र में दुर्गावशेषों की अनेक उपलब्धियाँ हुई हैं। यहां पर अनेक दुर्ग एवं गढ़ियाँ थीं।

छोटी-छोटी गढ़ियां नरदहा और हुमायूँ की छावनी आदि स्थलों में थीं। कुछ दुर्ग अवशेष पहाड़ीखेरा के आस-पास भी उपलब्ध होते हैं। अंत में हम यह कह सकते है कि कालिंजर परिक्षेत्र दुर्ग अवशेषों से भरा पड़ा है।

4.प्रासादीय अवशेष-

कालिंजर परिक्षेत्र में कुलीन वर्ग के लिए अनेक राजप्रासाद उपलब्ध हुए हैं। काल की दृष्टि से ये राजप्रासाद चंदेलयुग से लेकर 18 वीं शताब्दी तक के प्रतीत होते हैं। कालिंजर बस्ती में दुर्ग के सन्निकट राठौर महल हैं। रचनाशैली की दृष्टि से इसे मुगल कालीन वास्तुशिल्प की संज्ञा दी जा सकती हैं राजप्रासादों के बाहरी भाग में विशिष्ट कला शैली के दर्शन होते हैं। ठीक इसी के सामने एक महल हैं । जिसे यहां के लोग रनिवास के नाम से पुकारते हैं।

कालिंजर बस्ती में ही थोड़ी दूर पर मिश्रों (पंडितों) के कई महल उपलब्ध हुये है। किसी जमाने में ये यहां के जागीरदार थे। ये महल मुगल एवं बुन्देली वास्तुशिल्प के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कालिंजर बस्ती में ही दो अन्य महल हैं, एक में तुफैल का निवास स्थान था तथा दूसरे में राजवैद्य निवास करते थे। कालिंजर दुर्ग के ऊपर सातवां द्वार पार करते ही हमें चौबे महल के दर्शन होते हैं। यह महल मानधाता चौबे से लेकर रामकिशन चौबे तक उन्हीं के अधिकार में रहा । वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह भी बुन्देली और मुगल शैली का समिश्रण है। कालिंजर दुर्ग में ही राजा अमान सिंह का महल है। यह महल अत्यन्त सुन्दर है।राजा अमान सिंह बहुत ही दयालु ,शिष्ट और दानवीर थें। इनके संदर्भ में कुछ उक्तियां प्रसिद्ध है-

रजत पहार घनसार मालती के हार।
छीर पारावार गंगधार सो धराधर सो।।
सत्य सो सतोगुण सो शारदा सो शंकर से।
शंख सुक्रन सो सुधा सो सुरतरू सो।।
भनत पराग कामधेनु सो कुमोदिनि सो।
कुंजकुंद फूल सो पुनीति पुष्प फर सो।।
कलि में अमान सिंह करण अवतार जानो।
जाको जस छाजत छबीलों छपाकर सो।।
"कहॉ गये राजा अमान, रोवें वन की चिरइयाँ।।"

-पराग कवि (प्रचलित बुन्देली लोकगीत)

कालिंजर परिक्षेत्र में ही नहीं अपितु पूरे उत्तर प्रदेश में अधिकतर यह लोकगीत लोगों के मुंह से सुने जाते हैं। खास तौर से यह पंक्ति सभी के द्वारा सुनी जा सकती है।

कालिंजर दुर्ग में ही अन्य आवासीय महल थे, जिसमें शासक वर्ग रहा करता था। वे सब अब ध्वस्त हो चुके है। इसके अतिरिक्त यहां जुझैतियों की बस्ती के अवशेष भी प्राप्त हुए है। चन्देल शासन में जुझौतियां ब्राह्मणों का अत्यन्त सम्मान था। कालिंजर के अतिरिक्त बहादुरपुर के सन्निकट हुमायूँ की छावनी नामक स्थान में महलों के पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं। रसिन और मड़फा में उपलब्ध राजप्रासाद पूरी तरह ध्वस्त हो चुके हैं। इसलिए वास्तुशिल्प की दृष्टि से इन पर कोई विचार नहीं किया जा सकता है। कुछ आवासीय महल फतेहगंज में वीरगढ़ दुर्ग के ऊपर उपलब्ध हुए हैं, मगर ध्वस्त होने के कारण कोई विचार नहीं किया जा सकता।

पाथर कद्दार में पथरीगढ़ के सन्निकट कुछ महलों के अवशेष उपलब्ध होते है। इन महलों में मुगल व बुन्देली वास्तुशिल्प का समिश्रण कहा जा सकता है। इसके बाहरी तथा द्वार के ऊपरी भाग में बहुत ही सुन्दर चित्रकारी है। ड्योढ़ी के अन्दर वर्गाकार आंगन है और उसके चारो ओर विभिन्न प्रकार के कच्छ बने हुए है। इन महलों में चूने की छपाई तथा निर्माण में पत्थरों का प्रयोग किया गया है। कही-कहीं पर पतली ईटें भी दृष्टिगोचर होती है। पाथर कद्दार में ही अन्य महलों के अवशेष भी प्राप्त होते है। आवागमन के साधनों के अभाव के केवल निजी साधनों से ही कालिंजर से यहां पहुंचा जा सकता है। इतिहासकार के० सी० मिश्रा ने आवासीय वास्तुशिल्प पर काफी प्रकाश डाला है। निर्माण शैली में वराहमिहिर द्वारा रचित बृह्दसंहिता, विश्वकर्मा द्वारा रचित विश्वकर्म प्रकाश, मयदानव द्वारा रचित मयशिल्प, मैमत काश्यप द्वारा रचित वस्तुतत्व तथा भरद्वाज द्वारा रचित वस्तुतत्व और सनतकुमार द्वारा रचित वास्तुशास्त्र का सहारा लिया जाता था।[47]

कालान्तर में जब इस क्षेत्र में मुसलमानों और तुर्कों का आक्रमण हुआ, उसके पश्चात ही वस्तु शिल्प में परिवर्तन आया। जब यह क्षेत्र बुन्देलों के अधिकार में आ गया तो यहां का वस्तुशिल्प मिश्रित वस्तुशिल्प के नाम विख्यात हुआ। इसमें मुगल और बुन्देली शैली का समिश्रण झलकता है।

5. स्मारकीय अवशेष -

कालिंजर परिक्षेत्र में राजप्रासादों और दुर्गों के अतिरिक्त अन्य स्मारकीय अवशेष उपलब्ध होते हैं। जिनका सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ा है। कालिंजर दुर्ग के ऊपर जौहरा नामक स्थल उपलब्ध हुआ है जिसके संदर्भ में यह जनश्रुति है कि जब कोई राजा पराजित हो जाता था। तब उसकी रानियाँ इस स्थल पर जौहर व्रत किया करती थीं। कालिंजर दुर्ग के सातवें द्वार के सन्निकट युद्ध में मरे सैनिकों की कब्रें बनी हुई हैं और नीलकण्ठ मंदिर के सन्निकट एक मजार बनी हुई है। प्राप्त कब्रों और मजारों के विषय में कोई अभिलेख एवं ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इनके विषय में कुछ भी नीश्चित नहीं कहा जा सकता है। दुर्ग के ऊपर ही एक अंग्रेज की मजार है। मजार में वाऊचोप नाम लिखा है। इस अंग्रेज के बारे में यह कहा जाता है कि इसने यहाँ की आदिवासी जाति की महिलाओं के साथ छेड़खानी की थी। इसलिए

खैरवार जाति के आदिवासियों ने ही इसकी हत्या कर दी थी।[48] वेंकटेश्वर मंदिर के समीप एक मस्जिद है जो कुतुबुद्दीन ऐवक, के समय की प्रतीत होती है। कालिंजर दुर्ग के नीचे राठौर महल के समीप कुछ कब्रें बनी हुई हैं, उसके सन्निकट अन्य मस्जिद जैसी इमारतें हैं। कालिंजरी पहाड़ी के निकट अनगिनत कब्रें हैं जो महमूद गजनबी और शेरशाह सूरी के काल की हैं। यहीं से थोड़ी दूर चलने पर बधेलावारी मार्ग में शेरशाह सूरी की मजार है। इसकी मृत्यु कालिंजर दुर्ग में सन् 1545 में हुई थी। कुछ मृत्यु स्मारक हुमायूँ की छावनी के नजदीक हैं। इसके अतिरिक्त नरदहा में पत्थर के कोल्हू उपलब्ध हुए हैं। इनके विषय में कहा जाता है कि चन्देल काल और उसके बाद तक मृत्युदण्ड की यह प्रथा थी कि जीवित व्यक्तियों को कोल्हुओं में पेर कर मृत्यु दण्ड दिया जाता था। कुछ मृत्यु स्मारक पाथर कह्वार में प्राप्त हुए हैं। यह स्मारक रक्तदंतिका देवी मंदिर के निकट है। यह मृत्यु समारक अत्यन्त उच्चकोटि के हैं। यह यहां के हिन्दू राजवंशों के है। किसी-किसी में शिव प्रतिमा भी है। यहीं से थोड़ी दूर चलने पर एक वैश्या की बहुत सुन्दर मजार उपलब्ध हुई है। यदि इसकी समतुलना हैदराबाद की चार मीनार से की जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। कुछ मृत्यु स्मारक मड़फा और रसिन में भी उपलब्ध हुए हैं। जो वास्तुशिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि के नहीं हैं किन्तु गुढ़ा के सन्निकट नौगवां नामक ग्राम में एक संत कबीर की गद्दी प्राप्त हुई है। इसके निकट बने हुए मृत्यु स्मारक अत्यन्त सुन्दर और वास्तुशिल्प के उदाहरण हैं। यह मुगलशैली के प्रतीत होते हैं। पुरावशेष की दृष्टि से इन्हें महत्वपूर्ण कहा जा सकता है।

6. धर्म स्थल-

कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक स्थलों पर धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है। यह धार्मिक स्थल गुप्त युग से लेकर बुन्देला शासकों के समय तक के हैं। इन धार्मिक स्थलों का सम्बन्ध हिन्दू धर्म के विविध मतों इस्लाम धर्म एवं जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। सबसे प्राचीन धार्मिक स्थल कालिंजर दुर्ग में ही उपलब्ध होते हैं।यहां नीलकण्ठ महादेव का मंदिर दुर्ग के ऊपर है। इसके संदर्भ में स्थानीय लोगों का कथन है कि चंदेलों के युग में यह सात मंजिला था। इसका मण्डप विविध मूर्तियों से अलंकृत है। मदिंर के अन्दर शिव और पार्वती की प्रतिमा हैं ये प्रतिमायें नीले पत्थर की हैं। इनका स्वरूप मूर्ति एवं लिंग दोनों का ही है। मन्दिर परिसर के बाहर अनेक मूर्तियां मिलती हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध मूर्ति काल भैरव की है। जिसमें नरमुण्ड माला और 18 भुजायें है।

दुर्ग के ऊपर ही राजा अमान सिंह के महल के समीप वेंकटेश्वर मन्दिर के अवशेष मिलते हैं, दुर्ग के ऊपर अनेक धार्मिक स्थल थे जो अब नष्ट हो चुके हैं। बृद्धक क्षेत्र और कोटितीर्थ तालाब का भी धार्मिक महत्व था। यहीं पर सहस्त्रलिंगी महादेव तथा अन्य मूर्तियां उपलब्ध होती हैं। दुर्ग के नीचे अनन्तेश्वर महादेव का मंदिर बुन्देलों के युग का है। यहीं पर गोपाल तालाब के सन्निकट एक विष्णु मंदिर है। कालिंजर बस्ती में हिम्मत बहादुर गोसाई के समय का गौरइया मंदिर भी उपलब्ध होता है। इसका निर्माण बुन्देली

वास्तुशिल्प के अनुसार हुआ है।कालिंजर दुर्ग के नीचे सुरसरि गंगा नामक धार्मिक स्थल है। यहां अनेक मूर्तियां प्राप्त होती है।शेषशायी विष्णु की मूर्ति दर्शनीय है तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियां यहीं है। इसी के थोड़ी दूर पर सिद्धों के मठ हैं। यहां योगपंथी तप किया करते थे।

कालिंजर से बघेलावारी मार्ग पर नरदहा और सिधौरा में देवी मंदिर एवं गणेश मंदिर के अवशेष उपलब्ध हुए है। ये अवशेष पंचम पुर बांध के सन्निकट हैं। यहां की गणेश प्रतिमा अत्यन्त विशाल एवं कलात्मक है। यहीं से थोड़ी दूर नौ गवां में कबीर गद्दी के नाम से एक धार्मिक स्थल है। जहां कबीरपंथ के लोग अपनी साधना करते है। इसी स्थान से थोड़ी दूर पर गुढ़ा नामक स्थान पर हनुमान जी का एक मंदिर है, जिसकी मूर्ति चंदेल कालीन है। मंदिर का निर्माण बाद का मालूम पड़ता है। कालिंजर बस्ती में ही रींवा फाटक के सन्निकट एक हनुमान मंदिर उपलब्ध होता है तथा यहीं पर गणेश आदि की प्रतीमायें भी है।

पाथर कद्दार में रक्तदंतिका देवी का मंदिर है, और यहीं पर दो विष्णु मंदिर भी उपलब्ध होते हैं। ये मंदिर बुन्देला शासन काल के प्रतीत होते हैं। किन्तु रक्तदंतिका की मूर्ति चंदेल कालीन है। यह क्षेत्र चौबों की जागीर में शामिल था। यहीं से कुछ दूरी पर फतेहगंज में वीरगढ़ की पहाड़ी पर एक देवी मंदिर प्राप्त होता है। यह मंदिर बघेल राजा व्याध्रदेव और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा निर्मित प्रतीत होता है। इसी के सन्निकट बान गंगा मार्ग पर बिलहरिया मठ मंदिर[49] के अवशेष उपलब्ध होते हैं। मंदिर में मुख्य प्रतिमा (विष्णु मूर्ति) इस समय नहीं है। यह मन्दिर ध्वस्त हो रहा है। शैली की दृष्टि से यह चंदेल कालीन वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट नमूना है। मंदिर देखने में खजुराहो के मंदिर जैसा ही प्रतीत होता है। यहीं से थोड़ी दूर पर शिव और हनुमान मंदिर के भग्नावशेष मिलते हैं तथा बानगंगा के निकट भी अनेक मंदिर प्राप्त होते हैं।

मड़फा दुर्ग के ऊपर भगवान शिव का एक चन्देलकालीन मंदिर उपलब्ध होता है जिसकी मूर्ति कालिंजर के कालभैरव जैसी प्रतीत होती है। मंदिर से थोड़ी दूर चलने पर दो जैन मन्दिरों के अवशेष प्राप्त होते है। इन मंदिरों में अब कोई मूर्तियाँ उपलब्ध नहीं हैं। थोड़ी दूर चलने पर जैन मंदिरों के भग्नावशेष उपलब्ध होते हैं जिन्हें स्थानीय लोग बारादरी के नाम से पुकारते हैं। वास्तुशिल्प की दृष्टि से इनका निर्माण शिल्प चंदेलकालीन है। यहीं पर एक धार्मिक स्थल गौरी शंकर गुफा नाम से उपलब्ध होता है, जहां अनेक देवताओं की मूतियां हैं। इसी से कुछ नीचे उतरने पर साधू संतों की तप स्थली भी है।

मड़फा दुर्ग से थोड़ी दूरी पर रौलीगोड़ा नामक एक स्थल हैं, यहां पर एक चंदेल कालीन मंदिर उपलब्ध हुआ है, जो देखने में खजुराहों के मंदिरों जैसा प्रतीत होता है किन्तु यह जीर्ण-शीर्ण स्थिति में है। यहीं से थोड़ी दूर पर पवर्त श्रेणी में एक देवी का मंदिर भी है, जो चन्देल काल का प्रतीत होता है।

थोड़ी दूर रसिन नामक एक ऐतिहासिक स्थल है। इसकी एक पहाड़ी पर चन्द्रामाहेश्वरी का मंदिर है। यह मंदिर भी चन्देलकालीन वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट नमूना है इसके गर्भगृह से मुख्य मूर्ति गायब है। इसी

पर्वत के एक कोने पर रतननाथ नामक यादव का एक धार्मिक स्थल है। पर्वत के नीचे तालाब के किनारे चंदेल कालीन मंदिर उपलब्ध होता है, यह देवी मंदिर प्रतीत होता है। इस स्थल में अनेक मूर्तियाँ देवी-देवताओं से सम्बन्धित हैं । रसिन के अन्य क्षेत्रों में भी धार्मिक स्थलों के अनेक अवशेष उपलब्ध होते हैं।

धार्मिक स्थलों का दर्शन एवं धार्मिक दृष्टि से विश्लेषण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र मुख्य रूप से शिव उपासना का केन्द्र था। उसके पश्चात देवी मंदिरों का बाहुल्य प्रतीत होता है। विष्णु मंदिर और गणेश मंदिर भी उपलब्ध होते हैं। किन्तु इनकी संख्या बहुत अधिक प्रतीत नहीं होती। इन मंदिरों में नागों तथा अन्य पशुओं,वाराह इत्यादि की मूर्तियां प्राप्त होती हैं। जिससे इस क्षेत्र की धार्मिक विविधता का बोध होता है। निराकार और नाग पंथियों ,कबीरों तथा सिद्धों की इमारतें जो इस क्षेत्र में उपलब्ध हुई हैं उन्हें धार्मिक,ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इस्लाम धर्म से सम्बन्धित जो मस्जिदें यहां उपलब्ध होती हैं। उनसे यह प्रतीत होता है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जब कालिंजर परिक्षेत्र में आक्रमण किया। उस समय उन्होंने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर आघात पहुंचाया और अपने धर्म का प्रचार-प्रसार किया। यह क्रम 9वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक किसी न किसी रूप में चलता रहा।

7- मूर्ति अवशेष-

कालिंजर परिक्षेत्र में गुप्त काल से लेकर बुन्देला शासकों के समय तक की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। सुप्रसिद्ध मूर्तियाँ, गुप्तयुग और चन्देल युग की हैं, क्योंकि चन्देलयुगीन मूर्तियों में मूर्तिशिल्प बहुत ही उच्चकोटि का है। मुख्य प्रतिमायें शिव,गणेश शक्ति,हनुमान, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नाग ,यक्ष, वाराह की उपलब्ध होती है।[50] यह सभी प्रतिमायें हिन्दू धर्म के विविध शाखाओं की हैं। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में जैन धर्म से सम्बन्धित प्रतिमायें भी विविध तीर्थकारों की प्राप्त होती हैं।ये प्रतिमायें भी चन्देल कालीन हैं, और वास्तुशिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि की भी हैं। कालिंजर दुर्ग में नीलकण्ठ महादेव सहस्रलिंगी शिव, पंचमुखी शिव, काल भैरव तथा मिढ़की भैरव की प्रतिमायें उच्चकोटि की कलाकृति हैं।इसी प्रकार सुरसरि गंगा में प्राप्त शेषशायी विष्णु की मूर्ति वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण प्रतीत होती हैं। कालिंजर दुर्ग में ही नागों, यक्ष-यक्षणियों ,वाराह तथा नन्दीश्वर की भी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। कुछ मिथुन मर्तियाँ भी खजुराहों शैली की प्राप्त होती हैं।

सिधौरा के निकट गणेश जी की बहुत सुन्दर प्रतिमा उपलब्ध हुई है। इसी प्रकार रसिन में अनेक मूर्तियाँ सत्ता-सत्ती की उपलब्ध होती हैं। इसमें सूर्य-चन्द्र, स्त्री-पुरूष का जोड़ा और आशिर्वाद का हांथ अंकित है। इसी प्रकार मड़फा रौली गोंड़ा, बिलहरिया मठ की मूर्तियँ भी कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की हैं कुछ मूतियाँ कालिंजर में बागे नदी के तट पर उपलब्ध होती हैं। लोगों का विचार है कि यहां नदी तट पर एक मंदिर था, जो नष्ट हो गया है। बुन्देला शासकों के समय की मूर्तियाँ अधिकांशतः अष्टधातु एवं

पीतल आदि की हैं। जो पाथर कद्दार एवं कालिंजर के मंदिरों में देखी जा सकती हैं। नरदहा में बलखण्डेश्वर महावीर की एक विशालकाय प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय है। यहां की पुरातात्विक सामग्री मूर्ति साक्ष्य के रूप में चारो ओर फैली हैं किन्तु सरंक्षित नहीं है।

8- जलाशय-

कालिंजर क्षेत्र में उपलब्ध जलाशय ऐतिहासिक साक्ष्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसमें कुछ जलाशय महाभारत काल के हैं। महाभारत कालीन जलाशयों में मृगधारा, कोटितीर्थ तथा बृद्धक क्षेत्र के जलाशय अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनका उल्लेख भागवत पुराण और महाभारत में हैं। इसके अतिरिक्त पाण्डव कुण्ड, पाताल गंगा, मझार ताल, शनीचरी तलइया, रामकटोरा , ताल कालिंजर दुर्ग के प्रसिद्ध जलाशय हैं। दुर्ग में ही खम्भौर ताल है, जो रामायण कालीन हैं। इसी स्थान पर महर्षि सुतीक्ष्ण का आश्रम था। जल मानव की सर्वाधिक आवश्यकता की वस्तु है, इसलिए आवासीय बस्तियाँ बनाने के पहले जलाशयों का निर्माण करना आवश्यक होता था।

दुर्ग के नीचे प्राचीन जलाशयों में सुरसरि गंगा, बेला ताल, गोपाल ताल आदि महत्वपूर्ण जलाशय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य बावडी और बीहड उपलब्ध होते हैं। कालिंजर से कुछ ही दूरी पर बृहस्पति कुण्ड नामक स्थल हैं। यहां पर प्राकृतिक जलाशय हैं और यह स्थल रामायण कालीन है। हुमायूं की छावनी, सिधौरा, फतेहगंज में अनेक जलाशय हैं जिनमें सकरो जल प्रपात अत्यन्त प्राचीन है। इसके अतिरिक्त मगरमुहा में शैलचित्र के समीप एक जलाशय है इसी स्थान पर वीरगढ़ की पहाड़ी पर देवी मंदिर के समीप एक तालाब उपलब्ध हुआ है। यहीं से कुछ दूर चित्रकूट मार्ग पर बान गंगा नामक जलाशय उपलब्ध होता है यह जलाशय कुण्ड के रूप में है।

फतेहगंज से कुछ दूरी पर पाथर कद्दार रियासत अनेक जलाशय स्थित हैं। एक तालाब रक्तदंतिका मंदिर के समीप है। इस तालाब के किनारे मृत राजाओं को स्मारक बने हुए हैं। यहां से कुछ दूरी पर दो प्राकृतिक झीलें उपलब्ध होती हैं और बीच में एक बीहड भी है तथा कुछ जलाशय दुर्ग अवशेषों के समीप भी हैं।

मड़फा दुर्ग में भी अनेक जलाशय हैं। इसमें एक जलाशय कालिंजर दुर्ग में उपलब्ध स्वर्गारोहण तालाब की भांति हैं । दो अन्य तालाब जैन मंदिरों के समीप प्राप्त हुए है। जलाशयों के अतिरिक्त अनेक बावडियाँ भी हैं जो दुर्गों,पर्वतों, पर अनेक स्थलों में बनी हुई हैं।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल रसिन में दुर्ग के ऊपर जहां चन्द्रामाहेश्वरी देवी का मंदिर है। उसके समीप एक जलाशय है। यह जलाशय तालाब के रूप में हैं जो अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह चन्देल कालीन सरोवर है। रसिन बस्ती में एक मन्दिर के समीप एक विशाल तालाब है शायद यह भी चन्देलकालीन है। इसी के समीप एक चन्देलकालीन बीहड़ भी प्राप्त होता है। सभी जलाशय एवं बीहड़

अत्यन्त प्राचीन है। रसिन के पास रौलीगोंड़ा नामक स्थान में चन्देलकालीन मंदिर के समीप एक जलाशय उपलब्ध हुआ है।

यदि ऐतिहासिक दृष्टि से जलाशयों का मूल्यांकन किया जाये तो समस्त जलाशयों का निर्माण काल रामायण काल से लेकर चन्देल युग तथा उसके बाद का प्रतीत होता है। जलाशयों की निर्माण शैली का उल्लेख अग्निपुराण,बृहद्संहिता, विश्वकर्मा प्रकाश आदि ग्रंथों में विस्तार से है। जो जलाशय सल्तनत काल, मुगलकाल तथा बुन्देलों के शासन के समय के हैं उनकी निर्माण शैली मिश्रित शैली है। इस विषय में के0 सी0 मिश्रा का यह दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है "मदनवर्मा ने जलाशयों की रचना के कारण जिस लोकप्रियता का संग्रह किया वह अन्यों को दुर्लभ रहा।" उसी के युग का बना अजयगढ़ का सुविशाल पोखरा,कृत्रिम झील तथा कालिंजर का रमणीय जलाशय सभी बड़े ही महत्व के हैं। इन जलाशयों की धार्मिक महत्ता जो आज प्राप्त होती है वह प्राचीन समय से ही आरम्भ है।[51]

कालिंजर परिक्षेत्र में उपलब्ध सभी जलाशय विन्ध्य क्षेत्र की पर्वतीय भूमि पर बने हुए हैं जिन्हे ढालदार स्थलों पर दीवार या स्तम्भों के सहारे निर्मित किया गया है। अनेक जलाशयों में जल स्तर तक सोपान निर्मित हैं। इसी प्रकार बीहड़ों में जल स्तर तक पहुंचने के लिए सीढ़ियाँ निर्मित की गई हैं। उस समय जो भी शैली उपलब्ध थी उन्हीं शैलियों का आश्रम ग्रहण कर तद्युगीन वास्तुकारों ने कलात्मक ढंग से इनका निर्माण किया था।

9. अभिलेख -

कालिंजर के ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में प्राप्त अभिलेखों का महत्वपूर्ण स्थान है। जैसे ही हम नीलकण्ठ मंदिर में प्रवेश करते हैं। वहीं एक स्तम्भ पर मदन वर्मा के समय का एक अभिलेख प्राप्त होता है। यह अभिलेख (विक्रमी संवत 1186) सन् 1129 ई0 का है। इस अभिलेख में महाप्रतिहार संग्राम सिंह तथा महानचनी पद्मावती का नाम अंकित है।[52] कालिंजर में ही मदन वर्मा का एक और अभिलेख मिला है। इसमें कार्तिक सुदी अष्टमी विक्रमी संवत् 1188 अंकित है। इसमें रूपकार लाहण तथा लक्ष्मीधर के नाम अंकित है।[53] कालिंजर में एक और अभिलेख विक्रमी संवत् 1258 तद्नुसार सन् 1201 ई0 का है। इस अभिलेख में परमार्दिदेव को"दर्शाणाधिनाथ" के नाम से सम्बोधित किया गया है।[54] कालिंजर में ही एक अभिलेख फारसी में उपलब्ध हुआ है, जिसमें हिजरी सम्वत 1084 अंकित है। तद्नुसार यह अभिलेख 1673 ई0 का है। इस अभिलेख में मोहम्मद मुराद द्वारा द्वार को मजबूत बनाने का जिक्र है।[55]

विक्रमी संवत् 1154 का एक शिलालेख कालिंजर में उपलब्ध हुआ है, जो कीर्तिवर्मन के समय का है। जिससे यह प्रतीत होता है कि उसने शासन को समृद्धशाली बनाया और उसका विस्तार किया। उसके पश्चात उसके उत्तराधिकारी सुलक्षन वर्मा ने शासन किया।[56] कालिंजर में एक और अभिलेख प्राप्त हुआ है जिससे यह जानकारी मिलती है कि जयवर्मन ने शासन सत्ता से घबराकर अपने उत्तराधिकारी के लिए गद्दी

छोड़ दी। एक महत्वपूर्ण अभिलेख कालिंजर में ही उपलब्ध हुआ है जो मदन वर्मा के समय का है। उसमें इस बात का वर्णन है कि उसने मालवा नरेश पर विजय प्राप्त की थी।उसी के उपलक्ष्य में सम्वत् 1134 में भेलस्वामिनी (विदिशा) में कुछ जमीन ब्राह्मणों को दान में दी थी। इस अभिलेख में यह भी वर्णन है कि उसने गुर्जर नरेश को ठीक उसी तरह परास्त किया जैसे भगवान श्री कृष्ण ने कंस का विनाश किया।[57] कालिंजर में दो स्तम्भ लेख मिले हैं। यह नीलकण्ठ मंदिर के समीप हैं।[58] इसमें एक स्तम्भ लेख विक्रमी संवत् 1188 का है। यह नीलकण्ठ मंदिर के बांई ओर बैल की मूर्ति में है। इससे यह सद्धि होता है कि मूर्ति का निर्माण नीलकण्ठ मंदिर के साथ हुआ था। इसी स्थान पर एक शिलालेख विक्रमी संवत् 1192 का है। यह एक गुफा में है जिसकों खुदवाने वाला एक भरद्वाज ब्राह्मण था। इसमें विक्रमी संवत् 1194 अंकित है। एक अभिलेख कालिंजर में ही विक्रमी संवत् 1240 का प्राप्त हुआ है।[69] इस अभिलेख का आशय यह है कि सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र का राजा परमार्दिदेव था तथा इसका सबसे बड़ा शत्रु पृथ्वीराज तृतीय था। इसने संवत् 1178-1192 तक राज्य किया।[60] कालिंजर में एक शिलालेख त्रैलोक्य वर्मन के समय का उपलब्ध हुआ है। यह सन् 1206 का है। इसमें उसे"कालिंजराधिपति" के नाम से सम्बोधित किया गया है।[61]

अभिलेखीय साक्ष्यों के अनुसार एक अभिलेख सीता सेज में उपलब्ध हुआ है,दूसरा अभिलेख पाताल गंगा में, तीसरा अभिलेख मिढ़की भैरव स्थान में, चौथा अभिलेख अंग्रेजों के समय का वाऊचोप की मजार पर है। इनके अतिरिक्त मड़फा, रसिन, फतेहगंज, वीरगढ़, पाथर कद्दार आदि स्थानों में अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें से कुछ विध्वंस हो गये हैं जिन्हें पढ़ा जाना मुश्किल है। कुछ अभिलेख बिलहरिया मठ, रौलीगोंड़ा आदि स्थानों में भी प्राप्त हुए हैं। अभिलेखीय साक्ष्यों से कालिंजर महत्वपूर्ण स्थल सिद्ध होता है और इसका धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व उजागर होता है। इन्हीं अभिलेखों द्वारा ही कई राजनीतिक घटनाओं का आभास होता है तथा उनकी महानता, दानवीरता, धार्मिकता, सहनशीलता ,राज्य विस्तार और कर नीति का ज्ञान इन्हीं अभिलेखों द्वारा हो जाता है।

10. मुद्रायें -

कालिंजर परिक्षेत्र के ऐतिहासिक साक्ष्यों में मुद्राओं का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है।राजनीतिक दृष्टि से उत्थान-पतन देखने वाले इस क्षेत्र में अनेक शासकों ने राज्य किया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि समय-समय पर उन शासकों की मुद्रायें भी यहां प्रचलित रहीं हैं। प्रमुख रूप से इस क्षेत्र में कलचुरियों और चन्देलों के ही सिक्के उपलब्ध होते हैं। इन सिक्कों में ब्राह्मीलिपि में त्रिपुरी शब्द अंकित है। सवंत् की जगह कुछ भी अंकित नहीं हैं। इन सिक्कों में एक ओर धन (+), चन्द्र एवं चैत्य के आकार अंकित है। इन्हीं चिन्हों से शक्ति, नर्मदा तथा धर्म का आभास होता है। कलचुरि शासन काल के कुछ सिक्के ग्यारहवीं शताब्दी के प्राप्त होते हैं। इन सिक्कों में कलचुरि वंश के 12 राजाओं के नाम अंकित हैं। यह देखनें में अत्यन्त सुन्दर है। सिक्कों में एक तरफ चतुर्भुजी देवी की मूर्ति है जो कदाचित लक्ष्मी या दुर्गा की हो सकती

है। कलचुरि युग के सिक्के स्वर्ण धातु से निर्मित हैं बाद में इन सिक्कों की नकल कन्नौज के गहड़वारों व दिल्ली के तोमरों ने की। कालिंजर में यह सिक्के अत्यन्त प्राचीन अवशेषों के रूप में यहां के निवासियों को प्राप्त हुए हैं।

कालिंजर में प्राप्त दूसरे सिक्के चन्देल युगीन हैं। ये कलचुरि नरेश गांगेय देव के सिक्कों की नकल है। इनमें एक ओर राजा का नाम तथा दूसरी ओर हनुमान की मूर्ति है।यह सिक्के सोने,चाँदी और ताँबे से निर्मित थे। चन्देल वंश के 13 नरेशों के सिक्के उपलब्ध होते हैं किन्तु अधिकांश सिक्के 13वें नरेश कीर्तिवर्मन देव के सन् 1245 ई0 के हैं और कुछ सिक्के 20वें नरेश वीरवर्मन के सन् 1287 ई0 के हैं।

कालिंजर पर कुछ दिनों तक सुल्तानों और मुगलों का अधिकार रहा। इस क्षेत्र में जो सिक्के उपलब्ध हुए हैं, वह सन् 1311 ई0 से लेकर 1553 ई0 तक के हैं। इनमें अरबी,फारसी से हिजरी संवत् और बादशाह का नाम अंकित हैं । यह सिक्के सोने और चांदी के प्राप्त हुए हैं।[62]

चन्देल युग की मुद्राओं के सन्दर्भ में इतिहासकारों का यह मत है कि ये कलचुरि नरेश गांगेय देव के सिक्कों की प्रतिकृति हैं। यह महमूद गजनवी का समकालीन था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार और अन्वेषक जनरल कनिंघम ने यह कहा है कि चौदहवीं सदी के प्रारम्भ तक अनेक प्रकार के सिक्के इस क्षेत्र में प्रचलन में रहे। उसी शैली पर पार्वती छाप के सिक्के महोबा के चन्देलों द्वारा ग्रहण किये गये।[63] चन्देलों की कुछ मुद्रायें पहले से ही यहां प्रचलित थीं किन्तु जैजाकभुक्ति की जो मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। वे सन् 1060 ई0 की हैं। अधिकांशतः यह गांगेय देव शैली की हैं स्वर्ण मुद्राओं का वजन 62 ग्रेन था। चन्देलकालीन सिक्कों की संख्या बहुत कम है। सिक्कों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्रा ढलाई का कार्य बहुत उत्तम था। धातु कला की दृष्टि से मुद्राओं में आकर्षण था तथा इनका प्रचलन सम्पूर्ण चंदेल शासन क्षेत्र में था। मुद्रा निर्गमन का एक ही उद्देश्य था कि व्यवसाय की समृद्धि की जाये तथा अदल-बदल कर व्यवहारिक बाधाओं को दूर किया जा सके। इस प्रकार हम देखते है कि मुद्राओं से हमें उस समय के प्रत्येक पहलू को समझने में आसानी होती है।

11. उपलब्ध अस्त्र-शास्त्र -

कालिंजर विभिन्न युगों से गुजरा है तथा इसके ग्रामीण अंचलों में कोल,भील,गौण, बैगा आदि आदिवासी निवास करते थें।भगवान राम जब वनवासी रूप में यहाँ 12 वर्षो के लिए निवास करने के लिए आय उस समय यहां के लोग अस्त्र-शस्त्रों के रूप में पत्थरों के टुकड़े ही प्रयोग में लाते थे और कुछ समय पश्चात ही यह अपनी रक्षा के लिए तीर-कमान का प्रयोग करने लगे थे। महाभारत युग में धातु निर्मित अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होने लगा था। मल्ल युद्ध में गदाओं का प्रयोग होता था। फिर जब चतुरंगणी सेना का निर्माण हुआ, तो विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करने लगे थे। कालिंजर में जब महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ उसके पहले यहां आग्नेय अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग नहीं होता था। इस क्षेत्र में तुर्को के

आगमन के पश्चात ही तोपों आदि का प्रयोग होने लगा। बुन्देलों के शासन काल तक अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र यहां प्रयुक्त होते थे। इनमें से कुछ अस्त्र-शस्त्र कालिंजर निवासी श्री श्याम बिहारी वैद्य को प्राप्त हुए हैं और कुछ अस्त्र-शस्त्र वहां के जागीदार तुफैल के पास भी उपलब्ध है। ये अस्त्र-शस्त्र निम्नलिखित हैं-

तोड़ादार बन्दूक, पिस्तौल,रायफल, शेरदहा, तमंचा, गुराब, खुदकुल, जिरह चिलता, चार आइना, जिरह पायजामा, दस्ताना, पेटी, बख्तर, सैफ,तलवार, तेगा, पेराकब्ज़, कटार, बिछुआ, कत्ता, खाडा, कारबैन, घोड़े की पारवरी, बरछी, तोप, सांग, बान, सूजा, पट्टा, बघनख, कुलंग, मारू, घन्नाल, हांथी की पाखरी, चक्कर, गुप्ती, गुलेल, तीर-कमान, गुजे, तवल, सिप्पा।

तलवार के सम्बन्ध में यह पंक्तियां कही जाती हैं-

दोहा- ***खरग ऑगुरन नापिये, तेराताहि मिलाय।***

बहुर सात कौ भागु, हर बांकी के ठहिराय।।[64]

उस युग में अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग शासकों द्वारा अपनी प्रजा की रक्षा के लिए किया जाता था।

12. ग्रंथीय साक्ष्य -

कालिंजर का पुरातात्विक महत्व तथा उसकी धार्मिक महिमा अति प्राचीन है। इस महिमा की वृद्धि केवल पुरावशेषों एवं धार्मिक महत्व से ही नहीं होती अपितु उन ग्रंथों से भी इस स्थान की वृद्धि होती है, जिसमें इस क्षेत्र का उल्लेख है। आर्य सभ्यता के प्राचीनतम् ग्रंथ वेद माने जाते हैं। वेदों में कालिंजर और उसके आस-पास के स्थलों का पर्याप्त विवरण प्राप्त हो जाता है। अत्रि ऋषि ,बृहस्पिति, शुक्राचार्य,अगस्त्य, गौतम ऋषि, सुतीक्ष्ण, मार्कण्डेय, सारंग, बामदेव आदि ऋषियों के आश्रम कालिंजर के आस-पास थे। इनका वर्णन वेदों के अनेक सूत्रों में हुआ है। अर्थवेद के रचयिता महाअर्थवर्ण मड़फा क्षेत्र के ही रहने वाले थे। इनकी पुत्री वाटिका का विवाह महर्षि वेदव्यास से हुआ था। वेदों में यद्यपि शुद्ध कालिंजर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ, फिर भी उसके आस-पास के क्षेत्रों के वर्णन से इसका आभास हो जाता है।

अति प्राचीन काल में रामायण काल आता है इस युग की गौरवगाथा के प्रणेता महर्षि बाल्मीकि थे। जिनके आश्रम में सीता अपने निष्कासन के दौरान रही थीं, और लव-कुश का जन्म भी इन्हीं के आश्रम में हुआ था। बाल्मीकि रामायण में कालिंजर परिक्षेत्र का वर्णन है।[65] महाभारत युग में यह क्षेत्र चेदि राज्य के अन्तर्गत आ गया था। यहां का राजा उपरिचरि बसु था। उसकी राजधानी सुक्तिमती नगरी थी। जब पाण्डवों को अज्ञात वास दिया गया, उस समय पाण्डव इसी क्षेत्र में रहें तथा उन्होंने कालिंजर को देखा-

अत्र कालंज्अरं नाम पर्वत विश्रुतम् ।

तत्र देवहृदे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्।।[66]

महाभारत के अतिरिक्त अधिकांश पुराणों में कालिंजर परिक्षेत्र का वर्णन यत्र-तत्र मिल जाता है। इन पुराणों में वायु पुराण[67], लिंग पुराण[68], कूर्म पुराण[69], वामन पुराण[70], ब्रम्हाण्ड पुराण[71], विष्णु पुराण[72],

भागवत पुराण[73], स्कन्द पुराण[74], ब्रम्ह पुराण[75], पद्म पुराण[76], अग्नि पुराण[77], गरुण पुराण[78], मत्स्य पुराण[79], देवी भागवत (उत्तरार्द्ध)[80] आदि पुराणों में कालिंजर के धार्मिक महात्म्य का वर्णन किसी न किसी रूप में मिलता है। बौद्ध ग्रन्थ, पालि जातकों में भी इसका वर्णन मिला है।

18वीं शताब्दी में अंग्रेजी शासनकाल में पुराविदों ने अनेक ऐतिहासिक सर्वेक्षण एवं अन्वेषण किये हं उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में मुख्य रूप से इण्डियन ऐन्टीक्वेरी[81], आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट[82], जनरल ऑफ ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल[83], एन्श्येन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन[84], डिक्शनरी ऑफ पालिप्रापर नेम्स[85], एन्श्येन्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड वाई टालमी[86], ऐपीग्राफिया इण्डिका[87], डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया[88], जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री[89], इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया[90],कौटिल्य का अर्थशास्त्र[91] आदि ग्रन्थों में कालिंजर के सन्दर्भ में व्यापक रूप से वर्णन मिल जाता है। इसके अतिरिक्त कोई भी धार्मिक ग्रन्थ और पुराण ऐसा नहीं है जिसमें कालिंजर के सन्दर्भ में कुछ न कुछ वर्णन न आया हो। इससे सिद्ध होता है कि यदि कालिंजर महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल कला, संस्कृति का केन्द्र न होता तो उसके ग्रन्थीय साक्ष्य उपलब्ध ही न होते। इसके अतिरिक्त हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डियन पीपुल[92], ऐज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी[93] में भी कालिंजर का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। इसी प्रकार चन्दरवरदाई कृत पृथ्वीराज रासों एवं जगनिक द्वारा रचित आल्हखण्ड में भी कालिंजर का विस्तार से वर्णन है। खासतौर से पृथ्वीराजरासों में महोबे की लड़ाई खण्ड में वर्णन है। मुगलों के शासन काल में भी अनेक ग्रंथों की रचना हुई जैसे-आइने अकबरी आदि में भी कालिंजर का वर्णन है। बुन्देलखण्ड के संदर्भ में जो इतिहास लिखा गया । वह इतिहास अनेक ग्रंथों में वर्णित है। उन ग्रंथों में गोरेलाल तिवारी, केशव चन्द्र मिश्र, डॉ0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, डॉ0 रमेशचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे, कन्हैया लाल अग्रवाल तथा राधा कृष्ण बुन्देली आदि ने कालिंजर के विस्तृत इतिहास का वर्णन अपने प्रसिद्ध ग्रंथों में किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर के संदर्भ में ग्रंथीय साक्ष्यों की उपलब्धि बहुत अधिक संख्या में हुई है।

कालिंजर परिक्षेत्र में प्राप्त सम्पूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्यों की मौजूदगी से हम कालिंजर परिक्षेत्र के विषय में विस्तार से जानकारी हासिल कर सकते हैं। उस समय की प्राचीन वास्तुशिल्प,मूर्तिशिल्प, अत्यन्त उच्चकोटि के थे। धर्म, संस्कृति, सामाजिक-व्यवस्था, परम्परा, रीति-रिवाज, भाषा, वेश-भूषा, आवासीय व्यवस्था आदि की जानकारी होती है। इसी प्रकार कालिंजर परिक्षेत्र में शासन करने वाले शासकों एवं राजवंशों का पता चलता है तथा इसके साथ ही राजनीतिक घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन, आर्थिक दशा, व्यवसाय एवं साहित्यिक ग्रंथों की जानकारी होती है। अन्त में यह कह सकते है कि कालिंजर परिक्षेत्र से प्राप्त ऐतिहासिक साक्ष्यों से ही इन सभी के विषय में जानकारी मिलती है तथा बोध होता है । ऐतिहासिक साक्ष्यों का हमारे इतिहास में बहुत अधिक महत्व है। इनका जितना भी वर्णन किया जाये वह कम है। इस प्रकार हम यह सकते है कि उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से ऊपर वर्णित विषय सामग्री मिलती है। जिससे

प्रत्येक पक्ष को जानने और समझने में सहायता मिलती है।

3. कालिंजर का भौगोलिक, प्राकृतिक और पर्यावरण की दृष्टि से महत्व -

कालिंजर परिक्षेत्र बाँदा जनपद से 56 किलोमीटर दूर है। यह बाँदा-सतना मार्ग पर स्थित है। जिस जगह कालिंजर ग्रम बसा है उसे तरहटी के नाम से जाना जाता है क्योंकि कालिंजर ग्राम निचले हिस्से पर है और कालिंजर दुर्ग ऊपरी हिस्से पर है। सन् 1977 में तरहटी ग्राम की आबादी तीन हजार दो सौ उन्नीस (3219) थी, और इसका क्षेत्रफल 452 हेक्टेयर था। इस क्षेत्र की जमीन पर्वतीय होने के कारण यहां उपज बहुत अच्छी नहीं होती है। केवल कुछ स्थलों में गेहूं और चने की खेती होती है। खेतों की सिचाई का मुख्य साधन कुएँ आदि हैं।

जिस पहाड़ी पर कालिंजर दुर्ग निर्मित है। वह पहाड़ी दक्षिणी पूर्वी विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड में आती हैं। इसकी समुद्र तल से ऊँचाई 37 हजार 4 सौ 90 मीटर है। इसका कुल क्षेत्रफल 21 हजार 3 सौ 36 मीटर है।विन्ध्य पर्वत श्रेणी का यह भाग 1,150 मीटर चौड़ा है। इसके पूर्व में एक छोटी सी पहाड़ी है जिसे कालिंजरी पहाड़ी के नाम से पुकारा जाता है। इसकी ऊँचाई भी कालिंजर पर्वत के ही बराबर है। कालिंजर पर्वत नीचे से ऊपर की ओर है, इसकी ऊँचाई 50 से 60 मीटर तक अनुमानित है। इस पर्वत पर आसानी से नहीं चढ़ा जा सकता है।पर्वत की कुल चौड़ाई लगभग 6-8 किलोमीटर है तथा इस पर्वत में दुर्ग की दीवारें चौड़ी-चौड़ी चट्टानों से निर्मित की गई हैं। वर्तमान समय में इन दीवारों की दशा बड़ी ही जर्जर है, किन्तु चारों ओर सघन वन होने के कारण अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है।[94]

सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र विभिन्न प्रकार के पर्वतों से घिरा हुआ है। सम्पूर्ण पर्वत श्रेणियाँ विन्ध्यांचल पर्वत श्रेणियों का एक भाग है। इसमें मड़फा पर्वत श्रेणी, फतेहगंज पर्वत श्रेणी, पाथर कद्दार पर्वत श्रेणी, रसिन पर्वत श्रेणी, बृहस्पति कुण्ड पर्वत श्रेणी आदि शामिल हैं। ये पर्वत श्रेणियां बड़ी-बड़ी चट्टानों से युक्त हैं इनमें नाना प्रकार के झाड़ीदार वृक्ष पाये जाते हैं। इन वृक्षों में कुछ औषधीय वृक्ष भी हैं जिनकी उपयोगिता विभिन्न प्रकार औषधि बनाने में है। इन्हीं पर्वत श्रेणियों की वजह से इस क्षेत्र का मौसम तीन भागों में विभक्त हो जाता है- गर्मी,सर्दी, वर्षा।

ग्रीष्म ऋतु में यहां भीषण गर्मी पड़ती हैं। मई ,जून में ऐसी तप्त वायु चलती है कि उसके प्रभाव से कभी-कभी मनुष्यों की मृत्यु भी हो जाती है। इस वायु को गर्म हवा, लू, लपट, आदि कहते है। इसके लगने पर उपचार हेतु कच्चे आमों को भूनकर उनका रस निकाल कर रोगी को पिलाते हैं। इसी प्रकार चने की सूखी पत्तियों को भिगोकर शरीर में मालिश करते हैं। यह दोनों उपचार अत्यधिक कारगर एवं फायदे मंद हैं।

शीत ऋतु में सबेरे दो-तीन घंटों तक बहुत सर्दी होती है। कहीं-कहीं सर्दी में बर्फ भी गिरती हैं दिसम्बर और जनवरी में प्रायः सबसे अधिक सर्दी होती है।गाँव के लोग अलाव पर ही रातें बिताते हैं गरीब लोग धान या कोदों के पयार पर बिस्तर लगाते हैं।

वर्षा ऋतु आषाढ़ से क्वांर तक रहती है। इसी बीच बहुत अधिक वर्षा होती है। इस वर्षा से खेती को बहुत अधिक सहायता मिलती है यह वारिस खेती के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं। वर्षा से वातावरण स्वच्छ हो जाता है और हरे भरे जंगल का दृश्य मनमोहक हो जाता था। समीपवर्ती नदियों में कभी-कभी बाढ़ भी आ जाती है। और नालों में भी उफान आने लगता है।

कालिंजर परिक्षेत्र पर्वतीय होने के कारण यहां पर हर मौसम में आंधी चलती है। गर्मियों में ज्यादा चलती हैं। कालिंजर तथा अजयगढ़ के पहाड़ी किले और सागर आदि स्थान स्वास्थ्य के लिए अच्छे माने जाते हैं।[95]

इस क्षेत्र की प्रमुख नदी-"बागै" है। कालिंजर इस नदी के पास ही एक मील पर है। यह बृहस्पति कुण्ड से निकलती है और कालिंजर होते हुए बदौसा एवं कमासिन तक जाती है। कमासिन में यह नदी यमुना नदी में मिल जाती है। बागै नदी का जल प्रवाह दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर होता है। इसी नदी में कई छोटी-छोटी नदियां शामिल हो जाती है। जिनमें वानगंगा का प्रमुख स्थान है। इसका प्रवाह समुद्रतल से 14 हजार 325 मीटर हैं जब यह यमुना में मिल जाती है, तब उसका स्तल समुद्र तल से 10 हजार 9 सौ 82 मीटर रह जाता है। बागै नदी रसिन ओरन होते हुए प्रवाहित होती है बागै नदी का उद्गम स्थल कौहारी के निकट बृहस्पति कुण्ड है जो पन्ना जनपद में है।[96] पहाड़ी नदी होने के कारण इसका प्रवाह इतना तेज है कि वरसात के दिनों में थोड़ी से बाढ़ भी आने पर लोग इससे पार जाने में डरते हैं।

कालिंजर परिक्षेत्र चूंकि पर्वतीय अंचल है इसलिए यह दक्षिण-पूर्व को झुककर उत्तर-पूर्व होती हुई, कालिंजर-अजयगढ़ से होती हुई अन्य स्थलों से होकर गंगा किनारे चली गयी है।[97] यह क्षेत्र पर्वतीय होने के कारण अधिक उपजाऊ नहीं है। इसीलिए इस क्षेत्र में पर्वतीय वनस्पतियों और खनिज सम्पदा अधिक मात्रा में उपलब्ध हो जाती है। इस क्षेत्र में प्राकृतिक जल प्रपात अधिक उपलब्ध होते हैं, जिनमें से बृहस्पति कुण्ड, सकरो, मगरमुहा आदि अत्यन्त सुन्दर हैं और कोलुहा, फतेहगंज तथा बानगंगा के सन्निकट घोर जंगल है। "आइने अकबरी" में इस बात का वर्णन मिलता है। किसी समय में यहां अच्छे किस्म के हांथी पाये जाते थे।

खनिज सम्पदा की दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत धनी है। यहां अनेक प्रकार के वृक्ष पाये जाते है। इन वृक्षों में आँवला, साल, सागौन, तेंदू, महुआ, खैर, बांस, चन्दन, लाल चंदन, आम, शरीफा, चिरौंजी, ताड़, खजूर, बबूल, बेर, सैमर, सलइया, गबदी, अमलताश, हंडुआ, ऊमर, हरद, सिघारू, कचनार, श्यामा, जामुन, चिल्ला, बेल, मुनगा, आदि वृक्ष पाये जाते हैं इनके अतिरिक्त करौदा, करेला, रियां, चमरेल, माहुल

इंगुबा, सहजन, झरबेरी, मकुइया, मकोर रकत, थूहड़, नागफनी आदि झांड़ियां पाई जाती है। इन सभी वृक्षों से जो उपयोगी खाद्य पदार्थ उपलब्ध होता है। वह इस प्रकार है- लाल गोंद, शहद, मोम, बैचांदी, सफेद मूसली, बन सुलोचन, कत्था, मिलाई कन्द, लक्ष्मणकन्द, कुसेरा, साम्भर सींग, चमड़ा, खखूदन नौती, धवई, हड्डी ,महुआ, चिरौंजी ,आँवला, हर्र-बहेरा आदि प्राप्त होते हैं।

यहां के पर्वतों में अनेक प्रकार के पत्थर पाये जात है। चूने का पत्थर, चीप या पटिया, और मकान बनाने वाले पत्थर प्राप्त होते हैं। धातुओं में लोहा, तॉबा, बिल्लौर, हीरा, कोयला आदि पाये जाते है। इस क्षेत्र में कहीं-कहीं धाऊ या लोहे का पत्थर भी उपलब्ध होता है और कहीं-कहीं अभ्रक, तांबा, अल्मूनियम पाये जाने की सम्भावना पाई जाती है।कालिंजर के सन्निकट पहाड़ी खेरा के समीप हीरे की खदाने मिली हैं। यहां बहुत अच्छी किस्म के हीरे प्राप्त हुए हैं। इस संदर्भ में यह ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होता है कि सन् 1260 ई0 में वीरवर्मन चन्देल कालिंजर के नरेश थे। इनकी रानी दधीचि वंश की पुत्री थी। अतः तब तक वहां दधीचि वंश मौजूद था।इस क्षेत्र में दर्धीच की अस्थियों से हीरा होना मानते है। अबुल फ़ज़ल ने लिखा है- कि कालिंजर से 20 कोस पर हीरे की खान थी और कालिंजर के राजा की कीरति सिंह के पास (छः) 6 बड़े-बड़े हीरे थे। मुख्य रूप से गुजराती सेठ पुरूषोत्तम ने सन् 1746 ई0 में हीरे की खोज की थी और प्राणनाथ ने सन् 1672-1731 ई0 के मध्य इसकी खोज की थी और यही तिथि सही बताई जाती है तथा मानी भी जाती है। पुरूषोत्तम को राजा सभासिंह का समकालीन माना जाता है। राजा सभासिंह सन् 1739-1752 ई0 तक कालिंजर के राजा रहे। इनके पास भी अनेक कीमती हीरे थे।[98]

कालिंजर परिक्षेत्र में मुख्य रूप से वर्षा दक्षिणी -पश्चिमी मानसून से होती है। यहां की न्यूनतम् वर्षा 946.2 मिलीमीटर तथा अधिकतम वर्षा 1031.8 मिलीमीटर नापी गई है। सन् 1901 और सन् 1950 में सबसे अधिक वर्षा हुई थी जबकि 1919-1918 में सामान्य वर्षा रिकार्ड की गई थी। इस क्षेत्र का जो तापमान रिकार्ड किया गया वह अधिकतम 43.0 सेन्टीग्रेट एवं 28.0 सेन्टीग्रेट न्यूनतम है किन्तु कभी-कभी जब गर्मी अधिक पड़ती है तब यह बढ़कर 48.0 सेन्टीग्रेट तक हो जाता है। और शीतकाल में यह घटकर 9.6 सेन्टीग्रेट तक रह जाता है। इस तरह इस क्षेत्र का तापमान 1966 के अनुसार अधिकतम 48.6 सेन्टीग्रेट था तथा न्यूनतम 0.6 सेन्टीग्रेट 18 व 19 जनवरी 1962 में था, जो अब तक का सबसे कम तापमान था।[99]

कालिंजर क्षेत्र पूर्ण रूपेण प्राकृतिक सौन्दर्य का धनी क्षेत्र है। यहाँ पर मड़फा, रसिन,पाथर कद्दार बृहस्पति कुण्ड तथा कालिंजर आदि में पर्वत श्रेणियाँ हैं। यह पर्वत श्रेणियाँ हरे भरे वृक्षों से ढ़की रहती हैं, इसलिए इन पर्वत श्रेणियों का दृश्य अत्यन्त सुन्दर और मनमोहक प्रतीत होता है। यदि कालिंजर दुर्ग से चढ़कर नीचे की बस्ती का अवलोकन किया जाये तो बहुत ही हृदयग्राही दृश्य नेत्रों के सम्मुख दिखाई देता हैं। मृगधारा के समीप खड़े होकर निकट प्रवाहित होने वाली बागै नदी व सुखना नाले के दृश्य को देखा

जाये तो हृदय को मनमोह लेने वाला होता है। यहां से सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य सभी को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सूर्योदय की पहली किरण और सूर्यास्त की अंतिम किरणें जब जलाशयों पर अपना प्रकाश छोड़ती हैं तो वह दृश्य मनोहारी एवं मनमोहक लगता है। जब हम पहाड़ी खेरा के सन्निकट बृहस्पति कुण्ड के जल प्रपात को देखते हैं तो ऐसा लगता है कि कश्मीर और अन्य प्राकृतिक स्थानों से यह स्थल बहुत ही सुन्दर है। जब हम फतेह गंज के निकट सकरो जल प्रपात में जाते है तो वहां ऐसा महसूस होता है कि वर्षा की छोटी-छोटी बूंदें हमारे तन को आद्र कर रही हैं तथा कहीं -कहीं पर बादल पर्वतों को स्पर्श करते नजर आते हैं और इससे भी ज्यादा मनमोहक दृश्य फतेहगंज के निकट कोलुहा के जंगलों का है। जहां पर नाना प्रकार के प्राकृतिक दृश्य दिखाई पड़ते हैं। इसी क्षेत्र के एक कुण्ड से बानगंगा का उदय हुआ हैं। इस कुण्ड के अन्दर एक वृक्ष है जो सदैव जल में डूबा रहता है। यहीं पर एक वृक्ष ने एक प्राचीन मंदिर को अपने आगोस में ले लिया है। एक दूसरा वृक्ष अपने आगोस में दूसरे अन्य वृक्ष को लिए हुए हैं। यह विचित्र दृश्य अन्यत्र दिखाई नहीं देता और यहीं पर कोल जाति के आदिवासी निवास करते हैं जिनकी लोक संस्कृति की झलक कभी-कभी मिल जाती है।

यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य को यहां पाये जाने वाले जीव-जन्तु और भी बढ़ा देते हैं। यहां के घनघोर जंगलों में विभिन्न प्रकार के खुंखार जानवर निवास करते हैं। एक समय में यहां लोग शिकार की इच्छा से आया करते थे। इस क्षेत्र में शेर, तेंदुआ, चीता, भालू आदि जानवर अक्सर दिखाई देते थे। इनके अतिरिक्त भेंडिया, गीदड़, जंगली कुत्ता, खरगोश, स्याही, चरखरा, अधलेंडा आदि जानवर थे किन्तु वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि के कारण इनका लोप होता जा रहा हैं। यहाँ हिरन, रोज (नीलगाय) चिनकारा, छिकरा, सांभर, चीतरा, चौसींगा तथा भेड़िया आदि जानवर पाये जाते है। यहां के जलाशयों में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पायी जाती है। कुल मिलाकर लगभग 28 प्रकार की मछलियाँ हैं यहां के तालाबों में कछुआ, केकड़ा, मगर, घड़ियाल, पानी के सांप आदि उपलब्ध होते हैं।

यदि हम आकाशीय सौन्दर्य की तरफ देखें तो इसका दृश्य भी प्रातः काल विभिन्न प्रकार के पक्षियों के कलरव से गुंजित होता है। सभी पक्षी आकाश से वृक्षों तक तथा वृक्षों से आकाश तक उड़तें नजर आते हैं। यहां पर मोर, तोता, तीतर-बटेर, कौवा, लावा, फाख्ता (ड्योकी या सावर सारस, मुर्गा, राजहंस, बतख, भर-तीतर, सिलगिला, छपका, हाइल, लाल मुनैया, कबूतर ,गलगलिया, पिड़ी तथा जल मुर्गी आदि पक्षी सुबह से शाम तक कलरव करते हुए दर्शकों को मनोरंजन करते हैं। इस क्षेत्र की रात्रि भी अत्यन्त सुहावनी होती है। यदि कार्तिक पूर्णिमा के दिन कालिंजर परिक्षेत्र के ऐतिहासिक स्थलों का दर्शन किया जाये तो वह भी अत्यन्त मनोहारी प्रतीत होता है। प्रमुख रूप से पाथर कछार में प्राप्त वैश्या की मजार हैं, जो हैदराबाद की चार मीनार के समतुल्य है और ताजमहल का सौन्दर्य धारण कर लेती है। कालिंजर निःसंदेह प्राकृतिक सौन्दर्य का धनी स्थल है तथा इसी सौन्दर्य को अपने आंचल में समेटे हुए सुरक्षित किये हैं। यहां के प्राकृतिक

सौन्दर्य ने अनेक कवियों को काव्य प्रेरणा प्रदान की है।[100]

कालिंजर परिक्षेत्र का पर्यावरण स्वच्छ तथा स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं। यहां अनेक प्रकार के औषधीय वृक्ष एवं झांडियां हैं जिनसे वायु स्पर्श करती हुई सुगन्ध बिखेरती हैं। इस सुगन्धित वातावरण में जो भी व्यक्ति सांस लेता है और वहां टहलता है उसे निश्चित ही कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। यहां के वन क्षेत्र में नाना प्रकार के जंगली पुष्प खिलते है, जिनसे व्यक्ति को नेत्र सुख तो मिलता है साथ ही उसकी सुगन्ध से स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त होता है। इस तरह के स्वच्छ वातावरण से व्यक्तियों के शारीरिक दोष एवं मानसिक थकान कम होती है। यहां पर किसी प्रकार की कोई गंदगी नहीं हैं लेकिन जो प्राचीन तालाब जन उपेक्षा के शिकार हो गये है इसलिए वहां काई आदि जम गई है, जिसके कारण जल दूषित हो गया है। कालिंजर दुर्ग के सन्निकट सुरसरि गंगा का जल इस समय दूषित हो गया है। कालिंजर दुर्ग के ऊपर पाताल गंगा, मृगधारा, और स्वर्गारोहण ताल को छोड़ कर शेष जलाशय प्रदूषित हैं। परन्तु फिर भी स्वच्छ और सुरम्य प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण पर्यावरण अधिक प्रदूषित नहीं हैं। इस क्षेत्र में भ्रमण हेतु अक्टूबर से अप्रैल तक का समय सर्वोत्तम रहता है।

कालिंजर परिक्षेत्र के प्राकृतिक सुरम्य दर्शनीय स्थल-

1. कालिंजर दुर्ग में मृगधारा के समीप का दृश्य
2. बृहस्पति कुण्ड और बेधक के प्राकृतिक दृश्य
3. कोलुहा का जंगल
4. बान गंगा
5. मगरमुहा (फतेहगंज)
6. सकरो प्रपात (फतेहगंज)
7. पाथर कद्दार की दो प्राकृतिक झीलें
8. मड़फा में गौरी शंकर गुफा के समीप का दृश्य
9. रसिन में चन्द्रामाहेश्वरी पर्वत के ऊपर का दृश्य
10. रौलीगोंडा का पर्वतीय दृश्य

4. कालिंजर से जुड़ी हुई समस्यायें -

कालिंजर परिक्षेत्र ऐतिहासिक सांस्कृतिक ,धार्मिक एंव पुरातात्विक धरोहर का महत्वपूर्ण स्थल हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है। धार्मिक स्थल के रूप में कालिंजर आज भी प्रसिद्ध है यदि यह क्षेत्र किसी तरह से पर्यटन स्थल घोषित कर दिया जाता है, तब भी उसका विकास उस समय तक नहीं होगा जब तक कि पर्यटन से जुड़ी हुई समस्याओं का समाधान नहीं किया जाता।

सन् 1950 में कालिंजर के पुरातात्विक महत्व को इतिहासकारों और राजनीतिज्ञों ने समझा और तभी

से इसके विकास के लिए कार्य प्रारम्भ कर दिये गये। जब विन्ध्य प्रदेश का निर्माण हुआ। उस समय वहां के राज्यपाल के0 सन्थानम एवं उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के0 एम0 मुंशी के माध्यम से कालिंजर विकास की परियोजनाएँ बनाई गई जिसके परिणाम स्वरूप कालिंजर-सतना मार्ग का निर्माण किया गया। कालान्तर में नरैनी के समीप बागे नदी पर पुल का निर्माण हुआ। इसके पश्चात बघेलावारी-कालिंजर मार्ग का निर्माण किया गया किन्तु कालिंजर का जो विकास होना चाहिए था, वह नहीं हो सका।

सन् 1980 के पश्चात इस क्षेत्र को विकसित करने के दोबारा प्रयास किये गये जिसमें कालिंजर निवासियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। प्रमुख रूप से श्री श्यामबिहारी वैद्य छिरौलिया और उनके पुत्र अरविन्द छिरौलिया काफी सक्रिय रहे। इन्होंने कालिंजर परिक्षेत्र से सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों का संकलन किया। इनमें पुराण, वेद तथा ऐसे ग्रंथ एकत्रित किये जिनमें कालिंजर का सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व उजागर हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक हस्तलिखित पुस्तकों का संकलन भी उन्होंने किया। कालिंजर को विकसित करने के प्रयास श्री अनन्त बिहारी अर्जरिया (भूतपूर्व प्रधान) ने किया। डा0 सुशील कुमार सुल्लेरे तथा डा0 कन्हैयालाल अग्रवाल भी कालिंजर विकास के लिए सतत प्रयासरत रहे। इसी बीच कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक मंत्रियों और अधिकारियों का आवागमन होता रहा मगर कोई खास विकास नहीं हुआ। इनका आवागमन केवल अफसोस जताना और आशायें बधाना ही था और कुछ नहीं।

बाँदा जनपद के पत्रकार भगवान दास गुप्ता ने कालिंजर को विकसित करने के लिए अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया। सन् 1989 में कालिंजर में एक सेमिनार का आयोजन हुआ। इस सेमिनार में आर0 ई0 एस0, पी0 डब्ल्यू0 डी0 , जल निगम, पुरातत्व विभाग, वन विभाग आदि के अधिकारियों ने भाग लिया। इसी के परिणाम स्वरूप कालिंजर दुर्ग में जाने के लिए पक्की सड़क का निर्माण हुआ। इसी के साथ जल, विद्युत की अनेक योजनाएं स्वीकार की गई। पुरातात्विक सामग्री के संरक्षण हेतु पुरातत्व विभाग के अधिकारियों की नियुक्तियाँ की गई जिलाधिकारी राकेश गर्ग भी उपस्थित थे। इसी सेमिनार में प्रसिद्ध इतिहासकार श्री राधा कृष्ण बुन्देली ने अपने सुझाव दिये। उसके पश्चात उन्होंने ऐतिहासिक स्थलों का चित्रांकन किया तथा एक फिल्म का निर्माण कराया। जो 1992 में बनकर तैयार हुई। इसमें प्रशासन का पूर्ण सहयोग रहा।

कालिंजर को विकसित करने के लिए बराबर प्रयास होते ही रहे है। पं0 जवाहर लाल नेहरू डिग्री कालेज,बाँदा के इतिहास विभागाध्यक्ष (प्रो0) बी0 एन0 राय ने कालिंजर के संदर्भ में अनेक सेमिनार किये तथा एक पुस्तक का प्रकाशन भी किया। जिसमें अनेक विद्वानों के लेख प्रकाशित किये गये। इसके पूर्व पं0 गोवर्धन दास त्रिपाठी ,पं0 हरिप्रसाद शर्मा, वासुदेव त्रिपाठी आदि ने कालिंजर पर अपनी पुस्तकें लिखी है। इतना सब कुछ होने के पश्चात भी कालिंजर आज समस्याओं से ग्रसित है और यही कारण है कि कालिंजर विदेशी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करने में पूरी तरह असमर्थ है। यह समस्यायें एक नहीं

अनेक है, जो इस प्रकार है।-

1. आवागमन के साधनों का अभाव-

एक ओर हम कालिंजर को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित करने का स्वप्न देखते हैं और दूसरी ओर पर्यटकों को इस क्षेत्र में लाने के लिए उपयुक्त साधनों का प्रबंध नहीं कर पाते । कालिंजर में आवागमन का अभाव सा है जो भी मार्ग कालिंजर पहुंचने के लिए उपलब्ध हैं वे बहुत अच्छी अवस्था में नहीं है। बाँदा -सतना मार्ग में कौहारी के निकट बागे नदी में पुल न होने के कारण वहां लोग आसानी से नहीं पहुंच सकते। इसी प्रकार पन्ना-कालिंजर मार्ग जो पहाड़ी खेरा होते हुए कालिंजर आता है। उस मार्ग में सूरजकुण्ड के नजदीक से बृहस्पति कुण्ड तक जाने का कोई मार्ग निर्मित नहीं हुआ और न कौहारी से ही बृहस्पति कुण्ड जाने का मार्ग है। यदि व्यक्ति चित्रकूट से कालिंजर आना चाहता है, तो वह भरत कूप, मड़फा, बिलहरिया मठ, बघेलाबारी, सिंधौरा होते हुए कालिंजर पहुंच सकता है किन्तु इस मार्ग की हालत भी बहुत खराब है। सतना से पाथर कद्दार तक पक्के मार्ग का निर्माण हुआ है लेकिन पाथरकद्दार से फतेहगंज ,नरदहा होते हुए कालिंजर तक का मार्ग बहुत खराब स्थिति में है। बदौसा से फतेहगंज, सकरो, बानगंगा, मगरमुहा, वीरगढ़ आदि स्थानों के लिए अभी तक कोई समुचित मार्ग का निर्माण नहीं हो पाया। रौली, कल्याणगढ़, गोंडा, रसिन वाले मार्ग भी बिगड़ी हालत में हैं जिनमें वाहनों का चलना अत्यन्त दूभर है। केवल बदौसा से फतेहगंज तक का मार्ग निर्मित हुआ है, जो बघेलावारी तक सही है उसके बाद का मार्ग अत्यन्त खराब है। इस क्षेत्र में सबसे बड़ी समस्या सड़कों का खराब होना है।

मार्गों की उचित व्यवस्था न होने के कारण आवागमन के साधनों का विस्तार भी अभी इस क्षेत्र में नहीं हुआ है। बदौसा रेलवे स्टेशन से रेलवे समय-सारणी के अनुसार बसों का संचालन कालिंजर परिक्षेत्र के लिए नियमित कराया जाये। चित्रकूट से मड़फा, बघेलावारी होती हुई बसें कालिंजर तक चलाई जायें। सतना, पाथरकद्दार मार्ग से जो बसें पाथरकद्दार तक आती है उन्हें कालिंजर तक बढ़ाया जाय। खजुराहों से कालिंजर के लिए वायुयान सेवाओं के अनुसार बसों का संचालन कराया जायें, ये बसें पन्ना, पहाड़ी खेरा, अजयगढ़ चलाई जायें। इसके अतिरिक्त रामनगर में जो पुल निर्मित हुआ है, उसने खजुराहों, कालिंजर का नया मार्ग खोल दिया है। यह मार्ग छतरपुर, लौड़ी चंदला, सरबई होता हुआ रामनगर से कालिंजर तक आता है। इसमें भी बसों का संचालन आवश्यक है। इसी प्रकार कालिंजर धर्मपुर मार्ग को विकसित किया जाना परम आवश्यक है तथा इसमें भी बसें चलाना आवश्यक है। जब तक आवागमन के साधनों का विकास नहीं होगा, कालिंजर का विकास एक दिवास्वप्न ही रहेगा।

2. आवासीय व्यवस्था का अभाव-

यदि पर्यटक किसी प्रकार से कालिंजर को देखने के लिए आ भी जाये, तो उसके लिए सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि अब तक वहां कोई विशिष्ट आवासीय व्यवस्था नहीं है। केवल कालिंजर तलहटी में एक

वन विभाग का डाक बंगला है जो शासकीय अधिकारियों के लिए उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त एक डाक बंगला कालिंजर दुर्ग के ऊपर रामकटोरा तालाब के निकट है। इसमें भी प्रायः साधनों का अभाव रहता है, कोई भी व्यक्ति यहां आसानी से ठहर नहीं पाता, अभी हाल में ही प्रशासन के प्रयासों से पर्वत के ऊपर आवासीय होटल का निर्माण किया गया है, किन्तु उसमें भी अभी साधनों का अभाव है। अन्य आवासीय व्यवस्था राठौर महल के बगल में की गई है, जिसे रैन बसेरा का नाम दिया गया है, किन्तु रैन बसेरा में साधनों का अभाव और गंदगी का साम्राज्य है। इधर केवल गधे और सुंअर अधिकता में नजर आते हैं। कोई भी शासकीय व्यक्ति इस रैन बसेरा की व्यवस्था के लिए अब तक नियुक्त नहीं हुआ।

यदि व्यक्ति यहां ठहर भी जाय तो उसके लिये भोजन की व्यवस्था कर पाना अत्यन्त दुर्लभ बात है। यह क्षेत्र पूरी तरह से अविकसित ग्रामीण क्षेत्र है। जहां साधनों का अभाव रहता है। पर्यटकों को अपनी पसंद का भोजन नहीं मिल पाता है। इसी से वह कठिनाई का अनुभव करता है। भोजन के अतिरिक्त कालिंजर दुर्ग के ऊपर पेय जल का अभाव है। वहां शुद्ध पेय जल केवल मृगधारा और नीलकण्ठ मंदिर के सरोवर सरग्वाह में ही उपलब्ध हो पाता है। जिससे यात्री कालिंजर भ्रमण में अत्यन्त कठिनाई महसूस करते हैं। एक बार कालिंजर आने वाला यात्री कठिनाइयों के कारण यहां दुबारा आने का प्रयास नहीं करता। यहीं पर यह कहावत चरितार्थ हो जाती है। कान पकड़ कर कालिंजर दिखा दो।

3. सुरक्षा का अभाव-

अगर विदेशी या देशी पर्यटक यहां भ्रमणार्थ आता है तो वह अपने आपको पूरी तरह असुरक्षित अनुभव करता है। जहां पर कालिंजर परिक्षेत्र के पुरातात्विक स्थल हैं वहां चोर लुटेरे, और डाकूओं का बाहुल्य है। इस क्षेत्र में कोई भी घटना कभी भी घट सकती है। यह परिक्षेत्र बदौसा, फतेहगंज, कालिंजर थाने के अन्तर्गत आता है। इन थानों में पुलिस बल की संख्या बहुत अधिक नहीं है जो भी पुलिस अधिकारी या सिपाही तैनात रहते है वे निष्क्रिय है तथा जन सुरक्षा में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं हैं। कालिंजर दुर्ग, मड़फा तथा फतेहगंज के इलाकों में यात्रियों के साथ लूटपाट की घटनायें हुई हैं। जब तक यात्रियों की पूर्ण सुरक्षा की गारण्टी शासन नहीं लेता, उस समय तक कोई भी यात्री यहाँ आने का साहस नहीं करेगा।

4. पुरातात्विक सामग्री के रख-रखाव का अभाव -

यहां के ग्रामीण अंचल के निवासी पुरातात्विक सामग्री से कोई लगाव नहीं रखते और न ही उसे सुरक्षित रखने के कोई उपाय सोचते हैं। इसलिये यहां की पुरातात्विक सामग्री न जाने कब से चोरी जाती रही है और आज भी चोरों के हांथ लग रही है। इस सदंर्भ में यह जानकारी प्राप्त हुई है कि बाँदा जनपद के मुख्य चिकित्सा अधिकारी श्री पिल्ले कालिंजर की मूर्ति चोरी में पकड़े गये इन्हें बदौसा पुलिस ने पकड़ा था। इसके अतिरिक्त पूर्व मंत्री महावीर सिंह व पूर्व जिलाधिकारी यहां की पुरातात्विक सामग्री अपने साथ में ले गये थे। एक अन्य सरकारी कर्मचारी ने कालिंजर की पुरातात्विक सामग्री को चुराने का प्रयास किया

यह बात पिछले वर्ष की है। बहुत कहा सुनी के पश्चात पुरातत्व विभाग ने यहां पर कुछ सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध कराई है, किन्तु नरदहा, पाथरकद्दार और फतेहगंज में बिलहरिया मठ के समीप इस पुरातात्विक सामग्री की उपेक्षा आज भी दिख जाती है। जब तक यह पूर्ण संरक्षित नहीं होगी तथा पुरातात्विक महत्व के स्थल पूर्ण संरक्षित नहीं किये जायेंगे। उस समय तक इन्हें कौन देखने आयेगा। इनका संरक्षण एवं सुन्दरीकरण दोनों ही आज के परिवेश में आवश्यक हैं।

5. मार्ग दर्शक एवं गाइड का अभाव-

जो भी पर्यटक कालिंजर परिक्षेत्र में भ्रमण हेतु आता है और सम्पूर्ण स्थल देखना चाहता है तब वह सही मार्ग दर्शक या गाइड का अभाव महसूस करता है। उसे ऐसा गाइड चाहिए जो समस्त स्थलों के सन्दर्भ में पूरी जानकारी रखता हो और साथ ही ऐसा गाइड हो जो ऐतिहासिक स्थलों के संदर्भ में उन्हें उन्हीं की भाषा में जानकारी दे सके। कालिंजर निवासी जो भी इतिहास जानते हैं, वह तर्क संगत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पाते। इसका मूल कारण जनता की अशिक्षा और ज्ञान का अभाव है। कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक ऐसे धार्मिक स्थल उपलब्ध हुए हैं जो निर्माण शैली की दृष्टि से खजुराहों के समकक्ष है। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि खजुराहो की पंचायतन नागरीय शैली का शुभारम्भ कालिंजर परिक्षेत्र से ही हुआ होगा। आवश्यकता इस बात की है कि इसे विकसित करने के लिए प्रशिक्षित गाइड यहां नियुक्त किये जायें जो पर्यटकों को उनकी भाषा में ही धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझा सकें।

6. आमोद-प्रमोद के साधानों का अभाव -

कालिंजर में जो पर्यटक आना चाहता है या आता है वह केवल ऐतिहासिक स्थलों को देखकर ही नहीं सुतुष्ट होना चाहता, अपितु वह चाहता है कि उसे विविध प्रकार के मनोरंजन के साधन उपलब्ध हों। उनके मनोरंजन के लिए लोककला, लोकगीत एंव लोकसंस्कृति को प्रदर्शित करने वाली कोई संस्था ऐसी नहीं है जो उनका मनोरंजन कर सके और उनका यहां की लोकसंस्कृति से परिचय करा सके। इस क्षेत्र में यदि लोक संस्कृति समिति का निर्माण हो जाय और आकर्षक ढंग से आल्हा गाइकी, लमटेरा, ग्रामीण अंचल के लोकनृत्य,दिवारी,राई, इत्यादि विकसित किये जाय। इसके अतिरिक्त कोलों का नृत्य भी समय-समय पर किया जाये तो यहां आने वाले यात्री मनोरंजन का लाभ उठा सकेंगे। इन सबके अलावा यहां पर चिड़ियाघर, पशु-विहार का निर्माण यदि हो जाय तो यात्रियों को यह मनोरंजन बार-बार आने के लिए प्रेरित करेगा। कालिंजरी पहाड़ी से कालिंजर दुर्ग तक रज्जु -मार्ग निर्मित कर दिया जाये तो यात्रियों के मनोरंजन एवं आनन्द में चार-चाँद लग जायेगें। इसके अतिरिक्त प्रशासन के लिए यह आय का श्रोत भी होगा। कालिंजर में एक संग्रहालय भी निर्मित किया जाय, जिसमें उपलब्ध बहुमूल्य दस्तावेज, अस्त्र-शस्त्र एवं पाण्डु लिपियाँ सुरक्षित रह सकें।

7. कालिंजर से सम्बन्धित साहित्य का अभाव-

कालिंजर जो भी व्यक्ति आता है उसे यह जिज्ञासा होती है कि उसे कुछ ऐसा साहित्य उपलब्ध हो जिससे उस परिक्षेत्र के बारे में उसे पूरी जानकारी उपलब्ध हो। अब तक कोई भी ऐसी किताब श्रजित नहीं हुई जिसमें कालिंजर के सम्पूर्ण इतिहास को उसके साक्ष्यों सहित वर्णित किया गया हो। जो भी किताबें यहां उपलब्ध होती हैं, उनमें वहां के धार्मिक महत्व को ही उजागर किया गया है। उनमें न तो वास्तविक राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है और न ही प्राप्त वास्तुशिल्प का शास्त्रीय विश्लेषण उपलब्ध होता है। पूरे कालिंजर परिक्षेत्र में केवल एक मात्र श्री श्याम बिहारी वैद्य और उनके पुत्र श्री अरविन्द छिरौलिया ही हैं, जहां जाकर पर्यटक थोड़ी बहुत जानकारी कालिंजर से संदर्भ में प्राप्त कर लेता है किन्तु उनके बताने का ढंग भी अतिश्योक्तिपूर्ण है। जिसकी वजह से यात्री आसानी से विश्वास नहीं कर पाता । कालिंजर जाने वाले समस्त पर्यटक व अधिकारी जन इन्ही के यहाँ जाकर कालिंजर की अल्प जानकारी प्राप्त करते हैं। कालिंजर के ऐतिहासिक स्थलों के फोटों और उनके एलबम पर्यटक विभाग द्वारा व पुरातत्व विभाग द्वारा यात्रियों को उपलब्ध नहीं कराये जाते। खजुराहो की भांति कालिंजर की मूर्तियों प्लास्टर आफ पेरिस से बनवाकर नहीं उपलब्ध कराई जाती हैं। इसी वजह से यात्री अपने साथ कोई स्मृति चिन्ह नहीं ले जा पाता है। उनके साथ केवल मायूसी और खाने वाले फल अमरूद, शरीफा, सीमा से बड़ी मूली एवं ईख(गन्ना) के अतिरिक्त कुछ नहीं जाता है। कालिंजर में लोग खास-तौर पर कार्तिक पूर्णिमा शिवरात्रि एवं मकर संक्रान्ति के दिन ही जाते है।

8. प्रचार-प्रसार की न्यूनता का अभाव-

कालिंजर जो विश्व का सबसे प्राचीन स्थल है, जिसका वर्णन सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थों में उपलब्ध है, उस स्थल के लिए प्रचार-प्रसार नहीं किया गया है जिस प्रकार का प्रचार आगरा के ताजमहल व खजुराहों के मंदिरों के लिए किया गया यदि उसी प्रकार का प्रचार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कालिंजर का किया जाता तो निश्चित ही आज यहां पर्यटक उतनी ही बड़ी तादाद में आता, जितना वह आगरा एवं खजुराहों जाता है। इसलिए इस स्थल का प्रचार-प्रसार होना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। कालिंजर दुर्ग की दीवारें चौड़ाई और सुदृढ़ता में चीन की दीवार जैसी हैं। इनके प्रति दर्शकों को आकर्षित किया जा सकता है तथा इनकी निर्माण शैली बड़ी विचित्र और आश्चर्य जनक है।

9. कालिंजर विकास के प्रति यहां के नागरिकों की उदासीनता-

ऐसा प्रतीत होता है कि कालिंजर बस्ती के निवासी या तो चेतना शून्य है या फिर उन्हें अपनी मातृ-भूमि और जन्म स्थली से कोई लगाव नहीं है। इसलिए न तो वे पुरातात्विक महत्व की इमारतों का रख-रखाव कर पाते हैं और न उसकी सुरक्षा के उपाय सोच पाते हैं। कालिंजर अनेक समस्याओं से ग्रसित है साथ ही निर्धनता का शिकार भी है। ऐसा लगता है कि यहां की जनता इन समस्याओं से उबरना ही नहीं

चाहती हैं। कालिंजर के लिए यह जरूरी है कि चन्देल कालीन सुप्रसिद्ध नगर का विकास एक माडल टाऊन के रूप में हो। यह तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक कि यहां के नागरिक विकास के प्रति जागरूक न हों।

समस्याओं के समाधान हेतु उपाय-

1. मार्गों का समुचित निर्माण किया जाय।
2. आवागमन के साधनों का विकास किया जाय तथा इसे विभिन्न क्षेत्रों से रेलमार्ग, स्थलमार्ग और वायुमार्ग से जोड़ा जाये।
3. पुरातात्विक महत्व के स्थलों का जीर्णोद्धार तथा सुन्दरीकरण किया जाना चाहिए।
4. पर्यटकों के लिए पशु विहार खोला जाये।
5. इस क्षेत्र में एक आकर्षक संग्रहालय व पुस्तकालय स्थापित किया जाना चाहिए।
6. पर्यटकों की सुरक्षा के लिए विशेष व्यवस्था हो।
7. आवास एवं समुचित भोजनालय की व्यवस्था हो।
8. इस क्षेत्र में प्रशिक्षित विदेशी भाषा जानने वाले गाइड नियुक्त किये जाय।
9. कालिंजर से सम्बन्धित इतिहास और साहित्य का प्रकाशन कराया जाय तथा यहां के पुरातात्विक महत्व के स्थलों के फोटो एलबम तैयार कराये जायें।
10. कालिंजर के स्थलों के अनेक स्मृति चिन्ह, धातु प्रस्तर एंव प्लास्टर आफ पेरिस के तैयार कराये जाये।
11. कालिंजर को मॉडल टाउन के रूप में विकसित किया जाय।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. पद्मपुराण, पातालखण्ड, उमा-महेश्वर संवाद, 28, पूना, 1893-94 ।
2. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, वाल्यूम 37, पृ0 136-37 ।
3. शर्मा, हरिप्रसाद, कालिंजर, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, 1968, पृ0 13, : वायु पुराण, 23, 104, : लिंग पुराण (पूर्वार्द्ध) 24, 104 ।
4. सुल्लेरे, सुशील कुमार, अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाएँ, दिल्ली, 1987, पृ0 30-45 ।
5. वेदव्यास, महाभारत, आदिपर्व, सं0 2044, गोरखपुर, अध्याय 63, पृ0 172 ।
6. "कालंजरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम्।"

   बाल्मीकि, रामायण, खण्ड दो, प्रक्षिप्तः सर्गः दो, 38, पृ0 1598 ।
7. महाभारत, पूर्वो0, पृ0 172 ।
8. निगम, एम0 एल0, कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड, दिल्ली, 1983, पृ0 11-14 ।
9. बाजपेयी, के0 डी0, जाग्रफिकल इन साइक्लोपीडिया ऑफ एन्श्येन्ट एण्ड मेडुवल इण्डिया, बनारस, 1967, पृ0 96 ।
10. पाण्डेय, विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास, मेरठ, 1983-84, पृ0 63 ।
11. सुल्लेरे, सुशील कुमार, पूर्वो0, पृ0 30-80 ।
12. जगनिक, आल्हखण्ड (महोबे की लड़ाई), नारायण प्रसाद सीताराम द्वारा सम्पादित।
13. चन्दवरदाई, पृथ्वीराजरासो, सम्पादक- मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या और बाबू श्याम सुन्दरदास बनारस, 1913 ।
14. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, बनारस, 1961, पृ0 181 ।
15. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, दिल्ली सल्तनत, आगरा, 1989, पृ0 90 ।
16. मिश्र, केशवचन्द, चन्देल और उनका राजत्व काल, वाराणसी, 1974, पृ0 120-125 ।
17. तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रयाग, विक्रमी सम्वत् 1990, पृ0 88 ।
18. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, मुगलकालीन भारत, आगरा, 1981, पृ0 101-102 ।
19. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 299-302 ।
20. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण, प्रयाग, 1968, पृ0 192, 225 ।
21. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 223-259 ।
22. सुल्लेरे, सुशील कुमार, पूर्वो0, पृ0 7-25 ।
23. कनिंघम, आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, वाल्यूम 21, पुनर्मुद्रण, दिल्ली, पृ0 91 ।

24. महाभारत, वनपर्व, अध्याय 85, श्लोक 56, 57, पृ0 1205-1206 ।

25. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 90-93 ।

26. सिंह, दीवान प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक, बनारस, 14 फरवरी सन् 1929 ई0, पृ0 62-63 ।

27. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0 पृ0 156-163 ।

28. बाणभट्ट, कादम्बरी, प्रथम भाग, बनारस, 1997, पृ0 67-75 ।

29. सुल्लेरे, सुशील कुमार, पूर्वो0, पृ0 31, 75 ।

30. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 299-303 ।

31. ईश्वरी प्रसाद, प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म और दर्शन, पांचवां संस्करण, इलाहाबाद, 1990, पृ0 28 ।

32. बाँदा गजेटियर, लखनऊ, 1977, पृ0 29 ।

33. निगम, एम0 एल0, पूर्वो0, पृ0 7-8 ।

34. बाजपेयी, के0 डी0, कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वाल्यूम दो, 1960, पृ0 9 ।

35. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 8-13 ।

36. अग्रवाल, कन्हैयालाल, विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सतना, 1987, पृ0 18-19, 77 ।

37. उत्तर प्रदेश वार्षिकी, 1987-88, पृ0 59, : उत्तर प्रदेश वार्षिकी, 1993-94, पृ0 44 ।

38. विजय कुमार, प्राग, बाँदा ।

39. निगम, एम0 एल0, पूर्वो0, पृ0 8 ।

40. त्रिवेदी, एस0 डी0, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, प्रथम संस्करण, झाँसी, 1984, चित्र संख्या 22, पृ0 9-10 ।

41. अग्रवाल, कन्हैयालाल, पूर्वो0, पृ0 77, : महाभारत, वनपर्व, 86, 56, : देवी भागवत, बम्बई, 1920, 26, 34, : मत्स्य पुराण, पूना, 1907, 121, 54, : मनसुखराममोर, 77, 94, : ब्रम्हाण्ड पुराण, बम्बई, 1913, 3, 3, 100, : विष्णु पुराण, कलकत्ता, 1882, 2,2,30 ।

42. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 221, 231 ।

43. वराहमिहिर, वृहद्संहिता, अनुवाद- बी0 सुब्रह्मण्यम्, अध्याय-53 ।

44. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 23 ।

45. सुल्लेरे, सुशील कुमार, पूर्वो0, पृ0 18 ।

46. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 234 ।

47. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 223 ।

48. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 287-297 ।

49. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, पूर्वो0, पृ0 199 ।

50. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 244 ।

51. वही, पृ0 231 ।

52. कनिंघम, आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, वाल्यूम 21, ए प्लेट 10 ए, पृ0 34 ।

53. वही, बी प्लेट 10 बी, पृ0 34 ।

54. वही, एच0, पृ0 37-38 ।

55. वही, पृ0 28-29 ।

56. बोस, निमाई सघन, हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज ऑफ जैजाकभुक्ति, कलकत्ता, 1956, पृ0 80-82 ।

57. वही, पृ0 83 ।

58. मित्रा, एस0 के0, दि अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, कलकत्ता, 1958, पृ0 226 ।

59. मित्रा, एस0 के0, पूर्वो0, पृ0 229-233 ।

60. बोस, निमाई सघन, पूर्वो0, पृ0 93 ।

61. हबीबुल्ला, ए0 बी0 एम0, दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, इलाहाबाद, 1961, पृ0 106 ।

62. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 109 ।

63. जनरल कनिंघम, क्वायन्स ऑफ मेडुवल इण्डिया, भूमिका ।

64. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो, पृ0 237-38 ।

65. बाल्मीकि, रामायण, भाग दो, प्रक्षिप्तः सर्ग : दो, 38, पृ0 1598 ।

66. महाभारत, भाग दो, वनपर्व, अध्याय 85, श्लोक 56, पृ0 1205 ।

67. वायुपुराण, श्लोक 23, पृ0 104 ।

68. लिंगपुराण, (पूर्वार्द्ध), 24, 104 ।

69. कूर्मपुराण, 36, 35-38 ।

70. वामनपुराण, 90, 27 ।

71. ब्रम्हाण्डपुराण, 3, 13, 100 ।

72. विष्णुपुराण, 2,2,30 ।

73. भागवतपुराण, 5, 16, 26 ।

74. स्कन्दपुराण, 4, 6, 25 ।

75. ब्रम्हपुराण, 2, 146, 1 ।

76. पद्मपुराण, (उत्तरखण्ड), 196, 14 ।

77. अग्निपुराण, 109, 23 ।

78. गरुणपुराण, 81, 18, 19 ।

79. मत्स्यपुराण, 121,54 ।

80, देवीभागवत (उत्तरार्द्ध), 30, 62 ।

81. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, भाग 37, पृ0 135 ।

82. आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 21, पृ0 78 ।

83. जनरल ऑफ ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1895, पृ0 255 ।

84. पाजिटर, एन्श्येन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, दिल्ली, 1962, पृ0 259, 269, 281 ।

85. डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापरनेम्स, भाग 1, पृ0 911 ।

86. मैक्रिण्डल (अनूदित), एन्श्येन्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई टालमी, लन्दन, 1885, पृ0 135 ।

87. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग एक, पृ0 325 ।

88. रे, एच0 सी0, दि डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, वाल्यूम 2, नई दिल्ली, 1973, पृ0 670।

89. जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, भाग 44, पृ0 29, 33 ।

90. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग 14, पृ0 310, 331 ।

91. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, सम्पादक एवं अनुवादक सामा शास्त्री, मैसूर, 2,2 ।

92. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, बम्बई, 1960, पृ0 248, 250 ।

93. ऐज ऑफ इम्पीरियल युनिटी, पृ0 98-99 ।

94. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 287-88 ।

95. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 66-68 ।

96. वही, पृ0 29 ।

97. वही, पृ0 16 ।

98. वही, पृ0 64-65 ।

99. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 17-18 ।

100. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 41-45 ।

आलमगीर दरवाजा (पहला द्वार)
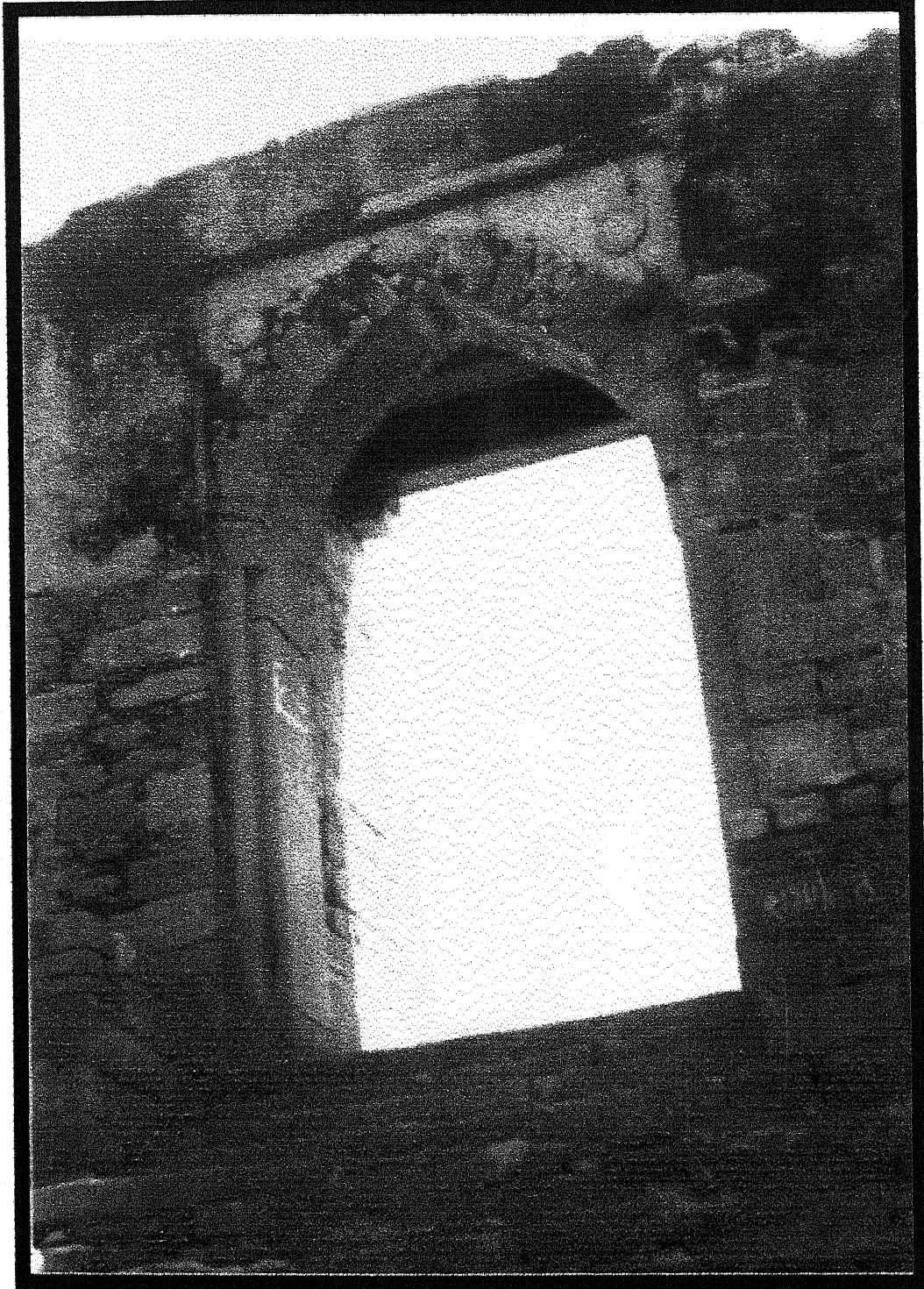
कालिंजर

द्वितीय
अध्याय

कालिंजर का सांस्कृतिक महत्व

मानव जीवन सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। संसार में मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसने अनेक युगों की अनुभूति ग्रहण करके निजी जीवन शैली को विकसित किया है। इसी जीवन शैली को संस्कृति शब्द से सम्बोधित किया जा सकता है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में जन्म लेता है, समाज में ही उसका विकास होता है। समाज के विभिन्न क्रियाओं से वह प्रभावित होता है। जीवन के सुख और दुःख उसे समाज से ही उपलब्ध होते हैं। मनुष्य समाज के मध्य रहकर सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन जीता है तथा सांस्कृतिक महत्व को वास्तविक रूप से समझता है। अनेक विद्वानों ने संस्कृतिक को अपने-अपने तरीकों से परिभाषित किया है। **आक्सफोर्ड डिक्शनरी** में संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार व्यक्त की गई है-"वह प्रशिक्षण जो मानसिक शुद्धि के लिए प्रदान किया जाता है तथा जिस प्रशिक्षण से व्यक्ति अपनी रूचि के अनुसार सामाजिक रीति-रिवाज एवं स्थितियों का प्रशिक्षण प्राप्त करता है, उसमें सुधार करता है और जिस सभ्यता से जुड़ा हुआ बौद्धिक स्तर का विकास होता है। जिसकों अपनाने से हम लोग बेहतर जीवन व्यतीत कर सकते है, उसे संस्कृति कहते है।"[1] प्रसिद्ध एवं भारत के राष्ट्रपति डॉ0 राधा कृष्णन के अनुसार "संस्कृति विवेक, बुद्धि एवं जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।"[2] एक अन्य विद्वान संस्कृति की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि समस्त मानव समाज के विकास की व्यष्टिमय (व्यक्तिगत) तथा समष्टिमय (समाज की) उपलब्धियाँ ही संस्कृति है।"[3] डा0 मंगलदेव शास्त्री ने भी संस्कृति की बड़ी सुन्दर परिभाषा की है वे लिखते हैं कि " किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए।[4] साहित्यकार डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी मानव की युग-युग की साधना को ही संस्कृति मानते हैं, वे कहते हैं कि "मनुष्य की श्रेष्ठ साधनायें ही संस्कृति हैं"[5] प्रसिद्ध इतिहासकार डा0 सत्यकेतु ने भी संस्कृति की परिभाषा बहुत ही सुन्दर शब्दों में की है, लिखते है कि "चिन्तन द्वारा अपने जीवन को सरल, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिए मनुष्य जो यत्न करता है उसका परिणाम संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है।[6]

विद्वानों द्वारा परिभाषित संस्कृति वास्तव में मानव जीवन का वह व्यवहार है जो वह अपने लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए और धर्म के लिए दूसरों के प्रति करता है। इस संस्कृति में उसका नैमित्तिक जीवन, व्यवहारिक जीवन, आर्थिक जीवन, सामाजिक जीवन एवं धार्मिक जीवन सामिल होता है। इसी संस्कृति में ही जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कार समाहित रहते हैं। व्यक्ति की अभिरूचि ,वेशभूषा, भोजन पद्धति तथा कला सहित्य का दर्पण के रूप में प्रदर्शित करने वाली एक मात्र मानव की संस्कृति है। मानव जीवन के जिस इतिहास का हम अध्ययन करते हैं। वह विभिन्न ऐतिहासिक ग्रंथों, साहित्यिक ग्रंथों, वास्तुशिल्पों एवं कलाकृतियों के माध्यम से उजागर होता है। इन्हीं के विस्तृत अध्ययन के परिणामस्वरूप

हम किसी भी क्षेत्र की संस्कृति को आसानी से जान सकते हैं। हमारी संस्कृति के जो आधार हैं, उन्हीं के माध्यम से हमें स्थान विशेष की संस्कृति को समझाना होगा। हम किसी भी क्षेत्र की संस्कृति को समझने के लिए निम्न बिन्दुओं पर विशेष बल देते हैं-

1. व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध।
2. व्यक्ति का राजनीतिक सम्बन्ध।
3. व्यक्ति के द्वारा अपनायें जाने वाले रीति-रिवाज एंव जीवन शैली।
4. आदर्श जीवन के मौलिक तत्व जिसमें धर्म, कर्म और आस्था शामिल है।
5. साहित्य एवं कला के प्रति अभिरूचि।
6. शिक्षा एवं ज्ञान विज्ञान के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण।
7. परम्पराएँ जो किसी विशेष क्षेत्र व विशेष समय में आबद्ध हों।

जब से मानव समाज बना, उस समय से अब तक संस्कृति अनेक परिवर्तनों के साथ चिरजीवी है। जब तक मानव समाज रहेगा, तब तक संस्कृति चिरजीवी बनी रहेगी। इस सांस्कृतिक प्रवाह को कभी कोई रोकनें का साहस नहीं कर सकता। यह अवश्य है कि यह कभी पतित होती है और कभी मानव मूल्यों के आदर्शों सहित उच्चता को प्राप्त करती है।हम जिसको संस्कृति मानते हैं, वह उस सभ्यता की आदर्श स्वरूप होती है। हम ही इस आदर्श के मानक स्वतः निर्धारित करते हैं। व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार संस्कृति का पालन करता है तथा संस्कृति भी व्यक्ति को अपने अनुकूल ढाल लेती है। संस्कृति प्रदर्शित होने वाली व्यवहारी प्रक्रिया है जो हमारे आचरण में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मानव जीवन में भौतिक और आध्यात्मिक जीवन शैली का समन्वय ही संस्कृति का आधार है। संस्कृति के अनुशरण से ही व्यक्ति की अनेकता में एकता का अनुभव होता है।

बहुत से विद्वान संस्कृति और सभ्यता को एक ही मानते है किन्तु अनेक विद्वान सभ्यता एवं संस्कृति को अलग-अलग मानते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता से होता है। इसलिए मनुष्य सभ्यता में उन्हीं कार्यों को सम्मानित करता है, जो मानव जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं। प्रारम्भ में मनुष्य जंगली जीवन जीता था। उसने अपनी सुरक्षा के लिए समाजीकरण की प्रक्रिया को अपनाया और धीरे-धीरे सभ्यता से विभूषित हो गया। अनेक विद्वानों ने सभ्यता को संस्कृति से अलग रखा है। जहां सभ्यता जीवन शैली का नाम है वहीं संस्कृति दशा और दिशा का बोध कराती है। भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हमारे प्रयास से जो उपलब्धि हुई है, वह हमारी संस्कृति है। मनुष्य अपने जीवन को व्यतीत करने के लिए कला, कौशल, स्थापत्य , ज्ञान-विज्ञान आदि की उन्नति पर लागू होता है। यह हमारी संस्कृति का प्रतीक है।[7]

भारतीय संस्कृति के संदर्भ में हमें निम्न बिन्दुओं पर विचार करना पड़ता है क्योंकि इनका सम्बन्ध

विषय विशेष से रहता है-

1. संस्कृति का धर्म एवं दर्शन से सम्बन्ध।
2. संस्कृति का कला एवं साहित्य से सम्बन्ध।
3. संस्कृति का राष्ट्र एवं दूसरे राष्ट्रों से सम्बन्ध आदि।

इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर हम भारतीय संस्कृति एवं क्षेत्रीय संस्कृति को समझ सकते हैं। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी समानता और भिन्नता का बोध भी कर सकते हैं।

भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसी विषमताए विद्यमान हैं जो भौगोलिक ,धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषा, वेश-भूषा एवं जातीय पृथकता को दर्शाते हुए भी एकता का प्रदर्शन करती है। इतनी विषमताओं के होते हुए भी हमारी संस्कृति कई दृष्टि से एकता के आदर्श स्थापित करती है, जिसे सम्पूर्ण भारत के अतिरिक्त और कहीं नहीं देखा जा सकता है। संस्कृति की अनेक विषमताए भी हैं, जैसे-

1. प्राचीनतम् संस्कृति।
2. आध्यात्मिकता से जुड़ी हुई संस्कृति।
3. दर्शन से जुड़ी हुई संस्कृति।
4. धर्म को प्रधान मानने वाली संस्कृति।
5. देवों पर आस्था रखने वाली संस्कृति।
6. बहुदेववाद एवं एकेश्वरवाद पर आस्था रखने वाली संस्कृति।
7. कर्म को प्रधान मानने वाली संस्कृति।
8. समन्वय की भावना रखने वाली संस्कृति।
9. सहिष्णुता की भावना रखने वाली संस्कृति।
10. सत्य, अहिंसा, करूण, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह को मानने वाली संस्कृति।
11. वर्ण व्यवस्था को मानने वाली संस्कृति।
12. आश्रम व्यवस्था को मानने वाली संस्कृति।
13. संस्कारों को अपनाने वाली संस्कृति।
14. सम्पूर्ण सम्प्रदायों के विकास का अवसर प्रदान करने वाली संस्कृति।
15. सबजन सुखाय सबजन हिताय के सिद्धान्त पर आस्था रखने वाली संस्कृति।

भारतीय संस्कृति अपनी विशेषताओं के साथ बुन्देलखण्ड की अन्तर्रात्मा में सदैव व्याप्त रही है। कालिंजर की पवित्र भूमि बुन्देलखण्ड का अंग रहीं है। इसलिए यहां भी भारतीय संस्कृति अपने क्षेत्रीय गुण लिए हुए एवं मौलिक स्वरूप में भिन्न होते हुए भी राष्ट्रीय एकता का प्रदर्शन करती है। कालिंजर की पवित्र भूमि ने विभिन्न धर्मों को शरण देते हुए अपनी गरिमा को प्रदर्शित किया है। इसके साथ ही साथ अनेक युगों

को उसने अपने नेत्रों से देखा है। यहां पर उपलब्ध धार्मिक अवशेष, मूर्तियाँ, राजप्रासाद आदि कलिंजर की गौरवमयी गाथा को आज भी उसी स्वरूप में प्रस्तुत करते है जैसे प्राचीन समय में थे। इसलिए हम कालिंजर की संस्कृति का स्मरण बार-बार करते हैं और उसे भुला नहीं पाते हैं।

कालिंजर परिक्षेत्र की भौगोलिक संरचना ने यहां की संस्कृति को बहुत अधिक प्रभावित किया। यह क्षेत्र चारों ओर विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है, इसलिए यहां की भूमि में आस-पास कटीली झाड़ियाँ, फलों एवं औषधियों आदि के वृक्ष अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। इस परिक्षेत्र में पठारी भूमि होने के कारण यहां मोटे अनाज के अलावा कुछ भी उपलब्ध नहीं होता, किन्तु हीरे,कीमती पत्थर जैसे रत्न प्रदान किये हैं।यहां का तापमान समशीतोष्ण जलवायु का है। इस भौगोलिक परिस्थिति ने ही इस क्षेत्र की संस्कृति को पूर्णरूपेण प्रभावित किया है। इस संदर्भ में निम्न विचारणीय बिन्दु है-

1. भौगोलिक परिस्थितियों का सामाजिक व्यवस्था में प्रभाव।
2. भौगोलिक परिस्थितियों का आवासीय व्यवस्था,वेश-भूषा एवं भोजन व्यवस्था में प्रभाव।
3. भौगोलिक परिस्थितियों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में प्रभाव।
4. भौगोलिक परिस्थितियों का आर्थिक व्यवस्था में प्रभाव आदि को प्रभावित किया।

सांस्कृतिक दृष्टि से कालिंजर परिक्षेत्र की संस्कृति का काल विभाजन-

कालिंजर की संस्कृति और सभ्यता आदिकालिक है। उसने प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक अनेक परिवर्तन देखे हैं। साथ ही उसकी मौलिक संस्कृति में अन्य संस्कृतियों का भी व्यापक प्रभाव पड़ा है जिसके चिरस्थाई साक्ष्य कालिंजर परिक्षेत्र में आज भी उपलब्ध हो जाते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से इस परिक्षेत्र की संस्कृति का काल विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

1.पुराऐतिहासिक संस्कृति, सभ्यता के विकास से लेकर वैदिक युग तक-

पुराऐतिहासिक काल से लेकर वैदिक युग तक यहां की संस्कृति ने काफी विकास किया है कालिंजर परिक्षेत्र के अनेक स्थलों में पाषाणकालीन अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुए हैं। कालिंजर के ही निकट पाषाण युगीन शस्त्र बनाने का एक कारखाना उपलब्ध हुआ है। फतेहगंज के मगरमुहा, कालिंजर तथा बृहस्पतिकुण्ड के सन्निकट शैलाश्रय एवं शैलचित्र प्राप्त होते हैं जो पाषाण युगीन संस्कृति के प्रतीक हैं। प्रसिद्ध विद्वान काकबर्न पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने शैलचित्रों की खोज की थी। इसके अतिरिक्त दो अन्य पुस्तकों "कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड "[8] एवं बुन्देलखण्ड का पुरातत्व"[9] में भी इस संदर्भ में जानकारी उपलब्ध होती है।

2.वैदिक युगीन सभ्यता, संस्कृति (3000बी0सी0) से महाकाव्य काल तक-

ऋग्वेद में आर्यो का विस्तार से वर्णन उपलब्ध होता है जिसमें कालिंजर परिक्षेत्र को चेदि जनपद के नाम से पहचाना जा सकता है।[10] इसके अलावा बाल्मीकि रामायण, महाभारत में भी कालिंजर परिक्षेत्र के

संदर्भ में अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। बाल्मीकि रामायण[11] के उत्तरकाण्ड तथा महाभारत[12] के वनपर्व में वर्णन मिलता है।

3. मौर्य कालीन सभ्यता संस्कृति से गुप्त युगीन संस्कृति तक-

बाँदा गजेटियर तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर सम्राट अशोक तक यह क्षेत्र मौर्यो के अधिकार में रहा। अशोक के नेतृत्व में यहां बौद्ध धर्म का विकास हुआ। इस क्षेत्र के समीप अनेक बौद्ध प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म यहां ज्यादा विकसित हुआ क्योंकि चेदि जनपद में सर्वत्र जैन स्थल उपलब्ध होते हैं और बौद्ध स्थलों का अभाव सा है।[13]

4. गुप्त युग से हर्षवर्धन काल के मध्य संस्कृति-

कालिंजर गुप्त युग में गुप्तों के शासन के अन्तर्गत था। इस युग में संस्कृति ने काफी उन्नति की थी। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख में स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है कि विन्ध्य आटवीं समुद्रगुप्त के राज्य का एक अंग था।[14] यह क्षेत्र हर्षवर्धन काल में वर्धन साम्राज्य का एक अंग था । इस संदर्भ में विख्यात कवि बाणभट्ट ने विन्ध्य आटवीं में स्थित अगस्त्य ऋषि के आश्रम का वर्णन कादम्बरी में किया है।[15]

5. हर्षवर्धन काल एवं चन्देल युग के मध्य संस्कृति का विकास-

जैजाकभुक्ति के चन्देल नरेश प्रारम्भ में गुर्जर प्रतिहारों के माण्डलिक रह है उस समय इस क्षेत्र को जैजाकभुक्ति के नाम से जाना जाता था। नन्नुक देव के पश्चात चंदेल इस क्षेत्र के स्वतंत्र शासक हो गये और वे कालिंजर नरेश परमार्दिदेव के निधन तक बने रहे। इस युग में यहां की संस्कृति विश्व विख्यात संस्कृति की श्रेणी में पहुंची । यहां के वास्तुशिल्प ने कालिंजर की सभ्यता, संस्कृति को उच्चस्तर प्रदान कराया।

6. चन्देल युग से गौड़ों एवं बुन्देलों के युग तक संस्कृति के प्रोन्नति का दौर-

चन्देल युग के पतन के पश्चात यह क्षेत्र विदेशी आक्रमणकारियों से प्रभावित हुआ। यहां की मौलिक संस्कृति के सम्बन्ध इस्लामी संस्कृति के साथ स्थापित हुए। कुछ समय के लिए यह क्षेत्र कल्चुरियों ,राष्ट्रकूटों तथा गौड़ों से प्रभावित रहा। उसके पश्चात सुल्तानों एवं मुगल शासकों ने इस क्षेत्र को अपने प्रभाव में लिया इसलिए इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के पंथ और सम्प्रदाय मिली जुली संस्कृति को लेकर पनपे। कालिंजर क्षेत्र में कई स्थानों पर कबीर पंथ की गद्दियाँ सूफी पंथ के संतों की मजारें तथा इस्लाम धर्म से सम्बन्धित धार्मिक स्मारक प्राप्त हो जाते है। यहां पर बुन्देलों और बघेलो का शासन भी रहा जिसने एक नई संस्कृति को जन्म दिया। इसी क्षेत्र में बुन्देलखण्डी भाषा एवं उसकी उपभाषाओं का विकास हुआ। कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक साहित्यकार और कवि उत्पन्न हुए, जिन्होंने यहां की सामाजिक व्यवस्था का वर्णन अपने काव्य ग्रंथों में किया है।[16]

7. बुन्देली समय से लेकर ब्रिटिश काल तक की संस्कृति का दौर-

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का शासन लगभग 1803 -1804 से प्रारम्भ हो गया था। इस समय बुन्देलों की शक्ति क्षीण हो गई थी और वे छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गये थे। सन् 1857 में अंग्रेजी सत्ता को उखाड फेंकने के लिए असफल प्रयत्न किये गये। कालिंजर सन् 1812 में पूरी तरह अंग्रेजों के अधिकार में आ गया था तथा सन् 1947 तक यह अंग्रेजों के अधिकार में रहा। अंग्रेजी सभ्यता का व्यापक असर यहां की सभ्यता पर पड़ा । व्यक्तियों ने ब्रिटिश सभ्यता के अनुसार ही अपने पहनावे और व्यवहारिक संस्कृति में परिवर्तन किया।[17]

8.वर्तमान सभ्याता संस्कृति 1947 से इस समय तक-

15 अगस्त 1947 में भारतवर्ष आजाद हो गया था। उसके पश्चात कालिंजर क्षेत्र स्वंतत्र भारतीय गणराज्य का एक भाग बन गया। इसे उत्तर प्रदेश के बाँदा जनपद में रखा गया। इसी परिक्षेत्र का कुछ भाग मध्य प्रदेश के पन्ना एवं सतना जनपद में भी चला गया। वैज्ञानिक युग एवं शैक्षिक विकास के कारण यहां के लोग परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों का परित्याग करके नवीन सभ्यता ,संस्कृति से परिचित हुए। आवागमन का अत्यधिक विकास हो जाने के कारण यहां की भाषा, वेश-भूषा तथा रहन-सहन के स्तर में भी परिवर्तन आया । अब यहां प्राचीन सभ्यता, संस्कृति के दर्शन प्राप्त पुरातात्विक महत्व के स्मारकों एवं स्थलों में ही होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर परिक्षेत्र की संस्कृति सम्पूर्ण भारत में अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं। यही कारण है कि उसने सम्पूर्ण भारतवर्ष के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। कालिंजर परिक्षेत्र में प्रत्येक युग की संस्कृति के दर्शन होते हैं। इस क्षेत्र में हर युग की संस्कृति का संगम कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। यहां संस्कृति सदैव हमारे मन-मस्तिष्क में चिरस्मरणीय बनी रहेगी। कालिंजर परिक्षेत्र की संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है और इसके महत्व को नकारा भी नहीं जा सकता है।

(1) कालिंजर का धार्मिक महत्व-

युगों से लेकर अब तक सभ्यता का विकास हुआ है। उसके पश्चात यहां के निवासियों की धर्म पर आस्था बढ़ी है जिन विद्वानों ने अपने ग्रंथों में जैसा रास्ता सुझाया यहां के निवासियों ने उसी को अपना धर्म मान लिया। आज तक किसी विद्वान ने अपने धार्मिक ग्रंथ में धर्म की सर्वमान्य परिभाषा वर्णित नहीं की हैं। लोगों ने वेदों, पुराणों, शास्त्रों, स्मृतिग्रंथों आदि में धर्म को अपने ढंग से परिभाषित किया है, जो धर्म का यथार्थ रूप प्रस्तुत नहीं कर पाते बाँदा गजेटियर में धार्मिक विवरण विस्तार से उपलब्ध है।[18]

बहुत से विद्वान जो पाश्चात्य दर्शन और भारतीय दर्शन का एकीकरण करना चाहते हैं वे अंग्रेजी शब्द " रिलीजन " एवं हिन्दी शब्द धर्म का एकीकरण कर देते है जबकि भारतीय विद्वान धर्म को रिलीजन

से अलग रखकर परिभाषित करते हैं। संस्कृति के व्याकरणाचार्य धर्म शब्द की उत्पत्ति "धृ" धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ होता है - धारण करने की शक्ति। इसके अनुसार जिसे धारण किया जाय वही धर्म है। महाभारत में भी धर्म की यही परिभाषा स्वीकर की गई है।[19] धर्म की विस्तृत व्याख्या हिन्दू धर्मकोष में उपलब्ध होती है। वह इस प्रकार है-" किसी वस्तु की विधायक आन्तरिक (आदतें) वृत्ति को उसका धर्म कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ का व्यक्तित्व जिस वृत्ति पर निर्भर है। वही उस पदार्थ का धर्म है। धर्म की कमी से उस पदार्थ की वृद्धि होती है।....धर्म की यह कल्पना भारत की ही विशेषता है।[20] मीमांसा दर्शन का अनुशरण करने वाले सभी दार्शनिक धर्म को अपने ढंग से परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार धर्म का आधार विविध वाक्यों या नियमों का आधार है जिनके आचारण इत्यादि के करने से हम धर्म को प्राप्त कर सकते है। उसी तरह धर्म का अर्थ हो जाता है, वेद निहित कर्तव्य।[21]

इस प्रकार हम देखते है कि धर्म पूर्णरूपेण वास्तविक परिभाषा से रहित है। उसे केवल नैतिक कर्तव्यों का लेखा-जोखा ही मानना चाहिए। कालिंजर निवासियों ने अपनी अशिक्षा और अबोधता के कारण शास्त्र वचनों तथा विद्वानों के कथनों का अनुशरण किया है। उन्होंने उस धर्म को स्वीकारा है जो वेदों, पुराणों, शास्त्रों, स्मृति ग्रंथों के अनुसार है। सभ्यता के परिवर्तन का प्रभाव यहां के निवासियों पर पड़ा, जिससे वे अपने-अपने विश्वास के अनुसार नाना प्रकार के पंथों में विभाजित हो गये हैं। यहां उपलब्ध धार्मिक अवशेषों से उनकी धार्मिक भावनाओं का पता लगता है तथा यह सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र में शैव मत प्रचुर मात्रा में विकसित हुआ किन्तु यहां शक्ति वैष्णव आदि धर्मो से कभी परहेज नहीं किया गया। जब इस्लाम अवलम्बियों का प्रभाव यहां पड़ा, उस समय यहां के लोग इस्लाम धर्म ग्रहण करके मुसलमान हो गये। कतिपय क्षेत्रों में कबीर पंथ के धार्मिक स्थल प्राप्त हुए हैं। यहां के अनेक क्षेत्रों में शक्ति स्थल भी है, जहां देवियों की अनेक प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि यहां के निवासियों की पृथक-पृथक धर्मों के प्रति आस्था होते हुए भी धर्म समन्वय की भावना बहुत अधिक थी जिसने किसी भी धर्म के विकास में कभी बाधा नहीं पहुंचाई । कालिंजर का धार्मिक महत्व बहुत अधिक था जो इन पंक्तियों में स्पष्ट झलकता है-

कालिंजर को छोड़कर जो व्यक्ति दूसरे तीर्थों से प्रेम करता है वह इस संसार में भ्रमण करता रहता है तथा महान दुःख, दुर्बुद्धि और भय को प्राप्त करता है।

कालिंजरं परित्यज्य योऽन्यकृत्ररुते रतिम्।

मूढ़ोभ्रमति संसारे दुःख च दुर्मतिर्मयम्।

गंगा में किया हुआ पाप त्रिवेणी में, त्रिवेणी में किया हुआ पाप वाराणसी में, वाराणसी में किया हुआ पाप कालिंजर में और कालिंजर में किया हुआ पाप, कालिंजर में ही नष्ट होता है।

गंगायां कृतं पापं त्रिवेष्यां विनश्यति।

त्रिवेष्यां चकृतं पापं वाराणस्याँ विनश्यति।।

वाराणस्यां कृतं पापं कालिंजरें विनश्यति।

कालिंजरे कृतं पापं कालिंजरे विनश्यति।।

कालिंजर का धार्मिक महत्व इतना अधिक है कि कालिंजर के महात्म्य को सुनने एवं पढ़ने मात्र से मनुष्यों के सभी दुख नष्ट हो जाते है और मानवांछित फलों की प्राप्ति होती है। कालिंजर क्षेत्र में अनेक प्रकार के धर्म एवं सम्प्रदाय प्रमुख रूप से जनता के द्वारा अपनाये गये जिनका वर्णन इस प्रकार से है-

1. शैव मत-

कालिंजर प्रमुख रूप से शिव उपासना के लिए प्रसिद्ध है। इसके धार्मिक महत्व का उल्लेख विशेषकर शिव पुराण, शिवलिंग पुराण, पद्म पुराण आदि में है। इसे मुख्य रूप से धार्मिक स्थल माना गया है, इस नाम के श्रवण, कीर्तन, ध्यान एवं दर्शन से ही मन वांछित फल प्राप्त होता हैं।

इस संदर्भ में पुराणों में एक आख्यान उपलब्ध होता है कि जब देवताओं और असुरों ने मिलकर सागर मंथन किया था, उस सागर मंथन से विष का एक घट निकला था उस विष का पान भगवान शंकर ने कालिंजर में ही किया। विषपान के कारण उनका कण्ठ नीला पड़ गया इसीलिए उन्हें नीलकण्ठ के नाम से पुकारा गया तथा कालिंजर में उनके मठ की स्थापना नीलकण्ठ मंदिर के नाम से की गई। इस मठ की मूर्ति गुप्तयुगीन प्रतीत होती है किन्तु मंदिर चंदेलयुगीन है। इसके अतिरिक्त कालिंजर परिक्षेत्र में सर्वत्र भगवान शिव की मूर्तियां एवं शिव लिंग जिनमें से एकमुखी, पंचमुखी तथा सहस्त्रलिंगी मूतियाँ उपलब्ध होती हैं यह इस क्षेत्र में सर्वाधिक हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि मड़फा, कालिंजर, रसिन, फतेहगंज एवं पाथरकद्दार में शिव उपासना मुख्य रूप से होती थी। इस संदर्भ में पद्मपुराण में कुछ महत्वपूर्ण श्लोक उपलब्ध होते हैं, जो इस प्रकार है-

नीलकण्ठस्तदारम्य गिरौ कालिंजरे स्थितः

सुक्षेत्रे वसतां चैव चतुर्वर्ण फलप्रदः ।।4।।

★ ★ ★ ★ ★

सर्वतीर्था वसन्त्यत्र प्राप्तं चैव युगे-युगे।

कालिंजरें शिवे क्षेत्रे मुक्तिदं शिव सन्निधौ।।5।[22]

कालिंजर परिक्षेत्र में शिव की उपासना वैदिक युग में 'रूद्र' के रूप में की जाती थी। ऋग्वेद में 'रूद्र' का वर्णन मिला है किन्तु शिव के नाम से कोई देव नहीं है हो सकता है कालान्तर में इसे शिव का नाम दिया गया होगा। जहां तक शिवलिंग उपासना का प्रश्न है वहां दर्शन शास्त्र के अनुसार शिवलिंग को सृष्टि का मूल बीज माना गया है क्योंकि बिना बीज के कोई सृष्टि संभावित नहीं है। पंचमुखी शिव का मतलब

यह होता है कि जब बीज को पांचतत्व क्षिति ,जल , पावक, गगन और समीर सहयोग प्रदान करते हैं, तभी बीज, जीव की आकृति धारण करता है। इसके लिए भूमि का आलम्बन लेना पड़ता है। शिव उपासना सृष्टि सृजन का मूल मंत्र है जिसे "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" के रूम में ग्रहण किया गया। कालान्तर में इस सम्प्रदाय में अनेक परिवर्तन हुए जिन्हें नौ शैव सम्प्रदाय और लिंगायत सम्प्रदाय के नाम से जाना गया । जब कालिंजर में राष्ट्रकूटों का अधिकार था, उस समय इसका अत्यधिक विकास हुआ। उनके समय में भी अनेक देवालय बने।[23] शैव मत का इतना अधिक प्रसार-प्रचार हुआ कि कालिंजर परिक्षेत्र के सरोवरों, नदियों तथा अन्य क्षेत्रों में भगवान शिव की लिंग प्रतिमाएँ प्रत्येक गांव में स्थापित हुईं और शिव उपासना कालिंजर परिक्षेत्र के धर्म का प्रमुख पंथ बन गया।

2.शाक्त मत-

बहुत से धार्मिक आचार्यों का यह मत है कि कालिंजर शिव उपासना से पहले शक्ति पीठ के रूप में प्रतिष्ठित था। देवी भागवत में वर्णित कथा के अनुसार शक्ति ने सर्वप्रथम ब्रम्हा को उत्पन्न किया फिर उनमें सम्भोग की इच्छा की व्यक्त की। ब्रम्हा ने ऐसा करने से मना कर दिया तो शक्ति ने उसे भष्म कर दिया। तत्पश्चात् शक्ति ने विष्णु को उत्पन्न किया। शक्ति ने विष्णु से सम्भोग की इच्छा व्यक्त की तो विष्णु ने भी ऐसा करने से इन्कार कर दिया। शक्ति ने विष्णु को भष्म कर दिया। अब शक्ति ने शिव को उत्पन्न किया और शिव से सम्भोग की इच्छा जाहिर की शिव ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया किन्तु शिव ने कहा यदि शक्ति उन्हें अपना तीसरा नेत्र प्रदान करे तो वह ऐसा कर सकते हैं। कामातुर शक्ति ने अपना तीसरा नेत्र शिव को प्रदान कर दिया। अब शिव ने विचार के बाद यह निर्णय लिया कि मां और पुत्र के मध्य सम्भोग न्यायोचित नहीं है इसलिए शिव ने सर्वप्रथम शक्ति को भष्म कर दिया और मस्तक के चन्द्रमा के अमृत के माध्यम से ब्रह्मा और विष्णु दोनों को जीवित कर लिया। शिव ने शक्ति को अपनी आत्मा में समाहित कर लिया और स्वतः को आदिदेव के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसलिए यह बात मानी जाती है कि जब वंशपरम्परा और परिवारवाद नहीं था, उस समय मात्र सत्ता प्रधान समाज था और माता ही प्रधान होती थी। कालान्तर में ब्रम्हा द्वारा सामाजिक व्यवस्था निर्धारित किये जाने पर स्त्री परिवार की स्वामिनी न रह गई तथा उसे पुरूष के आधीन कर दिया गया।

कालिंजर परिक्षेत्र में शक्ति उपासना के अनेक स्थल उपलब्ध होते हैं जैसे- पाथरकद्दार की रक्तदंतिका देवी मंदिर ,वीरगढ़ की देवी एवं रसिन की चन्द्रामाहेश्वरी देवी सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त भी सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में देवी उपासना के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं। चंदेलयुग में शक्ति उपासना के अनेक स्थल प्राप्त होते है। चन्देलयुग में शक्ति उपासना तांविकों की उपासना बन गई। इस समय देवी के नाम पर नारीभोग तंत्र को खूब प्रोत्साहन मिला। देवी उपासना से ही अघोर पंथ का भी उदय हुआ। मुख्य रूप से देवी भागवत में नौ देवियों के रूपों का वर्णन हैं, इनके नाम है- शैल पुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कुष्माण्डा,

दुर्गानाम स्कन्दमाता, कालरात्रि, महागौरी एवं दुर्गानाम सिद्धिदात्री । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य देवियाँ भी हैं जिन्हें कई नामों से मान्यता प्राप्त है। चामुण्डा देवी वाहन प्रेत, वाराही देवी वाहन भैसा, ऐन्द्री का वाहन ऐरावत हांथी, वैष्णवी का वाहन गरूण, महेश्वरी का वाहन वृषभ, कौमारी का वाहन मयूर , लक्ष्मी का वाहन कमल है। देवियों के हांथों में निम्न प्रकार के शस्त्र होते हैं इनमें शंख, चक्र, गदा, हल, मुसल, खेटक, तोमर , परशु, पाश, कुन्त, त्रिशूल , उत्तम शांक, धनुष उनके हांथों में रहते है।[24]

देवी उपासना मुख्य रूप से वर्ष में दो बार नवरात्रि के समय पर ही होती थी। इसके अतिरिक्त अनेक मान्यताओं के आधार पर देवी उपासना सदैव होती रहती थी। मान्यताओं के अनुसार देवी मंदिरों में भैंसे और बकरे की बलि दी जाती थी। यह प्रथा कहीं-कहीं आज भी विद्यमान है।[25] कालिंजर में आज भी नवरात्रि के अवसर तथा अन्य अवसरों में देवियों की श्रृद्धा से पूजा-अर्चना होती है।

3. वैष्णव मत-

कालिंजर क्षेत्र में भगवान विष्णु तथा उनके विविध अवतारों से सम्बन्धित अनेक मूर्तियाँ एवं धार्मिक स्थल उपलब्ध होते हैं। कालिंजर दुर्ग में ही शेषशायी विष्णु की मूर्ति सुरसरिगंगा के सन्निकट तथा कोटितीर्थ सरोवर के तटपर उपलब्ध होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि चंदेलयुग और उससे पहले गुप्तयुग में भगवान विष्णु एवं उनके विविध अवतारों की उपासना इस स्थल में होने लगी थी। कालिंजर के अतिरिक्त भगवान विष्णु से सम्बन्धित मूर्तीयाँ पाथरकद्दार ,फतेहगंज ,रसिन,मड़फा , भरतकूप आदि में उपलब्ध होती हैं। यह भी संभव है कि भगवान श्री राम जिन्होंने चित्रकूट एवं कालिंजर परिक्षेत्र में अपने वनवास के 12 वर्ष बिताये थे, उनका प्रभाव पड़ा हो। उसी के परिणाम स्वरूप भगवान विष्णु के अनेक अवतारों की मूर्तियां देवगढ़ की भांति ही विविध मंदिरों और मठों में स्थापित की गई हो। जब यह क्षेत्र बुन्देला शासकों के अधिकार में आया उस समय अनेक विष्णु मंदिरों का निर्माण हुआ। इन मंदिरों में प्रस्तर मूर्तियों के अतिरिक्त धातु की मूर्तियाँ भी स्थापित हुई। कालिंजर में ही अनेक मन्दिर विष्णु उपासना के केन्द्र है। इन मंदिरों में विष्णु मूर्ति के अतिरिक्त अन्य देवी -देवताओं की प्रतिमाएँ भी हैं।

वेदों के अनुसार भगवान विष्णु इन्द्र के बड़े भाई हैं। इनका निवास क्षीर सागर में है। विष्णु पुराण के अनुसार उन्होंने अनेक युगों में विभिन्न अवतार धारण किये थे। इन अवतारों में वाराह, वामन, कूर्म, मत्स्य, नरसिंह ,राम ,परशुराम एवं कृष्ण अवतार आदि प्रमुख हैं। भगवान विष्णु की भक्ति के लिए नवध भक्ति का सहारा लिया जाता है। विष्णु की उपासना विभिन्न प्रकार से की जाती है। इनकी उपासना पूर्ण सतोगुणी है। विष्णु उपासक अपनी धार्मिक पहचान विशेष प्रकार का तिलक लगाकर करते थे। विशेष रूप से बाल्मीकी रामायण, भागवत पुराण, सत्यनरायण कथा का श्रवण व पाठन करते हैं और समय-समय पर भगवान के विविध चरित्रों का रंग-मंचीय मंचन करते हैं। विष्णु मंदिरों में किसी प्रकार की बलि देने की प्रथा नहीं है।

वैष्णव धर्म का विकास कालिंजर परिक्षेत्र में उस समय प्रारम्भ हुआ जब यह क्षेत्र विन्ध्य आटवीं के रूप में समुद्रगुप्त के शासन के अन्तर्गत था, तब वैष्णव धर्म की सबसे बड़ी विशेषता थी कि इन्होंने अंहिसा को सर्वोच्च स्थान दिया। अहिंसा के साथ भगवान विष्णु ने कृष्ण के रूप में विशेष आकर्षण देखने में आया। इससे प्रभावित होकर विष्णु उपासकों ने मांस भक्षण का पूरी तरह परित्याग कर दिया। चंदेल शासक हर्ष एंव यशोवर्मन देव विष्णु के परम भक्त थे। वैष्णव धर्म के माध्यम से सांसारिक विभूतियों के भोग का अनूठा मार्ग प्रस्तुत किया गया है। भगवान कृष्ण के जीवन ने सात्विक मार्ग से संसार के भोग करने का व्यवहारिक उदाहरण रखा। इसीलिए वे अत्यधिक लोकप्रिय हो गये।[26] सम्राट धंग के समय कालिंजर परिक्षेत्र में विष्णु उपासना का विकास हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैष्णव उपासना कालिंजर परिक्षेत्र में गुप्त युग से प्रारम्भ होकर बुन्देलों के शासन तक बनी रहीं। आज भी उसका प्रभाव वहां देखने को मिलता है।

4.गणेश मत-

कालिंजर परिक्षेत्र में कई स्थानों पर उच्चकोटि की गणेश प्रतिमायें प्राप्त हुई है। यह मूर्तियाँ अधिकतर शिव मंदिरों में हनुमान मूर्तियों के साथ उपलब्ध होती हैं। एक विशाल गणेश प्रतिमा सिधौरा में देवी मंदिर के निचले स्थल पर प्राप्त हुई है। इन सब गणेश प्रतिमाओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि गणेश उपासना बुन्देलखण्ड में प्रमुखता से होती है, तथा कोई भी रचनाकार जब रचना प्रारम्भ करता था तो वह गणेश वन्दना अवश्य करता था। कहीं-कहीं उसका नाम पंचदेवों में सम्मिलित किया जाता था। कवि जगनिक द्वारा रचित आल्हाखण्ड में यह पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

सदा भवानी दाहिने, गौरी पुत्र गणेश।

तीन देव रक्षा करें, ब्रम्हा विष्णु महेश।।[27]

गणेश उपासना सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र एवं बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। जब किसी भी कार्य का शुभारम्भ होता है, उसमें सर्वप्रथम गणेश जी का नाम लिखा जाता है। विवाह आदि अवसरों पर सर्वप्रथम गणेश जी की पूजा होती है। पुराणों के अनुसार गणेश भगवान शिव पार्वती की सन्तान है तथा स्वामी कार्तिकेय के लघु भ्राता हैं। इनका शिर(मुख) हांथी का, धड़ मनुष्य का है। इसी संदर्भ में पुराणों में एक कथा उपलब्ध होती है। जब गणेश जी उत्पन्न हुए थे, उस समय उनका शिर एवं धड़ अथवा सम्पूर्ण शरीर मनुष्य का था किन्तु भगवान शिव ने किसी कारणवश उनका सिर काट दिया और जब पार्वती ने यह बताया कि गणेश आपका ही पुत्र है, तब शिव ने देवगणों को आदेश दिया कि जाओं तुम्हें सबसे पहले जो भी मिले उसका सिर काटकर ले आओं। देवगणों को सबसे पहले हांथी का बच्चा मिला और वह उसी बच्चे का सिर काटकर ले आये भगवान शिव ने कटे की धड़ में हांथी के बच्चे का सिर लगाकर जीवित कर दिया तभी से भगवान शिव ने उनको सर्वप्रथम पूज्यनीय का वरदान दिया। गणेश की सवारी मूषक है। उनके पास सदैव कमल और दवात रहते हैं। उन्हें लम्बोदर तथा एक दन्त वाला देव भी माना जाता है। इनकी दो पत्नियाँ ऋद्धि

,सिद्धि एवं दो पुत्र शुभ-लाभ हैं।कालिंजर परिक्षेत्र मे इनकी पूजा विष्णु पत्नी लक्ष्मी के साथ होती है। इनके अनेक पूज्यनीय व्रत है जिनमें से गणेश चतुर्थी या शकट गणेश प्रमुख हैं।[28]

5. सूर्य उपासना-

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में पंचदेवों में सूर्य का प्रमुख स्थान रहा है। इस संदर्भ में अनेक पुराणों में उदाहरण उपलब्ध होते हैं।यथा-

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः।।[29]

सूर्य की उपासना सम्पूर्ण कालिंजर क्षेत्र में तीन प्रकार से होती है- 1.निर्गुण निराकार,2.सगुण निराकार 3. सगुण साकार। उपनिषदों एवं वेदों में सूर्योपासना के सन्दर्भ में अनेक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं।

'य एवासौ तपति तमुद्रीथमुपासीत।[30]

★ ★ ★ ★ ★

'आदित्य ओमित्येवं ध्यायंस्तथात्मानं युञ्जीतेति।।[31]

वेदों, पुराणों के अनुसार सूर्य को प्रकाश एवं जागरण का देवता माना जाता है। इसी से तेज और ओज मिलता है । विविध पुराणों के अनुसार सूर्य के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है कि भगवान भाष्कर ही सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता है इसलिए यही जीवन के मूल है।

कालिंजर परिक्षेत्र के सन्दर्भ में कतिपय इतिहासकारों का मानना है कि कालिंजर दुर्ग में प्रवेश करने के लिए जिन सात द्वारों का निर्माण किया गया है, वे सात दिवस के प्रतीक है। यहां निश्चित ही कभी सूर्य मंदिर रहा होगा। कालिंजर क्षेत्र में ही बृहस्पतिकुण्ड के सन्निकट सूर्यकुण्ड भी है और सूर्यकुण्ड नामक एक दूसरा स्थान चित्रकूट के निकट है। अनेक स्थानों पर सूर्य की प्रतिमायें प्राप्त हुई है। कुछ लोग कालिंजर का अर्थ काल अथवा समय से लगाते हैं जिसका निर्धारण सूर्य से होता है जिसे इस प्रकार वर्णित करते हैं। कालम-अजरा अर्थात जिस स्थान को भगवान सूर्य देव ने सदैव के लिए निर्मित किया है वह कालिंजर है। वर्तमान समय में सूर्य मंदिर कालिंजर क्षेत्र में उपलब्ध नहीं हैं किन्तु बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में सूर्य मंदिर उपलब्ध हुए हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य मंदिर कभी यहां भी रहा होगा। ऋग्वेद में सूर्य से सम्बन्धित अनेक श्लोक उपलब्ध हैं। इसके अलावा मत्स्य पुराण एवं श्री मद्भागवत पुराण में सूर्य उपासना के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

आरोग्यं भाष्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मो क्षमिच्छेज्ज्वनार्दनात्।।

देवतिर्यङ्.मनुष्याणां सरीसृपसवीरूधाम्।

सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः।।[33]

कालिंजर वासी वेदों, पुराणो, एवं प्रचलित परम्पराओं के आधार पर सूर्य की उपासना करते थे। आज भी नदी, सरोवरों में सूर्य की ओर मुख करके सूर्य को जल अर्पण करने की प्रथा मौजूद है। इस प्रथा से नेत्रों को अत्यधिक प्रकाश एवं मनुष्य के शरीर को ऊर्जा मिलती है।

6.हनुमान उपासना-

हनुमान उपासना सम्पूर्ण क्षेत्रों में अति प्राचीन काल से होती रही है। इसी प्रकार कालिंजर क्षेत्र में भी अनेक स्थानों पर श्री हनुमान जी के अच्छे मंदिर मिलते हैं। ये मंदिर नरैनी के निकट गुढ़ा में, कालिंजर में, रींवा फाटक के सन्निकट तथा दुर्गारोहण के समय कालिंजर दुर्ग के एक द्वार का नाम हनुमान द्वार भी रखा गया। इसके अतिरिक्त नीलकण्ठ मंदिर के समीप हनुमान जी की मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। ये मूर्तियाँ रसिन,मड़फा ,पाथरकद्दार बिलहरिया मठ तथा बानगंगा में भी प्राप्त हुई हैं। कालिंजर क्षेत्र में रामभक्त श्री हनुमान की उपासना बड़े ही श्रद्धा के साथ की जाती है और उनके वानर स्वरूप को ही यहां स्वीकार किया गया है। वेदों की अनेक संहिताओं में हनुमान के संदर्भ में उदाहरण मिलते हैं।

ॐ दाशरथाय विद्महे सीताबल्लभाय धीमहि तन्नोरामः प्रचोदयात्।

ॐ अन्जनीजाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि तन्नो हनुमान प्रचोदयात।।[34]

★ ★ ★ ★ ★

ॐ तव श्रिये मरूतो मर्जयन्त रूद्र यत्ते जनिम चारूचित्रम।।

पदं यद् विष्णोरूपमं निधायितेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्।[35]

कालिंजर क्षेत्र में श्री राम भक्त हनुमान के जिस स्वरूप का चिन्तन किया जाता है वह उनका वानर स्वरूप है। इस संदर्भ में जगतगुरू शंकराचार्य ने हनुमान तत्व के विषय में काफी प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि सनातन धर्म में अनेक उपास्य देवता हैं किन्तु कोई ऐसा देवता नहीं है जिसका ब्रह्मचर्य स्वरूप देखा जा सके, वे केवल हनुमान जी ही हैं। वे सम्यक ब्रह्मचर्य पालक, शत्रुनिग्रहकाम विजेता, कार्य सिद्धि कारक हैं वे रूद्र के अवतार हैं। हनुमान दास भक्ति के अनुपम उदाहरण है, इस संदर्भ में यह श्लोक सारगर्भित है-

मनोजवं मारूततुल्यवेंगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।

वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूंत शिरसानमामि।।[36]

बाल्मीकि रामायण में भी सुन्दरकाण्ड के कई स्थलों में हनुमान जी के संदर्भ में विशद वर्णन उपलब्ध होता है। भगवान श्री राम के कार्य हेतु सीता की सुध लेने के लिए समुद्र पार करते हैं। अनेक लीलायें करते हुए रावण की लंका पुरी में प्रवेश करते हैं। वहां पुष्पक विमान को देखते है और अशोक वाटिका में प्रवेश

करके सीता जी को खोज लेते हैं। रावण को इस स्थान में देखकर उन्हें दुख होता है। सीता का करूण विलाप सुनकर हनुमान जी द्रवित होते हैं। रावण के जाने पर हनुमान जी सीता जी को राम जी की मुद्रिका देते है और उनका संदेश सुनाते हैं। सीता जी की प्रशंसा करते हैं और अपना परिचय देते हैं। सीता जी अपनी चूणामणि हनुमान जी को देती हैं वहीं हनुमान जी अनेक राक्षसों से युद्ध करते है, अन्त में वे ब्रह्मफांस द्वारा बांध लिये जाते है फिर रावण की राजसभा में पेश करते है। रावण हनुमान जी से लंका आने का कारण पूछता है। हनुमान जी लंका आने का कारण सीता की खोज बताते हैं, फिर हनुमान जी लंका को जलाते है तथा श्री राम के पास वापिस आते है। जब लक्ष्मण जी को शक्ति लगती है। तब हनुमान जी संजीवनी नामक औषधि लेकर आते है, उस औषधि से लक्ष्मण जी पुनः स्वस्थ हो जाते है। इस प्रकार हनुमान जी का सम्पूर्ण जीवन श्री राम जी के लिए समर्पित था। वे सीता जी का संदेश भगवान राम को सुनाते हुए कहते हैं।

यथा च स महाबाहुर्यो तारयति राघवः।
अस्माद्दुः खाम्बुसंरोधात् तत् त्वमाख्यातुमर्हसि।।[37]

भगवान श्री राम भक्त हनुमान जी की उपासना इस क्षेत्र में मंगलवार एवं शनिवार को विशेषरूप से होती है। हनुमान की मूर्ति में सिन्दूर लगानें की प्रथा है। इनके भक्त रोट और मोदक (लड्डू) चढ़ातें हैं।

7. पशु उपासना-

कालिंजर में प्राप्त पशु-पक्षियों की मूर्तियों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन पशु- पक्षियों का किसी न किसी धर्म से अवश्य सम्बन्ध रहा है। या तो ये किसी देव विशेष के वाहन हैं या उनके आभूषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त भी उनका अलग से धार्मिक महत्व है। मुख्य मूर्तियाँ जो कालिंजर संग्रहालय में संग्रहीत है तथा अन्य देवालयों में भी उपलब्ध हुई हैं। जिनमें वाराह की मूर्ति एवं नन्दीश्वर की मूर्ति प्रमुख है। इनके अलावा नागों की अनेक प्रतिमायें संग्रहालय में उपलब्ध होती है। इन मूर्तियों के अतिरिक्त मूषक ,उल्लू,कश्यप आदि की मूर्तियाँ मिलती हैं। भगवान विष्णु का वाराह अवतार और कश्यप अवतार दशावतारों में से एक है। नरसिंह अवतार की प्रतिमा भी प्राप्त हुई हैं इस मूर्ति में शिर सिंह का और धड़ नर का है।

कालिंजर क्षेत्र कें पशुओं में सर्वाधिक महत्व गायों को दिया जाता है।यदा-कदा इनकी भी प्रतिमायें उपलब्ध हुइ हैं। गायों का सीधा सम्बन्ध वैष्णव सम्प्रदाय से है। कृष्ण उपासना से सम्बन्धित सभी भक्त गण गायों को अत्यन्त पूज्य मानते हैं। गोपाष्टमी और गोवर्धनपूजा के समय गायों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रातः काल गायों के चरण स्पर्श करना शुभ माना जाता है। यहां तक कि गइया (गौ) का गोबर भी पूजा में प्रयोग किया जाता है। पूजा के स्थल को गइया के गोबर से लीपकर पवित्र करना और उसी के गोबर से गौरी,गणेश बनाकर पूजा करना आदि शुभ माना गया है। गो वंश में ही अगला पूज्यनीय स्थान

नन्दीश्वर का है। यह भगवान के वाहन है शिव मंदिरों में इनकी प्रतिमा शिवलिंग के साथ होती है। शिव धर्म के अनुसार नन्दीश्वर को धर्म का अवतार माना जाता है। शिव भक्ति से सम्बन्धित लोग इन्हें भी अपनी श्रृद्धा अर्पित करते हैं। पशुओं में ही हांथी का भी पूज्यनीय स्थान है। महालक्ष्मी के दिन प्रमुख रूप से हाथी की पूजा होती है।

कालिंजर परिक्षेत्र में नागों की उपासना का प्रचलन है। नागों का सीधा सम्बन्ध शैव मत से है। ये भगवान शिव के आभूषण हैं, इनके गले एवं भुजांओं में सदैव सुशोभित रहते हैं। यहां पर नागों की पूजा का अलग से विधान है। श्रावण मास में नागपंचमी के दिन नागों की विशेष रूप से पूजा होती है। उस दिन उन्हें दूध पिलाया जाता है। नागों का सम्बन्ध वैष्णव मत से है। 8 प्रकार के नाग भगवान विष्णु की सेवा करते हैं। विष्णु की शैय्या शेषनाग की है।[38]

कालिंजर में पक्षियों को भी बड़ी श्रृद्धा से देखा जाता है, जब किसी घर में कौवा बोलता है तो यह माना जाता है कि कोई मेहमान आने वाला है। गरूण को भगवान विष्णु का वाहन माना गया है।, उल्लू को लक्ष्मी के वाहन की मान्यता दी गई है। इसी प्रकार हंस को सरस्वती का वाहन माना गया है। नीलकण्ठ को भगवान शिव का प्रतीक मानकर उसके दर्शन को शुभ माना जाता है। यहां के लोग तोता पालकर राम-राम सिखाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यहां उपलब्ध अनेक प्रकार के जलचर ,नभचर और थलचर के जीव धर्म से जुड़कर श्रृद्धा के पात्र है।

8.प्रकृति उपासना-

आर्यों का प्राचीनतम् धर्म वैदिक धर्म है। वैदिक धर्म के अन्तर्गत प्रकृति की उपासना प्रमुख अंग थी। उत्तर वैदिक काल के पहले तक मूर्ति पूजा का प्रचलन कहीं भी नहीं था। वेदों में जिन देवताओं की परिकल्पना की गई है। वे प्रकृति के ही देवता हैं । इन्द्र वर्षा का देवता एवं स्वर्ग का अधिपति है। वरूण जल का देवता, मारूति वायु का देवता , अग्नि ऊर्जा का देवता, सूर्य प्रकाश का देवता, धन्वन्तरि औषधि का देवता है। इन देवताओं के माध्यम से वेदों में नाना प्रकार के मंत्र सृजित हुए जिनकों यज्ञों के माध्यम से पढ़ा जाता था और देवताओं को आहुति देकर सन्तुष्ट किया जाता है।

कालिंजर परिक्षेत्र में आर्य कुल के अतिरिक्त अनार्य कुलों की बस्तियाँ भी बहुत अधिक हैं, इन अनार्य कुलो को आदिवासियों के नाम से पुकारा जाता है। इनकी उपजातियाँ, खैरवार, कोल, गौण, बैगा आदि इस क्षेत्र में निवास करते हैं। यह आज भी प्रकृति के उपासक हैं। प्रकृति उपासना में मुख्य रूप से पवित्र नदियों सरोवरों, पर्वतों और वृक्षों की उपासना होती है। इस क्षेत्र में बरगद ,पीपल ये दो मुख्य पवित्र वृक्ष माने गये हैं। पीपल के वृक्ष के नीचे अनेक देवताओं की मूर्तियाँ बैठा दी जाती है। जल चढ़ाकर हल्दी, चावल, सिन्दूर लगाते है। दीप जलाकर पेड़ की परिक्रमा लगाते हैं। इसकी लकड़ी हवन में प्रयोग की जाती है।

बरगदाही अमावश्या को बरगद की पूजा विशेष रूप से होती है। इसी प्रकार इच्छानौमी को आवंले के पेढ़ को पूजते है। यहां के प्रत्येक घरों में तुलसी चौरा स्थापित किये जाते हैं। यह तुलसी का वृक्ष आंगन में बहुत शुभकारी होता है इनकी पत्तियों को पूजा के रूप में भगवान जी को भोग लगाते है फिर प्रसाद के रूप में ग्रहण करते है। बेल के वृक्ष का अपना अलग धार्मिक महत्व है। इसके पत्ते और फल श्रावणमास में भगवान शिव को अर्पित किये जाते है। आम के वृक्षों का भी धार्मिक महत्व है। क्योंकि जब भी कोई धार्मिक शुभकार्य सम्पन्न होते हैं। पत्तों के बन्धनवार बनाये जाते हैं। कलश स्थापना में आम के पत्ते घट के ऊपर रखे जाते हैं। इसी प्रकार आम की बौर बसन्त पंचमी के दिन सरस्वती मां को अर्पित की जाती है। आम के पेड़ की लकड़ियाँ हवन में प्रयुक्त होती है।

9. ग्रामीण देवता-

कालिंजर क्षेत्र में जहां अनेक प्रकार के मत मतान्तरों का विकास हुआ वहीं धार्मिक अन्धकार और अन्धविश्वास भी अशिक्षा अज्ञानता के कारण पनपा । इस अन्धविश्वास ने अनेक देवताओं को जन्म दिया जिन्हें ग्रामीण देवता के रूप में पूजा जाता है। आदिवासी लोग ज्यादातर शक्ति उपासक होत हैं। प्रत्येक गांव में खेरमाता, खेड़ापति एवं खेरे की भवानी की मढ़िया होती है। इसका पुजारी अछूत जाति का व्यक्ति होता है। जब गांव में कोई बीमारी फैलती है तो उस समय इसकी पूजा बकरे या मुर्गे आदि की बलि दी जाती है। इसी के साथ चूड़ी,शराब भी चढ़ाई जाती है।

इस क्षेत्र में बुन्देला शासक जुझार सिंह के भाई हरदौल की पूजा वैवाहिक कार्यक्रम में होती है। मिड़ोहिया देव की भी पूजा होती है। इसकी मूर्ति नहीं होती बल्कि खेतों की मेड़ की पूजा होती है। इसी प्रकार नाले, घाटी का देवता घटोइया कहलाता है। इसकी मूर्ति चबूतरे पर गोल पत्थर की होती है। स्त्रियाँ ससुराल जाते समय इसकी पूजा करती हैं। गौड बाबा, मसान बाबा, नट बाबा तथा छींद या रकसा किसी जाति का प्रेत विशेष है जो जंगल में रहता है। कभी-कभी कुत्ते का सा रूप धारण कर लेता है और इसको शांत रखने के लिए पूजा होती है। मढ़ई देवी हैजा को रोकने वाली देवी है, इसकी मूर्ति में शराब छिड़की जाती है तथा सुअर के बच्चे की बलि दी जाती है। भियाराने व ग्वाल बाबा यादवों तथा काछियों के देवता हैं। वरमदेव किसी ब्राम्हण का भूत है इसे गौण और गुरइया लोग पूजते हैं।[39] इस प्रकार अनेक ग्रामीण देवता कालिंजर परिक्षेत्र में पूजे जाते हैं।

10. जैन मत-

कालिंजर परिक्षेत्र चंदेलों का महत्वपूर्ण स्थल था, इसलिए जहां-जहां चंदेलों का राज्य था, वहां जैन धर्म को प्रचारित और प्रसारित होने में कोई बाधा नहीं आई। इस समय कुमारिल और शंकराचार्य बौद्ध धर्म का प्रचार जोरों से कर रहे थे किन्तु उन्होंने जैन धर्म का विरोध नहीं किया। इसी युग में तर्कशास्त्र, व्याकरण की रचना हुई औषधिशास्त्र में भी जैनियों की कुशलता का गुणगान किया गया। कुछ ब्रम्हणों ने भी इस

समय जैन धर्म ग्रहण कर लिया था। ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार कालिंजर क्षेत्र में हुआ। जैन धर्म से सम्बन्धित धार्मिक स्थल और मूर्तियाँ मड़फा, कालिंजर में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। इन स्थलों पर आदिनाथ, ऋषभदेव एवं अन्य तीर्थांकारों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जैनियों के प्रचार-प्रसार का मुख्य कारण सत्य, अहिंसा तथा प्रेम से जुड़ी भावना थी। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार ए-इद्रीसी का मत दृष्टव्य है" भारतवर्ष की प्रमुख जातियों में इस समय 42 मत और सम्प्रदाय हो गये हैं। इनमें से कुछ ईश्वर की सत्ता को मानते हैं परन्तु पैगम्बर की नहीं और कुछ दोनों की स्थिति अस्वीकार करते हैं।[40]

जैन धर्मावलम्बी आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं किन्तु वह ईश्वर को सृष्टि का कर्ता-धर्ता मानते हैं वे सत्य, अहिंसा, तप आदि के माध्यम से मोक्ष का द्वार ढूढ़ते हैं। अपनें 24 तीर्थांकरों पर आस्था एवं विश्वास रखते हैं ये लोग श्वेताम्बर और दिगम्बर दो भागों में विभक्त हैं। मूर्ति एवं शास्त्र दोनों को मानते है। इस धर्म का उदय ब्राम्हण धर्म के विरूद्ध हुआ। कालिंजर क्षेत्र में जैनियों की संख्या कम है।

11.बौद्धमत-

कालिंजर परिक्षेत्र में बौद्ध धर्म के अस्तित्व की सम्भावना पाई जाती है।जब यह क्षेत्र मौर्य सम्राट अशोक तथा हर्ष के राज्य में शामिल था, उस समय निश्चित ही इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का विकास बहुत अधिक हुआ होगा। बबेरू, इद्दावर, मुरवल तथा पलरा में बौद्ध कालीन अवशेष मिलते हैं। यहां पर थानेश्वर खेड़ा में बौद्ध प्रतिमायें मिली थीं जिनसे बौद्ध धर्म के अस्तित्व का पता लगता है।बौद्ध धर्म हीनयान और महायान दो शाखाओं में विभक्त था। इसी धर्म की तीसरी शाखा बज्रयान थी। केशवचन्द्र मिश्र का यह मानना है कि कालिंजर क्षेत्र में जो मिथुन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं उनका निर्माण बज्रयानियों के प्रभाव से ही हुआ होगा।[41]

कालिंजर में इस समय बौद्ध धर्मावलम्बी नहीं है। कुछ समय पूर्व डॉ0 अम्बेडकर के प्रभाव में आकर यहां के चमार अपने आपको बौद्ध कहने लगे और बौद्ध धर्म से सम्बन्धित नियमों का पालन करने लगे। इन्होंने सवर्णो के विरोध में हिन्दू धर्म का त्याग करके इस धर्म को ग्रहण किया, ये बुद्ध पूर्णिमा को बड़े धूम-धाम से मनाते हैं।

12.योग पंथ-

कालिंजर परिक्षेत्र में योगपंथ का व्यापक प्रभाव देखनें को मिलता है। सुरसरिगंगा के सन्निकट सिद्धों के कई स्मारक बने हुए हैं। ये लोग निराकार ब्रह्म के उपासक एवं तंत्र-मंत्र के साधक थे। कालिंजर दुर्ग में मिढ़की भैरव आदि की मूर्तियाँ भी तांत्रिक मूर्तियाँ मानीं जाती हैं। इसके अतिरिक्त भी इस क्षेत्र में यक्ष-यक्षणियों की अनेक प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं, तांत्रिक लोग यक्षणी सिद्ध करते थे और भूत, प्रेतों को अपने वश में करते थे। सिद्धियों के माध्यम से मसान जगाते थे। इनकी उपासना पद्धति में मदिरापान तथा किसी

भी सम्भोग से परहेज नहीं था। इसी योग पंथ से सम्बन्धित अघोरपंथ भी था। इसके अनेक साधक वर्तमान समय में मिल जाते हैं। कालिंजर के अतिरिक्त रसिन, मड़फा ,पाथर कद्दार आदि स्थलों में इस प्रकार के स्मारक उपलबध हो जाते हैं। यह निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। तंत्र विज्ञान की विविध पुस्तकों पर पूर्ण आस्था रखते थे।

13.कबीर पंथ-

कालिंजर परिक्षेत्र में कबीर पंथ से सम्बन्धित एक धार्मिक स्थल गुढ़ा के हनुमान जी से सिधौरा जाने वाले मार्ग में नौगवां में प्राप्त हुआ है। यह स्थल दो मंजिला है। इसके कई कमरों में राख भरी हुई है। इन कमरों में कबीर पंथ के लोग साधना किया करते थे। इस धर्म स्थल के ब्राह्मण अनेक कबीर पंथ से सम्बन्धित महन्तों की समाधियाँ बनी हुई हैं, जो लगभग दो या तीन सौ वर्ष पुरानी प्रतीत होती है। इस क्षेत्र के कोरी जाति के लोग अपने आपकों कबीर पंथी मानते हैं। कबीर पंथ के मानने वाले व्यक्ति निराकार ब्रह्म के उपासक हैं ये लोग भगवान राम के निगुर्ण स्वरूप की उपासना करते हैं। माथे में तिलक लगाते हैं तथा गले में कण्ठी पहनते हैं। इस धर्म का मूल ग्रंथ 'कबीर ' द्वारा रचित 'बीजक' हैं जो तीन भागों में विभक्त है- साखी, सबद, एवं रमैनी।

14.इस्लाम धर्म-

कालिंजर परिक्षेत्र में मुसलमान आक्रमणकारियों का एक तांता सा लगा रहा, इन मुस्लिम आक्रमणकारियों में महमूद गजनवी[42], कुतुबुद्दीन ऐवक, बाबर, शेरशाह सूरी, हुमायूँ, औरंगजेब आदि शामिल थे। इनके आक्रमणों का यहां बहुत प्रभाव पड़ा । आक्रमणों के दौरान यहां के हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। हिन्दू मंदिरों को तोड़कर उन्हें मस्जिदों में परिवर्तित किया गया। शेरशाह सूरी के समय में सात सैय्यद बन्धुओं ने इस क्षेत्र में अपनी कुर्बानी दी थी। कालिंजर से लेकर बाँदा तक इन सैय्यद बन्धुओं के मृत्यु स्मारक मिलते हैं। कालिंजर दुर्ग में वेंकटेश्वर मंदिर के समीप एक प्राचीन मस्जिद उपलबध होती है। इसके अतिरिक्त नीलकण्ठ मंदिर से थोड़ी दूर पर मजार ताल के सन्निकट अनेक मृत्यु स्मारक प्राप्त होते हैं। कालिंजर दुर्ग के नीचे राठौर महल के समीप भी अनेक मजारें मिली हैं। इसी प्रकार रींवा फाटक तथा कामता फाटक के नजदीक भी मुसलमानों की मजारें मिली हैं। इनकी मस्जिदें और मृत्यु स्मारक फतेहगंज, पाथर कद्दार आदि में प्राप्त होती हैं। गोलेपुरवा के सन्निकट हुमायूँ की छावनी के स्मारक हैं, उसी के निकट शेरशाह सूरी की मजार भी है। इन सभी स्थलों के साक्ष्यों से इस क्षेत्र में इस्लाम धर्म के विकास का पता चलता है। कालिंजर क्षेत्र के सिमौनी आदि अन्य गांवों में मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि कालिंजर परिक्षेत्र की दस प्रतिशत आबादी इस्लाम धर्म का अनुकरण करती हैं।

इस्लाम धर्म के अनुसार हजरत मुहम्मद साहब जिन्होंने कुरान शरीफ की रचना की, उनके वास्तविक पैगम्बर हैं। मुसलमान लोग मस्जिदों में नमाज अदा करते हैं, रमजान के महीने में रोजा रखते हैं। ईद,

बकरीद, मुहर्रम, बारावफात, शबेरात आदि उनके प्रमुख त्योहार हैं। ये लोग प्रत्येक शुक्रवार को नमाज बड़े धूमधाम एवं नियम से अदा करते हैं।

15.इसाई धर्म-

कालिंजर क्षेत्र में इसाईयों का आगमन सन् 1803 के पश्चात हुआ जबकि वे समशेर बहादुर की संधि के पश्चात यहां स्थाई रूप से निवास करने लगे थे। 1812 में कालिंजर परिक्षेत्र उन्हें यहां के जागीदार रामकिशन चौबे से प्राप्त हुआ था। प्रशासनिक दृष्टि से यहां अंग्रेज निवास करने लगे थे किन्तु उन्होंने यहां इसाई धर्म का प्रचार-प्रसार नहीं किया। कालिंजर दुर्ग में वाऊचोप नामक प्वालिटिक्स ऐजेण्ट का मृत्यु स्मारक बना है। इसे जहर देकर मारा गया था। इस क्षेत्र में इसाई सम्भवतः नील की खेती कराते थे तथा उत्पन्न होने वाली कपास की खरीद किया करते थे। इस धर्म के धर्मावलम्बी ईसा मसीह को अपना पैगम्बर मानते हैं। "बाइबिल" को अपना धर्म ग्रंथ मानते हैं। इनके धर्म के अनुसार 25 दिसम्बर को क्रिसमस डे, ईस्टर एवं गुड फ्राइडे इनके प्रमुख त्योहार हैं। वर्तमान समय में कालिंजर क्षेत्र की कुछ निम्न जातियों ने इसाई धर्म को अपना लिया है किन्तु इनकी संख्या बहुत ज्यादा नहीं है।

कालिंजर क्षेत्र के निवासियों के धार्मिक दृष्टिकोण- इस क्षेत्र की जनता शिक्षा की दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ी हुई है इसलिए धर्म को वह अपनी परम्परा एवं वंश के अनुसार ग्रहण करते हैं। इसमें वह किसी प्रकार का सुधार करना स्वीकार नहीं करते। यहां के निवासी ईश्वर पर दृढ़ विश्वास करते हैं और उसको सृष्टि का कर्ता-धर्ता स्वीकार करते हैं। ईश्वर के अतिरिक्त वे सभी प्रकार की देवी, देवताओं पर आस्था रखते हैं तथा उनसे भयभीत रहते हैं। धर्म को मानने का उद्देश्य भौतिक कष्टों को दूर करना तथा जीवन के अंत में पापों से दूर रहकर पुण्य लाभ करते हुए मोक्ष प्राप्त करना होता है। ये लोग भाग्यवादी हैं। वह सभी प्रकार के कष्टों का कारण अपने भाग्य को मानते हैं और भाग्य को ही ब्रह्मा की लिपि का दर्जा देते हैं। यह लोग जन्तर-मन्तर, जादू-टोना, झाड़-फूंक पर अधिक विश्वास करते हैं। पंडितों, पुजारियों, तथा धार्मिक स्थलों पर इनकी अटूट आस्था है। प्रचलित धर्म ग्रंथों का पाठन एवं कथा श्रवण बड़ी ही श्रद्धा से करते हैं। सभी लोग अपने -अपने धार्मिक चिन्हो टीका, माला, पहनावे आदि से अपनी पहचान बनाये रखते हैं। धार्मिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों, तीज-त्योहारों पर उनकी आस्था रहती है। पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में आस्था अधिक रहती है। यह लोग विविध संस्कारों तथा धार्मिक कर्मकाण्डों से बहुत प्राचीन समय से जुड़े हुए हैं। यह स्वर्ग की आकांक्षा करते हैं तथा नरक जाने से डरते हैं।

(2)-कालिंजर क्षेत्र के धार्मिक स्थल

कालिंजर प्राचीन काल से ही तीर्थों के रूप में विख्यात है तो निश्चित ही इस क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थलों का पाया जाना भी स्वाभाविक है। एक युग था जब लोग पवित्र तीर्थ समझकर यहां आया करते थे। महाभारत वनपर्व में कालिंजर के धार्मिक महत्व को अत्यन्त विस्तृत रूप में वर्णित किया गया

है, इससे यह प्रतीत होता है कि धार्मिक दृष्टि से कालिंजर उस युग में महत्वपूर्ण स्थल था। महाभारत में इसका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध है-

अत्र कालञ्जरं नाम पर्वत लोक विश्रुतम् ।
तत्र देवह्रदे स्नात्वा गौसहस्रफलं लभेत् ।।
यो स्नातः स्नापयेत् तत्र गिरौ कालञ्जरे नृप।
स्वर्गलोके महीयेत नरो नास्त्यत्र संशयः।।[43]

कालिंजर दुर्ग के धार्मिक महत्व को महाभारत में ही अलग-अलग ढंग से उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। जब कोई स्थल विशेष फलदायक होता है और जहां पहुंचकर व्यक्ति आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करता है तो वही व्यक्तियों का तीर्थ बन जाता है । इस संदर्भ में महाभारत में यह श्लोक उपलब्ध होता है-

हिरण्यबिन्दुः कथितो गिरौ कालञ्जरे महान्।।
अगस्त्यपर्वतो रम्यः पुण्यो गिरिवरः शिवः।।
अगस्त्यस्य तु राजेन्द्र तत्राश्रमवरो नृप।।[44]

इस परिक्षेत्र में जो भी धार्मिक स्थल प्राप्त होते है उनमें से प्रमुख स्थल शैव मत से सम्बन्धित हैं, इनकी संख्या बहुत अधिक है। शक्ति मत से सम्बन्धित धार्मिक स्थल एवं वैष्णव मंदिरों की संख्या बहुत कम है। हनुमान मंदिर अनेक स्थलों में प्राप्त होते हैं। कुछ स्थलों में गणेश प्रतिमायें भी उपलब्ध हुई हैं। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त यहाँ कबीर पंथ, जैन पंथ एवं योग पंथ से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल प्राप्त होते हैं। ये स्थल कालिंजर, रसिन, गुढ़ा, मड़फा, फतेहगंज, पाथरकद्दार, बानगंगा, बृहस्पति कुण्ड, लखनसेहा, किशनसेहा, नचना, सारंग तथा मुड़िया देव में उपलब्ध होते हैं। कुछ महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल रौलीगोंडा एवं बिलहरिया मठ में भी हैं। इनमें से अधिकांश धार्मिक स्थल प्राचीन होने के कारण खण्डहर में परिवर्तित हो गये हैं यही वजह है कि वर्तमान सयम में उपासना स्थल नहीं रह गये किन्तु आज भी बहुत से स्थल उपासना स्थल के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन स्थलों का विस्तार से वर्णन इस प्रकार है-

1.नीलकण्ठ मंदिर-

कालिंजर अगर प्रसिद्ध है तो केवल नीलकण्ठ मंदिर के कारण। यह कालिंजर का प्रथम एवं महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल है। नीलकण्ठ का मंदिर कालिंजर दुर्ग के पश्चिमी कोण में स्थित है। यही वह स्थल माना जाता है जहां भगवान शिव ने गरलशमन किया था, इसलिए उनका नाम नीलकण्ठ पड़ गया। कालिंजर का शिवलिंग 'स्वायम्भू शिवलिंगों' में एक है जो मूर्ति विज्ञान के नियमों से परे है। कालिंजर दुर्ग का यह भाग सर्वाधिक रमणीक है। यहां से जो दृश्य दिखाई देता है वह बहुत मनमोहक है।नीलकण्ठ मंदिर पहुंचने के लिए दुर्ग के ऊपर एक द्वार है, नीचे सीढ़ियों के माध्यम से उतरना पड़ता है। इस मार्ग में एक ओर विभिन्न देवी-देवताओं की छोटी एवं बड़ी मूर्तियाँ निर्मित हैं। इनका निर्माण चन्देल शासक परिमार्दिदेव ने

कराया था। यहां पर चन्देलकालीन अनेक कलाकृतियाँ विद्यमान हैं। यहां पर संवत् 1200 से लेकर संवत् 1554 तक के शिलालेख हैं। नीचे उतरकर एक ओर ढलान बनी है जहां यात्री पूजा के लिए रुक सकते हैं। इसी के सामने दोमंजिला मण्डप बना हुआ है जिसकी ऊपर की छत गिर गई है। इसके स्तम्भों में दिग्पालों, यक्षणियों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इस मंदिर के स्तम्भों की रचना एवं अलंकरण आदि इस बात की पुष्टि करते हैं कि इसकी रचना चन्देलकालीन है। मंदिर कालिंजर दुर्ग के मध्य भाग में स्थित है। मंदिर का देवायतन एक पर्वत काटकर बनाई गई सुरम्य गुफा में है परन्तु अष्टकोणक महामण्डप इसके पास ही बाहर बना है। इस मण्डप का वितान शेष नहीं है। इसका प्रवेश द्वार अत्यधिक अलंकृत है। द्वार स्तम्भों पर शिव, पार्वती, गंगा तथा यमुना की मूर्तियाँ हैं, ये मूर्तियाँ गुप्तकालीन हैं। शिवलिंग की मूर्ति काले रंग के पत्थर में तराशकर निर्मित की गई है। यह शिवलिंग 4 फुट 6 इंच का है। इस मूर्ति में तीन नेत्र हैं, यहीं शिव के त्रिनेत्र उनके संहारक के रूप का परिचय कराते हैं। नीलकण्ठ का मंदिर कालिंजर दुर्ग में तीर्थ-यात्रियों का मुख्य स्थल है। इसकी पुष्टि यहां पर प्राप्त सर्वाधिक तीर्थ-यात्रा लेखों से होती है।

नीलकण्ठों यत्र देवो भैरवाः क्षेत्र नायकाः।
कोटितीर्थ यत्र तीर्थ मुक्तिस्तत्र नंसंशयः।।[45]

जैसे ही हम मंदिर में प्रवेश करते हैं, हमें यहां भगवान शिव की प्रतिमा के दर्शन होते हैं। यह प्रतिमा लिंग एवं मूर्ति दोनों ही रूपों में है। कण्ठ से एक-एक बूंद पानी रिसता रहता है। यहीं से थोड़ी दूर पर दीवार से लगी हुई मां पार्वती एवं स्वामी कार्तिकेय की मूर्ति है। इन मूर्तियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रतिमायें गुप्तयुग की हैं। इनका निर्माणकाल ईसा की तीसरी, चौथी शताब्दी है। मंदिर का शेषभाग चंदेलकालीन है जो वास्तुशिल्प की दृष्टि से पंचायतन नागरीय शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस मंदिर का पूजा विधान अति प्राचीन है। कालिंजर के नीलकण्ठ मंदिर का पुजारी चन्देल ठाकुर था, ज्ञात होता है कि वह कई पीढ़ियों से यह कार्य सम्पादित कर रहा है। भगवान शिव की उपासना के लिए देवदासियों की नियुक्ति भी की जाती थी। मंदिर में गायिकायें एवं नर्तकियाँ होती थीं। इस सम्बन्ध में कालिंजर शिलालेख में वर्णित मुख्य नर्तकी पद्मावती का उल्लेख समीचीन प्रतीत होता है। कालिंजर के नीलकण्ठ मंदिर के स्तम्भ लेख में महाप्रतिहार संग्राम सिंह का निर्देश है।[46] कनिंघम की धारणा है कि उसकी नियुक्ति इस नीलकण्ठ मंदिर के रक्षार्थ की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मंदिरों की रक्षा के लिए द्वारपालों की नियुक्ति होती थी। इसी प्रकार एक अन्य अभिलेख में वर्णन है कि -"महाराज श्री मदनवर्मा देव का उल्लेख महाप्रतिहार संग्राम सिंह तथा महानचनी पद्मावती के साथ हुआ है। इसमें संवत् 1186 की तिथि अंकित है।[47]

धार्मिक दृष्टि से नीलकण्ठ मंदिर का जितना महत्व है, उससे अधिक महत्व यहां के वास्तुशिल्प का है। वास्तुशिल्प की उत्कृष्टता का उदाहरण यहां प्राप्त अनेक देव प्रतिमाओं से होता है। मंदिर परिसर में ही अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती है, इनमें से कूछ मूर्तियाँ राजा अमान सिंह के महल में रखी हुई हैं। सबसे सुन्दर

मूर्ति सागर मंथन की है। कुछ मूर्तियाँ चट्टानों पर तरासी गई हैं। पूर्व दिशा की एक चट्टान पर मूर्तियों शिवलिंग तथा सामान्य शिवलिंग उत्कीर्ण हैं। अन्य मूर्तियों में विश्व रूप विष्णु, द्विभुजी सपत्नीक विष्णु नरसिंह नन्दिकेश्वर की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। लगभग 10 फीट की एक वाराह की मूर्ति प्रांगण में प्राप्त हुई है। अन्दर गर्भगृह में शिवमूर्ति पर सदैव पानी टपकता रहता है। नीलकण्ठ मंदिर के शीर्ष पर स्वर्गारोहण कुण्ड है। इस कुण्ड का निर्माण पर्वत को काटकर किया गया है। यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य अद्वितीय है। इसको वर्तमान समय में सरग्वाह नाम से जाना जाता है। सरग्वाह के दाहिनी ओर जल में खड़ी लगभग 30 फुट ऊंची काल भैरव की विशालकाय मूर्ति है। यह कालिंजर दुर्ग की सबसे बड़ी मूर्ति है। इस मूर्ति के गले में मुण्डमाल, कानों में सर्पों के कुण्डल, हांथों में सर्प वलय हैं। इस मूर्ति के 18 भुजायें हैं। इनकी भुजाओं में ढाल,तलवार,रक्तपात्र, धनुष-बाण, खड्ग आदि प्रमुख आयुध हैं। इनका मुख ऊपर की ओर है तथा अलंकरण सर्प के बने हैं। यहीं पर काली(चामुण्डा) देवी की कंकाल मूर्ति है, यह 4 फुट ऊंची है। कालभैरव की मूर्ति आकार एवं शिल्प कौशल की दृष्टि से अद्वितीय उत्कृष्ट नमूना है। कालिंजर की इस अद्वितीय भैरव मूर्ति का उल्लेख अबुल-फजल[48] ने किया है। वह इस भैरवमूर्ति को 18 हांथ ऊंची बतलाते हैं यदि कालिंजर की इस दीर्घाकार भैरवमूर्ति को भारतवर्ष की दीर्घाकार भैरवमूर्ति कहीं जा सकती है। इस प्रकार मूर्ति की दृष्टि से नीलकण्ठ मंदिर हिन्दू धर्म की समस्त शाखाओं का समन्वीकरण करता है।

कालिंजरे गिरौ दिव्ये नीलकण्ठों महेश्वरः।
लिंगरूपी सदाचैव भक्तानन्दप्रदः सदाः।
महिमा तस्य दिव्योऽस्ति श्रुति स्मृति प्रकीर्तितः।
तीर्थमुख्यस्ततः स्नानात् सर्वपातकनाशकृत्।।

दिव्य कालिंजर पर्वत में महेश्वर भगवान नीलकण्ठ लिंग रूप में सदैव निवास करते हैं जो कि भक्तों को हमेशा आनन्द प्रदान करते हैं उनकी दिव्य महिमा वेदों और स्मृतियों में गाई गई है। उनके निवास के कारण कालिंजर एक प्रख्यात तीर्थ है जो कि स्नान मात्र से लोगों के पापों का विनाश कर देता है।

2. सीता-सेज-

कालिंजर दुर्ग के ऊपर जब हम दीवार के सहारे आगे बढ़ते हैं तो हमें दुर्ग के अंतिम द्वार के निकट पर्वत काटकर बनाई गई गुफा मिलती है। यह गुफा एक छोटा सा कमरा प्रतीत होता है। यहां पर पाषाण निर्मित एक पंलग तथा एक तकिया है। सम्भवतः यह स्थल साधू-संतों की तपस्थली रही होगी। इसके संदर्भ में एक जनश्रुति है कि भगवान श्री राम सीता जी के साथ कुछ समय विश्राम के यहां रूके थे। उन्होंने इसी स्थल पर विश्राम किया था इसीलिए इसे सीता-सेज कहा जाता है। तभी से इस स्थल का धार्मिक महत्व बढ़ गया। सीता-सेज के प्रवेश द्वार पर आठवीं शताब्दी का लेख उपलब्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य लेख विक्रमी संवत् 1587 और संवत् 1600 के हैं।[49] इस गुफा के सन्निकट सीता कुण्ड नामक जलाशय

है जिसकी दाई ओर अनेक स्त्रियों एवं पुरूषों की मूर्तियाँ हैं। यहीं पर पद्मासन अवस्था में एक संत की मूर्ति भी है और नजदीक ही एक टोकरी है जिस पर मछली की प्रतिमा भी है।

3. पाताल गंगा-

सीता-सेज से कुछ आगे जाने के बाद पाताल गंगा नामक धार्मिक स्थल है। यहां पर एक गुफा के नीचे गुप्त जलाशय है। यह लगभग 40 फुट लम्बी तथा 20 फुट चौड़ी है। यह गुफा विचित्र और प्राकृतिक ,कलाहीन है। ऐसी किवदंती है कि भगवान शिव जी विष पान करने के बाद सर्वप्रथम यहीं पाताल गंगा में आये थे और यहीं से स्वर्गारोहण गये थे। पाताल गंगा में प्राप्त प्राचीन लेख विक्रमी संवत् 1339 अर्थात् 1282 ई0 का है। दूसरा लेख संवत् 1500 अथवा 1483 ई0 का है। इसके बाद एक लेख हिजरी संवत 936 का है जो हुमायूँ के समय का प्रतीत होता है। इस स्थल का सबसे बाद का लेख संवत् 1640 अथवा 1583 ई0 का अकबर के समय का है।[50] यह एक चट्टान में कटा हुआ गहरा कूप है इससे निरन्तर पानी निकलता रहता है। यह जल छत तथा चारो ओर की दीवारों से निरन्तर टकराता है।[51] इस स्थल का धार्मिक महत्व शिव के गरलपान से है।

4.पाण्डव कुण्ड-

पाताल गंगा के समीप ऊपरी सतह पर 12 फुट व्यास का एक कुण्ड है। यह कुण्ड बहुत प्राचीन है। इस स्थल पर एक गुप्तकालीन अभिलेख प्राप्त हुआ है। इसमें गुप्तकालीन लिपि में "मनोरथ' नाम मिलता है। अतः इसमें गुप्तकालीन लिपि लिखी हुई है।[52] यह एक छिछला गोलाकार तालाब है। चट्टान की तिरछी सतह की दरारों से इसमें पानी आता है। जनुश्रुति के अनुसार जब पाण्डवों ने अज्ञातवास किया तब वह इस स्थल पर रहे, इसलिए इसका नाम पाण्डव कुण्ड पड़ा। यहां पाण्डवों एवं भगवान श्री कृष्ण के दर्शन होते है। इसीलिए इस स्थल का धार्मिक महत्व है। कुण्ड में स्नान करने से पुण्य प्राप्ति होती है।

5. वृद्धक क्षेत्र अथवा बुड्ढा -बुड्ढी ताल-

कालिंजर दुर्ग के ऊपर पूर्वी भाग में प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त एक जलाशय है। इसकी लम्बाई 50 गज तथा चौड़ाई 25 गज है। इस कुण्ड में चारों ओर सीढ़ियाँ बनी है। इस कुण्ड का जल चर्मरोग के रोगियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह बात सत्य है कि इसमें स्नान करने से कुष्ट रोग ठीक हो जाता है। इस संदर्भ में एक जनश्रुति प्रसिद्ध है कहते हैं कि बनारस का राजा कीर्तिब्रह्म अथवा कीर्तिवर्मन कुष्ट रोग से ग्रसित हो गया था। उसने इस सरोवर में स्नान किया और स्नान करने के बाद देखा तो उसका कुष्टरोग ठीक हो गया था। इसी खुशी में उसने इस तड़ाग का निर्माण कराया था और दुर्ग का भी पुनर्निर्माण कराया था। कहते है कि सरोवर में जल झरने से गिरता था, इससे यह अनुमान लगाते है कि झरने के स्रोत स्थान में कुछ ऐसी जड़ी बूटियां रही होगी जिससे इस सरोवर का जल इतना गुणकारी रहा है। इस समय तालाब में काई युक्त हरा जल भरा हुआ है। अतः अब उसके पुनः निर्माण की आवश्यकता है।

6. सिद्ध की गुफा, भगवान सेज एवं पानी का अमान-

कालिंजर दुर्ग के निचले क्षेत्र से कुछ नीचे एक पगडण्डी नीचे जाने के लिए बनी है। यहां से उतरने पर तीन स्थान मिलते हैं। सिद्ध की गुफा, भगवान सेज एवं पानी का अमान हैं। सिद्ध की गुफा का रास्ता अत्यन्त दुर्गम है, यहां जाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं है। यहां का रास्ता कष्टमय होने के कारण कम लोग ही आते हैं। यह गुफा पर्वत काटकर बनाई गयी है। कहा जाता है कि यह संत की तपस्थली रही होगी , जहां पर सिद्धतपस्वी एकान्त में बैठकर तपस्था करते थे। यहां पर दो अभिलेख हैं। सिद्ध की गुफा के नजदीक भगवान सेज है। यहां पाषाण निर्मित एक शैय्या और एक तकिया है। यह बिल्कुल सीता सेज के समान है। इससे थोड़ी दूर आगे चलने पर पानी का अमान नामक स्थान मिलता है। इसका प्रवेश द्वार 2 फुट 6 इंच का है। इसकी छत समतल अलंकृत स्तम्भों के सहारे टिकी है। इसका द्वार सकरा होने के कारण लोग झुककर हांथों का सहारा लेते हुए जा सकते हैं। इन स्थानों पर कोई भी मूर्ति नहीं है।

7. भैरव की झिरिया अथवा भैरव-कुण्ड-

दुर्ग के दक्षिणी पूर्वी कोण में पन्ना दरवाजा है, इसका दूसरा नाम बासंकार द्वार भी है । आजकल यह द्वार उपयोग में नहीं आता। यह अपने प्रथम नाम से ही जाना जाता है। यहां पर तीन द्वार हैं। जिनमें दो द्वार बन्द हैं और एक द्वार से यहां पहुंचा जाता है। यहां से थोड़ी दूरी पर भैरव की झिरिया है यहां पर पत्थर काटकर एक कुण्ड निर्मित किया गया है, यह स्तम्भों पर आश्रित है। कुण्ड के दोनों तरफ पत्थर की शिलायें हैं, एक शिला पर श्रवण की मूर्ति है। इस स्थल पर विक्रमी संवत् 1500 व विक्रमी संवत् 1600 के तीर्थ यात्रियों के लेख हैं। इसी कुण्ड के सन्निकट 20 फीट की ऊंचाई पर भैरव की एक मूर्ति है। यह मूर्ति नग्न अवस्था में है। यहां तक पहुंचने के लिए सीधी चट्टानों पर चढ़कर गुजरना पड़ता है, चट्टानें फिसलन वाली हैं। इसी क्षेत्र पर मिढ़की अथवा मिढ़की भैरव की मूर्ति की स्थिति बहुत विचित्र है। मूर्ति लम्बे आकार वाली पहाड़ी पर बनायी गयी है। इस मूर्ति के दस हांथ हैं । दो हांथ शिला पर एवं दो वस्त्र पर्दे की तरह फैलायें है, यह वह वस्त्र है जो प्रलयकाल में सूर्य को आवृत्त कर लेता है तथा विश्व के विनाश का कारण बनता है। अन्य हांथों में क्रमशः तलवार और वज्र है। इसके पीछे धुंधले रूप में भैरव वाहन कुत्ते की मूर्ति है। भैरव मूर्ति के सिर कपाल की शिरोभूषा है तथा गले में कपालों की माला है। इसके नीचे संवत् 1432 का लेख है तथा मूर्ति के नीचे 1194 संवत् का लेख है।भैरव की प्रतिमा 9 फुट ऊंची है। इसके बायीं ओर तीन स्थानक स्त्री मूर्तियाँ हैं। प्रत्येक स्त्री मूर्तियाँ माला पहने हैं। दाहिनी ओर एक बैठी हुई स्त्री मूर्ति है जो मानवाकार है, उसका एक हांथ वक्ष पर है और दूसरे से अपने को सहारा दिये हुये है, उसके नेत्र भैरव की ओर उन्मुख हैं। वह चारपाई जैसी चीज पर बैठी है, जिस पर मनु के नाम से युक्त 1562 का एक लेख है। यहीं पर एक श्रवण की मूर्ति है तथा भगवान शिव की शिरोभाग वाली प्रतिमा है। थोड़ी दूर पर तीन गुफायें

हैं जो फकीर की गुफा कहलाती है। यहां पर कोई मूर्तियां नहीं हैं।

8. मृगधारा-

कालिंजर दुर्ग के दक्षिणी भाग में मृगधारा नामक एक जल प्रपात है। यह स्थल प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त है। इस स्थान पर पर्वत को तराश कर दो कक्ष बनाये गये हैं। एक कक्ष में सप्त मृगों की मूर्तियां है, यहां पर जल कोटितीर्थ से आता है। पत्थर के मृग के मुंह से निरन्तर पानी निकलता है वह इसी तालाब से आता है। इसके धार्मिक महत्व के विषय में कुछ पंक्तियाँ उद्धत है।

मृगाणां दर्शनं कृत्वा, पूजियित्वा जले शुचिः।

प्रयाग मकरे पुण्यं, यत्तत कालिंजरे गिरौ।।17।।[53]

जो पुण्य प्रयाग में मकर स्नान से होता है वह पुण्य कालिंजर में मृगों का दर्शन करके उसके पवित्र जल के पूजन करने से होता है।

मृगाणां दर्शनं कृत्वा पितृतर्पण पूर्वकम् ।

एकोत्तरशतं पितृतारणं सप्तगोत्रकम्।।

मृगों का दर्शन करके पितरों के तर्पण और प्रणाम से 101 पितर और सात गोत्रों तक भ्रमित जीव भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।

श्राद्धं कृत्वा मृगेक्षेत्रे गया श्राद्धफलंलभेत्।।

छिन्दात्त सर्वपापानि मृगक्षेत्रतिलोदकैः।।

मृग क्षेत्र में श्राद्ध करके प्राणी को गया श्राद्ध का फल मिलता है। मृग क्षेत्र में पितरों के लिए तिल मिश्रित जलदान देने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

अष्टसिद्धि समायुक्तों वर्तते मृगक्षेत्रकम्।[54]

मृग क्षेत्र अष्टसिद्धियों से युक्त है। मृगधारा नामक स्थान बहुत प्राचीन है क्योंकि इस स्थान से सम्बन्धित आख्यान विभिन्न पुराणों में मिलता है। हरिवंश पुराण के अनुसार कुशिक के सात पुत्र थे- वाग्दुष्ट,क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, खसृम (आकाश में विचरण करने वाला) और पितृवर्ती थे। कुशिक ने अपने सात पुत्रों को उनके आचरण से क्रोधित होकर घर से निष्कासित कर दिया था। वे सातो महर्षि गर्ग के यहां रहने लगे। उनके द्वारा असत्य भाषण एवं मांसभक्षण करने के कारण महर्षि गर्ग ने उनको शाप दे दिया। उनके शाप से कुशिक पुत्र मृग बनकर कालिंजर गिरि पर रहने लगे। इस पुण्य क्षेत्र कालिंजर में मात्र वास करने एवं उनके द्वारा किये गये सत्कर्मों से उनका उद्धार हो गया था।[55] उन मृगों के पद्चिन्ह आज भी कालिंजर पर्वत पर आज भी पर्ववत् दृष्टिगोचर होते हैं।[56] इसी स्थल का वर्णन भागवत पुराण में मिलता है। कहा जाता है कि ऋषि के श्राप से राजा जड़ भरत ने मृगयोनि धारण की थी तथा वे इसी स्थान पर रहे थे।[57] जैन साहित्य में भी इस कथा का वर्णन है। इस प्रकार से यह स्थल पौराणिक आख्यानों से

सम्बन्धित है। इसी के नजदीक एक पहाड़ी पर गुप्तकालीन लेख है। इसके अलावा भी यहां पर 16 वीं सदी के अनेक लेख प्राप्त हुए हैं। पहाड़ी से मृगधारा तक पहुंचने के मार्ग का निर्माण कर दिया गया है।

9. कोटितीर्थ-

कालिंजर के इस महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल को दो नामों से जाना जाता है। कोई इसे कोट-तीर्थ कहता है और कोई कोटितीर्थ कहता है। इन नामों की यदि व्याख्या की जाय तो दोनों ही नाम अपनी-अपनी जगह सही हैं। कालिंजर दुर्ग का सबसे विशाल सरोवर कोटितीर्थ ही है। यह बहुत ही प्राचीन एवं पवित्र सरोवर है तथा इसकी गणना दुर्ग के पवित्र स्थलों में की जाती है। कहते हैं कि करोड़ों तीर्थ के दर्शन से वह फल नहीं मिलता जो इसके दर्शन मात्र से मिलता है। कालिंजर में सम्पूर्ण पापों का नाशक कोटितीर्थ नामक उत्तम तीर्थ है। हे देवि! यहां स्नान करने से मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजा पाता है।

कोटितीर्थ परं तीर्थ, सर्व पाप प्रमोचनम्।
तस्मिन स्नानेन नरोदेवि, ब्रह्मलोके महीयते।।8।।[58]

कुछ लोग इसका अर्थ 'कोढ़ -तीर्थ,' के रूप में लेते हैं जिसका अर्थ है,' कुष्ट रोगियों का तीर्थ स्थान। ' कहते है यहां पर स्नान करने से कुष्ट रोगियों को लाभ होता है तथा उनको रोग से छुटकारा मिल जाता है । कोटितीर्थ कालिंजर दुर्ग के मध्य एक विशाल सरोवर है जो लगभग 100 गज लम्बा है इसके जल तक पहुंचने के लिए चारो तरफ सीढ़ियों एवं घाटों का निर्माण किया गया था। इन सीढ़ियों में चित्रकारी की गई थी, जो कुछ सीढ़ियों में आज भी विद्यमान हैं। इस जलाशय में वर्षा ऋतु को छोड़कर अन्य मौसमों में जल कम रहता है। ग्रीष्म ऋतु में इसका जल सूख जाता है मगर बीच में कुछ जल रहता है।सूखा वाला हिस्सा दलदल बना रहता है। वहां कोई अगर भूल से चला जाता है तो वापस आना मुश्किल रहता है। सरोवर की भित्तियों में शिलालेख हैं। कहीं-कहीं पूर्ण सुरक्षित है, कहीं पर नष्ट हो गये है और कहीं पर तो पढ़े भी नहीं जा सकते हैं। सरोवर के तट पर गुप्त, प्रतिहार तथा चन्देलकाल के कई देवालय थे लेकिन वह आक्रांताओं की धर्मान्धता का शिकार हो गये। मंदिरों के ध्वंसावशेषों के निकट ही मस्जिद का निर्माण हुआ था। कोटितीर्थ के पश्चिमी तट पर कालिंजर के किलेदार चौबे परिवार द्वारा निर्मित मंदिर है। जलाशय के किनारे पठार महल तथा अन्य दूसरे भवन भी हैं जो अत्यन्त प्राचीन हैं। इन महलों के बाहर तथा अन्दर दीवारों में लेख अंकित हैं । यहां पर अनेक मूर्तियाँ थी जिनमें से कुछ के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। इन शेष मूर्तियों में विष्णु, नारायण, चतुर्मुखी शिवलिंग जो शायद 2 फुट 8 इंच ऊंचा है। यह अनुमान लगाया जाता है कि यह स्थल अपने नव निर्माण के समय अनेक सुन्दर मूर्तियों, चित्रकारी एवं शिल्पकारी कलाकृतियों से सुसज्जित एवं अलंकृत रहा होगा जिनमें से कुछ अवशेषों को आज भी देख सकते हैं। इसके किनारे पर नारायण की वृहदाकार मूर्तियाँ जिनमें दशावतार उत्कीर्ण है। कूर्म अवतार तथा उपासकों की मूर्तियाँ ऊपर नीचे अंकित है। यह 10 फुट 6 इंच ऊंची है। कहते है कि कोटितीर्थ सरोवर में स्नान करने

से सहस्र गायों के दान का फल मिलता था।

अत्र कालञ्जरं नाम पर्वतं लोक विश्रुतम् ।

तत्र देवहृदे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।।56।।[59]

कालिंजर महात्म्य में इस स्थान की महत्ता बहुत अधिक बतलायी गई है। यह कालिंजर का बहुत ही महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल है।

10. बलखण्डेश्वर महादेव-

कालिंजर दुर्ग के बाहरी भाग में नीचे की ओर एक छोटा सा शिव मंदिर है। यह मंदिर एक एकांकी टीले नुमा पहाड़ी पर है, जिसकी लम्बाई 15 फुट और ऊंचाई 10 फुट हैं। यहां पर एक शिव लिंग है जो बलखण्डेश्वर के नाम से विख्यात है। इसके पास ही एक तीर्थ यात्री की प्रतिमा है जो बहंगी (कावर) के लिए हुए है और इसके सिर के ऊपर एक लेख गुप्तकालीन है। इसकी लिपि गुप्तकालीन हैं। इसी प्रकार की एक दूसरी मूर्ति इसी के नजदीक है जिसके आधे हिस्से पर एक लेख है, इस मूर्ति को श्रवण कुमार की मूर्ति कहते हैं। यह स्थल भी अत्यन्त प्राचीन है और पवित्र धार्मिक स्थल के रूप में पूज्यनीय है।

11. सुरसरिगंगा-

जब हम बलखण्डेश्वर शिवलिंग के रास्ते से नीचे की ओर उतरते हैं तो पहाड़ी के उत्तरी मुख की ओर लगभग 60-70 फुट की ऊंचाई पर सुदृढ़ भित्तियों से युक्त एक तालाब है। इस स्थल को सुरसरिगंगा के अतिरिक्त गंगासागर अथवा शिवसरिगंगा के नाम से जाना जाता है। यह सरोवर कालिंजर दुर्ग का महत्वपूर्ण सरोवर है। यह तालाब लगभग 160 फुट लम्बा और 120 फुट चौड़ा है। यह एक ठोस पहाड़ी को काटकर बनाया गया है। इसके तीन ओर सीढ़ियां है, तथा निकट ही एक मंदिर है जिनमें अलंकृत स्तम्भ हैं। यहीं पर स्तम्भों के शीर्षफलकों पर चतुर्भज विष्णु का अंकन है। इसके अतिरिक्त तालाब के किनारे अनेक मूतियाँ हैं जिनमें शेषशयी विष्णु, गणेश तथा अन्य प्रतिमाएं इनके इर्द-गिर्द हैं जो खण्डित अवस्था में हैं । ऐसा लगता है कि मुस्लिम आक्रांताओं ने इन्हें खण्डित किया है। विष्णु मंदिर के अवशेषों से यह अनुमान होता है कि यहाँ विष्णु मंदिर रहा होगा। इसी से कुछ दूरी पर तीर्थ यात्रियों की भी मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। कालिंजर में विष्णु और शैव सम्प्रदायों की मूर्तियों एवं मंदिरों की बराबरी थी।

12 सिद्धों की स्मारकें-

सुरसरिगंगा के सन्निकट बघेलावारी मार्ग पर सिद्धों की छोटी-छोटी स्मारकें बनीं हुई हैं। इनमें से कुछ मठों की आकृति के हैं और कुछ आयताकार चबूतरों की तरह है जिनमें चरण चिन्ह बने हुए हैं। निराकार ब्रह्म के उपासक एवं गोरख पंथ पर विश्वास करने वाले लोग इन स्थलों को बहुत पवित्र मानते हैं कहते हैं कि यहां अनेक योग पंथियों ने तंत्र की साधना की थी और सिद्धि भी प्राप्त की थी। यह धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थल है।

13.खम्भौर ताल-

कालिंजर दुर्ग के ऊपर जब हम चतुर्थ द्वार से नीलकण्ठ मंदिर के लिए प्रवेश करते है। तब वहीं पर एक वृहद सरोवर मिलता है। यह सरोवर चट्टान काटकर बनाया गया है और इसके भीतरी भाग में विभिन्न मूर्तियाँ हैं। इसी के समीप एक प्राचीन मंदिर भी है जो इस समय केवल भग्नावशेष के रूप में रह गया है। इस स्थल के संदर्भ में यह कहा जाता है कि भगवान राम के युग में यहां सुतीक्ष्ण ऋषि का आश्रम था। जब राम जी चित्रकूट से आगे जाने वाले थे, उस समय उन्होंने सुतीक्ष्ण ऋषि का आशीर्वाद प्राप्त किया था। यह स्थल भी धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

14. रीवां फाटक का हनुमान मंदिर-

कालिंजर बस्ती किसी युग में प्राचीरवेष्टित थी तथा बस्ती में प्रवेश करने के लिए पन्ना फाटक, कामता फाटक एवं रीवां फाटक प्रमुख थे और रीवां फाटक से ही लगा हुआ एक हनुमान मंदिर है, जो अति प्राचीन प्रतीत होता है। यह बहुत सिद्ध मंदिर है। यहां पर अनेक मूर्तियाँ चंदेल कालीन भी हैं।

15. गोपाल ताल का विष्णु मंदिर-

जैसे ही हम पन्ना फाटक से कालिंजर बस्ती में प्रवेश करते हैं तो थोड़ी दूर पर गोपाल ताल के दर्शन होते है और उसी के पास एक विष्णु मंदिर है। यह मंदिर बहुत अधिक प्राचीन प्रतीन नहीं होता। कलाशैली की दृष्टि से यह बुन्देली वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना है। यह वैष्णव सम्प्रदाय के लोगों के लिए पवित्र धार्मिक स्थल है।

16. कटरा के लेटे हनुमान मंदिर-

कालिंजर की कटरा बस्ती में कालिंजर दुर्ग के पर्वत से लगा हुआ एक स्थल है, जहां पर हनुमान जी की एक विशाल प्रतिमा जमीन में लेटी हुई है। ऐसा लगता है कि यह प्रतिमा अर्धनिर्मित है, किन्तु प्रतिमा की विशालता के कारण यह स्थल धार्मिक स्थल के रूप में पर्णित हो गया।

17. अनन्तेश्वर मंदिर-

यह मंदिर बहुत पुराना नहीं है इस मंदिर में शिव प्रतिमा है। यहां की शिव प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है। यह मंदिर बुन्देली वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत करता है। कालिंजर बस्ती के लोग इस स्थल में पूजा अर्चना के लिए आते है।

18. गौरइया मंदिर-

इस मंदिर का भी धार्मिक महत्व है। कहते हैं कि जब बांदा के प्रथम नवाब अलीबहादुर ने सन् 1802 के आस-पास कालिंजर पर आक्रमण किया था, उस समय हिम्मतबहादुर गोसाई उसके साथ था और उसी ने कालिंजर में एक मंदिर का निर्माण कराया था जो गौरइया मंदिर के नाम से विख्यात हुआ । इस मंदिर में वैष्णव मूर्तियाँ हैं। सन् 1802 में बाँदा नवाब अलीबहुदर का निधन कालिंजर में हुआ था।[60] यह मंदिर

उसी की स्मृति में बनाया गया था।

19. इस्लाम धर्म से सम्बन्धित धार्मिक स्थल-

कालिंजर में महमूद गजनवी से लेकर औरंगजेब तक अनेक मुसलमानों के आक्रमण हुए। उन्होंने हिन्दू धार्मिक स्थलों को तोड़कर मस्जिदों का निर्माण कराया। कालिंजर दुर्ग के ऊपर वेंकटेश्वर मंदिर के सन्निकट एक अति प्राचीन मस्जिद है। इसी प्रकार एक अन्य मस्जिद नीलकण्ठ मंदिर से कुछ दूरी पर मजार ताल के निकट है। अब इन स्थलों का महत्व नहीं हैं किन्तु जब मुसलमान शासकों के प्रतिनिधि यहां रहते थे, उस समय इनका बहुत महत्व था। कालिंजर दुर्ग में ऊपर चढ़ते समय कुछ दूरी पर कालिंजर घाटी के निकट एक मस्जिद बनी है। यह मस्जिद बहुत पुरानी मालूम पड़ती है। एक मस्जिद कामता फाटक के पास अनन्तेश्वर मंदिर जाने के मार्ग में मिलती है। यह भी अत्यन्त पुरानी है। इसके अतिरिक्त अनेक मस्जिदें बहादुरपुर और अन्य नजदीकी गांवों में मिलती हैं। यह मस्जिदें मुस्लिम लोगों के लिए पवित्र एंव धार्मिक स्थल से कम नहीं है।

20.बृहस्पति-कुण्ड-

यह स्थल पहाड़ीखेरा के समीप पन्ना जाने वाले मार्ग पर स्थित है। कहते हैं कि इस स्थल में देवताओं के गुरू महर्षि बृहस्पति का आश्रम था इसी कुण्ड में स्नान करते थे इसीलिये इसे बृहस्पति कुण्ड के नाम से जाना जाता है। इसी स्थल से नीचे उतरने पर एक विशाल प्राकृतिक गुफा मिलती है। इसमें भगवान शिव की प्रतिमा है। नीचे उतरने पर एक बहुत बड़ा कुण्ड है। इसी को बागे नदी का उद्‌गम स्थल माना जाता है। यहां से निकल कर बागे नदी यमुना में कमासिन के पास मिल जाती है। इसी स्थान पर अच्छी कोटि का हीरा भी पाया जाता है। इस घाटी के समीप बेधक नामक स्थल है, जहां शैलोदक (ऐसा पानी जो किसी को चट्टान में बदल देता है) पाया जाता है। इसी स्थल पर एक वृक्ष पत्थर का हो गया है। इसकी चट्टानों में भी शैलचित्र पाये जाते हैं। यहां के लोग इसे पुतरिहाई घाटी के नाम से पुकारते हैं।

21. कल्पवृक्ष स्थल-

कालिंजर को देव स्थान के रूप में मान्यता प्राप्त है, इसलिए यहां कल्पवृक्ष की कल्पना कोई असत्य नहीं है। बेलाताल से थोड़ी दूरी पर खेत के निकट ही कल्पवृक्ष के दर्शन होते हैं। इसका तना पीपल के पेढ़ से बहुत बड़ा है तथा वृक्ष की ऊंचाई भी बहुत अधिक है। इस वृक्ष में कटहल के बराबर के फल लगते हैं। इसका रस अत्यन्त शक्तिवर्धक होता है और इसका फल बहुत दिनों तक तोड़ कर रखा जा सकता है। विश्व में इस प्रकार के वृक्ष बहुत कम पाये जाते हैं। इसे अंग्रेजी में बायोबाव के नाम से पुकारा जाता है।

22-गुढ़ा का हनुमान मंदिर-

यह मंदिर प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है। जब हम नरैनी से कालिंजर की ओर आते हैं तो मार्ग में इसका

एक द्वार मिलता है। इस द्वार से करीब 5 किलो मीटर चलने के बाद गुढ़ा का हनुमान मंदिर प्राप्त होता है। यह मन्दिर चंदेल कालीन है क्योंकि जो मूर्तियां यहां प्राप्त होती है उनमें सबसे अधिक मूर्तियाँ चंदेलकालीन हैं। जब यह मंदिर अत्यन्त जीर्ण होकर ध्वस्त हो गया था उस समय यहां के रघुवंशी ठाकुरों ने इसका पुर्ननिर्माण कराया था। आज भी यह मंदिर लोगों की आस्था का केन्द्र है। प्रति मंगलवार एवं शनिवार को सैकड़ों दर्शनार्थी आते हैं।

23-नौगवां की कबीर गद्दी-

गुढ़ा से जो मार्ग रक्सी और सिधौरा के लिए जाता है, उसके कुछ दूरी पर नौगवां गांव है। यहीं पर कबीर गद्दी अति प्राचीन काल से है। यह स्मारक बाहर से छोटा सा मकान जैसा दिखता है मगर अन्दर दो मंजिल का है। यहां पर साधना के लिए अनेक अंधेरे कमरे हैं। इस भवन के बाहर कबीर पंथी सन्तों के स्मारक बने हुए हैं। यहीं अन्दर मोर पंख रखे हैं। कबीर पंथ को मानने वाले अधिकांश लोग या तो कोरी सम्प्रदाय के हैं अथवा इस्लाम धर्म को मानने वाले बेहना लोग हैं।

24. सिधौरा का देवी मंदिर-

नौगवां से आगे बढ़ने पर सिधौरा ग्राम मिलता है। इसी स्थान पर एक छोटी सी पहाड़ी है और इसी पहाड़ी पर देवी का मंदिर है। देवी मंदिर की मूर्तियाँ चंदेल काल की है। मंदिर का पुर्ननिर्माण लगभग 100 वर्ष पुराना लगता है। यहीं पर निचले स्थान पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे गणेश जी की विशाल प्रतिमा है। जो बाँदा जनपद में अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। यहां पर नौरात्रि में मेला लगता हैं और देवी उपासकों की भीड़ रहती है।

25. वीरगढ़ का देवी मंदिर-

जब हम सिधौरा से नरदहा, बघेलावारी होते हुए फतेहगंज पहुंचते है तो हमें एक पहाड़ी पर वीरगढ़ का दुर्ग बना हुआ मिलता है। इसी दुर्ग पर देवी का एक मंदिर है। इस मंदिर का निर्माण बघेल शासकों द्वारा कराया गया होगा। इसी मंदिर के नीचे मगरमुहा नामक स्थान में अति प्राचीन शैलचित्र प्राप्त होते हैं।

26. पाथर कछार का रक्तदंतिका देवी मंदिर-

फतेहगंज से जब हम मध्य प्रदेश की सीमा में प्रवेश करते हैं और पाथरकछार पहुंचते हैं तो यहां से थोड़ी दूरी पर रक्तदंतिका देवी मंदिर मिलता है। निर्माण की दृष्टि से यह मंदिर बुन्देली वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट नमूना कहा जा सकता है किन्तु देवी प्रतिमा चन्देल कालीन मालूम पड़ती है। कहते हैं कि इस स्थान पर पन्ना महाराज छत्रसाल ने अपना बुरा समय व्यतीत किया था और इसी देवी के वरदान से वह संकट मुक्त हुए थे। इस मंदिर के वाहर एक सरोवर है जहां शासकों के मृत्यु स्मारक बने हुए हैं।

26- पाथरकछार का विष्णु मंदिर-

यह मंदिर रक्तदंतिका मंदिर के समीप है। यहां पर एक विशाल आंगन है, उसके मध्य में गरूण स्तम्भ

तथा गर्भगृह में भगवान श्री राम, लक्ष्मण एवं सीता की धातु प्रतिमाएँ हैं इसी मंदिर की एक दलान में गणेश और हनुमान की अनेक मूर्तियां हैं। यह मंदिर भी धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

27. पाथरकछार का द्वितीय विष्णु मंदिर-

यह मंदिर प्रथम विष्णु मंदिर से कुछ दूरी पर है। इसके नजदीक पथरीगढ़ का दुर्ग बना हुआ है। मंदिर में धातु मूर्तियां भगवान राम, जानकी तथा अन्य देवी, देवताओं की हैं। इसी मंदिर के समीप वैश्या की मजार है जो मुगल वास्तुशिल्प और बुन्देली वास्तुशिल्प का अनूठा नमूना है।

28. बानगंगा-

फतेहगंज से जो मार्ग चित्रकूट के लिए जाता है, उसी के कुछ दूर पर बानगंगा नामक धार्मिक स्थल मिलता है। इसी स्थल पर एक पहाड़ी है, पहाड़ी के नीचे एक कुण्ड है जो चारो तरफ से पक्का बना हुआ है। इस कुण्ड के मध्य में पानी के अन्दर एक वृक्ष है। कुण्ड के संदर्भ में यह कहा जाता है कि जब श्री राम चित्रकूट में निवास कर रहे थे उस समय उन्होनें अपने बाण से इस स्थल में पानी निकाला था और यह सरिता का उद्गम स्थल बन गया। आगे चलकर बानगंगा के नाम से प्रसिद्ध धार्मिक स्थल बन गया। यहां से सरिता निकल कर बदौसा के सन्निकट बागे नदी में मिल जाती है। इसी स्थान पर दो विचित्र वृक्ष भी मिलते हैं।

29. रौली गोड़ा का विष्णु मंदिर-

बाँदा जनपद में कर्वी से तेरह मील की दूर पर यह सुप्रसिद्ध मंदिर स्थित है। रौलीगोंड़ा गांव में अनेक मंदिर हैं, यह सभी चंदेल कालीन हैं। इन मंदिरों के संदर्भ में यह कहा जाता है कि इन मंदिरों का निर्माण आल्हा-ऊदल और चंदेल नरेश परमाल ने करवाया था। सबसे बड़े मंदिर में अर्द्धमण्डप और गर्भगृह है। इसका मुख्यद्वार पूर्व की ओर है।वस्तुतः यह विष्णु मंदिर है क्योंकि इसके मुख्य द्वार पर विष्णु की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इसी के निकट एक छोटा सा मंदिर भगवती लक्ष्मी का है। मुख्य विष्णु मंदिर का शिखर अब भी सुरक्षित है। इसमें मात्र कलश ही शेष है। यह मंदिर 55 फुट लम्बा 48 फुट 6 इंच चौड़ा और 40 फुट ऊंचा है।

30. बिलहरिया का विष्णु मंदिर-

यह बाँदा जनपद में रसिन ग्राम से 10 मील की दूरी पर है। यह एक छोटी से पहाड़ी पर बना हुआ है। यह पहाड़ी 70 फुट ऊंची है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से मंदिर छोटा होता हुआ भी अत्यन्त सुन्दर है। मंदिर में केवल गर्भगृह शेष रह गया है, उसके सामने 9 वर्ग फुट का बरामदा है। गर्भगृह के बाहर साढ़े ग्याहरह (11-1/2) फुट लम्बा तथा साढ़े चार(4-1/2) फुट चौड़ा द्वार है। इसका शिखर अब भी मौजूद है, उसका ऊपरी भाग नष्ट हो गया है। यह भी विष्णु मन्दिर हैं। इसके मुख्य द्वार में विष्णु की मूर्ति हैं । दाहिने तथा बाई ओर ब्रम्हा एवं शिव की मूर्तियां हैं।

31. रसिन का चन्द्रामाहेश्वरी मंदिर-

रसिन ग्राम से एक मील पूर्व जंगल में एक पहाड़ी की चोटी पर यह मंदिर स्थित है। इसका मंडप 18 फिट 8 इंच लम्बा तथा 17 फिट 7 इंच चौड़ा है। यह मंदिर दो तरफ से खुला है, इसके सामने की ओर 9 फिट लम्बा तथा 6 फिट चौड़ा एक छोटा बरामदा है। इसका गर्भगृह 8फिट लम्बा तथा 7-1/2 फिट चौड़ा है। इस मंदिर में दो फिट ऊंची भगवती चन्द्रामाहेश्वरी की चर्तुभुजी मूर्ति बिराजमान थी, जो इस समय अपने स्थल पर नहीं है। इसी से थोड़ी दूर पर 80 फिट लम्बा और 50 फिट चौड़ा एक सरोवर है। जिसका निर्माण चट्टान काटकर किया गया है।

32. रसिन का देवी मंदिर-

जब हम बदौसा से रसिन की ओर प्रस्थान करते हैं तो लगभग दो किलो मीटर चलने के पश्चात निचले भाग में ही एक देवी मंदिर है। यह मंदिर चंदेल कालीन है इस मंदिर को विध्वंश होने से बचाने के लिए उसका पुर्ननिर्माण कर दिया गया है। यह मंदिर एक सरोवर के किनारे है। इसी के सन्निकट एक बीहण भी है।

33. रसिन का काली मंदिर-

रसिन में एक जीर्ण-शीर्ण मंदिर में काली की एक टूटी हुई मूर्ति है। यह मूर्ति दीवार में उत्कीर्ण करके बनाई गई है। यह किसी अन्य से दण्डवत करती हुई मूर्ति के ऊपर खड़ी है। यह 8 फिट ऊँची और 4 फिट चौड़ी है, इसकी 24 भुजायें हैं। इसके चारो तरफ छोटी-छोटी भगवती काली की मूर्तियाँ हैं। मुख्य मूर्ति का उदर बहुत बैठा हुआ है और पसलियों के मध्य में बड़ी पूछवाला बिच्छू अंकित किया गया है।

इस मंदिर में इसके अतिरिक्त अन्य मूर्तियाँ भी हैं। दशभुजी दुर्गा, महिषासुरी, हनुमान आदि की मूर्तियां मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।[63]

34. रसिन की अधिक ताल-

रसिन में अनेक सुन्दर तालाब हैं। किवदन्ती के आधार पर रसिन में 80 तालाब थे।[64] जनरल कनिघंम ने अपनी रिपोर्ट में 19 तालाबों की एक अपूर्ण सूची दी थी। उनमें से सबसे प्रसिद्ध "अधिक ताल" है। इनका निर्माण किसने करवाया था। इसकी कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती है किन्तु यह निश्चित है कि चन्देल राज्य में रसिन एक महत्वपूर्ण स्थान था।[65]

35. मड़फा का शिव मंदिर-

भरतकूप से थोड़ी दूरी पर बरियामानपुर ग्राम के समीप चंदेलों का सुप्रसिद्ध दुर्ग मड़फा एक पहाड़ी पर बना हुआ है। इस दुर्ग के प्रवेश द्वार के समीप चंदेल कालीन शिव मंदिर बना हुआ है। विध्वंस से बचाने के लिए इस मंदिर का पुर्ननिर्माण कर दिया गया है। इस मंदिर में भगवान शिव की विशालकाय प्रतिमा है जो नीलकण्ठ मंदिर के समीप कालभैरव जैसी प्रतिमा है। धार्मिक दृष्टि से मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। शिवरात्रि,

मकरसंक्रांति आदि पर्वों में दर्शनार्थियों का ताता लगा रहता है।

36. गौरी शंकर गुफा-

मड़फा दुर्ग के ऊपर से थोड़ी नीचे उतरने पर गौरी शंकर गुफा के दर्शन होते हैं। इस स्थान पर अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई है, जो विभिन्न देवी-देवताओं की हैं। इसके नजदीक एक गुफा में साधक निवास किया करते थे, जिन्होंने उस गुफा को देव नाम लिखकर अलंकृत किया है।

37. मड़फा के जैन मंदिर-

मड़फा में प्राकृतिक जलाशय के समीप दो जैन मंदिर है। यह मंदिर वास्तुशिल्प की दृष्टि से चन्देल कालीन प्रतीत होते हैं। इनकी मूर्तियाँ मंदिर के सन्निकट एक वृक्ष के नीचे रखी हुई हैं। किसी समय में यह स्थल जैनियों के लिए तीर्थ स्थल था।

38. बारादरी-

मड़फा दुर्ग में ही थोड़ी दूर पर जैनियों के अनेक छोटे-छोटे मंदिर बने हुए हैं। इन मंदिरों में जैनियों के 24 तीर्थांकरों की मूर्तियाँ है, इनकी संख्या 12 होने के कारण यहां के निवासी इसे बारादरी नाम से पुकारते हैं। इन मंदिरों के विषय में यह भी किवदंति है कि किसी जैन तीर्थ यात्री ने इन मंदिरों का निर्माण कराया था।

मड़फा दुर्ग स्वतः एक तीर्थ स्थल के रूप में पूज्य है यह अनेक ऋषियों की तपोभूमि रहा। सतयुग से लेकर द्वापर युग तक अनेक ऋषि इस स्थल पर तपस्या करते थे, माण्डव ऋषि, कण्व ऋषि, चरक आदि ऋषियों की यह तपोभूमि रहा है। वेदव्यास के श्वसुर व अर्थवेद के निर्माता अथर्वा ऋषि भी इसी स्थल के निवासी थे। किवंदति यह है कि दुष्यन्त की धर्मपत्नी शकुन्तला इसी स्थल पर रहीं और अपने पुत्र भरत को यहीं पर जन्म दिया। इसी के निकट भारत और भरत नाम के अनेक ग्राम है। यहां पर कालिंजर के सरग्वाह की भांति एक पवित्र सरोवर है जिसमें स्नान करने से अनेक रोग दूर हो जाते हैं। यह स्थल अत्यन्त पवित्र है और धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भी है।

39. लखन सेहा, किशन सेहा के देवी मन्दिर-

यह स्थल कालिंजर से सतना जाने वाले मार्ग के समीप पहाड़ीखेरा से कुछ दूरी पर है। यहां पहुंचने के लिए कोई विशेष मार्ग नहीं है। यहां पर बने मंदिर चंदेलकालीन है। यह मंदिर विभिन्न देवी-देवताओं के हैं। इनका धार्मिक महत्व भी है।

40. सारंग ऋषि का आश्रम-

पहाड़ीखेरा से पन्ना जाने वाले मार्ग से कुछ अन्तराल पर सारंग ऋषि का आश्रम मिलता है। कहते है कि त्रेतायुग में जब भगवान राम चित्रकूट छोड़कर दक्षिण की ओर जा रहे थे। उस समय सारंग ऋषि ने इन्हें सारंग नाम का एक धनुष प्रदान किया था और वरदान दिया था कि यह धनुष राक्षसों के विनाश में

सहायक होगा, तभी से यह स्थल पवित्र तथा धार्मिक माना जाने लगा।

41. नचना का चर्तुमुखनाथ मंदिर-

यह मंदिर नचना नामक स्थान में स्थित है। इसकी निर्माण शैली देवगढ़ के दशावतार मंदिर जैसी है। एक ऊंची जगती पर बना हुआ है जहां पहुंचने के लिए सीढ़ियाँ हैं। इसका गर्भगृह वर्गाकार जो सवाग्यारह फुट लम्बा और सवाग्यारह फुट चौड़ा है। गर्भगृह का द्वार पूर्णरूपेण सुसज्जित है। बाहर बने आलों में मूर्तियाँ लगी हैं। इसी स्थान पर गर्भगृह में चार फुट आठ इंच ऊँचा चर्तुमुख शिवलिंग स्थापित है। यहां लगभग 40 फिट ऊँचा शिखर निर्मित किया गया है। कनिंघम के अनुसार इसका निर्माण 7वीं शताब्दी में हुआ । बाद में इसमें कुछ परिवर्तन कराया गया। इस क्षेत्र में गुर्जर प्रतिहारों के द्वारा बनवाये गये कुछ मंदिर और भी हैं, बहुत से मंदिर वर्तमान समय में ध्वस्त हो गये हैं। इनकी निर्माण शैली झांसी में उपलब्ध पठारी मंदिर जैसी है।[66]

इसी के समीप एक दूसरा मंदिर मिलता है जो पार्वती मंदिर के नाम से विख्यात है। यह मंदिर भी गुप्त वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है।[67]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कालिंजर परिक्षेत्र में धार्मिक स्थलों की कमी नहीं है। इस क्षेत्र में बहुत ज्यादा धार्मिक स्थल हैं जो प्राचीन काल से लेकर अब तक पूज्यनीय एवं वन्दनीय है। इन स्थलों को देखने के लिए अनेक यात्री आते हैं और जब जाते हैं तो अपने साथ यादें, आनन्द की अनुभूति देवताओं की कृपा आदि ले जाते हैं।

(3) कालिंजर क्षेत्र के धार्मिक एवं सांस्कृतिक तीज-त्योहार-

कालिंजर परिक्षेत्र की जनता अशिक्षित होते हुए भी धर्म एवं सांस्कृतिक त्योहारों के प्रति पूर्ण आस्था रखती है। परम्परायें एवं धार्मिक भावना लोगों को अपने परिवार के पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में मिलती है। जब बालक जन्म लेता है उस समय वह परिवार के बड़े बुजुर्गों की छत्र छाया में पलकर बड़ा होता है उसी दौरान परिवार में धर्म एवं सांस्कृतिक तीज-त्योहारों को देखता एवं सीखता है और साथ ही वह उनका अनुशरण करता है तथा जब वह स्वंय बड़ा बुजुर्ग हो जाता है तो अपने धार्मिक एवं सांस्कृतिक तीज-त्योहारों की परम्परायें विरासत के रूप में अपने पुत्रों को दे देते हैं। यह सिलसिला इसी तरह चलता रहता है और आगे भी चलता रहेगा। कालिंजर परिक्षेत्र में भी धार्मिक तथा सांस्कृतिक त्योहार पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते आये हैं।

कालिंजर क्षेत्र में ऐसा कोई दिन नहीं है जिसका धार्मिक महत्व न हो। यहां के शिव उपासक प्रत्येक सोमवार को व्रत रखकर भगवान शिव की उपासना करते हैं। इसी प्रकार मंगलवार, शनिवार के दिन यहां के हनुमान भक्त उपवास रखते हैं। हनुमान जी के मंदिर में बेसन के रोट, फूली हुई चने की दाल (दिउल) तथा बेसन के लड्डू (बूंदी वाले अथवा मगज के) आदि चढ़ाते हैं। हनुमान चालीसा और हनुमानाष्टक का

पाठ करते हैं। गुरूवार के दिन यहां के लोग उपवास रखते हैं, बृहस्पति भगवान की पूजा-अर्चना विधि-विधान से करते हैं। नमक नहीं खते तथा पीले रंग का भोजन करते है और पीले वस्त्र पहनते हैं। शुक्रवार के दिन वे महिलायें जो संतोषी मां पर आस्था रखती हैं वे खट्टे पदार्थों का सेवन नहीं करती गुण और भुने चने का प्रसाद बनाकर चढ़ाती हैं। रविवार के दिन सूर्य देवता की आराधना करने वाले व्यक्ति उपवास करते हैं। ताम्रपात्र से सूर्य देव को जल अर्घ के रूप में अर्पण करते हैं तथा फलाहारी या रोट आदि को आहार के रूप में खाते हैं।

यहां का प्रत्येक माह कोई न कोई तीज-त्योहार लिये होता है। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से अमावश्या, पूर्णिमासी व एकादशी का विशेष महत्व रहता है। अमावश्या के दिन यहां के निवासी पवित्र जलाशय में स्नान करने जाते हैं। चित्रकूट की अमावश्या का विशेष महत्व है, पूर्णिमा के दिन भी जलाश्य में स्नान करके लोग पूजा-अर्चना करते हैं। एकादशी के दिन लोग फलाहार करते हैं और श्री सत्यनारायण की कथा श्रृद्धा भाव से सुनते हैं। इस प्रकार कालिंजर क्षेत्र का प्रत्येक माह त्योहारों से युक्त रहता है। इन त्योहारों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इनका मनाया जाना अन्य क्षेत्रों से पूरी तरह से भिन्न होता है। प्रत्येक तीज-त्योहार लोक संगीत एवं लोक कथाओं से सुसज्जित होता है। विभिन्न प्रकार के देवों की उपासना के माध्यम से लोग अपने त्योहारों को बड़ी श्रृद्धा भक्ति के साथ मनाते हैं।

कालिंजर परिक्षेत्र में धार्मिक एवं सांस्कृतिक तीज-त्योहार निम्न लिखित है, जो बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाये जाते हैं। इस क्षेत्र में इन त्योहारों का विशेष महत्व भी है।-

1. गणेश चतुर्थी-

सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में गणेश चतुर्थी का त्योहार धार्मिक श्रृद्धा के साथ मनाया जाता है। कालिंजर के अतिरिक्त भी यह अन्य क्षेत्रों में भी बड़े उत्साह से मनाते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि गणेश चतुर्थी के दिन गणेश जी का जन्म हुआ था।इस दिन यहाँ की स्त्रियां व्रत रखती हैं, काले तिल के लड्डू , सिंघाड़े के लड्डू, सिंघाड़े की लपसी, उबली शकरकन्द, गाजर का हलुआ , कद्दू का हलुआ, सफेद तिल के लड्डू, कच्चा दूध, दूब आदि से शिवपुत्र गणेश की पूजा रात में चन्द्रमा निकलनें पर विधि-विधान से करती हैं। अनेक लोक-कथाओं का कथन व श्रवण करती हैं। इस दिन स्त्रियाँ सारा दिन व्रत रखती हैं।

2. मकर संक्रान्ति-

जब सूर्य उत्तरायण होकर मकर राशि पर प्रवेश करता है, उस दिन मकर संक्रान्ति का पर्व मनाया जाता है। यह पर्व प्रतिवर्ष 14-15 जरवरी को ही होता है। पूस माह के उपरान्त जब सूर्य की रश्मियां शीत से छुटकारा देने के लिए ऊष्मा प्रदान करने लगती हैं उस समय यह मकर संक्रान्ति का त्योहार मनाया जाता है। इस दिन गंगा, पवित्र सरोवरों अथवा नदियों में व्यक्ति अपने शरीर पर तिल लगाकर स्नान करते हैं और सरिताओं के तट पर बालू के शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा करते हैं। ब्राह्मणों और भिखारियों को खिचड़ी,

तिली और रूपये का दान करते हैं। फिर अपने-अपने घरों में खीर और खिचड़ी पकाकर खाते हैं। अनेक दर्शनार्थी कालिंजर, मड़फा आदि के शिव मंदिरों में दर्शन के लिए जाते हैं। कहीं-कहीं इस दिन मेला भी लगता है। कालिंजर में भी मेला लगता है। इस क्षेत्र की महिलायें एवं पुरूष दोनों मिलकर सरोवरों एवं नदियों में स्नान के लिए जाते है तथा रास्ते में लमटेरा भी गाते हैं। इस दिन लोगों में काफी उत्साह देखने को मिलता है और काफी संख्या में लोग नदियों एवं सरोवरों में शामिल होते हैं।

3.बसंत पंचमी-

जब शीतकालीन ऋतु समाप्त हो जाती है, मौसम सामान्य रूप से समशीतोष्ण जलवायु का हो जाता है, उस समय माघ की पंचमी को बसंत पंचमी के रूप में मनाया जाता है। इस दिन इस क्षेत्र के लोग पीले रंग के वस्त्र पहनकर ,पीला चंदन आदि लगाकर पीले पुष्पों का हार धारण करके शिव मंदिरों में शिव पूजन एवं दर्शन के लिए जाते हैं। पूजा सामग्री में लोग बेल पत्ती, पीले फूल ,पीला चंदन, और आम की बौर विशेष रूप से ले जाते हैं। इस दिन शिव प्रतिमा का विशेष श्रृंगार होता है। कालिंजर दुर्ग के नीलकण्ठ मंदिर व मड़फा के शिव मंदिर में विशेष आयोजन होते हैं तथा मेला लगता है। लोगों की यह धारणा है कि इसी दिन भगवान शिव की पार्वती के साथ सगाई हुई थी। इस दिन बहुत लोग व्रत भी रखते हैं।

4. शिवरात्रि-

सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में जहां शिव उपासकों की संख्या बहुत अधिक है, वहां शिवरात्रि का त्योहार बहुत ही धूम-धाम से मानाया जाता है। शिव उपासक पूरे दिन उपवास रखते हैं, मंदिरों में जाकर शिव प्रतिमा के दर्शन करते हैं, श्रृद्धा भाव से जल या दूध चढ़ाते हैं फिर चंदन, चावल, वेलपत्ती एवं फूलों से शिव की पूजा करते हैं। इस दिन रात्रि जागरण तथा भक्ति भाव से भजन कीर्तन करते है। इस क्षेत्र में शिवरात्रि के दिन मुख्य रूप से लमटेरा और लेद (भोले के गीत) गाने का प्रचलन है। इस दिन लोग ठण्डाई व भंग का सेवन करते हैं। कहा जाता है कि इस दिन भगवान शंकर का व्याह हुआ था।

5. होली-

यह फागुन सुदी 15 को होता है। माघ मास की पूर्णिमा के दिन बसन्तोत्सव के रूप में होली का त्योहार बड़े धूम-धाम से सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में मनाया जाता है। इस दिन गली ,कूचों के चौराहों पर सूखी लकड़ियों का देर लगाते हैं और रात्रि में विधि-विधान के साथ पूजा करते है तथा अग्नि में गुलाल डालते हैं। लोग बांसो में बिरवा बांधकर होला अग्नि से भूनने जाते हैं। गोबर के बल्लों की दो मालाएँ इस स्थल पर लेकर जाते हैं। एक माला जलती अग्नि में समर्पित करते है दूसरी माला अन्य किसी व्यक्ति से बदल कर ले आते है जिस व्यक्ति से माला बदले हैं उसके माथे में तिलक लगाते हैं फिर वह एक दूसरे के गले मिलते हैं यदि कोई बुजुर्ग होता है तो उसके पैर भी छूते हैं फिर इस होली की आग सब लोग अपने घर ले जाकर नई आग बनाते है। होली दहन के समय इस क्षेत्र में बाजे के साथ फाग गाने का रिवाज है

स्त्री -पुरूष अपने-अपने ढंग से फागे गाते हैं, दूसरे दिन रंग और गुलाल से होली खेतले हैं, एक दूसरे पर रंग डालते है। होली में लोग अपने घरों में फागे कराते हैं, होली खेलने वालों की टोलियाँ निकलती हैं और फागे गाने वालों की भी टोलियां निकलती हैं। इस दिन खासतौर से पकवान में गुझिया, पपडियां तथा तरह-तरह के नमकीन व मीठा बनाते हैं और होली खेलने वाली टोलियों को जमकर खिलाते हैं। इस दिन भंग वाली वस्तुओं का सेवन करते हैं। होली के दूसरे दिन दूज को बड़ी खुसी और उल्लास से मनाते हैं। इस दिन बहनें अपने भाइयों टीका लगाकर मिठाई खिलाती है तथा पूजा करती है।

6.नवरात्रि-

होलिका दहन के कुछ दिनों बाद चैत्य मास में नवरात्रि का त्योहार नई फसल कटने के उपलक्ष में देवी उपासना करते हैं। यह नव दिन देवियों के होते है। देवी भक्त नव दिन उपवास रखते है देवी मंदिरो में जाकर उनकी मूर्तियों में जल चढ़ाकर पूजा करते है। नवरात्रि के पहले दिन उपवास करने वाले जवारे बोते हैं फिर अष्टमी व नवमी को विशेष पूजा-अर्चना के साथ बोये गये जवारों को किसी जलाशय व नदी में विसर्जन करते हैं। बहुत से लोग गालों में सांग छिदवाकर अष्टमी व नवमीं के दिन विशेष प्रदर्शन करते हैं नव दिनों तक स्त्री-पुरूष दोनो देवी गीत एवं उमाह गाते हैं। देवी गीतों को गाने की प्रथा कालिंजर में अन्य क्षेत्रों से अलग है।

7.रामनौमी-

कालिंजर के वे व्यक्ति जो विष्णु उपासना पर विश्वास रखते हैं वे दशावतार के अन्तर्गत भगवान राम को विष्णु के अवतार के रूप में अपनाते व मानते हैं और रामनौमी का त्योहार बड़े उत्साह से मनाते हैं। इस दिन समस्त बैष्णव मंदिरों में अत्यन्त उत्साह के साथ रामनौमी का त्योहार मनाया जाता है। 12 बजे दिन में भगवान श्री राम जन्म लेते हैं, उसके पश्चात जन्म गीत गाते हैं फिर भक्तगण प्रसाद ग्रहण करके अपना व्रत तोड़ते हैं। भक्ति भाव में रंगे हुए भक्त अपने-अपने घर आते हैं।

8. अक्षय तृतीया-

कालिंजर क्षेत्र में अक्षय तृतीय का त्योहार वैशाख सुदी त्रतीया को बड़े ही उत्साह से मनाया जाता है। ग्रामीण लोग इसे हरैता का त्योहार भी कहते हैं इस दिन गांव का जमींदार बसोरों से ढोल बजवाता हुआ किसानों के घर-घर जाता है तथा पंडित व पुजारी से हल और बखर की पूजा कराता है। जमींदार भी उसकी पूजा करता है फिर वह रूपया, अनाज और कुछ मिट्टी हाथ में उठा लेता है तथा उन दानों को अपने खेत में बो देता है फिर इसके बाद हर किसान कुछ दानों के साथ थोड़ी सी खेत की मिट्टी घर ले जाकर खलिहान में रख देते हैं। अंत में जमींदार घर में जाकर सबको पान देता है। स्त्रियों को उबले गेहूं (कोहरी) देता है। इस अवसर पर हर किसान अपना थोड़ा सा खेत जोत देता है, जोतने में ऊनी रेंखायें की जाती हैं इस रीति को हरैता लेना कहते हैं। इसी दिन क्वारी छोटी-छोटी लड़कियां गुड्डा-गुड़ियों का ब्याह

करती हैं। मौर बांधकर मंदिर ले जाती है तथा वहां पूजा आदि करती हैं।

9. गुरू पूर्णिमा (व्यास पूजा)

कालिंजर परिक्षेत्र के निवासी वेद व्यास के जन्म दिन को गुरू पूर्णिमा के रूप में मनाते हैं। इस संदर्भ में यह कहा जाता है कि सत्यवती और पराशर ऋषि के संयोग से व्यास का जन्म हुआ था, इनका पूरा नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास था। इन्होंने वेदों का सम्पादन तथा 18 पुराणों की रचना की। इनका पालन-पोषण केवट परिवार में बांदा जनपद के पैलानी क्षेत्र के अन्तर्गत अदरी ग्रम में हुआ। इसके पश्चात इनको पराशर ऋषि परासन ले गये थे। भगवान वेदव्यास का अध्ययन बेंदा जौहरपुर के पास गौतम ऋषि के आश्रम में हुआ। गुरू पूर्णिमा के दिन प्रत्येक शिष्य जो अपने गुरूओं के प्रति श्रृद्धा एवं आदर सम्मान की भावना रखते हैं उनसे मिलते है तथा चरणस्पर्श करते है और भेंट स्वरूप कुछ न कुछ अपनी हैसियत के हिसाब से गुरू को देते हैं। इस दिन लोग गुरू महिमा का गुणगाान करते हैं।

10. श्रावण-तीज

श्रावण मास की तृतीय में कालिंजर के वैष्णव सम्प्रदाय के लोगों द्वारा धूम-धाम से मनाया जाता है। इस दिन समस्त मंदिरों में जहां कृष्ण-राधा की मूर्तियां रहती है वहां झूला डाला जाता है। इसके अलावा प्रत्येक गांव में वृक्षों की शाखाओं पर झूला डालने व झूलने का रिवाज हैं। ग्रामीण स्त्रियां एंव पुरूष इस अवसर पर बारह मासा, कजरी, झूलागीत तथा सावन गीत सामूहिक रूप में गाते हैं। सावन के पूरे महीने में झूला झूलने का माहौल बना रहता है जो शिव के उपासक हैं। वे पूरे महीना भर शिव मंदिर दर्शन के लिए जाते हैं। बेल,बेलपत्र, धतूरा आदि शिव को अर्पण करते हैं। यह त्योहार कालिंजर के नीलकण्ठ मंदिर और मड़फा के शिव मंदिर में धूम-धाम और हर्षोल्लास से मनाते हैं।

11.नाग पंचमी-

श्रावणमास की पंचमी के दिन यह त्योहार इस क्षेत्र के प्रत्येक गांव में मनाया जाता है। इस दिन यहां के निवासी नांग दर्शन को बहुत शुभ मानते हैं, नांग की बांबियों के पास सर्पो को दूध पिलाने के लिए दोनों में दूध रख जाता है। इस दिन लेखपाल प्रत्येक घर के दरवाजों में नागों के कागज में बने चित्र को चिपकाने जाता है फिर बदले में उसे रूपया व अनाज दिया जाता है। नांग पंचमी के दिन मुख्य रूप से प्रत्येक घरों में बेढ़ई तथा लपसी बनती है। कहीं कहीं इस दिन दंगल का आयोजन होता है।[68]

12.रक्षाबन्धन-

कालिंजर परिक्षेत्र में जहां चंदेलों का शासन रहा है वहां यह त्योहार श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन बड़े हर्षोल्लास से मनाया जाता है। इस दिन ब्राम्हण अपने जजमानों के यहां जाकर उनको राखी बांधते है और फिर उनको जजमान रूपया व अनाज देता है। प्रत्येक घर में बहनें अपने भाइयों को राखी बांधती है और भाई अपनी बहनों की रक्षा की कसम लेते हैं यह रक्षाबन्धन भाई-बहन का इस दुनिया में अनूठा त्योहार

है। रक्षा-बन्धन के दिन बहन एवं भाई एक दूसरे के लिए शुभ कामनायें करते हैं।

13. कजलियां-

नांग पंचमी के दिन घर की बुजुर्ग स्त्रियां दोनों में मिट्टी भरकर गेंहूं व जौ के दाने बो देती हैं फिर यह उग आते है जवारों की तरह हो जाते हैं फिर रक्षा बन्धन के एक दिन बाद रक्षा सूत्र में बांधकर जलाश्यों अथवा नदी व तालाब में सिरायें (समर्पित) कर दिये जाते हैं। समूह के समूह में स्त्रियां सिराने के लिए जाती हैं साथ ही रास्ते में श्रावणगीत, लमटेरा व कजरी गीत गाती हुई जाती हैं। गेंहू व जवारों की कुछ पत्तियों को धोकर घर ले जाती है, उनको घर के भगवान में चढ़ाकर क्वारी कन्यायें घर के बुजुर्गों व परिवार में जाकर उन पत्तियों को देती है उसके बदले में कन्याओं को रूपये व अनाज दिया जाता है। कजरी के त्योहार के सम्बन्ध में ऐतिहासिक गाथा यह है कि पृथ्वीराज का आक्रमण ठीक रक्षा-बन्धन के दिन महोबा में हुआ था। इसलिये इस क्षेत्र के छोटी जाती के लोग रक्षा-बन्धन का त्योहार पूर्णिमासी को न मनाकर कजलियों के दिन ही मनाते हैं। यह परम्परा आज भी पूर्ववत है।

14. हलषष्ठी (हरछट)

भादौं मांस की छठ के दिन यह त्योहार मनाया जाता है। यह कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊ जी की स्मृति में मनाया जाता है। छिउल के पत्ते वाली छोटी सी शाखा जारी वाले बेर के पेड़ की डाली तथा कांसे आदि की डालियों को एक स्थान पर गाड़ दिया जाता है। स्त्रियां विभिन्न प्रकार चना, अरहर, ज्वार, बाजरा, धान, गेंहू, महुआ आदि को भुनाती है। इसके अतिरिक्त स्त्रियां किसमिस, छुहारा, काजू, गरी, गुझिया ,गेंहू, की पपड़िया आदि एकत्र करके मिट्टी के कुढउवा में सभी अनाजों की बहुरी व मेवे भरकर हरछट की पूजा करती है। इस दिन स्त्रियां कहीं-कहीं फलाहारी रहती है और कहीं-कहीं भैंस का दूध व पसई के चावल खाती हैं। पूजा के समय कथा एंव गीत गाये जाते हैं जो स्त्रियां हरछट का व्रत रहती है वह जन्माष्टमी का व्रत नहीं रहती हैं। हर एक पुत्र के लिए छः-छः कुढ़उवा भरे जाते हैं। इस दिन स्त्रियां जुते हुये खेत में पैर नहीं रखती।

15.जन्माष्टमी

भादौं की अष्टमी के दिन सम्पूर्ण कालिंजर के हिन्दू निवासी भगवान श्री कृष्ण व जगत माता राधा पर विश्वास करते हैं वे कृष्ण जन्माष्टमी को उत्साह एवं भक्तिभावना के साथ मनाते हैं। स्त्री,पुरूष व बच्चे सभी इच्छानुसार ही व्रत रहते हैं। प्रसाद के लिए पंचामृत, पंजीरी, आटे की पपड़िया मेवे की कतरी ,फल, बूंदी के लड्डू आदि तैयार करते है। 12 बजे रात्रि में भगवान श्री कृष्ण को खीरे के अन्दर रख देते हैं। फिर खीरे के पेट से बाहर निकालते हुए जन्म करते हैं।जन्म होते ही घण्टे, बाजे तथा शंख आदि बजाये जाते हैं और फिर जन्मोत्सव वाले गीत गाती हैं इसके बाद बनाई गयी सभी वस्तुऐं प्रसाद के रुप में वितरित की जाती हैं। श्रृद्धालु लोग बडे आनन्द से उस प्रसाद को खाते हैं।पहले इस क्षेत्र में जन्माष्टमी के अवसर पर

अनेक प्रकार की कलात्मक झांकियां सजा करती थी और साथ में संगीत,गायन,वादन के आकर्षक कार्यक्रम होते थे किन्तु अब मंहगाई के कारण इनका आयोजन बन्द हो गया है।

16. हरितालिका अथवा तीज व्रत-

यह त्योहार भादौं सुदी तीज को होता है। कालिंजर क्षेत्र में शिव उपासना का बाहुल्य हैं । अतः स्पष्ट है कि यहां की स्त्रियां शिव उपासना से सम्बन्धित इस तीजा व्रत को बड़े धूम-धाम से मनाती हैं। इस दिन स्त्रियां एवं क्वारी कन्यायें सारा दिन बिना अन्न जल ग्रहण किये व्रत रहती हैं। इस दिन शिव, पार्वती की मिट्टी की मूर्ति बनाकर पूजा करती हैं। शिव,पार्वती की पूजा के लिये बेसन के जेवर, गुझिया पुआ आदि विभिन्न प्रकार के पकवान बनाती हैं। रात भर जागरण करके स्त्रियाँ व कन्यायें चारों पहर शिव, पार्वती की भक्तिपूर्वक पूजा करती हैं और उनके गीत गाती हैं। इस विषय में यह कहा जाता है कि पार्वती ने शिव को वर के रूप में प्राप्त करने के लिए जो व्रत किया था उसी की स्मृति में स्त्रियां तीजा व्रत रखती हैं। रात्रि जागरण के बाद सुबह प्रातः काल किसी नदी या तालाब में स्नान करती हैं शिव,पार्वती की मूर्ति का विसर्जन करती हैं और घर आकर अन्न,जल ग्रहण करती हैं सबसे पहले दूध,चावल तथा दही, जलेबी खाकर ही व्रत को तोड़ती हैं।

17.संतानसातें-

कालिंजर में स्त्रियां संतान-सातें का त्योहार मनाती हैं। यह कालिंजर ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की प्रत्येक माता अपने पुत्रों से परम स्नेह करती हैं अतः उनके चिरंजीवी व यशस्वी होने की कामना करती हैं। इसमें पूजा के लिये खासतौर से पुआ और बांस की छोटी-छोटी टोकरी ही रहती हैं। पूजा के बाद स्त्रियां बांस की टोकरियों में पुआ और अनाज रखकर दान में देती हैं। प्रत्येक सन्तान की स्मृति में एक-एक चांदी या सोने का कंगन बनवाने और पहनने का रिवाज है। इन चूड़ियों की भी पूजा की जाती हैं।

18.श्राद्ध पखवारा-

क्वांर मास के प्रारम्भ में 15 दिन तक पितरों को भाव-भीनी श्रृद्धान्जलि अर्पित की जाती है। अनन्त चतुर्दशी से लेकर पित्रमोक्ष अमावश्या तक प्रत्येक दिन पितरों को पानी दिया जाता है। मातृ नवमी के दिन परिवार की बुजुर्ग स्त्री व पुरूष जो स्वर्गवासी हो जाते हैं। इन दिनों उन्हें श्रृद्धान्जलि दी जाती है। परिवार का व्यक्ति जिस दिन मृत होता है पितरों में उसी दिन उसका श्राद्ध किया जाता है। इस अवसर पर ब्राह्मणों एवं परिवार को निमंत्रण दिया जाता है तथा तरह-तरह के व्यन्जन बनाकर भोजन कराया जाता है। जो लोग गया जी में पिण्डदान कर आते हैं उन्हें श्राद्ध करने से छुटकारा मिल जाता है। कालिंजर में पिण्डदान करने की परम्परा प्राचीन काल से है और आज भी यह पूर्णरूपेण प्रचलित है।

19. माहुलिया अथवा महबुलिया-

यह खेल श्रावण भादौं में लड़कियाँ खेलती हैं। यह पितर के पहले दिन यानि पूर्णिमासी से शुरू होती हैं इस खेल में लड़कियाँ किसी एक कांटेदार बबूल की डाली (झांखर) को लेकर उसको जिस स्थान पर गाड़ना होता है उस स्थान की जमीन को पहले गोबर से लीपकर शुद्ध करती हैं फिर उसमें आटे से रंगोली या चौक बनाती हैं फिर वह कांटे वाली डालियों के कांटों में कई प्रकार के सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगे फूल पिरोती हैं जब यह पूरी तरह फूलों से लद जाता है तो इसके चारों ओर लड़कियाँ परिक्रमा लगाती हैं और महबुलिया के गीत गाती हैं। इसके बाद उसे जमीन से उखाड़ कर किसी तालाब, नदी या कुएं में सिरा आती है, फूल जल में गिर जाते हैं तथा डाली अपने साथ में ले आती है। इस प्रकार यही सिलसिला 15 दिन तक चलता है। सिराने के बाद रोज कुछ न कुछ प्रसाद अवश्य एक-दूसरे को वितरित करती हैं। पितरों के आखरी दिन यानि अमावश्या को लड़कियाँ महबुलिया को विभिन्न फूलों, मखानों के मालों, रूपयों के मालों आदि से काटे वाले झाड़ को सजाती हैं और खुद भी नये फ्रांक,सलवार-शूट या लहंगा चुनरी पहनती हैं फिर अपने गलों में मखाने एवं नारियल के गोले की मालायें पहनती हैं इनके साथ स्त्रियाँ भी महबुलिया को सिराने तालाब या नदी बैण्ड बाजा के साथ गाती हुई जाती हैं और झाड़ सहित सिरा आती हैं। इस दि प्रसाद के रूप में वितरित करने के लिए पंजीरी, गुझियां, ककड़ी के टुकड़े ,पानी में भिगोये हुए चने की दाल आदि विभिन्न प्रकार का प्रसाद बांटती है तथा खुद भी खाती हैं और घर वापस आ जाती हैं।

20. महालक्ष्मी-

यह क्वाँर बदी अष्टमी को पितरों के समय में ही होती है। इस दिन स्त्रियां सरोवर या नदी में स्नान करके व्रत रहती हैं। मिट्टी के हांथी की पूजा करती हैं। पूजा के लिए बेसन के पकवान और आभूषण बनाये जाते हैं फिर हांथी तथा लक्ष्मी की पूजा करके उसमें पकवान तथा आभूषण चढ़ाती हैं। इस संदर्भ में महाभारत में यह आख्यान मिलता है कि अर्जुन अपनी मां के लिए ऐरावत हांथी इन्द्र से लेकर आये थे। अर्जुन ने इन्द्रलोक से पृथ्वी तक अपने धनुष-बाण से रास्ता बनाया था और उसी रास्ते से आये थे। अर्जुन की मां कुन्ती ने उसी ऐरावत हांथी की पूजा की थी। स्त्रियों के लिए यह बड़े महत्व का त्योहार है।

21. नवरात्रि-

पितृमोक्ष अमावस्या के पश्चात प्रतिपदा (परीवा) से नवरात्रि का प्रारम्भ हो जाता है। यह क्वाँर के महीने सें नव दिन तक रहते हैं। पहले दिन जवारा बोये जाते हैं। स्त्रियाँ, लड़कियाँ एवं पुरुष नव दिन तक व्रत रहते हैं। पहले दिन से लेकर नव दिन तक देवी मंदिरों में भक्तों की भीड़ लगी रहती है। खास तौर से अष्टमी व नवमी के दिन भक्तों में अधिक हर्षोल्लास तथा मंदिरों में भीड़ रहती है। अष्टमी व नवमी को उत्साह से जवारा और विमान निकलते हैं। इन्हीं नव दिनों में अधिकतर बालकों के मुण्डन संस्कार भी सम्पन्न होते हैं और अन्य भी बहुत से शुभ कार्य होते हैं।

22.विजयदशमी (दशहरा)-

यह नवरात्रि समाप्त होने के दूसरे दिन यानि क्वाँर सुदी दसैं को होता है। यह रावण पर रामचन्द्र जी की विजय का प्रतीक है। रामचन्द्र जी की विजय की खुशी में ही विजयदशमी अथवा दशहरा का त्योहार मनाते हैं। इस समय अनेक स्थलों पर रामलीला का आयोजन होता है जो एक माह, 15 दिन अथवा एक सप्ताह अथवा तीन दिन तक होता है। रामलीला नाट्यमंच के माध्यम से राम द्वारा किया गया रावण का वध तथा माता सीता की वापसी तक का वर्णन करते हैं। दशहरे का त्योहार बड़े ही उत्साह से मनाया जाता है। इस दिन लोग अपने परिचितों जैसे, मित्रों, परिवार जनों और रिश्तेदारों से मिलने जाते हैं। एक दूसरे के गले मिलते हैं फिर जलपान, पान,सुपाड़ी से स्वागत होता है। इस अवसर पर अनेक क्षत्रिय परिवारों में शस्त्र पूजन का भी रिवाज है। इसे कालिंजर परिक्षेत्र में राम की विजय के साथ-साथ आर्यो की अनार्यो पर विजय के रूप में मनाया जाता है। कालिंजर क्षेत्र का रामलीला अति विशिष्ट होता है जो पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन सकता है। इसी दिन देवी ने भैंसासुर को मार कर विजय प्राप्त की थी। दशहरे के दिन ही लोग खोज कर नीलकण्ठ पक्षी के दर्शन करते हैं। इस दिन इसको देखना बहुत शुभ होता है इसके विषय में एक कहावत है कि- ''नीलकण्ठ के दर्शन पायों, घर बइठे गंग नहायो।''

23. शरदपूर्णिमा-

शरदपूर्णिमा सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में उत्साह से मनाई जाती है। यह पहला अवसर होता है जब वर्षा के पश्चात आकाश बिल्कुल साफ हो जाता हैं और पूर्णिमा का चांद अपनी धवल चांदनी से सम्पूर्ण चराचर को रंग देता है। इस अवसर पर सभी जलाशय जल से परिपूर्ण होते हैं और आने वाले शीत ऋतु का हृदय से स्वागत करते हैं। वैष्णव धर्मावलम्बी श्री कृष्ण ,राम आदि की मूर्तियों को श्वेत वस्त्र धारण कराते हैं, श्वेत पुष्पों की माला पहनाते है और चावल से बनी खीर का भोग लगाते है। इस संदर्भ में यह कहावत है कि रात्रि में पकाई गई खीर को शरदपूर्णिमा की चांदनी रात में बाहर आंगन या छत पर रख दिया जाता है लोगों का अनुमान है कि उस खीर में अमृत का अंश आ जाता है और बड़े प्रेम से लोग इसे प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। कहीं-कहीं कवि सम्मेलन ,रामलीला एवं गायन-वादन के कार्यक्रम आयोजित होते हैं।

24.कार्तिक स्नान-

शरदपूर्णिमा के दूसरे दिन से यहां की वह स्त्रियां जो कृष्ण भक्ति पर विश्वास रखती हैं वे एक माह तक कार्तिक स्नान करती हैं। कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन कार्तिक स्नान का उद्यापन पूजा-अर्चना के साथ करती हैं। पूजा के लिए विभिन्न प्रकार के पकवान बनाकर पूजा करती हैं और फिर आपस में एक दूसरे को प्रसाद के रूप में देती हैं। स्त्रियां कृष्ण भक्ति के गीत गाती हैं। कालिंजर दुर्ग के नीलकण्ठ मंदिर में एक विशाल मेला आयोजित होता है। इस मेला में दूर-दूर से लाखों श्रृद्धालु भक्तगण यहां आते हैं।

कार्तिक मांस के महात्म्य का वर्णन पद्मपुराण तथा अन्य वेदों एंव पुराणों में मिलता है। कार्तिक शुक्ल तृतीया में स्नान करके परिक्रमा करना, सभी तीर्थ रूपी यज्ञ का विधान है। ऐसा करने वाला मनुष्य शिव क्षेत्र में निवास करता है।

कार्तिक शुक्ल तृतीयां स्वात्वां कृत्वा प्रदक्षिणाम् ।

सर्व तीर्थ मयो यज्ञः शिव क्षेत्रस्य वासिनः।।

जो कार्तिक मास शुक्ल पक्ष की पंचमी को बानगंगा में स्नान करके शिव जी की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करता है। वह शिव लोक में प्रतिष्ठा पाता है।

कार्तिके शुक्ल पञ्चभ्यां स्नत्वा तत्र प्रदाक्षिणाम् ।।

बाण गंगा च संहनाय, शिव लोके महीयते।।

25. दीपावली-

कार्तिक मास की अमावश्या के दिन जब पृथ्वी पर घोर अंधकार छाया रहता है, उस दिन यह त्योहार मनाया जाता है। त्योहार का आयोजन तीन दिन पूर्व से प्रारम्भ हो जाता है। धनतेरस के दिन भगवान धन्वन्तरि का जन्मदिन बड़े ही हर्षोल्लास से मनाया जाता है। इस दिन प्रत्येक घर में नया बर्तन लाने का रिवाज है। चौदश के दिन नरकासुर का वध भगवान ने किया था। उसी के उपलक्ष में यह त्योहार मनाया जाता है। अमावश्या के दिन लक्ष्मी और गणेश की उपासना की जाती है। इस अवसर पर विविध प्रकार का प्रसाद लइया, शक्कर के खिलौने, इलायची दाना, लावा, चीनी के बताशे तथा लड्डू ,पेड़ा आदि भगवान जी में चढ़ाकर पूजा करते हैं मंदिरों में दीप जलाते है। तथ घर में और घर के बाहर भी द्वीपों का प्रकाश किया जाता है, यह प्रकाश अंधेरी रात के दिन बहुत सुन्दर प्रतीत होता है दीपावली के बाद परीवा के दिन गोवर्धन पूजा होती है।विभिन्न प्रकार के भोजनों का प्रसाद लगाया जाता है। द्यूज के दिन व्यापारी वर्ग अपनी दुकानों की पूजा करता है तथा बहनें द्यूज पूजा करके अपने भाइयों को टीका लगाती है मिठाई खिलाती है उनके लिए मंगल कामना करती हैं।

26. अक्षय-नवमी या इच्छानौमी-

आँवले का वृक्ष पवित्र माना जाता है और कार्तिक सुदी नवमी को उसकी पूजा की जाती है। इस त्योहार का कालिंजर तथा बुन्देलखण्ड में विशेष महत्व होता है। इस दिन प्रत्येक परिवार के सभी लोग अमृत फल (ऑवला) के वृक्ष के नीचे जाते हैं। विधि-विधान के अनुसार वृक्ष की पूजा करके परिक्रमा लगाते हैं फिर प्रसाद वितरित करती है और खुद भी प्रसाद खाती है। इसके बाद सब लोग बैठकर वृक्ष के नीचे भोजन करते है तथा अपने मित्रों, व्यवहारियों एवं ब्राह्मणों को भी भोजन कराते है कहते है कि आँवले के नीचे बैठकर खाने से बैकुण्ठ की प्राप्ति होती है और सभी इच्छायें पूरी होती है।

27.देवउठानी एकादशी-

कार्तिक मास की दूसरी एकादशी के अवसर पर देवताओं की उपासना उन्हें जगाने के लिए की जाती है। इस त्योहार के अवसर पर बेर,भाजी,सिंघाड़ा, मूली, कैथा, गन्ने की टुकड़ी आदि देवताओं को अर्पण किये जाते हैं। देवताओं को अग्नि तपायी जाती है तथा छोटी-छोटी रजाई,गद्दे, तकिया देवताओं के लिए बनवाई जाती है। इस अवसर पर यह कहावत है कि उठो देव,बैठो देव, क्वारन के व्याह करो। ब्याही लड़कियों का चलाव करो आदि दोहराया जाता है। इस दिन से लोग रजाई ओढ़ने लगते हैं तथा ठण्ड की शुरूआत हो जाती है।

28. कार्तिक पूर्णिमा-

कालिंजर क्षेत्र में कार्तिक पूर्णिमा का विशेष का महत्व है, यहां नीलकण्ठ मंदिर में प्रतिवर्ष एक विशाल मेला आयोजित होता है। नीलकण्ठ मन्दिर में भगवान शिव के दर्शनाभिलाषी हजारों, लाखों की संख्या में दर्शन के लिए आते हैं। यादव जाति के लोग दीपावली पर्व में दिवारी खेलना प्रारम्भ करते हैं और उनका अंतिम समारोह कार्तिक पूर्णिमा के दिन यहां समाप्त होता है। दिवारी नृत्य की कला कालिंजर परिक्षेत्र में एक अद्भुत नृत्य कला है जो अन्य कहीं नहीं देखी जा सकती। वास्तव में यह प्राचीन युद्ध अभ्यास है। जब व्यक्ति लाठी के सहारे अपनी रक्षा शत्रुओं से करता था। इस अवसर पर बजने वाला वाद्य तथा गाया जाने वाला गायन भी बड़ा ही लुभावना और आकर्षक होता है। बाहरी पर्यटकों के लिए कार्तिक पूर्णिमा का मेला यहां की लोक संस्कृति की दृस्टि से बड़ा आकर्षक लग सकता है।[69]

महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात कालिंजर परिक्षेत्र का परिचय इस्लाम धर्मावलम्बियों से हुआ।[70] महमूद गजनवी ने यहां के अनेक निवासियों का धर्म परिवर्तन कराया और उनके लिये मंदिरों को तोड़कर मस्जिदों का निर्माण कराया।[71] महमूद गजनवी के पश्चात कुतुबुद्दीन ऐबक ,बाबर, हुमायूँ,शेरशाह सूरी,औरंगजेब आदि के इस क्षेत्र में कई बार आक्रमण हुए इसलिए यहां मुस्लिम लोगों की संख्या बढ़ी। इनका निवास यहां लगभग एक हजार वर्षो से है, तभी यह लोग अपने धर्म से सम्बन्धित तीज-त्योहार बड़े हर्षोल्लास से मनाते हैं। इनके मुख्य त्योहार निम्नवत हैं-

1. ईद-

हजरत मुहम्म्द साहब ने रमजान के महीने में कुरान शरीफ की रचना की थी। इस विषय में यह जनश्रुति है कि देवदूत कुरान शरीफ की आयतें (श्लोक) बड़े कपड़े में लिखकर लाते थे और मुहम्मद साहब उन्हें लिख लेते थे। इस प्रकार 30 दिन तक कुरान शरीफ की रचना होती रही। रमजान के दूसरे दिन चांद देखकर ईद का त्योहार मनाया जाने लगा। रमजान के एक माह तक लोग रोजा रखते हैं। आखरी जुमे को अलविदा की नमाज अदा करते हैं। उसके पश्चात ईद के दिन सामूहिक रूप से ईदगाह में नमाज अदा की जाती है। लोग एक दूसरे के गले मिलकर ईद की मुबारक बाद देते है, नये कपड़े पहनते हैं और घर

आये मेहमानों को सिवइयां खिलाते है छोटे बच्चों को ईदी देते हैं। इस अवसर पर यतीमों को खैरात देने की भी प्रथा है।

2. बकरीद-

धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए जब हजरत मुहम्मद साहब अपने नवासे (भांजे) की कुर्बानी करने जा रहे थे, उसी समय खुदा की महरबानी से एक भेंड़ वहां आ गया जिसकी कुर्बानी धोखे में हो गई और हजरत मुहम्मद साहब का नवासा बचा गया। उसी कुर्बानी को लेकर पूरे कालिंजर परिक्षेत्र में बकरीद का त्योहार मनाया जाता है। इस दिन लोग मस्जिदों में नमाज अदा करते हैं तथा बकरे की कुर्बानी धर्म के नाम पर देते हैं और उसी बकरे का गोश्त बनाकर सभी परिवार जन खाते हैं। इस त्योहार में रिश्तेदार भी आते हैं।

3.मुहर्रम (ताजिया)

धर्म प्रचार के लिये जो धर्म युद्ध इस्लाम धर्म के लिए हुआ, उसी की यादगार में मुहर्रम का त्योहार दिस दिन तक मनाया जाता है। इमामबाड़े में ताजिया रखे जाते हैं तथा सद्दे ढालों, तलवारों को सजाया जाता है। आठवें अथवा नवे दिन सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में अलाव कूदनें की प्रथा है। दसवें दिन सद्दों, ढालों, तलवारों तथा ताजियों का जुलूस निकलता है। मुसलमान हुस्से-हुस्से दुल्हा-दुल्हा हाय हुसैन हम न हुए आदि कहकर अपनी छाती पीटते हैं बीच रास्ते में मर्सिया (संवेदना गीत) पढ़ने का भी रिवाज है। कहते है अरब के खलीफा यासीन ने मुहम्मद साहब के नवासों पर घोर अत्याचार किये थे। उसी की यादगार में मुहर्रम का त्योहार मनाया जाता है।

सम्पूर्ण धार्मिक एवं सांस्कृतिक तीज-त्योहार इस क्षेत्र की अमूल्य विरासत हैं। इनको देखने से यहां की लोक सांस्कृति स्पष्ट रूप से झलकती है। मुख्यरूप से स्त्री और पुरूष की वेश-भूषा, मौलिक आभूषण तथा लोक परम्पराओं के दर्शन हमें स्पष्ट रूप से हो जाते है।जहां यह एक ओर धार्मिक महापुरूषों की स्मृतियां पुनः कराते हैं वहीं हमारे धार्मिक और सांस्कृतिक त्योहारों का संरक्षण भी करते हैं इस परिक्षेत्र में जो मौलिक भाषा बोली जाती है वह लोक संगीत, लोक नाट्य और लोक काव्य के रूप में परिलक्षित होती है। इस अवसर पर लोक वाद्यों की झलक भी नवरात्रि तथा दिवारी के अवसरों पर दिखाई देती है, मुख्य रूप से दिवारी नृत्य,आल्हखण्ड की गायकी, फाग तथा प्रचलित लोक नाट्य, छुड़का (कहरवा) आदि मुख्य रूप से आने वाले पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं।

(4) कालिंजर से जुड़ी धार्मिक परम्पराएँ एवं सामाजिक रीति-रीवाज-

कालिंजर परिक्षेत्र में धर्म एवं समाज की एक ऐसी विशिष्ट व्यवस्था है जिसे यहां के अलावा अन्य कहीं नहीं देखा जा सकता। इनमें से कुछ ऐसी परम्पराऐं हैं जिन्हें केवल कालिंजर में ही देखा जा सकता है। यह क्षेत्र भले ही सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, और कलियुग में महत्वपूर्ण स्थल रहा हो किन्तु यदि यहां का सामाजिक सर्वेक्षण किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भ्रांत व्यक्तियों को छोड़कर अन्य व्यक्तियों

को यहां के सामाजिक और भौगोलिक पर्यावरण ने दुख-दीनता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिया। औरंगजेब ने इस क्षेत्र के संदर्भ में बिल्कुल ठीक ही कहा था-

जमी हमवार नहीं, दरख फलदार नहीं।

मर्द वफादार नहीं, औरत बिन यार नहीं।।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इस क्षेत्र में रहनें वाले गरीब व्यक्तियों को धनाभाव में कुकर्म करते हुए बताया है।

औरत काह न करे कुकर्मू।

मांगे भीख त्याग निज धर्मू।।

गरीबी के कारण यहां के व्यक्ति अपने कुल की मर्यादा का परित्याग करके ही अपना भरण पोषण करते हैं। इस संदर्भ में यहां की भूमि के विषय में तथा व्यक्तियों के उदर पालन के संदर्भ में यह लोकोप्ति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है-

महुवा, मेवा, बेर, कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई।

जो इतनो चाहनों होय, तो करो गुड़ानें सगाई।।

इस क्षेत्र में वर्षा भी सुनिश्चित नहीं है। कभी-कभी जब अनावृष्टि की स्थिति आती है। तब यह स्थिति कृषकों को भीषण संकट में डाल देती है। इस विषय में भी यह लोकोक्ति दृष्टव्य है-

मघा बांध गये टेक, बेर करौंदा जो कहें, मरन न देहें एक।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस क्षेत्र के लोग अनावृष्टि में भी बेर और करौंदा से पेट भरकर अपने कुसमय को काट लेते हैं। इससे सिद्ध होता है कि यहां का व्यक्ति अच्छी बुरी दोनों परिस्थितियों में जीना जानता है। उसमें सहनशीलता और संघर्षशीलता दोनों गुण विद्यमान हैं।गरीबी सहन करके भी उसने जिस कला संस्कृति को जन्म दिया तथा उसे पल्लवित किया। निः सन्देह वह भारत की अजर-अमर संस्कृति है। जिसकी कलात्मक विरासत कालिंजर परिक्षेत्र के अतिरिक्त अजयगढ़ ,खजुराहो में भी देखी जा सकती है। इस क्षेत्र ने वास्तुकारों के अतिरिक्त उच्चकोटि के साहित्यकारों को भी जन्म दिया।

कालिंजर परिक्षेत्र में प्राचीन काल से ही कुछ ऐसी परम्परायें प्रचलित हैं, जिनकों भुला पाना या छोड़ना सम्भव नहीं है। आज भी प्रत्येक परिवारों के व्यक्ति में इन परम्पराओं का पालन, आस्था एवं विश्वास के साथ करते हैं। विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना विविध सामग्री को एकत्र करके की जाती है। इस प्रकार कालिंजर परिक्षेत्र में प्राचीन धार्मिक परम्पराएं एवं सामाजिक रीति-रिवाज वर्तमान समय में भी उसी प्रकार देखने को मिलते हैं जैसे पुरातन समय में निश्चित ही इस क्षेत्र की सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं तथा उत्कृष्ट मानदण्ड संवेदन शीलता के साथ पर्यटकों के सम्मुख प्रस्तुत करती हैं।

1. कालिंजर परिक्षेत्र की धार्मिक परम्पराएं-

कालिंजर परिक्षेत्र में धर्म का अनुसरण समाज में प्रचलित परम्पराओं के अनुसार होता है। इनमें से कुछ परम्पराएं तो बिल्कुल मौलिक हैं, जिन्हें अन्य क्षेत्रों में देखा ही नहीं जा सकता है। इस क्षेत्र में पंचदेवों की उपासना होती है, ये पंचदेव शिव, शक्ति और वैष्णव मत में विभाजित है, जिनका दर्शन विविध देवालयों में धर्म से सम्बन्धित धार्मिक उत्सवों व परम्पराओं में देखा जा सकता है। धार्मिक परम्पराओं को मूर्त रूप देने का कारण अशुभ शक्तियों का निवारण करना है। इस क्षेत्र के लोग ज्योतिष, तंत्र विज्ञान पर विश्वास करते हैं। इसलिए वह नेष्ट ग्रहों, राहु, केतु, शनि से बचने के लिए धार्मिक परम्पराओं का अनुशरण करते हैं। व्यक्ति शुभ अवसरों में ही उपनयन संस्कार, विवाह ,गृह प्रवेश आदि किया करता था। इस प्रकार वह धार्मिक परम्पराओं का निर्वाह करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करता था। परम्पराओं के आधार पर ही बहुत से व्यक्ति आध्यात्मिक प्रगति के लिए धार्मिक परम्पराओं को मानते थे। वह भौतिक सुखों के अतिरिक्त आध्यात्मिक सुख भी पाना चाहता था। इसलिए वह धार्मिक परम्पराओं का पालन करता हुआ आध्यात्मिक सुख को प्राप्त करता था। इस संदर्भ में यह श्लोक दृष्टव्य है-

स्वाध्यायेन वृतैर्हो मैस्त्रै विधेने ज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राम्हमीय क्रियते तनुः।।
जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिमिः श्रोत्रिय एव च।।[72]

धार्मिक परम्पराओं के अनुपालन का एक उद्देश्य संस्कृत को सुरक्षित बनाये रखना भी था।हिन्दू धर्म शास्त्रियों ने उच्च आदर्शों की परिकल्पना की थी। इसलिए मनुस्मृति के अनुसार संस्कार व्यक्ति की अशुद्धियों का नाश कर उसके शरीर को पवित्र बनाता है। बालक गर्भ की अवस्था में संस्कार युक्त हो इसलिए उसके माता-पिता यज्ञ, होम आदि कराते थे।

इस क्षेत्र में विभिन्न धर्मावलम्बियों ने अपने धर्म के अनुसार अलग-अलग परम्पराओं और संस्कारों की रचना की उच्च कुल के संस्कार, उसकी परम्परा निम्न श्रेणी के कुलों के संस्कार एवं परम्पराओं से भिन्न थे। लोक संस्कार ही लोक संस्कृति का निर्माण करते हैं, जिनकी झलक यहां प्रचलित लोक संगीत के माध्यम से मिल जाती है। एक इतिहासकार के अनुसार संस्कार उन कृत्यों को कहते हैं जो धार्मिक विधि-विधान अथवा वह कृत्य जो आन्तरिक, आध्यात्मिक सौन्दर्य का बाह्य प्रतीक माना जाता है वह संस्कार कहलाता है।

नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए भी धार्मिक परम्पराओं का निर्वाह किया जाता था। गौतम ऋषि का यह मत है कि जो व्यक्ति धार्मिक परम्पराओं का अनुशीलन करता है। वह ब्रह्म को प्राप्त करता है। उसके अन्दर स्वाभाविक रूप से दया, सहिष्णुता, ईर्ष्या न करना, शुद्धता रखना, शक्ति प्राप्त करना,

सदाचरण करना तथा लोभ व लिप्सा से दूर रहना इत्यादि गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए भी धार्मिक परम्पराओं का अनुसरण करता है। व्यक्ति इनका अनुपालन करके जहां समाज में लोकप्रियता प्राप्त करता है वहीं वह त्याग एवं तप की प्रतिमूर्ति समझा जाने लगता है। धार्मिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक हो जाता है। समस्त समाज को "बसुधैव कुटुम्बकम" के रूप में देखने लगता है। सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में धार्मिक परम्पराओं की स्थिति वेदानुसार नहीं थी अपितु इनका निर्माण प्राकृतिक पर्यावरण, रहन-सहन के स्तर और प्रचलित परम्पराओं के अनुसार होता था।

कालिंजर परिक्षेत्र अति प्राचीन काल से धार्मिक स्थल रहा है और इस क्षेत्र में शैव धर्म का वर्चस्व रहा है लेकिन कही- कहीं वैष्णव मत एंव शक्ति मत भी देखने को मिला है। इस क्षेत्र में धार्मिक संस्कारों का सदैव विशेष महत्व रहा है। धार्मिक संस्कारों का शाब्दिक अर्थ व्यक्ति का परिस्कार एवं उसकी शुद्धता है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में संस्कार से तात्पर्य व्यक्ति के शरीर को विभिन्न कृत्यों के माध्यम से पवित्र बनाना है। आर्य संस्कृति के अनुसार 16 धार्मिक संस्कार माने जाते हैं किन्तु स्मृतिकारों ने संस्कारों की संख्या 40 मानी है जबकि गौतम धर्मसूत्र में संस्कारों की संख्या 40 मानी है मनु की मनुस्मृति में केवल 13 संस्कार दिये है। बाद में यह संस्कार बढ़ाकर 16 कर दिये गये धार्मिक संस्कारों के दो उद्देश्य हैं-

1.लोकप्रिय उद्देश्य, 2. सांस्कृतिक उद्देश्य , इन उद्देश्यों के अन्तर्गत व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठ बनाये रखने के लिए धार्मिक संस्कारों का अनुपालन करता है तथा सांस्कृतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इनका पालन भी किया जाता है।

यहां के निवासी मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से धार्मिक परम्पराओं का निर्वाह करते हैं। यहां के व्यक्ति पुर्न-जन्म पर विश्वास करते हैं। मानव जन्म को परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हैं। उनका मत है कि धर्म पर विश्वास करके तथा उनके सिद्धान्तों का अनुसरण करके व्यक्ति कष्टों से छुटकारा पा सकता है। यहां के धार्मिक प्ररोजित संसार को कष्ट का कारण मानते हैं, उनका मत है कि ईश्वर की कृपा से ही समस्त कष्टों से छुटकारा मिलता है।

यहां का व्यक्ति किसी न किसी धर्म से अवश्य जुड़ा है। इसलिए उसे धार्मिक परम्पराएं सीखने के लिए किसी व्यक्ति को अपना गुरू नहीं बनाना पड़ता, बल्कि वह केवल गुरू मंत्र लेकर दीक्षित हो जाता है। इसके अलावा भी वह अपने परिवार से सीख लेता है। यहां के व्यक्ति अपने -अपने कुल एवं जाति के अनुसार विश्वास के साथ ईश्वर की पूजा करते हैं। इस क्षेत्र में धर्मिक परम्पराओं की पहचान तीन रूपों में की जाती है-

1. **धार्मिक पहचान बनाये रखने की परम्पराएँ**
2. **उपासना से जुड़ी परम्पराएं**
3. **धर्मग्रथों से जुड़ी परम्पराएं**

ऐसा कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता है जिसके आधार पर कालिंजर परिक्षेत्र की धार्मिक परम्पराओं का वर्णन उपलब्ध हो। कालिंजर में पूजा-अर्चना, देव-वन्दना, दान-पुण्य, आदि को धार्मिक परम्पराएं मानते हैं। यहां के सभी व्यक्ति मानवता के प्रति प्रेम, उदारता, दया की भावना रखते हैं। ईश्वर की शक्ति का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार धार्मिक परम्पराओं का प्रचलन रसिन, पाथर, कद्दार, शेरपुरस्योढ़ा रौली गोंड़ा आदि सभी क्षेत्रों में है।

इस्लाम धर्मावलम्बियों के आगमन के पश्चात यहां के व्यक्तियों का धार्मिक दृष्टि से अधोपतन हुआ। इसी कारण से इस क्षेत्र में इस्लाम धर्म विकसित हुआ, जिसके कारण धार्मिक परम्पराओं में व्यापक परिवर्तन हुए। इन्हीं परिवर्तनों के कारण सभी परम्पराएं समिश्रित हो गई। इस प्रकार इस्लाम धर्मावलम्बियों की परम्पराएं अलग से उभर कर सामनें आई। इस क्षेत्र का मौलिक धर्म जो किसी समय गरिमा मण्डित था अब वह दिखाई भी नहीं देता । केवल वर्तमान परम्पराओं के अनुसार तद्युगीन परम्पराओं की परिकल्पना की जा सकती है।

कालिंजर का धर्म इसकी धरती में सैकड़ों फिट नीचे दब गया है परम्पराएं धूल और मिट्टी के समान उस धर्म कंकाल में एक मोटी पर्त की तरह जम गई है। इससे पुरातन धर्म और परम्पराओं का बोध नहीं हो पाता।

2.सामाजिक रीति-रिवाज-

कालिंजर परिक्षेत्र का समाज अति प्राचीन काल से हिन्दू समाज के विशिष्ट रीति-रिवाजों से सदैव से जुड़ा रहा है। यहां के लोगों के सामाजिक जीवन में परिवार का सदैव महत्व रहा है। परिवार में माता-पिता, बच्चे आदि रहते थे। धीरे-धीरे परिवार की आबादी बढ़ती जाती थी और परिवार का बृहद् स्वरूप बनता जाता था। चारो वर्णो के पारिवारिक रीति-रिवाज में व्यापक अंतर था। उच्च कुल के लोगों तथा निम्न कुल के लोगो में व्यावहारिक मान्यतायें अलग-अलग थीं परिवार में सबसे बुजुर्ग व्यक्ति का सम्मान होता था। विग्रह की स्थिति में वह अन्तिम निर्णायक माना जाता था व्यक्ति का चारित्रिक मापदण्ड उसके परिवार से आंका जाता था सम्पूर्ण समाज में ब्रह्मणों का विशेष आदर सत्कार था।

सम्पूर्ण समाज में विवाह एक अनिवार्य प्रथा थी। विवाह व्यक्तिगत पारिवारिक ,सामाजिक सन्तानोत्पत्ति एवं राष्ट्रीय कर्तव्यों के लिए अनिवार्य था। कोई व्यक्ति जब तक विवाहित नहीं हो जाता था उस समय तक उसे पूर्ण हिन्दू नहीं माना जाता था। इसलिए विवाह का सीधा सम्बन्ध धर्म से था। मध्ययुग में वैवाहिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए, जहां पूर्व काल में विवाह बंधन वर्णो तक सीमित नहीं थे वहां ये जाति और वर्णो में सीमित हो गये। कालान्तर में कुछ ऐसा परिवर्तन आया कि यदि कोई हिन्दू अन्य जाति में अपनी कन्या का विवाह करता था तो वह समाज में दोषी ठहराया जाता था। धीरे-धीरे अन्तर्जातीय विवाह प्रथा समाप्त होती गई। माता-पिता से उत्पन्न होने वाली संताने और रिश्ते दोनों कुलों से मिलकर होती थी। हिन्दू

जातियों के विवाह नाई, पंडित और पुरोहितों द्वारा सम्पन्न किये जाते थे। इनके द्वारा विवाहों को सम्पन्न कराना एक सामाजिक रिवाज था। ब्याहों की रीतियाँ साधारण हैं।

मध्ययुग में बालविवाह का प्रचलन प्रारम्भ हुआ तथा विवाह का निर्णय माता-पिता की इच्छा पर हो गया। पराशर स्मृति में सामान्य रूप से कन्या के विवाह के लिए 8 वर्ष की आयु बताई गई है तथा यह समाज में स्वीकार भी था। बाल-विवाह का प्रमुख कारण मुस्लिम आक्रमणकारी थे। सूत्र ग्रंथों एवं वेदों ने विधवा विवाह पर पाबन्दी लगा दी। इसलिए विधवा विवाह सदैव के लिए बन्द हो गये। यह कथन प्रौढ़ विधवाओं के लिए ठीक प्रतीत होता है किन्तु मनुस्मृति में पुर्न-विवाह की अनुमति प्रदान की गई है। यह अनुमति उन लोगों के लिए थी जिनके पति विवाह के भोग उपरान्त मर जाते हैं। बाल-विवाह के कारण बाल-विधवाओं की संख्या पर्याप्त रूप से बढ़ी थी। तद्‌युगीन इतिहासकारों अल्बरूनी के अनुसार समाज में सती प्रथा की लोकप्रियता बढ़ी थी।उसका कथन है कि विधवायें या तो अपने पति देव की चिता पर जल जाती थीं या तपस्वनी का जीवन व्यतीत करती थीं। राजाओं की विधवायें यदि वे वृद्ध नहीं होती थीं या फिर उनके पुत्र नहीं होते थे तो साधारणतया चिता में भष्म हो जाती थी।[73] यह प्रथा राजपूत काल से प्रारम्भ हुई थी।

हिन्दुओं के मध्य में बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी। धनी वर्ग इच्छानुसार जितने विवाह चाहे कर सकता था किन्तु समाज का साधारण व्यक्ति एक ही विवाह करता था। पृथ्वीराजरासो से ऐसा ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज चौहान के आठ स्त्रियां थी हिन्दू समाज में तलाक की मान्यता कभी नहीं रही। किन्तु वर्तमान समय में अब हिन्दुओं में भी तलाक की व्यवस्था हो गई है।

मध्य युग में समाज में छुआ-छूत की भावना का विस्तार हुआ। जाति के बाहर निम्न जातियों के लोगों से वैवाहिक सम्बन्ध बन्द कर दिये गये। इन नियमों के उल्लंघन के कारण अनेक उपजातियों का निर्माण हुआ। प्रसिद्ध इतिहासकार अल्बरूनी ने इस ओर संकेत करते हुए कहा है कि "हिन्दू अपरचित से विवाह करते हैं सम्बन्ध नहीं।"चन्देल राजाओं के सम्बन्ध में ज्ञात होता है कि उन्होंने पूरा ध्यान रखा कि विवाह एक समकुल, शील वाले क्षत्रिय में हो । इस बात की पुष्टि धंग देव के खजुराहो अभिलेख से होती है। अभिलेख के अनुसार कामारि हर्ष देव ने श्रम, कुल, शील चाहमान वंश में समुत्पन्न सुयोग्य कन्या का पाणिग्रहण किया।[74] कालान्तर में निम्न वंश की कन्यायें उच्च वंश में आने लगीं। कालिंजर परिक्षेत्र में छुआ छूत प्रथा आज भी प्रचलित है।

स्त्रियों के संदर्भ में शास्त्रों का यह कथन माना जाने लगा कि नारी को बाल्यावस्था में पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के सरंक्षण में रहना चाहिए। स्त्री को कमी स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए। स्त्रियों के विवाह के संदर्भ में दहेज देने की प्रथा का प्रचलन हो गया था। यदि स्त्री अपने आदर्श से हट जाये तो उसे पति द्वारा तीन माह का परित्याग एवं आभूषण आदि ले लेने का अधिकार था। यदि स्त्री दुराचारी है, बन्ध्या है अथवा जिसकी सन्तानें मर जाती हैं, पुरूष उसका परित्याग करके दूसरा विवाह

कर सकता था। यहां पर सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि स्त्री पति को परमेश्वर मानती थी। उसकी दुर्बलताओं, बुराइयों को सहन करना एक सामाजिक मजबूरी थी। वह इस समय अंधविश्वासों में कसी हुई थी। इसी समय कालिंजर परिक्षेत्र में उत्पन्न रानी दुर्गावती ने सम्पूर्ण सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते हुए जिस वीरता एवं गौरव का परिचय दिया तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के गौरव को बढ़ाया है वह सरहानीय है। मुसलमानों के आने के बाद कन्याओं के संदर्भ में विपरीत धारणाओं का उदय हुआ। क्षत्रिय कुलों में कन्या विवाह अपमान का कारण बना। चंदेल शासनकाल में कई भारतीय राजाओं के बीच विवाहों को लेकर झगड़े तथा युद्ध हुए चन्दवरदाई द्वारा रचित पृथ्वीराजरासो तथा जगनिक द्वारा रचित आल्हखण्ड में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं । मुसलमानों ने प्रसिद्ध हिन्दू परिवारों की कन्याओं को लेना स्वाभिमान की बात मानी। धीरे-धीरे कन्या वध का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। जन्म के समय ही उन्हें मार डालने का प्रचलन तेजी से बढ़ने लगा। सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र और बुन्देलखण्ड में कन्या वध पर रोक अंग्रेजों के बाद लगी। वर्तमान समय में भी स्त्रियों को अनेक कुरीतियों का पालन करना पड़ता है।

सम्पूर्ण समाज में अनेक कुरीतियाँ व्याप्त हो गई। समाज का आधा दायित्व वहन करने वाला वर्ग हेय और अछूत माना जाने लगा। इस हेयता के कारण स्त्रियों में कठोरता आई।[75] स्त्रियों को अविश्वासिनी, ईर्ष्या रखने वाली माना गया। कहीं-कहीं चित्रकारों ने स्त्रियों के देह सौन्दर्य को वासनात्मक भावनाओं के आधार पर चित्रित किया है। जहां स्त्रियां नैसर्गिक शील और प्यार का आधार मानी जाती थी वहीं इन्हें दुर्गुणों का घर माना गया। ऐसा नहीं है कि स्त्रियों में गुण शेष नहीं थे किन्तु पक्षपातपूर्ण बर्ताव के कारण उन्हें अपने गुणों को प्रदर्शन करने का अवसर ही नहीं प्रदान किया गया।

कालिंजर परिक्षेत्र को चंदेल युग में जैजाकभुक्ति के नाम से जाना जाता था।यहाँ के सामाजिक रीति-रिवाजों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। अल्बरूनी के अनुसार जब कोई व्यक्ति किसी के घर अतिथि बनकर जाता था उस समय उसके प्रति आदर भाव प्रकट करना यहां के लोगें का कर्तव्य था। जब कोई व्यक्ति बाहर से ब्राह्मण के घर आता था तो वह दरवाजे पर ही अपने पद-त्राण उतार कर पैर धोता था फिर उसके बाद ही घर के अन्दर प्रवेश करता था।[76] सामाजिक रीतियों में आतिथ्य सत्कार को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जाता था। यहाँ के लोगों में यह विश्वास था कि अगर अतिथि रूष्ट हो गया तो अनर्थ हो जायेगा। ब्राह्मणों का सबके द्वारा समादर और पूजन होता था। सम्पूर्ण समाज में सर्वत्र ब्राह्मणों का आदर तथा पूजन होता था। आतिथ्य सत्कार की परम्परा केवल उच्च जातियों में अपितु सभी जातियों में विद्यमान थी। तुर्कों के प्रति यहां के लोगों में कोई आदर सम्मान नहीं था।

अनेक धर्मावलम्बियों मे अलग-अलग सामाजिक रीतियां प्रचलित हो गई थी। भोजन-पान, सामाजिक पर्व मनाने, धार्मिक कृत्यों को करने की अनेक रीतियां प्रचलित थी।कृषि कार्य से सम्बन्धित निम्न रीतियाँ प्रचलित थीं। बैशाख सुदी तीज से "कृषि वर्ष ' का आरम्भ माना जाता है। इस दिन खेत एवं मिट्टी की पूजा

बीज बोना आरम्भ कर दिय जाता था। वर्तमान समय में "अरवती" और "हरैता" त्योहारों का जन्म इसी रीति से हुआ। इसी प्रकार देवशयन का सम्बन्ध भी खेती से जोड़ा गया था। आषाढ़ सुदी एकादशी को देवशयन फिर कार्तिक सुदी एकादशी को जागरण होता था इन दोनों अवसरों पर कृषि सम्बन्धी पूजा निम्न प्रकार की रीतियों से हाती थी। इस क्षेत्र में बालिकाओं और पशुओं को पूजने के रीति -रिवाज थे।

व्यक्तियों में भाग्यवादिता पर अटूट विश्वास था। वह पूर्णरूप से भाग्यवादी बन गये थे। वह परिश्रम के प्रतिफल को श्रम के मूल्यांकन से न आंककर भाग्य से आंकते थे।"यदि विधाता ही वाम है तो क्या नहीं घट सकता।" सामान्य व्यक्तियों की पहले भी यही धारणा थी और आज भी यही धारण हैं। लोगों का विश्वास था कि यदि इस जन्म में अच्छे कर्म करेंगे तो अगले जन्म में उसका फल मिलेगा । यहां के निवासी गौड़, बैगा, कोल, भील, आदि भूत-प्रेतों पर विश्वास करने लग गये थे। जिसके परिणाम स्वरूप अनेक काल्पनिक देवताओं का उदय हो गया। अतः ये अनेक काल्पनिक देवताओं की पूजा करके धर्म भावना की तृप्ति करते थे। भाव-जगत, जवारा उगाना, झांड-फूंक आदि पर विश्वास था। आज कालिंजर में भी इसका स्वरूप कालिंजर परिक्षेत्र में दिखाई देता है।

इस युग में कालिंजर क्षेत्र में तांत्रिकों और अघोर पंथियों का प्रभाव बढ़ा था। अनेक स्थलों पर तांत्रिक मूर्तियां प्राप्त होने से इस बात की पुष्टि हो जाती है। मंत्र-तंत्रों का प्रभाव सामान्य लोगों पर बहुत अधिक पड़ा। प्रारम्भ में यह अन्धविश्वास केवल असभ्य व्यक्तियों व आदिवासियों तक सीमित था। किन्तु धीरे-धीरे यह अर्ध सभ्य व्यक्तियों में प्रवेश कर गया। वर्तमान समय में सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र व बुन्देलखण्ड में अनेक देवी-देवताओं प्रेतों की पूजा आज हर जगह पूर्णरूपेण प्रचलित है। जो अंधविश्वास का ही परिणाम है। यहाँ खैरमाता, मिड़ोहिया, घटाइया, गौडबाबा, मसान बाबा, नटबाबा, छीद आदि लोकप्रिय ग्रामीण देवता हैं। बहुत से देवता महामारियों को दूर करने वाले बन गये। कुछ जातिगत विश्वास भी लोगों में घर कर गये हैं। मुगल काल में अंधविश्वास एवं रूढ़ियों में और बिगाड़ आया। यहाँ के निवासी वास्तविक ईश्वर पर विश्वास करते हुए काल्पनिक ईश्वर को भी सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापी मानने लगे। इसीलिए मूर्ति पूजा पर दृढ़ विश्वास जम गया। हवन , यज्ञ के अतिरिक्त भूत-प्रेत तंत्र-मंत्र,झांड-फूंक आदि पर विश्वास करने लगे।

यहां के कुछ व्यक्तियों में कृषि सम्बन्धी विश्वास विचित्र ढंग के पाये जाते थे। कृषकों द्वारा अमावश्या को हल बैल न यहां की रीति है। इस क्षेत्र में हल, हल-बैल आदि कृषि उपकरणों की पूजा कृषि प्रारम्भ करते समय और कृषि समाप्त होने पर की जाती है। कृषि को ओले व वर्षा आदि विपत्तियों से बचाने के लिए पूजादिक कर्म यहां की एक विशेषता थी। न जाने कितने अंधविश्वास यहां की भोली-भाली जनता के बीच व्याप्त हुए। जब मुसलमानों का आक्रमण कालिंजर परिक्षेत्र में हुआ, उस समय से ही यहां के लोग उनके आचरणों से घृणा करते थे। दक्षिण भारत के लोगों के प्रति यहां के निवासियों की विचित्र धारणा थी।

वह समझते थे कि दक्षिण भारत के लोग जो भी पढ़ते है उनसे प्रयोजन की धारणा नहीं कर पाते । वे मात्र मन्त्रोच्चारण से सन्तुष्ट हैं और उन्होनें वेदों को डुबो दिया हैं।

कालिंजर में जो सामाजिक रीति-रिवाज चंदेल युग में प्रचलित थे, वहीं रीति-रिवाज थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ आज भी प्रचलित हैं। यहां के लोग बच्चों की नजर उतारते हैं। यदि चलते समय कोई छीक दे तो थोड़ी देर के लिए यात्रा नहीं करते। मार्ग में बिल्ली रास्ता काट जाये तो यात्रा की सफलता पर विश्वास नहीं रखते और यात्रा पर दुर्घटना की आशंका बनी रहती है।शुभ कार्य के लिए जाने वाले व्यक्ति को अगर मार्ग में काने व्यक्ति व विधवा स्त्री मिल जायें तो अशुभ मानते हैं। शुभ कार्यो में अंगों का फड़कना जैसे स्त्री का दाया अंग और पुरूष का बांया अंग अशुभ माना जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर परिक्षेत्र के समाज में आज भी प्राचीन रीति-रिवाज विद्यमान हैं। यह रीति-रिवाज एंव तंत्र-मंत्र तथा जादू -टोना कालिंजर परिक्षेत्र में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड व भारत वर्ष में आज भी सभ्य एवं असभ्य सभी व्यक्तियों में विद्यमान हैं तथा इन पर पूरा-पूरा विश्वास भी करते हैं।

(5) कालिंजर निवासियों की आवासीय व्यवस्था, वंश, जाति, धर्म एवं वर्ण व्यवस्था-

व्यक्ति युगों-युगों से किसी क्षेत्र विशेष में रह रहा है वह वहां रहने वाले समाज का एक सदस्य है। समाज की यह सदस्यता उसे स्वाभाविक रूप से जन्म लेते ही मिल जाती है और मृत्यु तक बनी रहती हैं सर्वप्रथम वह जिस परिवार में जन्म लेता है वह उसी परिवार का सदस्य बना रहता है।उसका परिवार वंश विशेष से सम्बन्धित होता है। उसे उसी का सदस्य माना जाता है, जब वह अपने ही वंश के अन्य सदस्यों से परिचित होता है तो उसे कुटुम्ब कबीले का ज्ञान होता है।

कुटुम्ब एवं कबीले का विस्तृत स्वरूप जाति विशेष से होता है। यह जाति विशेष अपनी परम्पराओं को लिये होती है। जन्म लेने वाले व्यक्ति को अपनी जाति की परम्पराओं का निर्वाह करना पड़ता है, क्योंकि उसके समस्त सामाजिक संस्कार उसी जाति में सम्पन्न होते हैं। कालिंजर परिक्षेत्र में जातीय बन्धन कठोर होने के कारण उसके समस्त संस्कार विवाह से मृत्यु तक उसी जाति में सम्पन्न होते हैं तथा मृत्यु तक वह उनका निर्वाह करता रहता है।

हर जाति विशेष का किसी न किसी व्यवसाय से सम्बन्ध होता है। वह जीविकोपार्जन के लिए जिस व्यवसाय को पारिवारिक विरासत के रूप में प्राप्त करता है, उसका निर्वाह वह जीवन भर करता है। यहां की जातियों में कुम्हार, बढ़ई, लुहार, सुनार, चमार, कोरी आदि हैं। यह लोग अपनी जाति के अनुसार व्यवसाय करते हैं तथा व्यवसाय से ही इनकी जाति की पहचान होती है। इस परिक्षेत्र में राजपूतों की अनेक जातियों ने शासन किया। अनेक बाहरी आक्रमणकारियों ने भी आक्रमण करके यहां की सामाजिक व्यवस्था पर अपना प्रभाव डाला, जिसके कारण यहाँ के लोग व्यवहारिक जीवन तथा संस्कृति में समय-समय पर

परिवर्तन करते रहे। कभी-कभी तो ऐसा हुआ कि अनेक विदेशी जातियों का भारतीयकरण कर लिया गया।

इस क्षेत्र में पता नहीं क्यों इस्लाम धर्मावलम्बियों का भारतीयकरण नहीं किया जा सका। बुन्देलखण्ड का प्रथम आक्रमणकारी महमूद गजनवी था। उसके साथ तद्युगीन इतिहासकार अल्बरूनी आया था। उसने सन् 1030 में इस क्षेत्र की सामाजिक व्यवस्था पर व्यापक प्रकाश डाला था।[77] बहुत से लोग उसके कथन को विश्वसनीय नहीं मानते , फिर भी उसने जितना समझा वह तथ्यपूर्ण है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक से भी तद्युगीन समाज की झलक मिलती है। चंदेलयुगीन सामाजिक व्यवस्था को वर्तमान समय की सामाजिक व्यवस्था की जड़ समझना चाहिए। आज भी इस परिक्षेत्र में सामाजिक व्यवस्था थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ बदली है।

सामाजिक व्यवस्था-

कालिंजर परिक्षेत्र के मूल निवासी मुख्य रूप से दो मौलिक संस्कृतियों में विभाजित है। यहां की प्रथम मौलिक संस्कृति अनार्यो की संस्कृति है। इस संस्कृति का अनुसरण करने वाले यहां के ग्रामीण अंचलों में बसने वाले कोल-भील ,खैरवार आदि निम्न वर्ग के निवासी हैं। इनकी जाति व्यवस्था ,रीति-रिवाज और लोक संस्कृति आर्यो की संस्कृति से पूरी तरह भिन्न है। ये लोग प्रकृति के उपासक तथा ग्रामीण देवताओं के उपासक हैं, इनकी भाषा भी आर्यो की भाषा से थोड़ी बहुत भिन्न हैं। यद्यपि आर्यों के प्रभाव में आने के कारण इनके ऊपर आर्य संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ा । ये लोग अत्रि, अगस्त्य, सारंग, सुतीक्ष्ण आदि ऋषियों के प्रभाव में रहे जिससे इनकी सभ्यता संस्कृति में व्यापक परिवर्तन आया तथा आर्यों से इनका मेल-जोल बढ़ा। ये लोग कुल्हाई, ददरी ,राई आदि लोक नृत्य करते हैं। इसी से सम्बन्धित लोक गीत भी गाते हैं। इनका जीवन यहां उत्पन्न होने वाले वन सम्पदा के सहारे बीतता है यहां पाये जाने वाले फलों एवं अनाजों के आधार पर अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं। यहां रहने वाले व्यक्ति जो लगभग 2000 वर्षो से पूर्व यहां रह रहे हैं वे आर्य संस्कृति का अनुशरण करते हैं।

वर्ण व्यवस्था-

मुख्य रूप से यह लोग चार वर्णो में विभाजित हैं- ये वर्ण थे- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र। वर्तमान समय में इन चारों वर्णों में अनेक उपजातियां कर्म के आधार पर बन गई हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार यहां पर ब्राह्मणों में जुझौतिया, कनौजिया, सखरिया, सनाढ्य तथा सनौडिया आदि उपजातियां उपलब्ध होती हैं। क्षत्रियों में बैस दिखित, पंवार, रघुवंशी ,मौहार , बागड़ी, गौतम, बुन्देला, चन्देल, चौहान,नन्दवंशी तथा गहरवार आदि हैं। वैश्यों में अग्रवाल, अग्रहारी, केसरवानी, कसौंधन, मारवाड़ी ,गहोई, असाटी, पुरवार, आदि रहते हैं। शूदों में चमार, अहीर, कोरी, कुर्मी, काद्दी लोधी, आरख, खँभार, कुम्हार, बसोर, तेली, कोल, गौंड, दांगी आदि यहां निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त माली , दौवा, बढ़ई, धोबी, कहार,ढीमर, लोहार, भरभूजा, डुमार , गड़रिया, भाट, खटिक, कलार, मोची, सुनार, गोसाई, योगी, आदि

यहां निवास करते हैं।

1. ब्राह्मण-

इन जातियों में ब्राह्मण सर्वाधिक पूज्य जाति है, ये लोग सम्पूर्ण समाज के धार्मिक संस्कार तथा सामाजिक पूर्ण संस्कार कराते हैं और जन्म से लेकर मृत्यु तक जो भी धार्मिक संस्कार होते हैं वह ब्राह्मणों द्वारा ही सम्पन्न कराये जाते हैं। ब्राह्मणों का प्रमुख कार्य था पठन एवं पाठन करना । ब्राह्मण पूजा गृहों में पुरोहिती का कार्य करते हैं तथा सम्पूर्ण समाज को विविध प्रकार की कथायें भी सुनाते हैं। इन्हें महीषुर देवता माना जाता है। इनका अभिवादन पांयलागी या चरण स्पर्श करके किया जाता है।

2. क्षत्रिय-

समाज में दूसरा वर्ग क्षत्रियों का है। क्षत्रियों का प्रमुख कार्य समाज एवं राज्य की रक्षा करना था। यहां के क्षत्रिय राजवंश से सम्बन्धित रहे या फिर सामंत और जागीदार रहे। कालिंजर में ब्राह्मणों के बाद क्षत्रियों का ही सर्वाधिक सम्मान है। इन्होंने देश की रक्षा के लिए सदैव बड़ी से बडी कुर्बानी दी है। इसलिए यहां के क्षत्रिय प्रशंसा के पात्र हैं। इनकी वीरता की चर्चा आल्हखण्ड, पृथ्वीराजरासो तथा अन्य ग्रंथों में विशेष रूप से मिलती है। परमपिता परमात्मा ने मुख्य रूप से राम तथा कृष्णावतार क्षत्रिय कुल में लिया और दुष्ट लोगों से प्राणियों की रक्षा की। यह लोग जहां कठोर एवं क्रोधी होते हैं, वहीं यह उदार, दानवीर भी होते हैं। कालिंजर इनकी लगभग 40 जातियां निवास करती हैं।

3. वैश्य-

कालिंजर में तीसरी सम्मानित जाति वैश्यों की है। यहां के वैश्य व्यापार एवं कृषि कार्य करते हैं। आवश्यकतानुसार साहूकारी का भी व्यवसाय करते हैं। यहां के वैश्य श्री गोपालदास ने गोपाल ताल तथा मंदिर का निर्माण कराया था। कालिंजर में अनेक देवालय वैश्यों द्वारा निर्मित कराये गये हैं। जनसंख्या की दृष्टि से इनकी संख्या अधिक नहीं है परन्तु समाज में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

4. शूद्र-

समाज की चौथी तथा निम्न जाति शुद्र है। कालिंजर में शूद्र जाति के लोग भी निवास करते हैं। यहां पर इनकी संख्या 65 प्रतिशत से अधिक है। यह लोग जमीदारों एवं साहूकारों के यहाँ नौकरी करते हैं। इसके अलावा भी कई प्रकार के कार्य करते हैं। समय-समय पर वन सम्पदा के माध्यम से अपनी जीविका चलाते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं हैं। शिक्षा एवं नैतिक दृष्टि से यह अत्यन्त पिछड़े हुए हैं। सवर्ण लोग इनके प्रति छुआछूत की भावना रखते हैं। यद्यपि शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण इनके प्रति उत्पन्न होने वाली हीन भावना समाप्त हो रही है किन्तु कालिंजर में विकास की किरण का उदय धीमी गति के साथ हुआ है। यदि आवागमन के साधन बढ़ा दिये जायें और पर्यटन को प्रोत्साहन दिया जाये तो निश्चित ही निम्न वर्ग को लाभ पहुंच सकता है और उनका नैतिक एवं आर्थिक स्तर ऊपर उठ सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज में चारों वर्णों का होना अनिवार्य है, क्योंकि यह एक दूसरे के पूरक है लेकिन अगर इनमें से अगर किसी एक को भी हटाने की कोशिश करें तो समाज की गाड़ी लड़खड़ा जायेगी। इसलिए समाज में इन चारों वर्णों का रहना अनिवार्य है।

आश्रम व्यवस्था-

वैदिक सभ्यता के अनुसार सम्पूर्ण आयु व्यवस्था को चार भागों में विभाजित किया गया है जिसे आश्रम व्यवस्था भी कहते हैं। मनुष्य का जीवन 100 वर्ष का माना गया था। इसी के आधार पर जन्म से लेकर 25 वर्ष तक की आयु ब्रम्हचर्य आश्रम में 25 से 50 वर्ष तक की आयु गृहस्थ आश्रम में 50 से 75 वर्ष तक की आयु वानप्रस्थ आश्रम में तथा 75 से 100 वर्ष तक की आयु सन्यास आश्रम की होती थी।

1. ब्रह्मचर्य आश्रम-

सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में इस आश्रम व्यवस्था का कोई महत्व नहीं रह गया है। समाज में सामाजिक कुरीतियों के वर्चस्व के कारण बालक-बालिकाओं के बाल-विवाह होने लगे। अब ब्रह्मचर्य केवल 12-16 वर्ष तक ही सीमित रह गया है। प्रमुख रूप से छोटी जातियों में जहां शिक्षा का अभाव है वहा आज भी बिना रोकटोक के बाल-विवाह होते हैं। इसलिए यहाँ ब्रह्मचर्य आश्रम का कोई प्रभाव देखने में नहीं आता। यहां तक कि ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य जातियों में भी लड़के और लड़कियों के विवाह 18 से 22 वर्ष की अवस्था में कर दिये जाते है।

2. गृहस्थ आश्रम-

गृहस्थ आश्रम वैसे तो 25 से 50 वर्ष तक का होता है लेकिन अब गृहस्थ आश्रम 18 वर्ष से ही प्रारम्भ हो जाता है। अगर व्यक्ति पारिवारिक उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर पाता है तो भी उसका विवाह कर दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि आबादी काफी बढ़ जाती है तथा पुरूष की अकर्मण्डता के कारण गरीबी का बोझ पूरे परिवार को उठाना पड़ता हैं, जिसकी वहज से यहाँ के लोग अशिक्षित तथा नैतिक दृष्टि से अक्षम्य रहते है। यही वजह है कि यहां के लोगों में अपराध की प्रवृत्ति बढ़ी हैं। वे अपना पेट पालने के लिए चोरी,डकैती, अपहरण आदि कुछ भी कर सकते हैं।

3. वानप्रस्थ आश्रम-

इस समय वानप्रस्थ आश्रम बिल्कुल निर्मूल हो गया है। अब कोई भी व्यक्ति अपना घर छोड़कर स्थाई रूप से तीर्थाटन या वानप्रस्थ आश्रम का जीवन जीना नहीं चाहता है। वह जीवन भर गृहस्थ ही बना रहता है। अस्वस्थ एवं निशक्त होने पर वह बेटों, बहुओं के आधीन हो जाता है।

4. सन्यास आश्रम-

सन्यास आश्रम में 75 से 100 वर्ष की आयु आती है। जीवन उपयोगी आवश्यक वस्तुओं के अभाव में अब व्यक्ति लम्बी जिन्दगी नहीं जी पाता है। ज्यादातर व्यक्ति 60 से 75 वर्ष की आयु में ही स्वर्गवासी

हो जाते हैं। कालिंजर में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम हैं जो 75 से 100 वर्ष तक की आयु पूरी करते हैं।अब व्यक्ति साधू-संत भी मजबूरी में बनना पसन्द करता है। वह सदैव भौतिक संसाधनों के साथ सुखी जीवन बितानें की कामना करता है। संत तुलसीदास के अनुसार व्यक्ति मजबूरी में संत बनता है।

नारि मरी भई सम्पति नाशी।

मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी।।

सम्पूर्ण समाज नाना प्रकार की कुरीतियों से व्याप्त है। इसलिए आर्य संस्कृति द्वारा समर्पित आश्रम व्यवस्था केवल धर्म ग्रंथों में ही वर्णित हैं और वहीं तक सीमित भी है।

संस्कार-

इस परिक्षेत्र में आर्य एवं अनार्य दोनों संस्कृतियों के अनुपालनकर्त्ता संस्कारों का अनुशरण करते है। आर्य संस्कृति के अनुसार भारतीय समाज में 16 संस्कारों को प्रमुखता दी गई हैं किन्तु वर्तमान समय में विपरीत परिस्थितियों के कारण अब किसी भी समाज में 16 संस्कार होते ही नहीं हैं जो संस्कार कालिंजर परिक्षेत्र में होते हैं उनमें प्रमुख रूप संस्कार, जन्म संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, मुण्डन संस्कार, विवाह संस्कार तथा मृत्यु (अन्त्येष्टि संस्कार) हैं। यह संस्कार अपनी-अपनी जातियों के अनुसार सम्पन्न होते हैं व्यक्ति इन्हीं संस्कारों से अपनी वंश परम्परा का निर्वाह करता है।

1. गर्भाधान संस्कार-

यह संस्कार मुख्य रूप से तब होता है जब स्त्री के गर्भ में सात या आठ माह का बच्चा होता है तभी उस स्त्री के मायके से नाना प्रकार के वस्त्र, आभूषण एवं पकवान आते हैं। स्त्री मायके द्वारा लाये गये वस्त्र एवं आभूषण पहनती हैं फिर उसके पल्लू में स्त्री की मां या सासू मां नारियल, बताशें, रूपये मिष्ठान, वस्त्र, आदि डालती है। इसी रस्म को गोदभराई भी कहते हैं।

2. जन्म संस्कार-

बालक जन्म के समय बहुत खुशियां मनाई जाती हैं। थाली पीटी जाती है तथा खरीपटा का नेग होता है। स्त्रियां ढोलक बजाती है तरह-तरह के सोहर गीत गाती हैं। पुत्र जन्म की खुशी बहुत ज्यादा होती है जबकि पुत्रियों के जन्म पर इतनी खुशियां नहीं मनाई जाती हैं।

3. अन्नप्राशन संस्कार-

इस परिक्षेत्र में अन्नप्राशन संस्कार का प्रचलन अब भी है। यह मुख्य रूप से जातक के मामा द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस दिन मामा अपनी बहन के बच्चे को स्टील, चांदी या सोचे की चम्मच से खीर खिलाता है और इसी दिन से बच्चे को अन्न खिलाना चालू किया जाता है

4. मुण्डन संस्कार-

जब बालक 6 महीने या 1 वर्ष का हो जाता है तो धार्मिक स्थानों में नवरात्रि या अन्य शुभ दिन में

उसका मुण्डन कराया जाता है।

5. विवाह संस्कार-

जब बालक व्यस्क हो जाता है तब उसका विवाह संस्कार होता है। कन्या पक्ष वाले वर पक्ष वाले के यहां विवाह का प्रस्ताव लाते हैं और कुछ शर्तों के साथ विवाह पक्का हो जाता है। उसके पश्चात वर पक्ष वाले कन्या पक्ष के यहां बारात लाते है, बारातियों का स्वागत होता है। उसके बाद द्वारचार, भावर , कलेऊ , विदा आदि कार्यक्रम होते हैं। जब वधू, वर पक्ष के यहां जाती है उस समय देव पूजन, कथा आदि के कार्यक्रम होते हैं। इस प्रकार विवाह संस्कार सम्पन्न हो जाता है।

6. अन्तेष्टि संस्कार-

जब कोई व्यक्ति स्वर्गवासी हो जाता है तो उसके मृत शरीर को हिन्दू लोग विधि- विधान से नहलाते हैं तेल लगाकर कफन आदि डालते हैं। फिर पूजा होती हैं इसके बाद शमशान में ले जाकर उसका दाह संस्कार करते हैं। अन्तेष्टि संस्कार के तीसरे दिन शमशान भूमि में मृतक की अस्थियां बीनी जाती हैं और अस्थियों को विसर्जित करने के लिए प्रयागराज ले जाने की प्रथा है। मृतक के नवें या दसवें दिन शुद्धता करने का रिवाज है। इस दिन मृतक के रिश्तेदार उसके परिवारजनों से मिलने आते हैं। त्रयोदशी के दिन हवन, ब्राह्मण भोज, रिश्तेदारों वा पारिवारिक व्यक्तियों का भोज सम्पन्न होता है। इस्लाम धर्मावलम्बियों के यहां शव को जलाया नहीं जाता अपितु गड्ढ़ा खोदकर उसे दफना दिया जाता है और मृत्यु के 40वें दिन 40 वां का दस्तूर होता है। इस दिन मृतक के रिश्तेदार उसके परिवार में अफसोस जाहिर करने आते हैं इस क्षेत्र के संस्कारों में कहीं विशेष आनन्द है तो कहीं आनन्द और दुख समिश्रित है और कहीं दुख ही दुख नजर आता है फिर भी यहां के व्यक्ति संस्कारों में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रखते हैं तथा एक दूसरे को वर्ण सहयोग प्रदान करते हैं।

इस परिक्षेत्र के संस्कार निश्चित ही अन्य क्षेत्रों के संस्कारों से भिन्न है। यदि हमें इस क्षेत्र में मानवता और मानव व्यवहार के दर्शन करने हों तो विविध संस्कारों को बहुत ही नजदीक से देखने की आवश्यकता है देखने की ही नहीं बल्कि समझने की भी जरूरत है।

वशं-

यहां पर प्रत्येक वर्ग में दो प्रकार के परिवारों की व्यवस्था है प्रथम संयुक्त परिवार है जिसमें वृद्ध माता-पिता , पुत्र-पुत्रियां, बहुयें, नाती , नातिन, आदि आते हैं। यह सभी एक साथ एक मकान में रहते हैं। ऐसे परिवार को वंश के नाम से जाना जाता है। इनमें कुटुम्ब, कबीला तथा अन्य परिवारीजन शामिल होते हैं। दूसरे प्रकार के विभक्त एवं एकांकी परिवार होते हैं, जिनमें केवल माता-पिता और उनके बच्चे रहते है कालिंजर परिक्षेत्र में वंश वाले यानि संयुक्त परिवार अधिक है तथा एकांकी अथवा विभक्त परिवारों की संख्या आज भी कम है।

जाति-

जब वंश बृहद स्वरूप धारण कर लेता है तो वह जाति के रूप में परिणित हो जाता है। यहां की प्रत्येक जाति विस्तृत वंश परम्परा का ही परिणाम है। एक जाति के लोग एक ही व्यवसाय से जुड़े होते हैं। उनके सामाजिक रीति-रिवाज वैवाहिक सम्बन्ध एवं संस्कार आदि अपनी ही जाति में सम्पन्न होते हैं। जाति में माता एवं पिता दोनों के कुल शामिल होते हैं। कालिंजर परिक्षेत्र की जाति प्रथा अति प्राचीन है। चन्देल युग में भी इस क्षेत्र में लगभग 42 प्रकार के सम्प्रदाय और कम से कम 372 प्रकार की जातियों का उल्लेख हुआ है। केशवचन्द्र मिश्र चंदेल युग की सामाजिक व्यवस्था के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि इस समय इस परिक्षेत्र में सात वर्ग के हिन्दू थे। इसमें सब्कुत्रिया श्रेष्ठ थे तथा अन्य वर्ग इनसे कम पूज्य थे। दूसरे वर्ग में ब्राह्मण, तीसरे में क्षत्रिय , चौथे में वैसुर (वैश्य) आते थे। पांचवें में शूद्र आते थे जो शिल्प एवं गृह उद्योग से जीवन यापन करने थे। छठवें में सण्डालिया आते थे, ये निम्न कार्य करते थे। सातवें में लहुड(नट) आते थे। ये लोग खेल, तमाशे दिखाकर जीवकोपार्जन करते थे किन्तु वर्तमान समय में सामाजिक व्यवस्था में काफी परिवर्तन आ गया है।[78]

धर्म-

यहां के निवासी अपने वंश परम्परा के अनुसार धर्म का निर्वाह करते हैं। धर्म इन्हें परिवार से उत्तराधिकार के रूप में मिलता हैं। यह न तो नया धर्म ग्रहण करते हैं और न ही पुराने धर्म के प्रति अनास्था प्रकट करते हैं। उनका पूर्ण विश्वास उस परमात्मा एवं उस देवता के प्रति है, जिसकी पूजा उसके परिवार के लोग युगों से करते चले आये हैं। यहां के लोग यह नहीं जानते कि धर्म का अनुपालन किस रूप में होना चाहिए और क्यों होना चाहिए न तो उन्हें यथार्थ बोध है और न ही कर्त्तव्य बोध । वे विशेष रूप से शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य, हनुमान, एवं गणेश की उपासना करते हैं। मुस्लिम धर्म का पालन करने वाले दुष्कर्मो और पापों से दूर रहते हैं वह अपनी प्राचीन पद्धति का अनुशरण करते हुए मस्जिदों में नमाज अदा करते हैं।

भाषा-

कालिंजर परिक्षेत्र की भाषा के संदर्भ में डॉ0 अरूणेन्द्र चौरसिया ने अपने शोध में लिखा है कि यहां की लोक भाषा बनाफरी और कुडरी माना है।[79] यदि हम इस क्षेत्र की वास्तविक भाषा का अवलोकन करे तो भाषा वैज्ञानिक, बुन्देली भाषा की उपभाषा जाड़-जूड़र को यहां की प्रमुख भाषा मानते हैं। फतेहगंज के आस-पास कोलुहा के समीप रहने वाले आदिवासी कोल्हाई भाषा बोलते हैं। कालिंजर का जो भाग गिरवां के पास केन नदी से सटा हुआ है, वहां कुडरी बोली जाती है तथा फतेहगंज से लगा हुआ बघेलावारी में बघेली भाषा मिश्रित बनाफरी बोली जाती है। इस क्षेत्र की भाषा यहां के सभी मूल निवासी बोलते हैं। इस भाषा में केवल लोक साहित्य की रचना हुई है। साहित्यिक ग्रंथ के रूप में जगनिक द्वारा रचित आल्हखण्ड

ही इसका एक मात्र ग्रंथ माना जाता है। इस क्षेत्र की भाषा की झलक संत तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भी देखी जा सकती है किन्तु भाषा वैज्ञानिक तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस की भाषा अवधी ही मानते हैं, जबकि यह अवधी, जायसी द्वारा रचित पद्मावत से बिल्कुल भिन्न है, उसमें कालिंजर परिक्षेत्र की भाषा की पर्याप्त झलक मिलती है। यहां की भाषा यहां के लोक संगीत में भी उपलब्ध होती है यह लोक संगीत विविध तीज-त्योहारों में एकल जुगल तथा सामूहिक रूप से उच्च, मध्य और निम्न स्वरों में गाया जाता है।

स्त्रियों की दशा-

कालिंजर में अनेक वंशों ने राज्य किया जिसका प्रभाव यहां की संस्कृति में पड़ा । जब यह क्षेत्र शक्ति उपासकों का क्षेत्र था, उस समय अनार्य धर्मावलम्बी मात्रकुल परिवार के सदस्य थे अर्थात यहां स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। परिवार के समस्त सदस्य उनके अनुशासन में रहते थे। किन्तु शैव और वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के पश्चात इस क्षेत्र में ब्रम्हा द्वारा निर्मित सृष्टि विधान लागू हुआ ।इस सृष्टि विधान के अन्तर्गत स्त्री को पुरूष के आधीन कर दिया गया। आर्य कुल के प्रत्येक देवता के साथ एक-एक स्त्री जोड़ दी गई जिसका परिणाम समाज में यह हुआ कि समस्त स्त्रियां पुरूषों के आधीन हो गई। चंदेल युग तक इस परिक्षेत्र में स्त्रियों के मध्य कोई पर्दा-प्रथा नहीं थी, किन्तु मुसलमान आक्रमणों के पश्चात स्त्रियों के मध्य पर्दा-प्रथा का प्रचार एवं प्रचलन प्रारम्भ हो गया तथा स्त्रियां घर की चार दीवारी में रहने लगीं। इसके पश्चात राजपूत युग में स्त्रियों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाया गया। उन्हें पुरूषों से निम्न स्तर का माना जाने लगा। कन्या को पराया धन समझा जाने लगा। इस परिक्षेत्र में स्त्रियों की यही स्थिति वर्तमान समय में भी है। उनका सम्पूर्ण जीवन घर गृहस्थी के कार्य में व्यतीत होता है। साथ ही निम्न प्रकार के उत्पीड़न उन्हें सहन करना पड़ता है। इस परिक्षेत्र की स्त्रियां ज्यादातर निरक्षर हैं। उन्हें पतियों को संतुष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार के वृत रखने पड़ते हैं।

आवासीय व्यवस्था-

कालिंजर में चार वर्गों के लोग निवास करते हैं। प्रथम वर्ग में अति कुलीन वर्ग, द्वितीय वर्ग में कुलीन त्रतीय वर्ग में मध्यम तथा चतुर्थ वर्ग में निम्न वर्ग के लोग आते हैं। हर वर्ग की आवासीय व्यवस्था पर यदि ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश डाला जाये तो अति कुलीन वर्ग में शासक वर्ग, सामन्त वर्ग तथा जमीदार वर्ग के लोग आते हैं। प्राचीन काल में ये लोग दुर्ग के ऊपर तथा दुर्ग के नीचे प्राचीरवेष्ठित नगर में अपने मकान महलों जैसे बनवातें थे ये मकान चार कोटि के होते थे। प्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र ने चन्देलों की आवासीय व्यवस्था के अन्तर्गत इसका विस्तार से वर्णन किया है। उनका कथन है कि वास्तुनिर्माण में स्थलों की परिमाप विभिन्न कोटियों की होती थी। इसमें प्रत्येक वर्ग के लिए पाँच कोटियां निर्धारित की गई थी। इन मकानों को देखकर कोई भी व्यक्ति यह अनुमान लगा लेता था कि यह मकान किस वर्ग का है।

सर्वोत्तम मकान की लम्बाई 135 हांथ और चौड़ाई 108 हांथ मानी गई है। इसके पश्चात अन्य कोटि के मकानों का क्षेत्रफल लम्बाई, चौड़ाई में 8 हांथ कम होता जायेगा। राजप्रासादों में सर्वोत्तम महल राजा का होता था। उसके पश्चात मंत्री, सेनापति तथा अन्य पदाधिकारियों का होता था। अति कुलीन वर्ग के महलों के अवशेष कालिंजर दुर्ग में राजा अमान सिंह का महल, चौबे महल आदि के अवशेष अभी-भी विद्यमान है। कालिंजर दुर्ग के नीचे राष्ट्र कूटों का महल तथा मिश्रों के महल आज भी उस युग की याद दिलाते हैं। इसी प्रकार के महल पाथर कद्दार रसिन एवं अन्य स्थलों में भी हैं।

कुलीन वर्ग के भवन भी महलों जैसे ही निर्मित होते थे। इनमें, ड्योढ़ी , प्रवेश द्वार, आंगन और उसके चारों ओर बरामदा तथा कमरे होते थे। जलीय निकास एवं शौच आदि की व्यवस्था अलग रहती थी। नौकरों-चाकरों के आवास की अलग से व्यवस्था थी। मध्यम वर्ग के मकान पक्के व कच्चे दोनों प्रकार के होते थे। जो बहुत अधिक लम्बे-चौड़े नहीं होते थे, फिर भी इनमें महराब दार दरवाजे, बरामदा, आंगन और कमरे होते थे पक्के मकान पत्थर, ईंट तथा चूने के माध्यम से निर्मित होते थे। अधिकांशतः जो ईंटें प्रयोग होती थी वे ककई ईंटें कहलाती थी। छपाई के लिए विविध प्रकार की वस्तुओं चूना, बालू, कंकड, के भट्टें का चूना, गोंद, सन तथा उर्द की दाल आदि से बने मशाले का प्रयोग विशेष रूप से होता था। कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक मकान आज भी देखे जा सकते है जो इस विधि से निर्मित हैं। निम्न वर्ग के मकान ज्यादातर कच्चे ही होते थे। उनके द्वार छोटे एवं सकरे होते हैं। रोशनी तथा वायु के लिए खिड़कियां लगी होती है, आंगन कच्चा होता है, कमरों में लठा, बांस व खप्पर की छत होती है, पशुओं के बाधनें की व्यवस्था अलग रहती है। आवासीय व्यवस्था में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। इस क्षेत्र में पेय जल की आपूर्ति उपलब्ध प्राकृतिक स्रोतों तालाबों तथा कुओं से होती थी आज आजादी के बाद जलीय व्यवस्था में परिवर्तन हुआ है, कहीं-कहीं ट्यूबवेल लगाये गये है। कुछ क्षेत्रों में हैण्डपम्प एवं नहरों का निर्माण हुआ, जिससे अनेक कार्यों के लिए जलापूर्ति हो जाती है।

आवास के पश्चात सबसे बड़ी व्यवस्था भोजन की होती है। प्राचीन काल के भोजन एवं पेय के विषय में जानकारी हमें चन्देलों के दानपत्रों से मिलती है। दानपत्रों से ज्ञात होता है कि समाज के सामान्य भोजन में अनेक प्रकार के अन्न, चीनी, दूध, घी और फल सम्मिलित थे। किन्तु कुछ समय बाद मांस खाया जाने लगा साथ ही मद्यपान भी शुरू हो गया। इसका विरोध ब्राह्मणों ने जमकर किया। राजा यदि मद्यपान करता था तो उसे शासन के योग्य नहीं समझा जाता था। मगर मांस भक्षण एवं मद्यपान समाज में धीरे-धीरे चलता रहा। जिस प्रकार पहले के समाज में शाकाहारी एवं मांसाहारी भोजन का प्रचलन था, उसी प्रकार कालिंजर क्षेत्र के व्यक्ति भी दो प्रकार का भोजन करते हैं। हिन्दू धर्म और उसकी संस्कृति से जुड़े हुए लोग शाकाहारी भोजन करते हैं। यहां पर उपलब्ध होने वाले सभी अनाज, सब्जियाँ, फल, दूध, घी एवं दही आदि भोजन सामग्री में आते हैं। मुख्य रूप से गेहूं, चावल, दालें, चना आदि हैं। सब्जियों में लौकी, भाटा, कटहल, कद्दू,

सेम, पालक, कुल्फा, टमाटर, चने की भाजी, आलू, हरा धनिया, हरा मिर्च, चौराई, भिण्डी आदि हैं। फलों में शरीफा, आम, बेर, अमरूद, मौसम्मी, करौंदा, आंवला, केला आदि का प्रयोग मुख्य रूप से होता है। ये लोग दैनिक भोजन में रोटियां, चालव, दाल व सब्जी खाते हैं और विशेष अवसरों पर नाना प्रकार के पकवान तथा मिठाइयाँ बनाते एवं खाते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में कुदई का चावल, महेरी, महुआ लाटा, कूटी, सित्तू तथा चने की बहुरी एवं गुड़ का प्रयोग होता है। ये ज्वार तथा मोटे अनाज की रोटियां खाते है। ज्यादातर भोजन चूल्हे में पकाया जाता है, कुलीन वर्ग की पाकशाला में व्यक्तियों का प्रवेश वर्जित है।भोजन करने वाले व्यक्ति भी हाथ-पैर धोकर भोजन करते हैं। मध्य एंव निम्न वर्ग में ऐसी कोई प्रथा नहीं हैं।

इस्लाम धर्म मानने वाले मांस का सेवन भोजन के साथ करते हैं। मछली का मांस, बकरे का मांस, भैसे का मांस एवं मुर्गे का मांस खाने की प्रथा है। ये लोग चोरी से गऊ वध करके उसका मांस खाते है। कालिंजर में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत में मांस भक्षण एवं मद्यपान का प्रचलन बड़ी तीव्र गति से फैल गया है। वर्तमान समय में तो सभी वर्णों के व्यक्ति इनका सेवन करते हैं। कालिंजर में घी, दूध, दही एंव मटठे की अधिकता होने के कारण इनका प्रयोग प्रत्येक परिवार में होता है। आधुनिक युग के प्रभाव से भोजन व्यवस्था में परिवर्तन देखने को मिलता है।

सामाजिक स्तर-

यदि हम शिक्षा और शालीनता की दृष्टि से इस क्षेत्र के निवासियों का मूल्यांकन करें तो यह क्षेत्र अत्यन्त पिछड़ा नजर आता है। व्यक्ति सामाजिक परम्पराओं का निर्वाह भले ही करता हो किन्तु वह नाना प्रकार की कुरीतियों में फंसा हुआ है।वह धन के प्रलोभन में किसी भी उपराध को जन्म दे सकता है।सम्पूर्ण समाज में शिक्षा की बहुत अधिक कमी है। यहां का व्यक्ति परम्पराओं का परित्याग करके नवीनता की ओर नहीं बढ़ना चाहता। इसी कारण से सामाजिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है यहाँ के लोग अनेक दुर्गुणों के कारण अत्यन्त पिछड़े और समस्याओं से ग्रस्त है। यद्यपि वर्तमान युग में प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा का विकास हो जाने के कारण धीरे-धीरे सामाजिक उत्थान एवं बहुत कुछ सुधार हुआ है किन्तु यहां बड़ी धीमी गति से सामाजिक उत्थान हो रहा है।

वेश-भूषा-

इस क्षेत्र की संस्कृति यहां के रहने वाले स्त्री -पुरूषों की वेश-भूषा में झलकती है। मौलिक वेश-भूषा के संदर्भ में अनेक मूर्तियाँ भी प्राप्त होती है जो तीर्थयात्रियों एवं श्रमिकों की मूर्तियां है। यह मूर्तियां बलखण्डेश्वर महादेव के समीप प्राप्त हुई हैं इन मूर्तियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता कि यहां का पुरूष आदि काल से पंचा (धोती) पहनता था, शिर में साफा बांधता था और एक साफी कंधे में डाले रहता था। पैरों में पदत्राण के रूप में पनही अथवा लतकरिया पहनता था। स्त्रियां विशेष रूप से कांछ दार धोती और कुर्ती (ब्लाउज) पहनती थीं, शिर ढ़कने की प्रथा सभी वर्गों में व्याप्त थी। चंदेल काल के पश्चात् लंहगा और

चुनरी का प्रभाव पड़ा तथा विवाह आदि अवसरों पर स्त्रियों द्वारा लंहगा, चुनरी पहनी जाती थी और पुरूषों द्वारा जामा पहना जाता था, देवालयों में जाने के लिए अलग प्रकार के वस्त्र होते थे, पदत्राणों के रूप में खड़ाऊ का प्रयोग होता था।

आभूषण स्त्री-पुरूष दोनों में पहनने का रिवाज था। स्त्रियां कानों में कर्णफूल, माथे में बेंदी, गले में सुतिया, गुलुबन्द, हांथ में कड़ें, बाजूबन्द, पैरों में कड़ें, झांझे, पैजना, लच्छे तथा कमर में करगेता, जंजीर आदि पहनने का रिवाज था। दीवान प्रतिपाल सिंह ने इस क्षेत्र के आभूषणों के संदर्भ में विस्तार से वर्णन किया है। उनके अनुसार आभूषण सोना, चांदी, गिलट, एवं कांसे (फूल) के होते थे। कभी-कभी पीतल, कांच, शीप, शंख तथा लाख के आभूषण पहने जाते थे। पैरों में पैजना, साकर, अनोटा और बिछिया पहनने का चलन था। हांथों में बरा, खग्गा, गले में खंगौरिया और हमेला पहना जाता था।कानों में कर्णफूल ,सांकर तथा माथे में बीज और शीश-फुल पहने जाते थे। सभी आभूषण वजन में भारी रहते थे। यहां की स्त्रियां कोई न कोई जेवर अवश्य पहनती थीं।[80] प्राचीन काल में पुरूषों में भी आभूषण पहनने की प्रथा थी। कानों में कुण्डल, गले में जंजीर , हांथों में कड़ा एवं अंगूठी आदि पहनते थें।

सभ्यता और शिक्षा के विकास के साथ रहन-सहन के स्तर में काफी परिवर्तन हुआ । जब इस क्षेत्र में मुगलों का प्रभाव पड़ा, उस समय से यहां के मुसलमान एवं हिन्दू, कुर्त्ता, पैजामा पहनने लगे साथ ही दाढ़ी भी रखने लगे और दुपलिया टोपी लगाने लगे। कहीं-कहीं पर मिरजई फतुही, बगलबन्दी तथा बन्ड़ी का रिवाज चला। उसके बाद झोला कुर्त्ता का प्रचलन हो गया। बहुत से लोग कुर्ते के ऊपर अंगरखी व रूई भरा कुर्ता पहनते थे। स्त्रियों में पर्दे की प्रथा प्रारम्भ हो गई। इस प्रथा में विशेष रूप से इस्लाम धर्म का प्रभाव पड़ा । यह प्रथा मुख्य रूप से क्षत्रिय स्त्रियों में थी। ब्राह्मणों व वैश्यों में यह प्रथा कम थी या फिर नहीं थी। इस क्षेत्र में मुसलमानी जेवरों का प्रभाव भी पड़ा। स्त्रियाँ अब बुलांक पहनने लगीं। कालान्तर में कांच व लाख की चूड़ियों का प्रचलन स्त्रियों में चल पड़ा तथा यह प्रचलन आज भी विद्यमान है।

आमोद प्रमोद के साधन-

कालिंजर विन्ध्याचल के वनों से घिरा हुआ है, जिसकी वजह से यहां का कुलीन वर्ग विभिन्न जंगली पशुओं का शिकार करके अपना मनोरंजन करता था। अकबर के समय में बाघ, चीता, तेंदुआ के अतिरिक्त यहा अच्छी कोटि के हीरे पाये जाते थे। बारह सिंहा तथा हिरन भी यहां प्रचुर मात्रा में थे। इनके शिकार में बड़ा आनन्द मिलता था। इसके अलावा यहां रहने वाली नटों की जातियां तीज-त्योहार में जनता का मनोंरंजन किया करती थी। चंदेल राज्य में प्रबोधचन्द्रोदय, रूपकषटकम् आदि नाटकों का मंचन भी किया जाता था। इसके अलावा त्योहारों व अन्य उत्सवों में रामलीला, रासलीला, नौटंकी, संगीत, गायन, वादन, नृत्य, आदि मनोंरंजन के प्रमुख साधन थे। घुड़दौड़, बैलगाड़ी दौड़, सामान्य दौड़, कबड्डी, कुश्ती आदि खेलों से यहां के नागरिकों का मनोंरंजन होता था। चंदेलयुग के बाद पूरे क्षेत्र में आल्हा-गायकी का प्रचलन तीव्र

गति से बढ़ा। बर्षा ऋतु में खासतौर से सावन के महीने में यहां के ग्रामीण अंचलों में आल्हा गायकी यानि सैरा (आल्हा-ऊदल) की वीर गाथा गाई जाती है। रात्रि के समय विभिन्न प्रकार की लोक कथायें लोग अपनी शैली में कहते थे और श्रवण करते थे। इस क्षेत्र में उत्पन्न हुए कवि अपनी काव्य कला से भी यहां के निवासियों का मनोंरजन करते थे। समय-समय पर कथाओं एवं धार्मिक प्रसंगों से भी यहां के नागरिकों का मनोंरंजन होता था। आजादी के पश्चात वैज्ञानिक संसाधनों की वृद्धि के कारण इस क्षेत्र में रेड़ियों मनोंरंजन का मुख्य साधन बन गया। वर्तमान युग में दूरदर्शन का विस्तार हुआ जो प्रमुख मनोंरंजन के साधन के रूप में विकसित होता जा रहा है। यहां की कुछ जातियों के पास मनोंरंजन की अपनी विशिष्ट विरासत थी, इसमें कहारों की हुड़क, कुम्हारों के स्वांग, भाटों का हास्य-परिहास, ढीमरों की ढिमराई तथा बिरनियों के राई नृत्य अत्यन्त लोक प्रिय मनोंरजन के साधन आज भी हैं। यहां के यादव जाति के लोग दीपावली के अवसर पर दिवारी नृत्य करके अपना तथा देखने वालों का मनोंरजन करते हैं। इसके अलावा यहां होली के अवसर पर फाग गायन का प्रचलन है, यहां फाग गायकी की फड़े जमती हैं जो यहां के निवासियों का भरपूर मनोरंजन करती है। सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में कोई छविगृह व प्रेक्षागृह नहीं है। इसलिए यहां के लोग अपने संसाधनों से ही अपना मनोंरंजन करते हैं।

आय के स्रोत-

कालिंजर परिक्षेत्र के आय के तीन स्रोत समझ में आते हैं। यहां की आय का प्रमुख स्रोत कृषि हैं और यहां की 90 प्रतिशत जनसंख्या कृषि से ही अपना जीवनयापन करती है। कालिंजर की भूमि उपज की दृष्टि से उत्तम कोटि की नहीं मानी जा सकती है। इस क्षेत्र की भूमि पठारी है और सिंचाई के लिए अच्छे साधन भी उपलब्ध नहीं हैं फिर भी किसान हल एवं बैल का सहारा लेकर कड़ी मेहनत से कृषि करता है और जो भी उपज में मिलता है, उससे सन्तुष्ट होना पड़ता हैं

यहां के आय का दूसरा स्रोत व्यवसाय है। आवागमन के साधनों के अभाव में जो भी कृषि उपज होती है, उसे यहां का व्यवसायी कम दामों खरीद लेता है, वह उस अनाज को बाहर ले जाकर अच्छे दामों पर बेचता है। त्योहारों के अवसरों पर कालिंजर, मड़फा, फतेहगंज, रसिन, सिधौरा, तथा पाथर कद्दार में अनेक मेलों का आयोजन होता है। इन मेलों में उत्पादक विभिन्न प्रकार की वस्तुऐं बेचनें के लिए लाता है। उनके बदले में अपनी आवश्यकता की वस्तुऐं ले जाता है जब उनकी वस्तुओं का कोई खरीददार नहीं होता तब ये उत्पादक अपनी वस्तुओं को व्यापारियों के हांथ बेच जाता है। कभी-कभी गरीब कृषक व अन्य वस्तुओं के उत्पादक इन व्यवसाइयों से कर्ज लेते है और वह कर्ज सूद सहित रूपया, अनाज व अन्य वस्तुओं के रूप में चुकाते हैं।

यहां की आय का तीसरा स्रोत अपार खनिज सम्पदा है। कालिंजर परिक्षेत्र में चुम्बक पहाड़ी के सन्निकट आयुर्वेद की बेस कीमती औषधियाँ प्राप्त होती हैं। जैसे हर्र, बहेरा, आंवला, अष्ट वर्ग एवं दशमूल

प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं। कीट पहाड़ी के सन्निकट काफी मात्रा में कच्चा लोहा प्राप्त होता है। चंदेलकाल में इस लोहे से विभिन्न प्रकार के होशियार निर्मित होते थे किन्तु आजादी के बाद अब इस कीट पहाड़ी से लोहा नहीं निकला जाता। यहां के पर्वतीय क्षेत्रों में इमारती पत्थर, पटिया प्राप्त होती हैं, जिसका उपयोग भवन निर्माण व सड़क निर्माण मैं होता है। यहां के विस्तृत वनों में इमारती एंव जलाऊ लकड़ियां उपलब्ध होती हैं। तेंदू का पत्ता पर्याप्त मात्रा में मिलता है जो मुख्य रूप से बीड़ी बनाने के काम आता है। कालिंजर के समीप पहाड़ी खेरा की पर्वत श्रेणियों में बृहस्पति कुण्ड के निकट उत्तम कोटि का हीरा मिलता था। हीरों का ऐतिहासिक साक्ष्य आइने अकबरी में मिलता है। जिसका उल्लेख दीवान प्रतिपाल सिंह की किताब में मिलता है। कालिंजर परिक्षेत्र के कुठला जवारी के जंगलों में एक चमकदार लाल पत्थर पाया जाता है। उस पत्थर से खैखार जाति के लोग आज भी सोना बनाते हैं। इस संदर्भ में यह किवदंति है कि राजा अमान सिंह ने यहां स्वर्ण खदानें खुदवाई थी और स्वर्ण भी निर्मित कराया था। रसिन के पर्वतीय क्षेत्र में अन्य कीमती पत्थर मिलते हैं, ये पत्थर नीले एंव हरे रंग के हैं। सम्भवतः ये नीलम, पुखराज, अथवा फिरोजा से सम्बन्धित होंगे। यहां के जंगलों में अनेक प्रकार के पशु पक्षी निवास करते हैं। इनके चर्म एवं अस्थियों से विशेष प्रकार का आर्थिक लाभ मिलता है, यहां का एक वर्ग इस खनिज सम्पदा से करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित करता रहा है। चंदेल युग में तथा उसके बाद तक यह राजस्व का प्रमुख स्रोत भी था। इतना सब कुछ होते हुए भी यहां का निम्न वर्ग अपनी आर्थिक स्थिति को नहीं सम्भाल पाया आज भी वह गरीब है तथा उसकी स्थिति दयनीय हैं।

कला एवं साहित्य-

कालिंजर परिक्षेत्र की पृथक पहचान कला एवं साहित्य के माध्यम से होती है। इस क्षेत्र में पुराऐतिहासिक काल से किसी न किसी प्रकार की कला के दर्शन होते हैं। जब व्यक्ति पशुओं की तरह जीवन व्यतीत करता था, उस समय भी उसे सौन्दर्य से लगाव था। वह सौन्दर्य की अभिव्यक्ति कला के माध्यम से करता था। सर्वप्रथम उसने अग्नि का आविष्कार किया। अग्नि के पश्चात उसने उपयोगी पशुओं को पालना प्रारम्भ किया उसके पश्चात कृषि का आविष्कार किया फिर उसने स्थाई आवासीय व्यवस्था का विकास किया। पहले लघुग्राम बसे कालान्तर में लघुग्रामों ने बृहद ग्रामों का रूप धारण कर लिया। कुछ समय बाद ये राज्यों एवं नगरों में परिणित हो गये। इन्होंने विचाराभिव्यक्ति के लिए भाषा का आविष्कार किया और भाषा के साथ 64 कलाओं को जन्म मिला। इन कलाओं को ललित कलाओं के नाम से जाना जाता है।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ0 फ्राइड का कथन है कि व्यक्ति अपने हृदय में संचित अभिव्यक्ति को तीन प्रकार से व्यक्त करता है-

1. साहित्य के माध्यम से।

2. चित्र के माध्यम से।

3. वास्तुशिल्प के माध्यम से।

कालिंजर परिक्षेत्र में 64 कलाओं के विभिन्न स्वरूप पुरावशेष सामग्री में दिखाई देते हैं। यदि हम पुराऐतिहासिक काल की कला पर जायें तो इस परिक्षेत्र में फतेहगंज ,मगरमुहा, सकरों, कालिंजर पर्वत के निचलने भाग में, बृहस्पति कुण्ड के समीप पर्वतीय श्रेणी में अनेक शैलाश्रयों के शैलचित्र उपलब्ध होते हैं। यहां के प्राचीन इतिहास की खोज सन् 1882 ई0 में की गई थी। इस खोज के अन्तर्गत यहाँ के अनेक स्थलों की दीवारों में चिड़ियों, मनुष्यों, हिरनों व अन्य पशुओं, प्राकृतिक चित्रों आदि में मिलते हैं। इन्हीं चित्रों के माध्यम से उन्होंने कला के प्रति अपनी रूचि व्यक्त की है।[82] शैलचित्रों के अतिरिक्त इसी युग में प्रस्तरों के अस्त्र-शस्त्र बनाने की कला भी उभरी। यह कला कालिंजर परिक्षेत्र के रामचन्द्र पर्वत आदि क्षेत्रों में देखने को मिली। इनके द्वारा निर्मित पत्थर की कुल्हाड़ियाँ आदि यहां प्राप्त हुई हैं।[83] इस क्षेत्र में ज्यादातर लोग कोल, भील, गौण, बैगा आदि निवास करते थे, वे विन्ध्यक्षेत्र के शैलाश्रयों में निवास करते थे। वे इसी प्रकार प्रस्तरों में मनमोहक चित्र बनाकर अपनी कला प्रियता का परिचय देते थे।[84] प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 एस0 डी0 त्रिवेदी ने बुन्देलखण्ड के पुरातत्व पर महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। सर्वप्रथम बाँदा जनपद में शैलचित्रों की खोज प्रसिद्ध इतिहासकार काकबर्न ने की थी। उन्हें अनेक स्थलों में शैलचित्र प्राप्त हुए थे। त्रिवेदी के अनुसार बाँदा मुख्यालय से लगभग 60 किलो मीटर दूर कालिंजर के निकट पुरापाषाण काल की उद्योग शाला उपलब्ध हुई है और इसी के आस-पास शैलचित्र भी है।[85]

शैलचित्र की संरचना के संदर्भ में यह समझना आवश्यक है कि वह आकृति निर्माण के बिना रंगों का उपयोग करता था। कुछ चित्रों के रंग चटकीले है, कुछ के रंग भदरंगे हो गये है। इसमें समय का व्यापक प्रभाव पड़ा है। कहीं-कहीं पर यह चित्र लाल या सफेद रंग की पृष्ठभूमि देकर बनाये गये हैं। इनमें दैनिक जीवन के विभिन्न दृश्यों को दर्शाया गया है। इनमें आखेट के दृश्य एवं पशु-पक्षियों विशेष रूप से प्राप्त हुए हैं। पी0 सी0 पन्थ ने भी यहाँ प्राप्त शैलचित्रों की प्रशंसा की है।[86] इतिहासकार एम0एल0 निगम भी यहां के शैलचित्रों की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि कौहारी जो बागे नदी के तट पर बसा हुआ है।केन नदी के तट पर मध्य पाषाण युग के अस्च-शस्त्र तो मिले ही हैं। इन्हीं स्थानों पर शैलचित्र भी उपलब्ध होते हैं। इन शैलचित्रों को देखकर तद्युगीन व्यक्तियों की कलाप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।[87]

कालिंजर परिक्षेत्र में कला का प्रथम स्वरूप चित्रकला को ही स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि चित्रकला के ही प्राचीनतम साक्ष्य यहां प्राप्त होते हैं। इसके पश्चात धीरे-धीरे चित्रकला विभिन्न युगों में विकसित हुई। इस युग में चेदि, कल्चुरियों तथा सल्तनत काल के कलाकारों ने उस कला को प्रभावित किया। कालिंजर दुर्ग के नीचे राठौर महल तथा पाथर कद्दार के एक महल में कुछ चित्र मिले हैं यह विभिन्न रंगों के है, इनमें स्पष्ट रूप से चित्रकला की भारतीय शैली एवं इस्लामी शैली का समिश्रण है। समय एवं

परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण अनेक चित्र धूमिल तथा खराब हो गये हैं।

मुगल काल में एक विशेष प्रकार की चित्रकला का उदय हुआ। ये चित्र देवालयों में न बनाकर कांच में बनाये जाते थे। ये राजा,महाराजाओं तथा उनकी स्त्रियों एवं विभिन्न देवी, देवताओं के होते थे। इस क्षेत्र के प्राचीन रजवाड़ों, देवालयों तथा बड़े-बड़े धनाढ्य व्यक्तियों के यहां आज भी उपलब्ध हैं। कुछ चित्रों को विभिन्न संग्रहालयों में भी देखा जा सकता है।

जब वस्त्र उद्योग का विकास हुआ, उस समय विभिन्न प्रकार की आकृतियां वस्त्रों में निर्मित होने लगी। कालिंजर परिक्षेत्र में कपास का काफी उत्पादन होता था। स्योढ़ा आदि क्षेत्रों में उत्तमकोटि का कपड़ा बुना जाता था। इनमें से अधिकाशं कपड़ों में विभिन्न प्रकार के चित्र सांचों के माध्यम से छापे जाते थे। वर्तमान समय में यहां के रंगरेज और छीपा रजाई गद्दों के कपड़ों में इसी प्रकार छपाई करते हैं।

जब से कागज का उत्पादन प्रारम्भ हुआ और साहित्य सृजन होने लगा उस समय के बाद चित्रकार अपनी कला का प्रदर्शन कागज में चित्र बनाकर करने लगे। रीति युगीन काव्य संग्रहों में हस्तलिखित ग्रंथों में मुख्य पृष्ठ पर और कहीं-कहीं मध्य में सुन्दर चित्र बने मिलते हैं। इसी प्रकार जब किसी व्यक्ति की जन्मकुण्डली बनाई जाती थी, उसमें यहां के पुरोहित दोनों किनारों पर एंव ऊपरी भाग में अनेक देवी-देवताओं की आकृतियाँ और गृह नक्षत्रों की आकृतियां एवं फूल पत्तियों की बनी बेलें अंकित किया करते थे। इस क्षेत्र में यह प्रथा आज प्रचलित हैं।

इस क्षेत्र में कला की अभिव्यक्ति वास्तुशिल्प के माध्यम से भी हुई। सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में वास्तुशिल्प के अद्भुत नमूने उपलब्ध हो जाते है। वास्तुशिल्प दुर्ग निर्माण शैली, वास्तुशिल्प, देवालय निर्माण शैली, मूर्तिनिर्माण शैली तथा जलाशय निर्माण शैली के रूप में चतुर्दिक दिखाई देती है। यहां प्राप्त पुरावशेष गुप्तकाल से लेकर 17वीं शताब्दी तक के हैं। अनेक कालों के होने के कारण निर्माण शैली में व्यापक अन्तर देखा जा सकता है।

1. दुर्ग निर्माण शैली-

कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक दुर्ग उपलब्ध होते हैं। इन दुर्गों में कालिंजर दुर्ग, मड़फा दुर्ग, रसिन दुर्ग, वीरगढ़ दुर्ग, पथरीगढ़, शेरपुरस्योढ़ा दुर्ग, एवं रनगढ़ दुर्ग प्राप्त होते हैं। इस क्षेत्र में दुर्ग शिल्प अत्यन्त प्राचीन है। महाभारत में छः प्रकार के दुर्गों का उल्लेख है- धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग, अब्दुर्ग तथा वनदुर्ग बतलाये गये हैं।

यथा-

धन्वदुर्गं, महीदुर्गं, गिरिदुर्गं तथैव च।
मनुष्य दुर्गं, अब्दुर्गं, वनदुर्गं च तानिषिट्।।[88]

इनका उल्लेख मत्स्य पुराण में भी है ये निम्न प्रकार के हैं धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वार्क्षदुर्ग, अम्बुदुर्ग

और गिरिदुर्ग छः दुर्गों का उल्लेख मिलता है। इसमें गिरिदुर्ग को सुरक्षा की दृष्टि से सर्वोत्तम माना गया है।

यथा-

तत्र दुर्ग कुर्यात्मण्णो मेकतमं बुधः।

धन्वदुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च।।6।।

वाक्षं चैवाम्बुदुर्गं गिरिदुर्ग च पार्थिव।

सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्ग प्रशस्यते ।।[89]

प्रसद्धि ग्रंथ मनुस्मृति, अग्निपुराण, विष्णुधर्मोत्तर आदि ग्रंथों में भी दुर्ग निर्माण शैली का उल्लेख है। शुक्रनीति में नौ प्रकार के दुर्गों का वर्णन है- ऐरिण दुर्ग, पारिखदुर्ग, पारिधदुर्ग, वनदुर्ग, धन्वदुर्ग, जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, सैन्य दुर्ग और सहायदुर्ग हैं।[90] कौटिल्य का मानना है कि विशाल चट्टानों एवं पर्वत कन्दराओं के रूप में बना हुआ दुर्ग पर्ततीय दुर्ग कहलाता है।[91] शुक्रनीति के अनुसार जो दुर्ग एकान्त में किसी पहाड़ी पर निर्मित हुआ हो तथा जलापूर्ति के लिए जिनमें सरोवरों का निर्माण किया गया हो उन्हें गिरि दुर्ग कहते हैं।[92] मयमत और मानसार में भी दुर्गो का उल्लेख मिलता है। इसमें भी गिरिदुर्ग को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यह गिरि के ऊपरी भाग में निर्मित होता है।[93]

यथा-

"गिरिमध्यं गिरिपार्श्वं गिरिशिखरं पार्वतं दुगम्" ।

-मयमत!

पर्वतावृत्त (तन्) मध्ये (च) पर्वतस्य समीपके

पर्वताग्रप्रदेशे तु गिरिदुर्गमित त्रिधा।

-मानसार!

यदि हम कालिंजर दुर्ग का विश्लेषण दुर्ग निर्माण शैली की दृष्टि से करें तो यह दुर्ग पर्वतीय दुर्ग की श्रेणी में आता है क्योंकि यह त्रिकूट पर्वत के उच्च शिखर पर निर्मित है। गिरि दुर्ग की जो भी विशेषताएं शिल्पकारों ने बताई हैं वह सभी कालिंजर दुर्ग में प्राप्त होती हैं। दुर्ग का निर्माण ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी के मध्य हुआ। इसका निर्माता केदार वर्मन था। यह दुर्ग उत्तर और दक्षिण दिशा में दो द्वारों के प्रवेश को लेकर निर्मित हुआ था। वर्तमान समय में उत्तर दिशा का प्रधान द्वार प्रवेश के लिए खुला हुआ है। दुर्ग के ऊपरी भाग में पहुंचने के लिए सात द्वार निर्मित किये गये हें डब्ल्यू0 आर0 पॉग्सन के अनुसार कालिंजर दुर्ग में बने हुए सात द्वार सूर्योपासना से सम्बन्धित माने जा सकते हैं। इस गिरिदुर्ग के अन्दर अनेक ऐतिहासिक भवनों के भग्नावशेष विद्यमान हैं। साथ ही पातालगंगा, सीताकुण्ड वृद्धकतीर्थ, पाण्डुकुण्ड, मृगधारा, कोटितीर्थ जैसे महत्वपूर्ण स्थल हैं। यह स्थल पौराणिक काल से प्रतिष्ठित हैं।[94]

कालिंजर दुर्ग की सुदृढ़ दीवारों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्ग का निर्माण बड़ी-बड़ी शिलाओं

से किया गया है जो शत्रु से रक्षा करने में पूरी तरह सक्षम है। सात द्वारों से आवृत्त सुदृढ़ दुर्ग की दीवारें अपना पूरा परिचय दे देती हैं। दुर्ग के ऊपरी भाग में शत्रुओं का प्रवेश सहज नहीं था। सातवें द्वार को पार करते ही हमे चौवे महल फिर अमान सिंह का महल मिलता है। दुर्ग में राजा, मन्त्रियों आदि के निवास की व्यवस्था बहुत अच्छी थी तथा शत्रुओं के आक्रमण के समय वहां से भाग निकलने के लिए अनेक गुप्तद्वार भी दुर्ग में उपलब्ध थे। इस दुर्ग में सैनिकों के निवास के लिए पर्याप्त व्यवस्था थी। जलीय आपूर्ति के लिए दुर्ग में अनेक जलाशयों का निर्माण किया गया था। इसके अतिरिक्त अनेक धार्मिक स्थल भी पूजा, उपासना के लिए दुर्ग में निर्मित किये गये थे। दुर्ग का महत्व दो प्रकार से दिखाई देता है। प्रथम महत्व सैनिक दृष्टि से आंका जाता है तथा दूसरा महत्व आवासीय व्यवस्था की दृष्टि से आंका जाता है। दुर्ग का निचला भाग जिसे तलहटी के नाम से जाना जाता है, वह सुदृढ़ प्राचीरों से युक्त था। उसमें प्रवेश के लिए पन्ना फाटक, कामता फाटक तथा रींवा फाटक ये तीन द्वार स्पष्ट रूप से आज भी हैं। दुर्ग प्राचीर के बाहर जहां वर्तमान समय में बस स्टैण्ड है, वहां एक गहरी खाई थी जिसमें सदैव जल भरा रहता था,इस जल में जहरीले और खतरनाक जल-जीव पले रहते थे जो शत्रुओं से हमारी रक्षा करते थे।

यदि कालिंजर दुर्ग की समतुलना भारतवर्ष के ही अन्य दुर्गों से की जाय तो निश्चित ही प्राचीनता की दृष्टि से इस दुर्ग की तुलना अन्य दुर्ग से नहीं किया जा सकता । इसने उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवेश करने वाले शत्रुओं से सदैव लोहा लिया हैं तथा एक अद्भुत शक्ति का परिचय दिया है। यद्यपि राजस्थान के दुर्ग और दक्षिण के दुर्ग देखने में इससे ज्यादा सुन्दर प्रतीत होते हैं किन्तु न तो वे इतने प्राचीन हैं और न ही इतने सुदृढ़ हैं। **फोट्स ऑफ इण्डिया** नाम किताब में लुई ने कालिंजर दुर्ग को अति प्राचीन मानते हुए कहा हैं कि यद्यपि कालिंजर दुर्ग का निर्माणकाल निश्चित करना अत्यन्त कठिन कार्य है, फिर भी यह दुर्ग शक्ति एवं सुद्ढ़ता की दृष्टि से अत्यन्त सुप्रसिद्ध सुदृढ़ एवं महत्वपूर्ण है। यह दुर्ग चित्रकूट पर्वत पर 800 फुट की ऊचाई पर है जो कि विन्ध्यपर्वत श्रेणी का एक अंग है। इसका महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक काल से ही है।[95]

कालिंजर दुर्ग के अतिरिक्त मड़फा दुर्ग भी पर्वतीय दुर्ग की श्रेणी में आता है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से कालिंजर दुर्ग जैसा ही है। इस दुर्ग में प्रवेश के लिए एक ही द्वार है। इसी प्रकार का दुर्ग रसिन दुर्ग भी है। इस दुर्ग में प्रवेश के लिए जो द्वार प्राचीन काल में थे, वे सब ध्वस्त हो चुके हैं। वीरगढ़ का दुर्ग भी चंदेलों का समकालीन है यह सदैव बघेल राजाओं के अधिकार में रहा है और यह पर्वत भी दुर्ग की श्रेणी में आता है। पाथरकद्दार का पथरी गढ़ दुर्ग प्राचीनता की दृष्टि से अत्यधिक प्राचीन प्रतीत नहीं होता। उसका निर्माण मुगलकालीन है,इस प्रकार शेरपुर स्योढ़ा का दुर्ग चन्देलकालीन है, किन्तु यहां प्राप्त अन्य महत्वपूर्ण दुर्ग जिसका निर्माण केन नदी के मध्य में हुआ था, अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। यह सुदृढ़ता में कालिंजर जैसा नहीं है इसे रनगढ़ दुर्ग के नाम से जाना जाता है।

वास्तुशिल्प-

वास्तुशिल्प की दृष्टि से वस्तु रचना ज्योतिष एवं मुहूर्त विज्ञान से सीधे सम्बन्धित है। यदि गृह निर्माण की भूमि पूर्व की ओर छोड़ी जाये तो इसे सोष्णीष, पश्चिम की ओर छोड़ी जाय तो उसे साश्रय तथा उत्तर व दक्षिण की ओर छोड़ी जाये तो उसे सावष्टम्भ कहा जाता था। यदि बीथिका भवन के चारों ओर छोड़ी जाय तो उसे सुस्थित कहा जाता था। यदि बीथिका भवन के चारों ओर छोड़ी जाय तो उसे सुस्थित कहा जाता था। वस्तु विज्ञान के अनुसार गृह निर्माण की यही विधि शुभ मानी जाती थी। वास्तुशास्त्रों में गृहों की परिमाप से उनके द्वारों का निर्धारण सिद्धान्त बतलाया गया है। उदाहरण के लिए राजा और सेनापति के गृहों के व्यास को ध्यान में रखते हुए उसमें 70 जोड़कर 11 से भाग दिया जाता था। और जो भागफल निकलता था द्वा उतना ही चौड़ा रखा जाता था। ब्राह्मण आदि वर्णो के गृह व्यास के पंचमांस में 12 अंगुल जोड़ देने से जो योग निकलेगा वही उनके गृह द्वार का परिमाण है। द्वार परिमाप का अष्टामांस द्वार का विष्कम्भ और विष्कम्भ से दूनी द्वार की ऊंचाई होनी चाहिए।

गृहों में प्रयुक्त होने वाले स्तम्भों का भी परिमाण फल निर्धारित किया गया है। निर्माण में कई प्रकार के स्तम्भ प्रयोग में लाये जाते थे। 4 कोनें का स्तम्भ रूपक। 8 कोनें का स्तम्भ वज्र तथा सोलह कोनें का स्तम्भ द्विवज्र कहलाता था। 32 कोने के स्तम्भ को प्रलीनक एवं वृत्ताकार स्तम्भ को वृत्त कहते थे। ये सभी स्तम्भ शुभ एवं फलदायक थे, जिस वास्तु के चारो ओर द्वार होते थे उसे सर्वतोभद्र कहते थे, ऐसे निवास राजाओं, राजाश्रितों तथा देवताओं के लिए कल्याणकारी माने जाते थे।

यहां का वास्तुशिल्प आध्यात्मिक भावनाओं से प्रेरित था क्योंकि प्रत्येक वास में देवताओं का निवास माना जाता था। इस प्रकार के मकानों को एकाशीतिपद दूसरे प्रकार के मकानों को चतुःषष्ठिपद कहा जाता था। प्रथम श्रेणी के भवनों में 45 देवताओं का निवास होता था। ईशान कोण में क्रम से शिखा, पर्जन्य, जयंत, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भ्रश और अंतरिक्ष आदि देवता पूर्व की ओर निवास करते थे। अग्निकोण में क्रम से पूषा, पितथ, वृहतक्षत, यम, गन्धर्व, मृगराज और मृग अवस्थित है। नैर्ऋत्य कोण में यथाक्रम पिता दौवारिक, कुसुमदर्त्त, वरूण, असुर, शोष और राजयक्ष्मा निवास करते है। वायुकोण में नत, वासुकि, भल्लाट, सोम, भुजंग, अदिति ओर दिति देवता विराजमान रहते है।मध्य में ब्रह्मदि विराजमान रहते है उन्हीं के समीप अयमा, सविता, विवस्वान, इन्द्र, मित्र, राजयक्ष्मा, शोष तथा आपवत्स आदि देवगण प्रदक्षिणा में प्रतिष्ठित होते है जिन भवनों में देवताओं का निवास होता है। मूलरूप से वह प्राणियों के लिए मंगलकारक होते है गृह निर्माण के समय ग्रह स्वामिनों को विविध देव स्थलों को उचित ढंग से निर्मित करना चाहिए। ऐसा करने से परिवार को दैहिक और मानसिक कष्ट नहीं होता। वास्तु का निर्माण करते समय यह देखना चाहिए कि नीवं खुदाते समय यदि अस्थि प्राप्त होती है तो वह अशुभ होता है उसमें निरन्तर कष्ट बना रहता है। यदि स्वर्ण तथा रजत के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु मिलती है तो प्रतिकूल फलदायक होता है वस्तुशिल्प

में जिस निर्माण सामग्री का उपयोग किया जाना हो, उसका भी विधि पूर्वक विचार होना चाहिए। मकान को भी एक प्राणी जैसा माना गया है। इसलिए उसमें आत्मा के निवास की परिकल्पना की गई है। जैसे कोई व्यक्ति विकलांग होता है तो उसे अशुभ माना जाता है। इसी प्रकार मकान में यदि कोई कमी रह जाती है तो वह भी अमंगलकारक माना जाता है। यदि मकान का दक्षिणी भाग कमजोर है तो उस स्थिति में मकान में रहने वाले व्यक्ति को धन की हानि होती है यदि मकान का बांया भाग कमजोर है तो धान्य हानि होती है। मकान का मध्यभाग कमजोर है तो यहा के निवासियों का सद्‌गुण नष्ट हो जाता है। स्त्रियां चरित्र हीन हो जाती है तथा पुत्र अयोग्य उत्पन्न होते हैं। अगर मकान का सर्वांग अविकल रहे तो इसके निवासी को सभी प्रकार के सुख मिलते है। वास्तुनिर्माण में वैज्ञानिक विधि भी अपनाई जाती है। गृहों की चाल को पूर्णरूपेण ध्यान में रखा जाता है। द्वार बनवाते समय यह देखा जाता है कि कौन सा नक्षत्र द्वार को अनुकूल फल पहुंचा रहा है यदि द्वार की लम्बाई दूनी भूमि छोड़कर निर्मित की जाये तो कोई दोष नहीं लगता किन्तु रथ्याविद्ध द्वार नाश का कारण होता है। वृक्षविद्ध द्वार से कुमार दोष लगता है। इसी प्रकार मिट्टी के निर्मित द्वार से शोक, जलस्रावी द्वार से व्यय, कूपविद्ध द्वार से रोग, देवविद्ध द्वार से निवास, स्तम्भविद्ध द्वार से स्त्री दोष तथा ब्रह्मविद्ध द्वार से कुल नाश होता है। इसलिए द्वारों का मंगलमय होना आवश्यक है।[96] भवन को सुन्दर बनाये रखने के लिए मकान के बाहरी भाग में उपवन लगानें की कला थी। यह एक ओर पर्यावरण को संतुलित रखता था तो दूसरी ओर गृह की शोभा बढ़ाता था। जिन घरों में वृक्ष लगाये जाते थे वे अत्यन्त सुन्दर माने जाते थे। घरों में कभी भी दक्षिण दिशा मं पर्कटी, गूलर, पीपल आदि नहीं लगाते थे इन्हें अशुभ माना जाता था। यदि यह उत्तर में लगाये जाते थे तो कल्याण कारी होते थे। गृहों के समीप कंटक वृक्ष, क्षीरी, फलीवृक्ष अशुभकारी माने जाते थे। मकानों के निर्माण में लकड़ियों का प्रयोग वर्जित किया गया है। मकान ऐसे स्थान पर बनाने का नियम थे जिसके निकट ढ़ालदार जमीन न हो और जमीन में गड्ढे आदि न हो। यदि भूमि उत्तर की ओर ढालदार है तो वह ब्राह्मण के लिए शुभ मानी जाती थी, पूर्व की ओर ढालदार है तो क्षत्रिय के लिए शुभ मानी जाती थी, दक्षिण की ओर भूमि ढ़ालदार है तो वैश्य के लिए शुभ मानी जाती थी, पश्चिम की ओर ढालदार भूमि शूद्र के लिए शुभ मानी जाती थी। भवन निर्माण के पहले भूमि निरीक्षण करना आवश्यक था। भवन निर्मित होने के पश्चात घर में प्रवेश ब्राह्मणों के मंगलोच्चारण द्वारा किया जाता था।[97]

प्रारम्भ में भवनों का निर्माण प्रस्तर व पटियों के सहारे किया जाता था। छतों को सहारा देने के लिए पत्थर के घाड़ों का प्रयोग किया जाता था। कालान्तर में चूने का गारा, सन, उर्द की दाल व गुड का प्रयोग छपाई के लिए किया जाने लगा। पत्थर के स्थान पर पतली ककई ईट प्रयुक्त होनें लगीं। मकानों के निर्माण में महराबदार दरवाजे बनवाने का प्रचलन था। दरवाजों के ऊपर विशेष कलाकृतियाँ बनाने का प्रचलन था। प्रवेश के पश्चात ड्योढ़ी उसके पश्चात बड़ा आंगन, आंगन के चारो ओर कम से कम 16 कमरे निर्मित किये

जाते थे। इनमें प्रकाश, वायु, जल की समुचित व्यवस्था रहती थी। भवन में पाकशाला, भण्डारगृह और दास-दाासियों के रहने के लिए समुचित स्थान निश्चित होते थे। गरीब व्यक्तियों के लिए कच्चे मकान बनाने की प्रथा थी मिट्टी ईट, पत्थर, लट्ठा , वांस खप्पर आदि से निर्मित थे। कालिंजर परिक्षेत्र में वास्तुशिल्प की दृष्टि से राठौर महल, चौबे महल, राजा अमान सिंह का महल तथा मिश्रों के महल बहुत अच्छी किस्म के वास्तुशिल्प से निर्मित हैं। इसी प्रकार पाथरकद्दार , शेरपुरस्योढ़ा, रनगढ़ आदि में भी वास्तुशिल्प के अच्छे उदाहरण प्राप्त होते हैं। कालिंजर परिक्षेत्र का वास्तुशिल्प चंदेलकाल से लेकर बुन्देलों के शासन काल तक का है। यह निर्माण शैली निश्चित ही पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करती है।

3. देवालय निर्माण शैली-

चन्देलयुग से अब तक अनेक धार्मिक स्थलों का निर्माण कालिंजर परिक्षेत्र में हुआ है। यह धार्मिक स्थल व्यक्ति की धार्मिक आस्था के केन्द्र हैं। वास्तुशिल्प की दृष्टि से इसे प्रतिनिधि वास्तुशिल्प की कोटि में रखा जाता है। विभिन्न प्रकार की वास्तुशिल्प की रीतियों का दर्शन इन देवालयों से होता है तथा भारतीय मंदिर निर्माण शैली ने विदेशियों को अपनी ओर आकर्षित किया है, मन्दिर निर्माण में विशेषकर तीन प्रकार की शैलियों को सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपनाया गया है, उत्तर भारत में जिस शैली को अपनाया गया है वह आयताकार नागर शैली है। पूर्व की ओर जिस शैली का निर्माण किया गया है, वहां पर गोलाकार बेसरशैली की प्रमुखता है। इसी प्रकार दक्षिण में जिस शैली को अपनाया गया है, वे अलग प्रकार की शैली है । दक्षिण के मंदिर अधिकतर अष्टभुजी होते हैं। प्रथम दो शैलियों की विशेषता यह है कि देवतायन के सामने स्तम्भों वाला खुला अन्तराल अर्थात पट-मण्डप होता है। इसी मण्डप के मध्य देव मूतियों के स्थान -स्थान पर निकेतन बने रहते हैं। विभिन्न प्रकार के देवताओं को इन्हीं स्थानों पर प्रतिष्ठित किया जाता है। मंदिरों के द्वारों के ऊपर स्तूपाकार बृहत श्रृंग रचना की जाती है। इस शैली के मंदिरों में यही मण्डप देवालय का अंतरावकाश निर्मित करता है।

कालिंजर परिक्षेत्र में इसी शैली से निर्मित अनेक देवालय मिलते है। कालिंजर दुर्ग के ऊपर नीलकण्ठ मंदिर वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है।इसके अतिरिक्त मड़फा का शिव मंदिर, मड़फा का जैन मंदिर रसिन का चन्द्रामाहेश्वरी मंदिर, फतेहगंज का बिलहरिया मठ, रौलीगोंड़ा का विष्णु मंदिर इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मंदिर कला की दृष्टि से इन मंदिरों को किसी भी स्तर में खजुराहो से कम स्तर का नहीं आंका जा सकता है।[98]

4. मूर्ति निर्माण शैली-

कालिंजर परिक्षेत्र में उपलब्ध मूर्ति सम्पदा उत्कृष्ट मूर्ति कला का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस क्षेत्र में जो मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं उनमें से अधिकांशतः चन्देलयुगीन हैं। कुछ मूर्तियाँ गुप्त युग की भी प्राप्त हुई है, ये मूर्तियाँ प्रमुख रूप से देवालयों तथा राजप्रासादों के स्तम्भों में उपलब्ध हुई है कुछ मूर्तियाँ

विशाल चट्टानों में निर्मित की गई हैं।

चन्देलयुग की मूर्ति कला स्थापत्य कला का अविभाज्य अंग है। यदि इनकी तुलना उत्तर और दक्षिण के स्थापत्य से की जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस कला का विकास पांचवीं सदी के गुप्तों, वाकाटकों के काष्ठशिल्प से हुआ । इसके पश्चात यह कला प्रस्तर शिल्प में परिणित हो गई। काष्ठशिल्प अदृश्य हो गई। केवल अजंता की गुफाओं में ही यह शिल्प देखने को मिलती है।चन्देल युग की मूर्तिकला दो रूपों में देखने को मिलती है। पहली मूर्ति कला विशिष्ट अलंकरण के रूप में प्राप्त होती है। जो मंदिरों के बाहरी एवं भीतरी भाग में मिलती हैं, दूसरी प्रकार की मूर्तियाँ वे मूर्तियाँ हैं जिनकी स्थापना मंदिरों में विधिवत की गई है। चन्देल मूर्तियों का रचना सौष्ठव भंगिमा, अंग विन्यास, गठन तथा कला की दृष्टि से ये सर्वोत्तम हैं। जो शिल्पकला के अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध कराती हैं। ये मूर्तियाँ निम्नस्तर की प्राप्त होती है-

कालिंजर क्षेत्र में यह मूर्तियाँ कालिंजर दुर्ग के सन्निकट नीलकण्ठ मंदिर, बिलहरिया मठ, मड़फा, रौलीगोंड़ा तथा रसिन में मिलती हैं। इन मूर्तियों का प्रयोजन एवं उद्‌गम परम्परा की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

पहली मूर्तियाँ पौराणिक आख्यानों के आधार पर निर्मित की गई हैं। इन मूर्तियों में दशावतार, दिग्पाल, इन्द्र, अग्नि, यम, नेऋत्र, वरूण, वायु, कुबेर और ईशान आदि की मूर्तियाँ मंदिर के भीतरी भाग में देवतायन की बाह्य भित्ति पर किन्तु प्रदक्षिणा पथ के भीतर पाई जाती है। दीवारों के बीच-बीच में स्तम्भ वाले आलों में ब्रह्मा ,विष्णु, एवं शिव की मूर्तियाँ ही प्रतिष्ठित की गई हैं। देवताओं के प्रवेश द्वार पर शिला चित्रों के बीच में स्थान-स्थान पर तप निरत साधकों की मूर्तियाँ बनाई गई है।द्वारपार्श्वों के आधार पर सामान्यतया सरिता देवियों के रूप में अपने वाहनों के साथ गंगा, यमुना, तथा अन्य जलचरों की मूर्तियाँ बनी हैं। जैन मंदिरों के भीतरी भाग में ऐसी ही जैन आख्यानों पर आधारित देवताओं की मूर्तियाँ बनाई गई हैं। ऐसी मूर्तियाँ कालिंजर, मड़फा दोनों जगह उपलब्ध हैं। इसके अलावा तीर्थांकारों की मूतियाँ प्रतिष्ठित की गई हैं। कहीं-कहीं पर विविध देवता, अस्त्र-शस्त्र, ढाल, त्रिशूल, कृपाण, अंकुश, पताका, बाण, धनुष, तलवार आदि से सुसज्जित हैं।

दूसरी मूर्तियाँ वह हैं जो भीतरी मण्डप तथा अर्ध मण्डप के अंलकरण के लिए निर्मित की गई है। ये मण्डप तथा महामण्डप परिपुष्ट एवं अलंकृत स्तम्भों पर बने हैं। स्तम्भों के नीचे का भाग तो सादा है किन्तु शीर्ष भाग बेल-बूटों, लता-बितानों से अलंकृत है। उसी के बीच-बीच यक्षणियो की मूर्तियाँ हैं। अनेक मूर्तियों का निर्माण मण्डप स्थलों, प्रवेश द्वारों पर भी किया गया है। देवताओं की अनेक मूतियाँ प्रतिष्ठा स्थलों के सामने देवतायन के समक्ष मंदिर के भीतरी भाग में निर्मित की गई हैं। इनका प्रयोजन रचना व अलंकरण मात्र नहीं है।

तीसरी प्रकार की वह मूर्तियाँ हैं जो मंदिर के बाहरी भित्ति पर कटि भाग के ऊपर बनीं हैं। इन मूर्तियों की क्रम से तीन पंक्तियाँ है, जिनका निर्माण विशेष चौड़ाई के साथ किया गया है। प्रथम पंक्ति में हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ है। दूसरी पंक्ति में दिग्पालों और स्त्री-पूरूष के वेश में नाग देवों की मूर्तियां हैं। तीसरी श्रेणी में अप्सराओं और सामान्य नारियों की मूर्तियाँ हैं। तीसरी श्रेणी की मूर्तियाँ सभी प्रकार से रति विषयक हाव-भाव प्रदर्शित करती है। इनमें मुख्य रूप से "वात्स्यायन" कृत कामसूत्र का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। धार्मिक स्थलों में कामसूत्र से युक्त मूर्तियों का निर्माण क्यों किया गया? इतिहासकारों के लिए यह विचारणीय प्रश्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन मूर्तियों का प्रचार-प्रसार युग व्यापक प्रवृत्ति के आधार पर हुआ है। कोई न कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अवश्य होगी।

आध्यात्म के अनुसार जीवन के चार उद्देश्य अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष बतलाये गये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि काम भावनाऐं भी भौतिक सुख का एक ससांधन रही हैं। देवालयों पर काम का प्रदर्शन ऐहिक जीवन में आध्यात्म के समन्वय का संकेत है। यद्यपि लोग इसे अश्लीलता की दृष्टि से देखने लगे हैं। प्रसिद्ध विद्वान श्री वी0 एल0 धाम ने इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं ऐसी नारी मूर्तियाँ के सम्पर्क में या निकट स्थापित तपस्यिों के विमोहन के लिए ऐसी रति प्रधान मूर्तियाँ निर्मित की गई पाश्चात्य विद्वानों का मत इससे भिन्न है। गर्भगृह में जो मूर्तियाँ मिलती हैं वे अराध्य देव की हैं। इस स्थल में किसी प्रकार की कुत्सित मूतियाँ प्राप्त नहीं होती।स्पष्ट रूप से यह दृष्टिगोचर होता है कि जब व्यक्ति भौतिक सुखों एवं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन से ऊब जाये तब उसे आराध्य देव का सहारा लेना चाहिए। इस क्षेत्र में जो मूर्तियाँ प्राप्त होती है, उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भी पूर्ण विचार किया जाना चाहिए। ये मूर्तियाँ धर्म तथा दर्शन का अभिव्यक्तिकरण करती है किन्तु कला के माध्यम से किसी विशेष घटना का उल्लेख नहीं करतीं । इतिहासकार भागवतशरण उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में जो समाधान प्रस्तुत किये हैं वे ऐतिहासिक तथ्यों से युक्त हैं।[99]

जहां तक मूर्ति निर्माण शैली का प्रश्न है चन्देलकालीन मूर्तिकला एवं शिल्प निष्प्रभ तथा साधारण नहीं है जैसा कि जनरल कनिघंम का मत है[100] हिन्दू देवताओं तथा देवियों का प्रतिनिधित्व भिन्न-भिन्न स्थितियों व स्वरूपों के अनुसार किया गया है। उनकी विशुद्धता और यथार्थता ने बहुत अर्थो में मध्यकालीन अन्य सभी शिल्प मूर्तिकला को पीछे छोड़ दिया है। अलंकरण की रीति भी कम चित्ताकर्षक नहीं है। इससे यह धारणा प्रकट होती है कि कोई भी दर्शक इन मूर्तियों की आलोचना न कर सके। गर्भगृह में स्थापित मूर्तियों की आराधना एवं पूजा होती थी। इसलिए कोई भी व्यक्ति शोभाहीन नही कह सकता। यदि मूर्ति कला की तुलना चित्रकला से की जाय तो मूर्तिकला चित्रकला से अधिक कठिन है इस हस्त कौशल में शारीरिक श्रम, विज्ञान की गहरी जानकारी आवश्यक होती है। यदि चन्देलयुगीन मूर्तियों का परीक्षण इस आधार पर किया जाये तो हमें यह ज्ञात होगा कि मानव मूर्तियाँ मानवेत्तर मूर्तियों के निर्माण में मूर्तिकार

ने श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। कालिंजर दुर्ग में सहस्रलिंगी शिव, नन्दीश्वर और वाराह की मूर्तियां इसके उत्कृष्ट उदाहरण है। मूर्ति निर्माण में जिस विचित्र कला कौशल का परिचय दिया गया है उससे यह सिद्ध होता है कि वास्तव में देव मानवों से श्रेष्ठ तथा मानवों के शुभचिंतक हैं। कतिपय स्थानों पर साधना, मंत्र, कल्प तथा योग मुद्राओं के दर्शन होते हैं। कालिंजर में उपलब्ध मिढ़की भैरव की मूर्ति इसका स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। कालिंजर में ही सिधौरा के निकट गणेश प्रतिमा उपलब्ध हुई है। वह भी कला का उत्कृष्ट नमूना है।[101]

यदि कालिंजर की मूर्तिकला की तुलना खजुराहो व अन्य स्थलों से की जाये तो यह किसी भी प्रकार से गुणवत्ता की दृष्टि से कम नहीं है। इस समय मूर्तिकला में गुप्त शैली, गुर्जर प्रतिहार शैली, चंदेल शैली प्रचलित थी। जिसमें अलंकरण भाव भंगिमा की प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से चंदेल शैली सर्वश्रेष्ठ है। इस क्षेत्र में देव मूर्तियाँ, मानव मूर्तियाँ और पशु-पक्षियों तथा नागों की मूर्तियाँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती हैं। यह सभी मूर्तियाँ राजा अमान सिंह महल में बने संग्रहालय में देखी जा सकती हैं। चन्देल युग के पश्चात लगभग प्रस्तर मूर्तियों का युग समाप्त सा हो गया है। इसके अतिरिक्त बने देवालयों में धातुओं की मूर्तियाँ स्थापित की गई जो विभिन्न धातुओं से निर्मित हुई हैं। अलंकरण की दृष्टि से यह मूर्तियां बहुत सराहनीय है। कालिंजर के मंदिरों में धातु मूर्तियां उपलब्ध है अधिकांश मूर्तियां बुन्देला शासनकाल की प्रतीत होती है। गुढ़ा, पाथरकछार, कालिंजर में अनेक ऐसे मंदिर देखे जा सकते है।

5. जलाशय निर्माण शैली-

चंदेलयुग में जल की आपूर्ति के लिए यहां के नरेशो ने सर्वाधिक धनराशि व्यय की। अनेक स्थलों पर जलाशयों का निर्माण कराया। ऐसे विभिन्न प्रकार के जलाशय कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक स्थलों पर विद्यमान हैं इनमें से बहुत जलाशय कला की दृष्टि से उत्कृष्ट तथा साथ ही वे नगरीय बस्तियों के लिए जलापूर्ति के साधन है ये जलाशय भूमि की बनावट के अनुसार निर्मित हुए है। जहां कहीं भूमि नीची है तथा दो पर्वतों के बीच का मैदानी भाग है एवं जहां कहीं नदी तथा नाले जलापूर्ति कर सकते हैं उसी स्थल को जलाशय की रचना के लिए चुना गया है। कहीं-कहीं पर दो छोटी -मोटी पहाड़ियों को बांधकर जलाशय की रचना कर दी गई। इन जलाशयों में वर्षा का जल एकत्र कर लिया जाता था और मध्यवर्ती नालों को बन्द कर दिया जाता था जिससे तालाबों की रचना स्वतः हो जाती थी।

कालिंजर में उपलब्ध जलाशय विशाल एवं मजबूत है उनके तटों में स्नान के लिए मनोहर घाट एवं देवलयों की रचना की गई है। कालिंजर दुर्ग के ऊपर अनेक जलाशय उपलब्ध होते हैं। इन जलाशयों में वृद्धक क्षेत्र का जलाशय, कोटितीर्थ ताल, रामकटोरा ताल, बिजरी तलइयां, शनीचरी तलइयां, मजार ताल, मृगधारा, पाण्डव कुण्ड, पाताल गंगा आदि प्रमुख जलाशय है।कालिंजर के निचले भाग में गोपाल ताल तथा बेलाताल जैसे जलाशय प्राप्त होते है।

प्रसद्धि इतिहासकार डा0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय[102] इस परिक्षेत्र के तालाबों के संदर्भ में कहते है कि रसिन का अधिक ताल बहुत ही सुन्दर बना है।[103] यह ताल रसिन की एक छोटी पहाड़ी पर निर्मित है वैसे तो यह कहावत है कि रसिन परिक्षेत्र में कुल मिलाकर 80 तालाब थे, जिनमें से जनरल कनिंघम ने 19 तालाबों की पुष्टि की थी।[104]

कालिंजर दुर्ग का स्वर्गारोहण ताल भी सरोवर निर्माण कला की दृष्टि से एक उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत है। इस कुण्ड के दाहिनी ओर कालभैरव की विशाल मूर्ति है। यह मूर्ति 24 फिट ऊँची है तथा दोनों पैर पानी के अन्दर है। यह तालाब 17 फिट चौड़ा है। मुगलकालीन इतिहासकार अबुल फजल ने इसकी तारीफ की है।[105] कालिंजर का पाताल गंगा सरोवर भी एक गुफा के अन्दर बना हुआ है इसमें निरन्तर पानी निकलता रहता है और दीवारों से टकराता है। कालिंजर का अन्य सरोवर जो पाताल गंगा के निकट है पाण्डु कुण्ड के नाम से जाना जाता है। इस कुण्ड का व्यास 13 फिट है। इसका निर्माण चट्टान काटकर किया गया है। इससे थोड़ी दूर वृद्धक क्षेत्र अथवा बुड्ढ़ा-बुढ़िया ताल है। इसमें जल के समीप पहुंचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई है। राजा अमान सिंह महल से कुछ दूर पर मृगधारा नामक जलाशय है। इस स्थल पर सदैव पानी निकलता रहता है। राजा अमान सिंह महल के सन्निकट कोटितीर्थ तालाब भी है। यह तालाब 100 गज लम्बा है। जल स्तर तक पहुंचने के लिए इसमें अनेक घाट बने है इसके अतिरिक्त मड़फा में भी दुर्ग के ऊपर अनेक जलाशय है इसी प्रकार के जलाशय रौला गोंड़ा, बिलहरिया मठ के समीप है वीरगढ़ की पहाड़ी पर सुन्दर जलाशय उपलब्ध है। इन जलाशयों से कालिंजर की तड़ाग निर्माण शैली का बोध होता है।[106]

6. साहित्य एवं संगीत-

अति प्राचीनकाल से हृदय की भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए साहित्य को सर्वोत्तम कला का स्थान दिया गया है। इस कला के माध्यम से व्यक्ति बिना किसी संसाधन का प्रयोग किये अपने विचारों की अभिव्यक्त बहुत ही सुन्दर ढंग से कर लेता था। जब से भाषा का निर्माण हुआ और प्राचीन ग्रंथों के रूप में वेदों को सर्वोत्कृष्ट रचना व कृति माना गया उस समय से साहित्य निरन्तर प्रचलित भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त का साधन बना रहा। प्राचीन काल में अभिव्यक्त सूक्तों एवं श्लोकों के माध्यम से होती थी। जब इस कला का विकास हुआ उस समय इसकी अनेक विधाएं निर्मित हुई। इनमें काव्य कला को सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ। काव्य कला वह कला है जिसमें व्यक्ति मनोग्राही शब्दों के माध्यम से प्रतीकों का सहारा लेता हुआ मनोभावनाओं को अभिव्यक्त करता है। काव्य कला के पश्चात आख्यानों तथा नाटकों का जन्म हुआ। भरत मुनि के द्वारा नाट्यशास्त्र की रचना हुई। उसके पश्चात संस्कृत तथा अन्य भाषा के विशिष्ट विद्वानों ने अति सुन्दर नाटक लिखे, ये नाटक सुखान्त, दुखान्त तथा प्रसादान्त होते थे। नाटकों के माध्यम से भावनाओं का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया जाता था। इसके पश्चात कहानी, निबन्ध और कथाओं का जन्म हुआ, यह कला केवल एक क्षेत्र में विकसित नहीं हुई बल्कि सम्पूर्ण विश्व में इसका

विकास हुआ।

कालिंजर परिक्षेत्र में वेदों के रचना काल से ही साहित्य सृजन का उदय हुआ। वेदों के सूक्तों को रचने वाले अनेक ऋषि कालिंजर परिक्षेत्र के ही हैं। इनमें बृहस्पति, नारद, अगस्त्य , मार्कण्डेय, सुतीक्ष्ण, सारंग, बामदेव तथा दधीचि थे। इनका उल्लेख पुराणों में अनेक स्थलों पर हुआ है। अतः स्पष्ट है कि अति प्राचीन काल से ही कालिंजर परिक्षेत्र साहित्य की धारा प्रवाहित करता रहा है।

चंदेल युग के अभ्युदय तक सम्पूर्ण भारत वर्ष में प्रदेशीय भाषाओं का उदय हो चुका था।इसलिए प्रत्येक साम्राज्य की स्थापना के साथ संस्कृत भाषा का पुनरूत्थान हुआ। इसके साथ प्राकृतिक भाषायें महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची का भी उदय हुआ। सन् 800 ईसवीं से लेकर सन् 1000 ईसवी के बीच भाषाओं का विकास हर भागों में हुआ। इसके पहले अपभ्रंश भाषायें शताब्दियों तक जनता की मातृ भाषायें थी।

चंदेलों के साम्राज्य में स्थानीय प्रयोगों को अपनाती हुई पश्चिमी हिन्दी विकसित हो रही थी। इस संदर्भ में अरब यात्रियों का कथन है कि भारत वर्ष में अनेकानेक भाषायें थी। मध्ययुगीन भारत के लिए यही यथार्थ है। चंदेलयुग में पश्चिमी हिन्दी से बुन्देलखण्डी भाषा अपना पृथक अस्तित्व बना रही थी। इस साम्राज्य के अधिकांश भाग में बुन्देलखण्ड भाषा अपनी स्थानीय बोलियों के साथ 11वीं 12वीं सदी में विकसित हो रही थी। यह भाषा उत्तर प्रदेश के वर्तमान जिले बाँदा, हमीरपुर, जालौन, झाँसी और ललितपुर तथा मध्य प्रदेश के जबलपुर, सागर और दमोह जिले, ग्वालियर राज्य का सम्पूर्ण पूर्वी भाग, बघेलखण्ड का पश्चिमी भाग, प्रयाग जिले का गंगापार वाला भाग, भोपाल तथा सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के भाग में बोली जाती है। चन्देल साम्राज्य के भीतर ही भदावरी, ब्रजभाषा तथा मालवी भाषा का भी विकास हो रहा था। कालिंजर परिक्षेत्र में जिस बुन्देलखण्डी भाषा का विकास हुआ वह मुख्य रूप से बघेली, कुड़री, कोल्हाई, जाड़, जूड़र आदि भाषाओं का विकास हुआ।

विन्ध्य क्षेत्र के प्राकृतिक सौन्दर्य ने साहित्यकारों को साहित्य सृजन के लिए प्रेरित किया। इसके सौन्दर्य को देखकर कवियों के ह्रदय से अनायास ही साहित्य धारा निकल (फूट) पड़ती है। जिन कवियों ने लोक प्रियता प्राप्त की उनमें केशव, हरिराम, महात्मा, अक्षर, बिहारी, पद्माकर, लाल, ठाकुर, धर्मदास , रींवा नरेश, रघुराज, सिंह तथा छत्रसाल ने साहित्य में अपना स्थाई स्थान बनाया। हिन्दी रचना के जिस स्वरूप को अपनाया गया वह बड़ा ही सबल था। इसमें अवधी और ब्रज का विशेष महत्व रहा। इस युग में रचनाकारों के साहित्य के अतिरिक्त लोकगीत ग्राम साहित्य की रचना हुई। इस साहित्य के माध्यम से सामाजिक जीवन के वास्तविक स्वरूप को दर्शाया गया। यहां की भाषा में मन को मस्त कर देने वाली लोकोक्तियां, व्यंग कहनोत, टहूका और अहाना की रचना हुई। जगनिक के आल्हखण्ड में इसके अनेक उदारहरण उपलब्ध हो जाते हैं।

पहले लिखी जाने वाली भाषा की लिपि भिन्न-भिन्न थी। संस्कृत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी से अन्य प्रान्तीय भाषाओं की लिपियों का उदय हुआ। अनेक दानपत्रों, अभिलेखों तथा सिक्कों से यह प्रमाणित होता है कि चंदेलों के समय में जो लिपि यहां प्रयोग में लायी जाती थी वह नागरी लिपि थी। संस्कृत भी नागरी लिपि में लिखी जाती थीं चन्देलों के सभी दानपत्रो, अभिलेखों और सिक्कों पर नागरी लिपि ही अंकित है। इस संदर्भ में और अधिक प्रमाण अल्बरूनी से प्राप्त होते हैं वह कहता है कि मालवा में एक दूसरी लिपि थी जिसको नागर कहते थे। यह पूर्वी हिन्दी की लिपि से केवल रूप में भिन्न थी।

प्रादेशीय भाषा में जो इस क्षेत्र का साहित्य उपलब्ध होता है, वह सब काव्य में है। इस काव्य को विषय सामग्री आश्रय दाता की दानशीलता, युद्ध कौशल, शौर्य तथा पराक्रम और अकथनीय गुणों की अभिव्यक्ति अतिश्योक्ति के रूप में उल्लखित है। परमार्दि देव के दरबार में प्रमुख कवि गदाधर था। वह उसके यहां संधिविग्रहिक भी था।[107] इस युग में कवि युद्ध क्षेत्र में जाता था और आश्रय दाता का उत्साह वर्धन करता था। इसी प्रकार एक कवि पृथ्वीराज के यहां था, जो चन्दवरदाई के नाम से विख्यात था। इस युग में काव्य का स्थान अत्यन्त उच्चकोटि का हो गया था। चंदेल वंश का प्रसिद्ध शासक गण्ड देव और महमूद गजनबी के बीच सन् 1005 ई0 में जब संधि सम्पादित हो रही थी, तब उसने महमूद की प्रशंसा में बड़ी ललित और ओजपूर्ण भाषा में एक हिन्दी कविता स्वयं रचकर प्रस्तुत की थी। महमूद उसके भावों से बहुत प्रभावित हुआ था।[108] चंदेल राजाओं ने हिन्दी भाषा के लिए बहुत प्रयत्न किये। इस प्रकार के ग्रंथ राजकीय संग्रहालयों में सुरक्षित रखे जाते थे जिनमें प्रमुख रूप से शासकों की विरूदावलि भरी रहती थी। सुरक्षा के अभाव में यह ग्रंथ नष्ट हो चुके हैं। मुख्य रूप से दो प्रकार की रचानाएं उपलब्ध होती हैं। इन्हें लघु महाकाव्य तथा गाथागीत के नाम से जाना जाता है। इस युग का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'खुमानरासो' प्रतीत होता है। इस युग कें कवियों में सृजन शक्ति का उदय हुआ। शासकों की राजसभा संस्कृत और हिन्दी कवियों से भरी रहती थीं। इनके दरबार के प्रमुख कवि गदाधर, माधव[109], राम[110] और नन्दन सुकवि नाम से विख्यात थे। इनकी राजसभा में प्रसिद्ध चिकित्संक तथा व्याकरण, देह युग के विद्वान शिरोमणि थे। संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध नाटककार 'कृष्ण मिश्र', कीर्तवर्मन की राजसभा के सदस्य थे। इन साहित्कारों में कितने ही हिन्दी एवं संस्कृत के विद्वान थे। कवि जगनिक राजा परमार्दिदेव के दरवार की शोभा बढ़ाते थे। उसने लोकप्रिय आल्हखण्ड तथा महोबाखण्ड की रचना की। परम यशस्वी राजा गण्डदेव भी राजनन्द नाम से कविता किया करते थे। चंदेल नरेशों ने विद्वानों, पण्डितों और ब्राह्मणों के उदर पालन हेतु अनेक प्रकार के दान दिये थे।[112] प्रबोधचन्द्रोदय से यह बात स्पष्ट होती है कि चंदेल नरेश पांडित्य की कसौटी के लिए प्रतियोगिताओं का आयोजन करते थे।[113] साहित्यिक आयोजन राजकीय तौर पर होते थे तथा उत्कृष्ट रचनाओं के लिए पुरस्कृत किया जाता था। चंदेलों ने साहित्य विकास के लिए जो दिया वह चिरस्मरणीय है। इसके अतिरिक्त दर्शन, धर्म, राजनीति आदि विषयों पर ग्रंथों की रचना हुई। गण्डदेव का पिता धंग देव

कवि नहीं था किन्तु वह विद्धानों का आदर करता था। परमार्दि देव स्वतः हिन्दी का विख्यात कवि था।[114]
कीर्तिवर्मन का सचिव
और योद्धा गोपाल भी एक अच्छा साहित्यकार था।

इस युग में हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत में भी रचनायें हुईं। इस समय मुख्य रूप से मौलिक ग्रंथ लिखे गये जिनका विषय अलंकार, काव्यांग, दर्शन, धर्मशास्त्र, न्याय, व्याकरण, आयुर्वेद एवं संगीत था। इस युग के हिन्दुओं की साहित्यिक प्रतिभा का वास्तविक विकास हुआ। इस युग के अनेक ग्रंथ नष्ट हो गये हैं किन्तु जो भी रचनायें उपलब्ध हुई वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है इस युग में धार्मिक ग्रंथों की रचना भी हुई। सन् 926 ई0 में 'उत्पलदेव' ने 'स्तोत्रावलि' की रचना की। इसी युग में विष्णु की उपासना में वैष्णव-कुल-शेखर ने मुकुन्दमाला की रचना की। ग्यारहवीं सदी में रीलासुक ने कृष्ण-कर्णामृत की रचना की यह भारतवर्ष की प्रसिद्ध रचना बनी। बारहवीं शताब्दी में कुछ कवियों ने कृष्ण की स्तुतियां लिखीं, इनमें लक्ष्मण सेन के सभासद महाकवि जयदेव के समकालीन थे। इस युग में कुछ रचनाओं का संग्रह भी हुआ। यह साहित्य, नीति, गर्भ और उपदेशात्मक था। कुछ ग्रंथ ऐसे भी लिखे गये जो साहित्यिक भी थे। इनमें से आख्यायिकाओं की रचना सन् 1100 से लेकर 1199 के मध्य में हुई। इस युग के प्रसिद्ध लेखक सोमदेव ने अपना कथासरितसागर ग्रंथ सन् 1063 ई0 से सन् 1081 ई0 के मध्य लिखा। इस युग में प्राचीनतम् चम्पूकाव्य दमयन्ती कथा पर कम्पूनाम से लिखा गया। श्री कृष्ण चन्द्र ने प्रबोधचन्द्रोदय की रचना की। इस नाटक का मंचन सम्राट कीर्तिवर्मन के दरबार में हुआ जिसका निर्देशन गोपाल ने किया। इस नाटक में सम्राट विवेक और साम्राज्ञी धर्म जो एक दूसरे के विरोधी थे अंत में जाकर एक हो जाते है। एम0 सिल्वन लेवी ने इस नाटक की अच्छी समीक्षा प्रस्तुत की है।[115] इस युग में साधु हेमचन्द्र ने सन् 1088 से सन् 1172 तक कुमारपाल चरित की रचना की। यह नाटक प्राकृत भाषा में लिखा गया। अनेक चंदेल दानपत्रों, अभिलेखों में उत्कृष्ट काव्य की पंक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। कालिंजर में नीठकण्ठ मन्दिर में उपलब्ध अभिलेख में अति सुन्दर श्लोक अंकित हैं। इस युग में निम्न धार्मिक ग्रंथों की रचना की गई -

1. विश्वरूप बाल कृष्ण.......याज्ञवल्क्य स्मृति पर।
2. मेधातिथि................मनुस्मृति पर।
3. धारेश्वर भोजदेव........।
4. देवस्वामिन् ....निबन्ध रूप में एक ग्रंथ।
5. योगलोक..............व्यवहार और काल पर।
6. भुवदेव भट्ट..........व्यवहार तिलक की रचना।
7. पाविजात ......दान के ऊपर एक ग्रंथ।
8. गोविन्दराज.......स्मृति-मंजरी ग्रंथ की रचना इत्यादि हैं।

इनके अतिरिक्त भी अनेक ग्रंथें की रचना हुई, जैसे- ऋण-प्रत्युद्धार, निक्षेप, विक्रय, सहकारिता, दान-प्रत्याख्यान, वेतन-अदान, क्रय-विक्रय, प्रत्याख्यान, स्वमी-भूत्य-ग्विाद, उत्तराधिकार कार और विभाजन हैं। इसके पश्चात शब्दकोष, आयुर्वेद, ज्योतिः शास्त्र और ललित कलाओं पर अनेक ग्रंथों की रचनायें हुई। महाराज भोजदेव ने समरांगण-सूत्रधार की रचना की। इसके अतिरिक्त स्थापत्य पर पुस्तकें लिखी गई। जिसमें नगर निर्माण, यंत्र-विज्ञान ग्रंथ प्रमुख थे। कामशास्त्र पर भी ग्रंथों की रचना हुई। संगीत तथा नृत्य पर पुस्तकें लिखी गईं। इस युग के प्रमुख ग्रंथों में काव्य प्रकाश, प्रबोधचन्द्रोदय, सिद्धान्तशिरोमणि , नैषध, जयदेव कृत गीतगोविन्द प्रमुख ग्रंथ माने गये हैं। इस युग के भोज, मम्मट, भाष्कर, रामानुज, कृष्ण मिश्र, जयदेव आदि प्रमुख लेखक एवं कवि थे।[116]

हिन्दी साहित्य को मुख्य रूप से चार युगों में विभाजित किया गया हैं। इन्हें वीरगाथा काल, भक्ति काल, रीतिकाल तथा आधुनिक युग ने नाम से पुकारा गया है। इस क्षेत्र में सल्तनत काल से लेकर रीतियुग तक बहुत ही अच्छा साहित्य लिखा गया। कुछ कवियों का उल्लेख प्रसिद्ध इतिहासकार दीवान प्रतिपाल सिंह ने भी अपने ग्रंथ में किया है जो कालिंजर परिक्षेत्र के ही है-

1.राजानंद (भंड) चंदेल, कालिंजर-ये चन्देलवशं के प्रख्यात सम्राट थे। संवत् 1074 में छन्द लिखे!

2.रामकृष्ण चौबे (हित) ब्राह्मण, कालिंजर-पन्ना नरेश हृदय शाह से राजा अमान सिंह के समय तक किलेदार थे। इन्होंने विक्रमी संवत् 1810 से 1850 के मध्य स्फुट 16 ग्रंथ, सतसई पद्य टीका, कृष्णचन्द्रिका विनयपचीसी आदि लिखी।

3. शिवप्रसाद कायस्थ, कालिंजर, पालदेव, संवत् 1855।

4. परमेश्वरीयदास कायस्थ, कालिंजर पालदेव, चौबे नाथूराम, पालदेव के जागीरदार थे। लगभग विक्रमी संवत् 1890 में स्फुट लिखे।[117]

बहुत से ज्ञात-अज्ञात साहित्यकारों की रचनायें बाँदा के छत्रसाल संग्रहालय में हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हैं। इसके अलावा कालिंजर में कुछ हस्तलिखित ग्रंथ वैद्य श्यामबिहारी छिरौलिया के यहां भी हैं। कुछ मूल्यवान साहित्यिक सामग्री पथरापालदेव और पाथरकद्दार के जागीदारों के यहां भी संग्रहीत हैं। इस परिक्षेत्र में साहित्य सृजन आज भी जारी हैं। मुख्य रूप से गोवर्धन दास त्रिपाठी, श्री वासुदेव त्रिपाठी, श्री हरिप्रसाद शर्मा, श्री जवाहरलाल जलज, श्री चंद्रिका प्रसाद ललित, डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे, कन्हैयालाल अग्रवाल तथा श्री राधा कृष्ण बुन्देली इस क्षेत्र के जाने पहचाने साहित्यकार हैं। इस क्षेत्र में रीति बद्य काव्य तथा स्वतंत्र काव्य की रचनायें हुई। अन्य विधा के साहित्यिक ग्रंथ उपन्यास, कहानी आदि रची गई। इस क्षेत्र में बाल्मीकि तथा तुलसी के साहित्य का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। रचनाकाल की दृष्टि से यहां पर रचा गया साहित्य बहुत ही उच्चकोटि का है।

7. संगीत-

कालिंजर परिक्षेत्र में संगीत का विकास मनोरंजन और शिक्षा की दृष्टि से हुआ। यहां के राजाओं ने अभिनय कला पर पर्याप्त बल दिया तथा उसका मंचन अनेक स्थलों पर किया गया। श्री कृष्ण मिश्र द्वारा रचित 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक का मंचन सम्राट कीतिवर्मन के राजदरबार में हुआ। इसका निर्देशन सामंत गोपाल ने किया। यह नाट्य शास्त्र का मर्मज्ञ और रसिक व्यक्ति था। नाटक में अभिनय, वस्त्राभरण रंग व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था और संगीत व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इन सबका समन्वय किया जाता है जबकि इस समय साधनों का पर्याप्त अभाव था। उस समय भी देश में राष्ट्रीय रंग शालाओं के विकास हुआ। रंग शाला में भीतर-बाहर के प्रकोष्ठ युद्ध क्षेत्र आदि रंग मंच पात्रों द्वारा ध्वस्त हो जाते थे। पात्र स्वयं अपने अभिनय और बातचीत से उसका संकेत कर देते थे।[118] इस युग में नृत्य और गायन का विकास हुआ और अभिनय के साथ-साथ नृत्य भी नाट्य कला का अंग माना जाने लगा। सार्वजनिक स्थान और गोष्ठी गृहों ऐसी कलाओं का प्रदर्शन होता था। सार्वजनिक विनोद के रूप में संगीत तथा नृत्य उत्तम कला मानी जाती थी। इस युग में संगीत सर्वाधिक लोकप्रिय था। विद्वान संगीतकारों ने संगीत को अनेक वर्गों में विभाजित किया तथा नाटकों में संगीत के लिए समय दिया जाता था।[119]

नीलकण्ठ मंदिर में नृत्य के लिए एक नृत्यांगना नियुक्त की गई थी, जिसका नाम महानचनी पद्मावती था।[120] उपरोक्त ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि कालिंजर परिक्षेत्र में नृत्य, गायन, वादन की परम्परा अति प्राचीन है।[121] जब इस क्षेत्र में बधेलों का राज्य स्थापित हुआ तथा कालिंजर परिक्षेत्र राजा रामचन्द्र बधेल के अधिकार में आया, उस समय प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन इसी के दरबार में रहता था। बाद में सम्राट अकबर को तानसेन सौंप दिया। यहां पर दो प्रकार की गायकी थी। प्रथम गाइकी में शास्त्रीय गायन, पखावज वादन एवं मृदंग वादन शामिल था। दूसरी गाइकी में लोकसंगीत शामिल था। यह लोक संगीत विभिन्न जातियों में अलग-अलग था। इसमें अहिरों की दिवारी, अन्य व्यक्तियों का फाग गायन और यहां रहने वाली आदिवासी जातियों का लोक संगीत शामिल था। ढीमरों की ढिमरियाई, हुड़क, स्वांग आदि अधिक लोकप्रिय संगीत विधायें थी। धोबियों का कन्डारा नृत्य भी काफी प्रिय था। संगीत और गायन हमारी लोक संस्कृति से जुड़ा था। विवाह आदि अवसरों पर इसका प्रदर्शन बहुत अच्छा होता था। यह गायन विधा संस्कारों और विवाहों से जुड़ी थी। इसका स्वरूप आज भी यहां के लोक जीवन में देखा जा सकता है यद्यपि इसमें समसामयिक परिवर्तन हुआ है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. आक्सफोर्ड डिक्शनरी ।
2. राधा कृष्णन्, स्वतंत्रता और संस्कृति, अनुवाद विश्वम्भर त्रिपाठी, पृ0 53 ।
3. गैरोला, वाचस्पति, भारतीय संस्कृति और कला, लखनऊ, पृ0 660 ।
4. शास्त्री, मंगलदेव, भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा), वाराणसी, पृ0 4 ।
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, अशोक के फूल, (निबन्ध संग्रह), इलाहाबाद, 1985, पृ0 75 ।
6. विद्यालंकार, सत्यकेतु, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, नई दिल्ली, 1994, पृ0 19 ।
7. राय, बाबू गुलाब, भारतीय संस्कृति, आगरा, 1968, पृ0 4 ।
8. निगम, एम0 एल0, कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड, दिल्ली, 1983, पृ0 6, 192 ।
9. त्रिवेदी, एस0 डी0, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, प्रथम संस्करण, झाँसी, 1984, पृ0 9 ।
10. ऋग्वेद ।
11. बाल्मीकि, रामायण, उत्तरकाण्ड, 38, 39, 40, पृ0 1598 ।
12. वेदव्यास, महाभारत, वनपर्व, अध्याय 85, पृ0 1205-1206 ।
13. बाँदा गजेटियर, लखनऊ, 1977, पृ0 33 ।
14. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, बनारस, 1961, पृ0 47-48 ।
15. बाणभट्ट, कादम्बरी, प्रथम भाग, बनारस, 1997, पृ0 67-75 ।
16. जगनिक, आल्हखण्ड, चन्दवरदाई, पृथ्वीराजरासो, लालकवि, छत्रप्रकाश ।
17. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 57, 58 ।
18. वही, पृ0 73-75 ।
19. धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मोधारयति प्रजाः।

    यत् स्यात् धारसंयुक्तं, स धर्म इति निश्चयः।।

    महाभारत, कर्णपर्व, 69, 58 ।
20. हिन्दू धर्मकोष, पृ0 339 ।
21. चट्टोपाध्याय, सतीशचन्द्र एवं दत्त, धीरेन्द्र मोहन- सम्पादक, भारतीय दर्शन, पटना, 1982, पृ0 251।
22. पद्मपुराण, पातालखण्ड, उमा-महेश्वर संवाद, श्लोक 4, 15 ।
23. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ0 138 ।
24. देवी भागवत पुराण, पृ0 6 ।
25. मिश्र, केशवचन्द, चन्देल और उनका राजत्व काल, वाराणसी, विक्रमी सम्वत् 2011, पृ0 208 ।
26. बाजपेयी, के0 डी0 हिस्ट्री ऑफ मेडिवल इण्डिया, भाग 3, पृ0 415 ।

27. जगनिक, आल्हखण्ड, वन्दना ।

28. गणेशपुराण, पृ0 23 ।

29. रामपूर्वतापिन्युपनिषत् श्लोक 7 ।

30. छान्दोग्य उपनिषद, 1, 3, 1 ।

31. मैत्रा, 5, 3 ।

32. मत्स्यपुराण, 68, 41 ।

33. श्रीमद्भागवत्, 5, 20, 46 ।

34. मंत्रमछा0 गायत्रीतंत्र ।

35. ऋकसंहिता, 5, 3, 3 ।

36. गुरु शंकराचार्य, हनुमानतत्व, पृ0 15 ।

37. बाल्मीकि, रामायण, सर्ग 76, श्लोक 42, पृ0 1048 ।

38. सिंह, दीवान प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम भाग, बनारस, विक्रमी सम्वत्, 14 फरवरी सन् 1929ई0, पृ0 218 ।

39. वही, पृ0 216-222 ।

40. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 204, 249 (अरब इतिहासकार, ए-इद्रीसी के विचार, ग्यारहवीं शताब्दी)।

41. कनिंघम, आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 2, पृ0 429 ।

42. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 210 ।

43. पद्मपुराण, आदिपर्व, 39, 52-53,: महाभारत, वनपर्व, अध्याय 85, 56, 57, पृ0 1205 ।

44. महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा, 87, 20,21 ।

45. कालंजर महात्म्य, 1, 30-32 ।

46. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 21, पृ0 34, ए प्लेट 10 ए ।

47. त्रिवेदी, एस0 डी0, पूर्वो0, पृ0 83 ।

48. अबुलफज़ल, आइने अकबरी, भाग 2, कलकत्ता, 1949, पृ0 29 ।

49. सुल्लेरे, सुशील कुमार, अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाएँ, दिल्ली, 1987, पृ0 21 ।

50. वही ।

51. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 21, पृ0 20 ।

52. सुल्लेरे, सुशील कुमार, पूर्वो0, पृ0 21 ।

53. पद्मपुराण, पातालखण्ड, उमा-महेश्वर संवाद, श्लोक 17 ।

54. वही, अध्याय 4 ।
55. हरिवंशपुराण, अध्याय 21, 24-26 ।
56. वही, 1-28 ।
57. भागवतपुराण, पांचवां स्कन्द, अध्याय 18, पृ0 89 ।
58. पद्मपुराण, पातालखण्ड, उमा-महेश्वर संवाद, श्लोक 18 ।
59. महाभारत, वनपर्व, अध्याय 85, 56, 57, पृ0 1205 ।
60. गुप्ता, भगवानदास, मस्तानी-बाजीराव और उनके वंशज बाँदा के नवाब, ग्वालियर, 1983, पृ0 63।
61. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण, प्रयाग, 1968, पृ0 199 ।
62. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 21, पृ0 17 ।
63. वही, पृ0 16,17 ।
64. वही, पृ0 15, 16 ।
65. रसिन का प्राचीन नाम 'राजवासिन' भी है, जिसका उल्लेख एक शिलालेख में भी मिलता है, कहा जाता है कि वहां परमार्दिदेव का शाही निवास था ।
66. अग्रवा़ल, कन्हैयालाल, विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सतना, 1987, पृ0 146 ।
67. कनिंघम, पूर्वो0, पृ0 98, 99 ।
68. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 76, 77 ।
69. वही, पृ0 90 ।
70. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 92, 93 ।
71. वही, पृ0 210, 211 ।
72. पाण्डे, रामबली, हिन्दू संस्कार, तृतीय संस्करण, वाराणसी, 1985, पृ0 181 ।
73. सचाऊ, भाग 2, 19, पृ0 155 ।
74. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, श्लोक 20, 21, पृ0 126 ।
75. मिश्र, कृष्ण, प्रबोधचन्द्रोदय, अनुवाद-टेलर, निर्णय सागर प्रेस,बनारस, सम्वत् 2012, पृ0 43, 46।
76. वही, पृ0 57, 78 ।
77. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 183 ।
78. वही, पृ0 184 ।
79. चौरसिया, अरुणेन्द्र, बुन्देलखण्डी लोकसंगीत में सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक तत्व (अप्रकाशित), 1994, पृ0 130 ।

80. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 232 ।

81. वही0, पृ0 66 ।

82. बाजपेयी, के0 डी0, हिस्ट्री ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया, पृ0 42,: लाल, बी0 बी0 आर्क्योलाजी, इन इण्डिया, 1950, पृ0 44-45 ।

83. मेनन, पी0 के0 बी0, जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, भाग 1, वाल्यूम 14, 1967, सीरियल नं0 133, पृ0 100 ।

84. ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, बाँदा ए गजेटियर (यूनाइटेड प्राविंसेज ऑफ आगरा एण्ड अवध गजेटियर) 1929, पृ0 159 ।

85. त्रिवेदी, एस0 डी0, पूर्वो0, पृ0 9 ।

86. पन्त, पी0 सी0, प्री हिस्टारिकल उत्तर प्रदेश, दिल्ली, 1982, पृ0 122, 127 ।

87. निगम, एम0 एल0, पूर्वो0, पृ0 7, 8 ।

88. महाभारत, शान्तिपर्व (क्रिटिकल एडीशन पूना), 12, 87, 5 ।

89. मत्स्यपुराण (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1986), 217, 6, 7 ।

90. पण्डित, मिहिरचन्द, शुक्रनीति, बम्बई, 1930, श्लोक 1, 5 पृ0 6 ।

91. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 2, 3 पृ0 21 ।

92. पण्डित, मिहिरचन्द, पूर्वो0, अध्याय 4, श्लोक 4, पृ0 6 ।

93. मयमत, अध्याय 10, श्लोक 37 ।

94. पॉगसन, डब्ल्यू0 आर0, ए हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड, दिल्ली, 1974, पृ0 42 ।

95. लुइस, फोट्स ऑफ इण्डिया, पृ0 121. 127 ।

96. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 223-230 ।

97. वृहद्संहिता, 53 ।

98. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 238, 240 ।

99. दि जर्नल ऑफ दि बनारस हिन्दू युनिवर्शिटी अध्याय 2, भाग 5, 1940, पृ0 227 ।

100. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 2, पृ0 429 ।

101. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 244, 251 ।

102. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, पूर्वो0, पृ0 213 ।

103. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 7, पृ0 26 ।

104. रसिन का प्राचीन नाम 'राजवासिनी' भी है, जिसका उल्लेख एक शिलालेख में मिलता है। कहा जाता है कि वहां परमार्दिदेव का शाही निवास था।

105. अबुलफ़ज़ल, पूर्वो0, पृ0 29 ।

106. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, पूर्वो0, पृ0 213, 214 ।

107. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, श्लोक 30, पृ0 212 ।

108. निजामी, मुहम्मद, दि लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सुल्तान महमूद गजनवी, अनुवाद- कैब्रिज, 1903, पृ0 114 ।

109. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ0 123 ।

110. वही, पृ0 138 ।

111. वही, पृ0 123 ।

112. वही, पृ0 138 ।

113. मिश्र, कृष्ण, पूर्वो, पृ0 109 ।

114. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग 17, भाग 1, पृ0 316 ।

115. लेथियेटरे, इण्डियन, पेरिस, 1889, पृ0 229, 235 ।

116. बाजपेयी, के0 डी0, हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिन्दू इण्डिया, भाग 3, पृ0 474 ।

117. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 268 ।

118. अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ0 173, 174 ।

119. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 123 ।

120. त्रिवेदी, एस0 डी0, पूर्वो0, पृ0 25 ।

121. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 21, पृ0 34, प्लेट 10 बी ।

गणेश द्वार (दूसरा दरवाजा)

कालिंजर

तृतीय
अध्याय

कालिंजर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-

कालचक्र का भ्रमण निर्दिष्ट पथ पर अति प्राचीन काल से हो रहा है। यह चक्र अनुगामी पीढ़ियों के लिए स्मृति चिन्ह अपने पीछे छोड़ता जाता है। यही स्मृति चिन्ह आगे आने वाले समय में इतिहास के रूप में पहचाने जाते हैं। इतिहास कालान्तर में घटित घटनाओं का लेख-जोखा है। जहां तक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल काालिंजर परिक्षेत्र का प्रश्न है। इसका भी अतीत अति प्राचीन प्रतीत होता है। ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर यह क्षेत्र सतयुग से अब तक विविध प्रकार के इतिहास का निर्माण करता आया है। यदि इस परिक्षेत्र के इतिहास को युग भूलना भी चाहे तो भी यहां उपलब्ध स्मृति चिन्ह उस काल चक्र की परिमाप हैं जो यहां के गौरव, उत्थान-पतन, सुख और दुख की मिश्रित अनुभूति कराते हैं। ये स्मृति चिन्ह कुछ भी बोलते नहीं है किन्तु दर्शकों को वे अपनी ओर आकर्षित करके मौन भाषा में अतीत का रहस्योद्घाटन कर देते हैं। यहां से जाने वाला हर व्यक्ति एक नया युग बोध लेकर यहां से प्रस्थान करता है तथा आद्र नेत्रों से यहां की गरिमा को भुला नहीं पाता है। वर्तमान दुर्दशा को देखकर वह नेत्रों से अश्रु प्रवाह करने लगता है। कालिंजर जिसने देखा नहीं है, वह इसे देखने की इच्छा रखता है और जो देख चुका है वह इसके गौरव से प्रभावित होता है तथा बार-बार देखने की इच्छा रखता है और वर्तमान कालिंजर की दुर्दशा देखकर इसे सजाना एवं सवारना चाहता है। यहां पर कालचक्र का पहिया बड़ी ही द्रुतगति से घूमा, जिसने सतयुग से लेकर अब तक के स्मृति चिन्ह यहां छोड़े हैं। कुछ तो यथार्थ में यहां हैं और कुछ यहां के निवासियों की स्मृतियों में शेष हैं। यह पवित्र भूमि वन्दनीय एवं पूज्यनीय है। इसका इतिहास भी अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं चिरस्मरणीय है। जिस प्रकार प्रत्येक युग में सूर्य अपने प्रकाश से पहचाना जाता है वही आलोक और जागरण का कारण है उसी प्रकार कालिंजर भी विश्व इतिहास का प्रचण्ड मार्तण्ड है। जिसने इतिहास के आलोक को पूरे विश्व में फैलाया। इसी के प्रकाश से जागृत लोग यहां के गरिमामयी इतिहास से परिचित हुए। कालिंजर का इतिहास भारत वर्ष के प्राचीनतम् ग्रंथ बाल्मीकि रामायण से लेकर महाभारत, रघुवंश, फरिश्ता, आइने अकबरी आदि ग्रंथों में देखने को मिल जाता है। व्यास द्वारा रचित 18 पुराणों में से शायद ही कोई ऐसा पुराण होगा जिसमें कालिंजर को महान तीर्थ के रूप में मान्यता न दी गई हो। धार्मिक महत्ता के अतिरिक्त इस क्षेत्र का राजनीतिक महत्व किसी भी तरीके से कम नहीं ठहरता।

हम सभ्यता के प्रारम्भिक काल पर विचार करते हैं जब मानव जागरण का सूर्य उदय हो रहा था उस समय भी यहां मानव का अपना अस्तित्व और इतिहास था। कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक शैलाश्रय उपलब्ध हुए हैं, जिनमें अंकित शैलचित्रों से उसके इतिहास की झलक मिलती है। इस युग में व्यक्ति अन्य पशुओं की भांति था किन्तु उसकी प्रखर बुद्धि उसे अन्य पशुओं से पृथक रखने का यत्न कर रही थी। धीरे-धीरे इनकी सामूहिक भावना ने आखेट युग से लेकर कृषि युग में प्रवेश किया और पाषाण अस्त्र-शस्त्रों के स्थान पर यहांग के लोग धातुओं से परिचित हुए।

कालिंजर परिक्षेत्र ही एक ऐसा परिक्षेत्र है, जहां पर व्यक्ति दो प्रकार की सभ्यताओं से परिचित हुआ। प्रथम सभ्यता अनार्यों एवं आदिवासियों की थी। दूसरी सभ्यता अनार्यों की थी। इन दोनों सभ्यताओं के मेल -जोल से कालिंजर ने एक नई सभ्यता को जन्म दिया, जो अपने आप में विश्व की एक अलग सभ्यता बनीं। रामायण के नायक भगवान श्री राम तथा महाभारत के नायक पाण्डवों ने इस परिक्षेत्र में आश्रय ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त महर्षि अत्रि, मार्कण्डेय, सुतीक्ष्ण, सारंग, नारद, बृहस्पति, शुक्राचार्य, च्यवन, कण्व, महा अर्थवर्ण तथा अगस्त्य ऋषि आदि ने यहां अपने आश्रम बनाये। इसी समय यह स्थल शक्ति, शिव और सूर्य उपासना का प्रमुख केन्द्र बन गया। कुछ समय उपरान्त यहां वैष्णव धर्म तथा निराकार ब्रम्ह के उपासक भी दिखाई दिये । इसलिए यहां का गौरवमयी इतिहास युग परिर्तन के साथ-साथ अपनी छाप छोड़ता गया।

राजनीतिक दृष्टि से यह परिक्षेत्र सतयुग से लेकर त्रेतायुग तक कौशल राज्य का एक अंग था, अगर यह कौशल राज्य का अंग न होता तो भगवान राम भरवंशिय ब्राह्मणों को यह क्षेत्र किस हैसियत से प्रदान करते। महाभारत काल में यह क्षेत्र चेदि वंश के शासकों के हांथ में रहा। इसकी राजधानी शुक्तिमती नगरी थी। स्वतः यदुवंशियों की उत्पत्ति शुक्तिमती नरेश उपरिचरि बसु से सम्बन्धित है। इस क्षेत्र ने यदुवंश तथा चन्द्रवंश दोनों को जन्म दिया। चन्द्रवंश की उत्पत्ति महर्षि अत्रि के पुत्र चन्द्रात्रेय से हुई। युग परिवर्तन के साथ-साथ राजनीतिक परिवर्तन भी होते गये। महात्मा बुद्ध के समय तक यह क्षेत्र शुक्तिमती नगरी के आधीन था फिर भी मौर्य वंश की स्थापना के पश्चात यह मौर्यों के शासन काल में रहा और काफी समय तक उनके आधीन रहने के उपरान्त जब गुप्तों का अभ्युदय हुआ उस समय यह क्षेत्र गुप्तों के आधीन हुआ। फिर कुछ समय के लिए यह क्षेत्र कौशाम्बी नरेशों के हाथों में भी रहा। जब भारत में सम्राट हर्ष का उत्कर्ष हुआ, उस समय यह क्षेत्र प्रतिहारों के आधीन हो गया। प्रतिहारों के आधीन चंदेल उनके माण्डलिक थे। कालिंजर परिक्षेत्र कल्चुरियों से चंदेलों के अधिकार में आया और चंदेल इस क्षेत्र पर लगभग 12 वीं शताब्दी तक शासक रहे।

11वीं शताब्दी के पहले यह परिक्षेत्र विदेशी शासकों से परिचित नहीं था। इस परिक्षेत्र में कोई भी शासक आक्रमण करने की दृष्टि से नहीं आया था। महमूद गजनवी प्रथम मुसलमान शासक था जिसने यहां पर आक्रमण किया और अपना प्रभाव डाला। इसके साथ प्रसिद्ध विद्वान अल्बरूनी भी आया था जिसने कालिंजर परिक्षेत्र का वर्णन बड़े ही अच्छे ढंग से किया। इसके पश्चात कुतुबुद्दीन ऐबक तथा अन्य सुल्तानों ने भी आक्रमण करके इसे अपने प्रभाव में लाना चाहा। जब भारत वर्ष में मुगलों के आक्रमण हुए उस सयम हुमायूं, शेरशाह सूरी व अन्य मुस्लिम बादशाहों ने कालिंजर में आक्रमण किया । 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यह परिक्षेत्र बुन्देला शासकों के आधीन हो गया और अंग्रेजों के आगमन तक उन्हीं के आधीन रहा।

भारत वर्ष में अंग्रेजों का आगमन हुआ और उन्होंने कई वर्षों तक शासन किया। उनके शासन को उखाड़ फेंकने एवं उन्हें हटाने के लिए स्वतंत्रता आन्दोलन का शुभारम्भ भी कालिंजर परिक्षेत्र में व्यापक रूप

से हुआ। सन् 1857 क्रांति में बाँदा के नवाब अलीबहादुर सानी व कर्वी के अमृतराव, नारायन राव पेशवा ने भी सहयोग प्रदान किया था। यह दुर्भाग्य था कि क्रान्ति सफल नहीं हो सकी। यहां सन् 1905 के पश्चात स्वतंत्रता की द्वितीय लड़ाई भी व्यापक रूप से लड़ी गई। इस क्षेत्र में क्रान्तिकारी तथा अहिंसावादी दोनों प्रकार के आन्दोलन बराबर 1947 तक चलते रहे। यहां के चिरस्मरणीय कुछ व्यक्ति है, जिनका देश की आजादी में महान योगदान रहा। सन् 1947 में एक बहुत लम्बे समय के पश्चात कालिंजर ने स्वतंत्र वातावरण में सांस ली।

आजादी के पश्चात यह अनुमान किया गया था कि राष्ट्र के कर्णधार कालिंजर के पुनरूत्थान के लिए अवश्य कुछ करेंगे । इस संदर्भ में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के0 एम0 मुन्शी और विन्ध्य प्रदेश के राज्यपाल के0 सन्थानम के प्रयासों से यह क्षेत्र बाँदा-सतना मार्ग से जुड़ गया तथा उसी का अनुसरण करते हुए अनेक क्षेत्रों में पुलों का निर्माण हुआ किन्तु ऐतिहासिक धरोहर और प्राचीन इमारतों को संरक्षित करने के लिए कोई ठोस कदम अभी तक नहीं उठाये गये। यद्यपि उ0 प्र0 मंत्री प्रमिला बधवार शासन ने कुछ प्रयास किये, जिसके फलस्वरूप पुरातत्व विभाग के कुछ कर्मचारी यहां के प्राचीन स्मारकों की रक्षा के लिए नियुक्त किये गये तथा लगातार यह प्रयत्न हो रहा है कि कालिंजर परिक्षेत्र को विश्व धरोहर के मानचित्र में लाया जाये तथा पर्यटक स्थल के रूप में इसका विकास किया जाये।

कालिंजर का वर्तमान इतिहास भले ही गरिमापूर्ण न हो किन्तु इसका पुरातन इतिहास अत्यन्त गरिमा से परिपूर्ण है, जो वर्तमान समय में भी इस परिक्षेत्र के सम्मान को बढ़ा सकता है तथा यहां के निवासियों को गौरव प्रदान कर सकता है। हम उन महापुरूषों के उत्तराधिकारी हैं जिन्होंने धर्म, कला एवं शौर्य में अपनी गौरवपूर्ण पताका सर्वत्र फैलाई और यहां के इतिहास ने विश्व के इतिहास प्रिय नागरिकों को अपनी ओर आकर्षित किया।

कालिंजर परिक्षेत्र के इतिहास को लिखने के लिए निम्न साक्ष्यों को ध्यान में रखा गया है ताकि वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास लेखन सत्य की कोटि में रखा जा सके। ये साक्ष्य निम्न लिखित हैं-

1. **पुरावशेष**
2. **मुद्रावशेष**
3. **अस्त्र-शस्त्र**
4. **आभूषण एवं भाजन (वर्तन)**
5. **ग्रंथीय साक्ष्य**
6. **लोक परम्पराऐं एवं जन श्रुतियाँ**

इन्हीं साक्ष्यों को आधार मानकर कालिंजर परिक्षेत्र के इतिहास को लिखने का प्रयत्न किया गया है।

कालिंजर का प्रथम ऐतिहासिक उत्थान, प्रागैतिहासिक काल से मौर्य काल तक-

वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति आज से एक अरब तीस करोड़ वर्ष पहले हुई थी। प्रारम्भ में पृथ्वी अग्नि के गोले के समान प्रज्वलित थी। जब वह ठण्डी हुई उस समय ऐसा पर्यावरण उत्पन्न हुआ जिससे जीव जगत पैदा हुआ। आज तक कोई ऐसा साक्ष्य नहीं मिलता जो मानवों की उत्पत्ति के संदर्भ में सही-सही जानकारी दे सके। अरबों वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात मानवों का विकास विभिन्न स्वरूपों में हुआ। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में सिन्धु नदी की सभ्यता, नील नदी की सभ्यता, बैबीलोनियन सभ्यता, चीन की सभ्यता तथा आर्यों की सभ्यता है। यह सभ्यता किसी भी दृष्टि में आज से दस हजार वर्ष पुरानी नहीं है किन्तु वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मानव विकास का काल तीस हजार वर्ष पहले प्रारम्भ हो गया था। इस काल से लेकर सभ्यता के विकास तक नाना प्रकार के उत्थान-पतन विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में हुए।

कालिंजर परिक्षेत्र विश्व का प्राचीनतम् स्थल है जिसने अनेक युगों को अपने नेत्रों से देखा। अनेक इतिहासकारों को इस क्षेत्र में ऐसे साक्ष्य प्राप्त हुए हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल अथवा पाषाण युग से है। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री के0 डी0 बाजपेयी कालिंजर परिक्षेत्र तथा बाँदा जनपद को प्राचीनतम् ऐतिहासिक क्षेत्र स्वीकार करते है। उनके कथनानुसार इस क्षेत्र में पाषाण कालीन अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुए है। यह अस्त्र-शस्त्र पुरापाषाण युग और उत्तर पाषाण युग दोनों के हैं।[1] प्राचीनतम् पाषाणयुगीन औजारों की उपलब्धि इस बात का प्रमाण है कि इस परिक्षेत्र में बहुत पहले ही सभ्यता का विकास प्रारम्भ हो गया था। यह यहां की सभ्यता का प्रथम चरण था। इसी प्रकार के स्थल सन् 1882 में इतिहाकारों के द्वारा खोजे गये।[2] प्रसिद्ध इतिहासकार डा0 एस0 डी0 त्रिवेदी ने कालिंजर परिक्षेत्र के अनेक स्थलों में पुरा पाषाण कालीन एवं उत्तर पाषाण कालीन स्थलों की खोज की। वे इन क्षेत्रों को पचास हजार वर्ष से लेकर बीस हजार वर्ष तक का पुराना मानते है लेकिन उच्च अथवा उत्तर पाषाण युग को वे बीस हजार से लेकर दस हजार ईसा पूर्व तक का मानते हैं। उनका अनुमान है कि बांदा जिला मुख्यालय से 60 किलो मीटर दूर कालिंजर के निकट उच्च पुरापाषाण काल की एक प्रयोग शाला ज्ञात हुई है। यहां से कुछ माइक्रोलिथ भी प्राप्त हुए हैं। कालिंजर परिक्षेत्र से प्राप्त पाषाण कालीन कुछ उपकरण बुन्देलखण्ड छत्रसाल संग्रहालय बाँदा में संग्रहीत है। इनमें प्रारम्भिक पाषाण काल, पूर्व पाषाण काल एवं परवर्ती पूर्व पाषाण काल तथा नव पाषाण एवं लघु पाषाण काल के उपकरण सम्मिलित हैं।[3] इसके अतिरिक्त अन्य इतिहासकारों ने भी इस क्षेत्र में पुरापाषाण युगीन स्थल खोजे थे।[4] सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री काकबर्न ने बाँदा जनपद के शैलाश्रयों की खोज की थी। कालिंजर परिक्षेत्र में ऐसे शैलाश्रय फतेहगंज, बृहस्पति कुण्ड के आस-पास उपलब्ध हुए हैं।[5] डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार प्रागैतिहासिक कालीन मनुष्य इस क्षेत्र की नदियों, घाटियों एवं शैलगृहों में रहा करते थे।ये लोग पशु-पक्षियों का आखेट करके उनका मांस एवं कन्द मूल फल आदि से

अपनी क्षुधा की पूर्ति किया करते थे, उनके अनुसार पाषाण युगीन उपकरण विभिन्न स्थलों में प्राप्त हुए हैं। इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. **पूर्व पाषाण काल।**
2. **उत्तर पाषाण काल।**

उन्हीं के अनुसार पूर्व पाषाण काल के अस्त्र कालिंजर परिक्षेत्र के बरियारी ग्राम में उपलब्ध हुए हैं। यह गांव केन नदी के तट पर स्थित है[6] नरैनी के सन्निकट रामचन्द्र पर्वत में भी हस्त-कुठार पिबल-टूल्स और अवशिष्ट अनुपयुक्त प्रस्तरांश पर बनाये गये गंडासे भी उपलब्ध हुए हैं।[7] एम0 एल0 निगम ने कालिंजर परिक्षेत्र में पुराऐतिहासिक काल के अस्तित्व को स्वीकार किया है। उनके अनुसार सर्वप्रथम प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान काकर्बन ने इस स्थल पर पाषाण कालीन स्थलों की खोज की। उनके अनुसार यमुना नदी और केन नदी के तट पर उस युग के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं जो इस बात को सिद्ध करते है कि पुरापाषाण युग में मानव का अस्तित्व यहां था।[8] इसकी पुष्टि अन्य विद्वानों ने भी की है।[9] कालिंजर परिक्षेत्र के कौहारी ग्राम में केन नदी तथा बागे नदी के तट पर मध्य पाषाण युग के अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुए हैं। इनको देखने से ऐसा लगता है कि इस प्रकार के औजार बनाने में यह क्षेत्र बहुत अधिक धनी था।[10]

कालिंजर परिक्षेत्र में पाषाण युगीन ऐतिहासिक साक्ष्य अत्यन्त प्राचीन है, परन्तु उनको सर्वप्रथम यहां आने वाले अंग्रेज विद्वानों ने ही खोजा । इन विद्वानों में सर्वप्रथम थियोवाल्ड ने कार्य किया। उसके पश्चात द्वितीय विद्वान काकबर्न थे। इन्होंने भी बड़ी मेहनत के साथ इस क्षेत्र के पाषाण युगीन स्थलों को उजागर किया।[12] इसके अतिरिक्त रिवेट-कार्नाक ने भी बाँदा जनपद के पाषाण युग पर काफी अधिक कार्य किया है। इन्होंने नव पाषाणिक कुल्हाड़ियों के अतिरिक्त बहुत से फ्लिंट फलक भी प्राप्त किये।[13] इसी क्षेत्र में कार्लाइय महोदय ने शैलचित्रों का अन्वेषण किया था।[14] सन् 1961 में पाषाण युगीन सभ्यता की खोज पुनः कालिंजर परिक्षेत्र में की गई। यह कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के बी0 आर0 शर्मा ने किया। इन्होने बरियारी में अनेक वेदिकाओं की पहचान की। इसी कार्य को पी0 सी0 पन्थ ने भी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के सहयोग से पूरा किया।[15] केन नदी की ऊपरी घाटी में श्री आर0 वी0 जोशी ने भूतात्विक अध्ययन किया। उन्होंने कालिंजर परिक्षेत्र के भूतात्विक क्रम का अनुमान भी लगाया।[16] श्री जगन्नाथ पाल के अनुसार इस क्षेत्र के पाषाण युग को पेबुल उपकरण उद्योग संस्कृति तथा अश्यूलियन उपकरण उद्योग की संस्कृति का नाम दिया जा सकता है। बागे नदी के सन्निकट लहचुरा ग्राम में और केन नदी के निकट बनगवां ग्राम में इस प्रकार के उपकरण उपलब्ध हुए हैं। उच्च पाषाणिक संस्कृति के अस्त्र-शस्त्र कालिंजर परिक्षेत्र में उपलब्ध हुए हैं। ये अन्य क्षेत्रों से श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं। कालिंजर किले से तीन किलो मीटर पश्चिम में बागे नदी के दाहिने तट पर एक छोटी सी पहाड़ी से पूर्व पाषाण युग के स्थल प्राप्त हुए हैं। यहां कुछ औजार भी पाये गये है।[17] यहां जो भी पाषाण युगीन औजार उपलब्ध हुए है वे आकार में त्रिभुज अर्द्धचन्द्र, पुर्नगठित

भूथडे, ब्लेड, ब्यूरियन, अन्तस्क्रेपर, छिद्रक, प्वाइन्ट, दांते दार ब्लेड, खांचे युक्त ब्लेड तथा पार्श्वस्क्रेपर आकृति के मिले हैं।

कालिंजर परिक्षेत्र नवपाषाणिक संस्कृति के संदर्भ में भी उल्लेखनीय स्थल है। इस युग में त्रिभुजाकार व नुकीले समन्तात वाली कुल्हाडियां अधिक प्रयोग में लाई जाती थी।[18] श्री राधा कृष्ण बुन्देली के अनुसार बागे अथवा बागेश्वरी नदी घाटी की सभ्यता उतनी ही महत्वपूर्ण सभ्यता हे जितना सिन्धु नदी घाटी की सभ्यता। पाषाण युगीन उपकरणों की प्राप्ति के पश्चात यह सिद्ध होता है कि कालिंजर परिक्षेत्र जो बागे नदी के तट पर बसा हुआ है, वह निश्चित ही एक उच्च सभ्यता का धारक था। जिसमें सर्वप्रथम अनार्य मूल के लोग निवास करते थे। बाद में इस परिक्षेत्र को आर्यों ने अपने प्रभाव में लिया।

पाषाण कालीन मानव की स्थिति-

पाषाण कालीन मानव जंगलों से दूर सुरक्षित स्थान में रहता था क्योंकि वह जिस हथियार का प्रयोग करता था, वह बहुत उत्तम कोटि के नहीं थे। इसलिए वह जंगली पशुओं से भयभीत रहता था। इस युग में सभ्यता का विकास नहीं हुआ था। उनका निवास नदियों व झीलों के पास गुफाओं में रहता था तथा विभिन्न प्रकार के पाषाण यंत्रों का प्रयोग करता था और औजारों को बांस के खोल में रखता था। कभी-कभी चमड़े की पट्टियों का प्रयोग भी करता था। वह अपने भोजन के लिए जमीन के अन्दर उपलब्ध कन्दमूल फलों का प्रयोग करता था। वह एक प्रकार की कुल्हाड़ी या खुरपी से उसे खोदता था। इतिहासकारों का यह मानना है कि वह अग्नि का प्रयोग जानता था तथा चीतों, शेरों, तेंदुओं, भेड़ियों, जंगली कुत्तों ,लकड़बग्घों, हांथियों तथा भैंसों के बारे में जानकारी रखता था। वह जंगली जानवारो का शिकार करके उनका मांस खाता था। कुछ ऐसे भी स्थल मिले हैं जिनसे यह बोध होता है कि यह मानव धार्मिक कृत्यों पर भी विश्वास रखता था।

उत्तर पाषाण काल में मानव की स्थिति में परिवर्तन आया। उसके पत्थर के औजार पूर्व पाषाण युग से सुन्दर बनने लगे। उसने धीरे-धीरे मिट्टी के बर्तन बनाना सीख लिया। सुराख किये पत्थरों के वर्तन के रूप में प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया, मिट्टी के जो वर्तन इस युग में मिलते हैं उनमें मुख्य रूप से कटोरे, लोटे, फूलदान एवं चट्टियां आदि हैं। मिट्टी के वर्तन लाल, पीले एवं मटमैले बैगनी रंग के हैं, इनका निवास स्थान गुफाओं के आस-पास था। गुफाओं में रहकर अपनी रक्षा पानी आदि से कर लेते थे। इस युग के मानवों ने वस्त्र पहनना सीखा। प्रारम्भ में यह लोग वृक्षों की छाल और पशुओं की खाल (चर्म) से अपना शरीर ढकते थे लेकिन धीरे-धीरे इन्होने तन्तुओं से वस्त्र बनाना सीख लिया। उसने वस्त्र रंगने का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया। पुरूष कूल्हों पर कपड़ा बांधते थे और कन्धों पर वस्त्र का टुकड़ा डालते थे। स्त्रियां घुटनों तक का लहंगा पहनती थी।

इसी युग में धार्मिक अंधविश्वास का उदय हुआ। व्यक्ति भूत-प्रेतों की पूजा करने लगा। अनेक

संस्कारों का उदय भी इसी समय हुआ। वे मृत व्यक्तियों की हड्डियों और राख को जलाने के लिए एक विशेष प्रकार के अण्डाकार पात्र का प्रयोग करते थे। कालिंजर सकरो, मगरमुहा, कौहारी, बृहस्पति कुण्ड आदि क्षेत्रों में अनेक ऐसे स्थल प्राप्त हुए हैं जो तद्युगीन संस्कृति का बोध कराते हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार कालिंजर परिक्षेत्र में तिब्बती -बर्मी, कोल, नाग जातियां ईसा से छः हजार छः सौ वर्ष (6600) पूर्व यहां आईं और उनके आने का क्रम पांच हजार नौ सौ ईसा (5900) पूर्व तक बना रहा। ये वनों में रहने वाली जातियां थी। इनका भोजन भी कन्दमूल फल था। इन जातियों को लोहे का प्रयोग करना आता था। कुछ जातियां पत्थर एवं अस्थियों के औजारों का प्रयोग करती थी। इन लोगों को पशु पालन का ज्ञान नहीं था इनमें मुख्य रूप से कोलों के वंशज कोल, मुण्डा आदि कालान्तर में यहां से दक्षिण की ओर चले गये। इसके पश्चात यहां द्रविणों का आगमन हुआ। द्रविणों को आर्यों ने पराजित कर दिया और ये भी दक्षिण की ओर चले गये।[19] दीवान प्रतिपाल सिंह के यदि इस ऐतिहासिक आधार को सत्य माना जाये कि कोल, गौण, बैगा आदि जातियां विदेशों से कालिंजर परिक्षेत्र में आई तो सबसे बड़ा ऐतिहासिक प्रश्न यह खड़ा होता है कि इस परिक्षेत्र के मूल निवासी कौन थे। जब आवागमन के साधनों का अभाव था, उस समय इनका आगमन किन मार्गों एवं साधनों से यहां पर हुआ होगा।

धातु युग-

मानव सभ्यता का विकास धीरे-धीरे होता गया और कालिंजर परिक्षेत्र के मानव ने चारागाह युग में प्रवेश करने के पश्चात कृषि युग में प्रवेश किया तथा उन्होंने भ्रमण शीलता का परित्याग कर दिया। अब वे सरिता तटों पर या ऐसे स्थानों पर जहां जल पर्याप्त मात्रा में प्राप्त था रहनें लगे। प्राप्त संसाधनों के आधार पर उन्होनें छोटे-छोटे गांवों की रचना की एवं धातुओं का प्रयोग भी सीख लिया। जहां पर तांबे की उपलब्धि थी, वहां तांबे के औजार बने, जहां लोहे की प्राप्ति थी वहां लोहे के औजार बने। इसके कुछ दिनों पश्चात मिश्रित धातु कांसा का उदय हुआ। इन धातुओं का प्रयोग बर्तनों तथा औजारों दोनो के लिए होता था। अनुमानतः इतिहासकारों ने 35 हजार ईसा पूर्व से 1000 हजार ईसा पूर्व तक माना है। तथा उत्तर पाषाण युग को 10 हजार ईसा पूर्व से 50 हजार ईसा पूर्व तक माना है इसके पश्चात धातु अथवा ताम्रयुग पांच हजार ईसा पूर्व से दो हजार ईसा पूर्व तक रहा। इस युग में अनेक सभ्यताओं का उदय हुआ। इस परिक्षेत्र की सभ्यता अन्य नदी घाटी सभ्यताओं की भांति बागेश्वरी नदी घाटी सभ्यता के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस युग की राजनीतिक स्थिति का कोई विवरण किसी भी ऐतिहासिक ग्रंथ में उपलब्ध नहीं होता।

मिश्रित सभ्यता का उदय-

कालिंजर परिक्षेत्र के प्राकृतिक पर्यावरण को देखने से यह लगता है कि इस परिक्षेत्र में अनार्यों का वास था क्योंकि सकरों के आस-पास राक्षसों के गुरू शंकराचार्य का आश्रम था। असुरों एवं दैत्यों के उपास्य देव शिव यहां के प्रमुख देवता थे। इस परिक्षेत्र में जब आर्यों का आगमन हुआ उस समय देव-दानवों के

मध्य संघर्ष हुआ। इसलिए इस क्षेत्र को युद्ध देश के नाम से भी पुकारा गया है। दीवान प्रतिपाल सिंह ने विष्णु धर्मोत्तर पुराण का उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिससे इस बात की पुष्टि होती है।

चैद्य नैषधयोः पूर्वे विन्ध्य क्षेत्राच्च पश्चिमें।

रेवायमुन योर्मध्ये युद्धदेश इतीर्य्यते।।[20]

भगवान राम के समय कालिंजर परिक्षेत्र में दैत्यों का राज था। दैत्य वंशी कलुष यहां का राजा था। भगवान राम ने एक ब्रह्मदंडी को कुत्ते को मारने के कारण कालिंजर के नीलकण्ठ मंदिर महादेव की पूजा करने का दण्ड तथा वहीं का राज्य दिया था। ये लोग यती की संतान थे। इसलिए भरमुनि वंशीय(नाथ) क्षत्रिय कहलाये।[21] इससे यह बात स्पष्ट होती है कि पहले यह क्षेत्र अनार्यों के अधिकार में था, बाद में आर्यों के अधिकार में आया क्योंकि इस क्षेत्र में आर्यों के प्रतिनिध ऋषि बृहस्पति, सारंग, दधीचि, नारद, सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य आदि के आश्रम थे। आर्यों और अनार्यों में युद्ध हुआ। अनार्य परास्त हुए तथा भगवान शिव के वरदहस्त के कारण दोनों जातियों में मेल-मिलाप हुआ इसलिए यहां की संस्कृति मिश्रित संस्कृति के नाम से जानी गई। इसमें प्रकृति की उपासना के साथ-साथ आर्यों के देवों की भी उपासना की गई। प्रशासनिक व्यवस्था भी दोनों संस्कृतियों के अनुसार हुई।

महाकाव्य काल-

भारतीय इतिहास के अन्तर्गत बाल्मीकि रामायण को अति प्राचीन महाकाव्य काल के रूप में माना जाता है। इसके कवि बाल्मीकि आदि कवि के रूप में माने जाते हैं। रामायण के अतिरिक्त रामकथा बौद्ध जातक कथा एवं दशरथ जातक कथा में उपलब्ध होती हैं। भगवान जिस युग में अवतरित हुए वह युग वैदिक युग के अन्तर्गत माना जाता है। प्रसिद्ध बौद्ध कवि कुमारलात ने 100 ई0 में कल्पना-मण्डतिका नामक ग्रंथ की रचना की थी। इसमें बाल्मीकि रामायण का उल्लेख किया गया है। अनेक ऐतिहासिक उदाहरणों के अनुसार बाल्मीकि रामायण की रचना 500 ई0 पू0 मानी जा सकती है। इसके लिए उन्होंनें यह आधार माना कि पाटलिपुत्र नगर की रचना 500 ई0 पू0 में हुई थी। उसी समय इस ग्रंथ की रचना की गई।[22] इतिहासकारों का मानना है कि कौशल जपनद की राजधानी अयोध्या थी। किन्तु बौद्ध ग्रंथों में इसका नाम सकेंत दिया गया है। बाल्मीकि रामायण में यह श्लोक मिलता है।

अयोध्या नाम नगरी तत्रासीत् लोकविश्रुता।[23]

लव ने जिस स्थान पर अपनी राजधानी बनाई थी। उसे श्रावस्ती के नाम से जाना गया। महात्मा बुद्ध के समय में श्रावस्ती का महत्व था। बाल्मीकि रामायण में इसके विषय में एक श्लोक मिलता है-

श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य च।[24]

प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान विण्टरनिट्ज का विचार है कि बाल्मीकि ऋषि ने रामायण की रचना ईसा पू0 तीसरी शताब्दी में पुरातन लोक-गीतों के आधार पर की थी।[25] डॉ0 राधाकुमुद मुखर्जी ने रामायण का

महाभारत से काफी पुराना ग्रंथ माना है। इसकी रचना कब हुई इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

रामायण में भारतीय संस्कृति को पूर्ण रूपेण व्यक्त किया गया है। यह तद्युगीन मनुष्यों के लोक जीवन की वास्तविक गाथा है। बाल्मीकि रामायण की रचना कालिंजर परिक्षेत्र से कुछ दूरी पर हुई, इसलिए कालिंजर परिक्षेत्र में रामायण कालीन सामाजिक व्यवस्था का व्यापक प्रभाव पड़ा ।श्री राम जो बाल्मीकि रामायण के प्रमुख पात्र हैं, उनके वनवास के 12 वर्ष कालिंजर परिक्षेत्र में ही व्यतीत हुए। वे अपने भ्रमण के दौरान अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, अत्रि, सारंग आदि ऋषियों के आश्रम में गये। ऋषियों के आश्रम कालिंजर परिक्षेत्र के अन्तर्गत ही थे। महारानी सीता को जब दुबारा वनवास दिया गया। उस समय वे बाल्मीकि आश्रम में रही। वहीं पर उन्होंने अपने दो पुत्रों लव एवं कुश को जन्म दिया। लव-कुश का कुछ समय महोबा जनपद में चन्दला के निकट लवड़ी नामक स्थान पर बीता यहां पर आज भी ऐतिहासिक साक्ष्य विद्यमान है। यह क्षेत्र पहले असुरों के अधिकार में था, बाद में कौशल राज्य में आया जिसके अधिपति श्री राम थे।

रामायण के पश्चात यदि कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध होता है तो वह ग्रंथ कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा रचित महाभारत है। इसी ग्रंथ के अन्तर्गत अनेक उपग्रंथ भी शामिल हैं। इनके उपग्रंथों में विष्णु सहस्रनाम, भगवत् गीता, गजेन्द्र मोक्ष आदि शामिल हैं। प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान गोवर्धनाचार्य ने इस ग्रंथ के संदर्भ में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं-

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे।
भूषणत यैव सञ्ज्ञां यदङ्कितां भारती वहति।।[26]

महाभारत नामक यह ग्रंथ सर्वप्रथम जय उसके पश्चात भारत फिर महाभारत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका प्राचीन नाम जय था।[27] उसके पश्चात यह ग्रन्थ महाभारत के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चतुर्विंशति साहस्रो चक्रे भारतसंहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।।[28]

इतिहासकारों का मत है कि महाभारत की रचना हरिवंश संवत् 535 और 635 के मध्य हुई। जब इसकी रचना हुई उस समय इस ग्रंथ में 8 पर्व थे। इसमें आदि पर्व, विराट, उद्योग, भीष्म, आश्रमवासी, मूसल, प्रस्थानिक तथा स्वर्गारोहण पर्व शामिल थे।गुप्त शिलालेखों के अनुसार चेदि संवत् 197 वि0 संवत 502 तथा 445 ई0 में महाभारत का अस्तित्व था। जब सतसाहस्री संहिता का निर्माण हुआ, उससे 200 वर्ष पहले महाभारत का अस्तित्व था। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि महाभारत के शांतिपर्व में जिन दस अवतारों का उल्लेख किया गया है उसमें महात्मा बुद्ध का उल्लेख भी है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह रचना ईसा पू0 छठी शताब्दी की है।

महाभारत में वर्णित पात्रों का सम्बन्ध कालिंजर से बहुत अधिक है। यदि कुरू राज्य का सीमांकन देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि कुरु राज्य के पूर्व में शाल्व देश, उत्तर में पांचाल देश, दक्षिण में चेदि देश

तथा पश्चिम में दर्शाण देश स्थित थे। अगर भौगोलिक दृष्टि से इस पर विचार किया जाये तो यह क्षेत्र बाँदा जनपद के चिल्ला तारा से प्रारम्भ होकर पूर्व में इलाहाबाद जनपद तक था। उत्तर में यमुना नदी के उस पार पांचाल देश था जिसका विस्तार काम्पिल्य नगरी तक था। दक्षिण में इसकी सीमायें चेदि देश से मिली हुई थीं। जिसकी राजधानी शुक्तिमती नगरी थी। कालिंजर परिक्षेत्र महाभारत युग में चेदि देश के अन्तर्गत आता था। जब पाण्डवों को अज्ञातवास दिया गया उस समय उन्होंने अपना बहुत सा समय चेदि देश में काटा तथा तभी कालिंजर परिक्षेत्र के अनेक स्थलों के दर्शन भी किये। महाभारत में इसका वर्णन है।[29] कालिंजर परिक्षेत्र में नरैनी, अर्जुनाह, पड़मई आदि ऐसे स्थल हैं जिनका सीधा सम्बन्ध महाभारत से है। वे आज भी उस युग की याद दिलाते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि कालिंजर परिक्षेत्र चेदि राज्य का एक महत्वपूर्ण स्थल था जिसका सीधा सम्बन्ध राजा विराट से था, राजा शान्तनु की धर्मपत्नी सत्यवती भी इसी कुल की थी।

मौर्यकाल-

महाभारत काल से लेकर ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक कालिंजर परिक्षेत्र का कोई निश्चित इतिहास प्राप्त नहीं होता, केवल पालि जातकों से इस बात का पता चलता है कि महात्मा बुद्ध ने चेदि देश की सीमा से दक्षिण की ओर प्रवेश किया था। महापद्य नन्द के विनाश के पश्चात मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ। तद्युगीन व्यवस्था से परेशान होकर ईसा पूर्व छठी शताब्दी में एक विस्तृत आर्थिक सुधार आन्दोलन और समाज सुधार आन्दोलन चला जिसका नेतृत्व महात्मा बुद्ध तथा महावीर स्वामी ने किया। इस समय कुछ बड़े नगरों का उदय हुआ। इन बड़े नगरों में वाराणसी, वैशाली, चम्पा, राजगृह, कुशीनगर, कौशाम्बी एवं श्रावस्ती प्रमुख थे। इनकी गतिविधियों का केन्द्र पाटलीपुत्र था।इस युग में पूरे भारत वर्ष में 62 नगरों का उल्लेख मिलता है। कौशाम्बी कालिंजर परिक्षेत्र के ही सन्निकट था। इस समय अंग, मगध, काशी, कौशल, बज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरू, पंचाल, मत्स्य, सूरसेन, अस्सक अवन्ति गान्धार तथा कम्बोज प्रसिद्ध 16 महाजनपद थे। इनमें से वत्स, कुरू, चेदि कालिंजर के निकट थे। स्वतः कालिंजर चेदि साम्राज्य का एक अंग था। मौर्य साम्राज्य का उदय लगभग 323 ईसा पूर्व में हुआ तथा इसका अस्तित्व 184 ई0 पू0 तक बना रहा। इतिहासकारों के अनुसार मौर्य वंश का कोई सुनिश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता। विष्णुपुराण के भाष्यकार के अनुसार चन्द्रगुप्त नन्द तथा मुरा का पुत्र था। मुद्राराक्षस के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य को कुलहीन अथवा शूद्र सिद्ध किया गया।[30] महावंश के अनुसार चन्द्रगुप्त खाट्टीय गोत्र का वंशज था जो मौर्य नाम से प्रसिद्ध था। दिव्यावदान में चन्द्रगुप्त बिन्दुसार तथा अशोक को क्षत्रिय बताया गया है। इस साम्राज्य का प्रभाव कालिंजर परिक्षेत्र में भी रहा चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर सम्राट अशोक तक कालिंजर परिक्षेत्र उनके आधीन रहा।

लगभग 400 ई0 पू0 कालिंजर परिक्षेत्र महापद्म नन्द के आधीन हो गया। महापद्म नन्द मगध का

शासक था। मुख्य रूप से यह ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण परिक्षेत्र उसी के आधीन चिर काल तक रहा।[31] जब महापद्म नन्द के साम्राज्य का पतन हो गया और मौर्य साम्राज्य का उदय हो गया तो सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र मौर्यों के आधीन बना रहा अशोक की मृत्यु तक मौर्यो के आधीन हो गया तथा यह अशोक की मृत्यु सम्भवतः 236 ई0 पू0 में हुई। इसमें थोड़ा संदेह है कि कालिंजर परिक्षेत्र में जहां विन्ध्याचल की पर्वत श्रेणियां है वहां अधिकांश जंगली जातियां ही निवास करती थीं। अशोक की मृत्यु के पश्चात यह साम्राज्य टुकड़ों में विभाजित हो गया। कालान्तर में यह क्षेत्र पुष्यमित्र शुंग के आधीन हो गया। यह शुंग वंश का संस्थापक था। इसके पश्चात उसका पुत्र इस वंश का सम्राट अग्निमित्र बन, जिसका संघर्ष यवनों से सिन्धु नदी तट पर हुआ । प्रसिद्ध कवि कालीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ मेघदूत में भी इस क्षेत्र का वर्णन किया है। इसी युग में रचे गये पद्मपुराण में कालिंजर परिक्षेत्र को उत्तर भारत का पवित्र स्थल माना गया।[32] शुंगों का साम्राज्य इस परिक्षेत्र में लगभग 100 वर्ष रहा। यह 187 ई0 पू0 से 75 ई0 पू0 तक रहा शुंगों के पश्चात इस परिक्षेत्र में कण्व वंशीय शासकों का साम्राज्य रहां यह साम्राज्य 75 ई0 पू0 से लेकर 30 ई0 पू0 तक रहा। इस समय शुंगों की शक्ति का पतन हुआ। यह साम्राज्य बैक्ट्रियन, ग्रीक, डेमट्रियस के द्वारा समाप्त किया गया। इसका प्रसिद्ध शासक मिनिण्डर था। इस समय यह परिक्षेत्र शुंगों की विदिशा शाखा के अन्तर्गत आ गया था। कालिंजर के सन्निकट मुखल व पलरा में अनेक ऐसे स्थल उपलबध हुए हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध मौर्य काल से था। इस युग में दो प्रकार की विचार धाराऐं प्रसारित हुई। एक विचारधारा चन्द्रगुप्त मौर्य की थी। जिसने शक्ति का प्रदर्शन करके अपने साम्राज्य का विस्तार सम्पूर्ण भारतवर्ष में किया था। दूसरी विचारधारा सम्राट अशोक की थी जिसने हिंसा से ऊब कर बौद्ध धर्म ग्रहण किया था और सत्य, अहिंसा तथा प्रेम का संदेश दिया था। कालिंजर परिक्षेत्र के अनेक स्थलों पर तथा उससे कुछ दूरी पर बौद्ध प्रतिमाऐं उपलब्ध हुई हैं जिनसे तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था का पता लगता है।

मौर्य काल से लेकर सम्राट हर्ष वर्धन के काल तक-

कालिंजर परिक्षेत्र के लिए बौद्ध युग से लेकर हर्ष वर्धन युग तक को ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में राजनीतिक दृष्टि से कालिंजर परिक्षेत्र का कोई विशेष महत्व नहीं रहा। यह केवल महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल के रूप में प्रसिद्ध रहा है। कभी यह परिक्षेत्र मगध राज्य से जुड़ा रहा और कभी मालवा से जुड़ा रहा। ऐसा कोई प्रमाणित इतिहास उपलब्ध नहीं होता जिससे इसके स्वतंत्र राजनीति का महत्व पर प्रकाश पड़ता हो। ऐसा ज्ञात होता है कि इस युग में कालिंजर परिक्षेत्र में अनार्य कुल की जंगली जातियों का बाहुल्य था। इन जातियों में कोल, भील, गौण, बैगा, खैरवार तथा अन्य दशदेशज जातियां ही प्रमुख थी। जिन जातियों का उल्लेख भरतनाट्यम् के रचनाकार भरतमुनि ने किया है उन जातियों का राजनीतिक अस्तित्व न होने के कारण कोई विशेष महत्वपूर्ण स्थान नहीं था।

शुंगों का अस्तित्व शोध प्रबन्ध में पहले ही स्वीकारा जा चुका है। इन्होंने 187 ई0 पू0 से लेकर 75

ई0पू0 तक शासन किया। इसके पश्चात कण्व वंशीय राजाओं का राज्य 75 ई0 पू0 से 30 ई0 पू0 तक रहा। इसी बीच भारत वर्ष में बैक्ट्रियन्स के आक्रमण हुए, जिससे कण्व वंशिय शासकों की शक्ति कमजोर हुई और यह क्षेत्र मालवा के अन्तर्गत मिनिण्डर के शासन में चला गया। इसी समय शुंग वंश की एक शाखा मालवा क्षेत्र में शासन करती रही। कण्वों का अस्तित्व मगध क्षेत्र तक सीमित हो गया।

ईसा की पहली शताब्दी से दूसरी शताब्दी के प्रारम्भ तक इस परिक्षेत्र में कुषाण राजाओं का अस्तित्व रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि जब कनिष्क का राज्य था उस समय कालिंजर परिक्षेत्र कनिष्क के शासन के अन्तर्गत था। यह क्षेत्र वासुदेव प्रथम के राज्य तक कुषाण वंशीय शासकों के आधीन रहा। वासुदेव ने सन् 176-77 ई0 तक राज्य किया। धीरे-धीरे कुषाणों की सत्ता का पतन हुआ और इसकी सत्ता कालिंजर परिक्षेत्र से समाप्त हो गई।[33] प्लोलेमी जिसने सन् 151 ई0 में भारत वर्ष के भूगोल की संरचना की थी उसमें कालिंजर का उल्लेख किया है। उस समय यह राज्य कंगोरा राज्य के अन्तर्गत था जिसकी राजधानी प्रासिकी यमुना के दक्षिणी तट पर थी।[34] जब कुषाणों का पतन हो गया तथा उनका साम्राज्य समाप्त हो गया, उस समय एक बार सातवाहनो का साम्राज्य इस क्षेत्र में पुनः स्थापित हुआ। इसका पता इस बात से चलता है कि सन् 1905 और 1936 में खुदाई के दौरान यहां जो मुद्राऐं प्राप्त हुई थी उनका सीधा सम्बन्ध कुषाणों से था। इससे यह पता लगता है कि कुषाण अपने शासन क अन्तिम समय तक यहां प्रभावशाली रहे।[35]

जब ईसा की दूसरी शताब्दी के पश्चात ऐसा कोई साम्राज्य भारतवर्ष में न बचा जिसका अस्तित्व सम्पूर्ण भारतवर्ष में होता। उस समय क्षेत्रीय राज्यों का विकास हुआ।इनका राज्य पद्मावती, मथुरा, विदिशा, कांतिपुरी आदि क्षेत्र नागों के साम्राज्य में थे।[36] कालिंजर परिक्षेत्र इस समय नागवंशीय शासकों के आधीन था। इन्होंने ईसा की तीसरी एवं चौथी शताब्दी में मध्य भारत के अनेक स्थलों पर अपना अधिकार कर लिया। नाग वंशियों के अनेक ग्रंथीय साक्ष्य प्राप्त होते हैं। ग्वालियर के समीप पवांया (पद्मावती) में नागों की राजधानी थी, जिसमें ग्वालियर भी शामिल था। झांसी और कालिंजर उसके राज्य के अंग थे।[37] पद्मावती नगरी जो वर्तमान समय में पवांया के नाम से एक छोटा सा गांव है, जो मध्य प्रदेश में नखर के समीप है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय यह नाग वंशीय राजाओं का मुख्य गढ़ था। पुराणों के अनुसार इस वंश में नौ राजा हुए जो पद्मावती नगरी के शासक कहलाये तथा इन्हें भारशिव की उपाधि से विभूषित किया गया। इन्होंने अपना साम्राज्य गंगा के मैदानी भाग तक फैला लिया। इनमें सबसे शक्तिशाली राजा भवनाग, गणपति नाग एवं नाग सेन हुए।[38] समुद्रगुप्त का विजय स्तम्भ जो इलाहाबाद में उपलब्ध हुआ है, उसमें इस बात का उल्लेख है कि गनपत नाग को समुद्र गुप्त ने जीता और उसे अपने आधीन कर लिया। समुद्रगुप्त चौथी शताब्दी के मध्य में गुप्त साम्राज्य का शक्तिशाली शासक था।[39]

कालिंजर परिक्षेत्र में गुप्त साम्राज्य का अस्तित्व-

कालिंजर परिक्षेत्र में गुप्त साम्राज्य का प्रभाव भी रहा। समुद्रगुप्त ने नागवंशिय शासकों को हराकर जो क्षेत्र जीता था उस क्षेत्र में कालिंजर परिक्षेत्र भी आता था।ऐतिहासिक साक्ष्य जो हमें प्राप्त होते हैं उसके अनुसार गुप्त साम्राज्य कालान्तर में भारत के विभिन्न भागों में फैला था।

गुप्त वंश की उत्पत्ति के संदर्भ में कोई सही ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते । गुप्त नाम भारत के अभिलेखों में विशेषकर शुंग और सातवाहन वंशों के साथ प्रयुक्त हुआ है। इसके अनुसार ये लोग मूलरूप से करास्कर वंश के सिद्ध होते हैं। "कौमुदी महोत्सव" नामक ग्रंथ के अनुसार चन्द्रसेन को चन्द्रगुप्त प्रथम समझना उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि चन्द्रसेन के वंश को नष्ट कर दिया गया था। चन्द्रगुप्त प्रथम का वंश कई शताब्दियों तक राज्य करता रहा। लिच्छवियों ने चन्द्रसेन की सहायता की, इसीलिए चन्द्रसेन को कतिपय इतिहासकारों के द्वारा चन्द्रगुप्त प्रथम माना जाता है। के0 पी0 जायसवाल का मत है कि गुप्तवंशीय शासक जाट थे। डॉ0 एच0 सी0 राय चौधरी का भी यही मत है डा0 डी0 सी0 गांगुली के अनुसार गुप्तवंशीय शासकों का मौलिक स्थान मुर्शिदाबाद बंगाल में था। वे मगध के निवासी नहीं थे। डा0 आर0 सी0 मजूमदार का मत है कि नेपाल में सन् 1015 ई0 में एक हस्तलिखित लेख प्राप्त हुआ था जिसमें वरेन्द्री के मृहस्थापन स्तूप का वर्णन है। गुप्त वंश के शासक श्रीगुप्त के राज्य में इसका कुछ भाग सम्पादित किया गया। इस अभिलेख के अनुसार गुप्त लोग नालन्दा से 240 किलो मीटर दूर माल्दा के निवासी थे। विष्णुपुराण वायुपुराण तथा भागवत पुराण से ज्ञात होता है कि गुप्त राज्य, मगध, उत्तर पश्चिमी बंगाल तथा गंगा नदी के किनारे के प्रदेशों में फैला हुआ था। किन्तु गुप्त मगध के मूल निवासी नहीं थे। गुप्त वंश की स्थापना श्रीगुप्त के शासन काल में सन् 240 ई0 में हुई। इसने सन् 280 ई0 तक शासन किया। इसके पश्चात घटोत्कच ने सन् 280-319 ई0 तक शासन किया। चन्द्रगुप्त ने 319-335 ई0 तक राज्य किया। इसके बाद समुद्रगुप्त ने सन् 335-375 ई0 तक राज्य किया। इसने राज्य का चतुर्दिक विस्तार किया और अपना विजय स्तम्भ अशोक के स्तम्भ में ही अंकित कराया। पहले यह स्तम्भ कौशाम्बी में था किन्तु इसे मूल स्थान से हटाकर प्रयाग में स्थापित किया गया। कुछ इतिहासकारों का यह विचार है कि यह स्तम्भ समुद्र गुप्त की मृत्यु के बाद अभिलिखित किया गया। इस स्तम्भ लेख की रचना समुद्रगुप्त के राजकवि हरिषेण ने की। हरिषेण समुद्रगुप्त का युद्ध मंत्री था। इस अभिलेख में यह कहा गया है कि समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत के तीन राजाओं को पराजित किया था। इनके नाम अच्युत नाग, नागसेन एवं गणपति थे। इनका राज्य अहिछत्र, मथुरा तथा पद्मावती में था। इस समय कालिंजर परिक्षेत्र नाग वंशिय राजाओं के आधीन था। समुद्रगुप्त के लेख में विन्ध्यआटवीं का नाम दिया गया है। यह भी सम्भावना की जाती है कि समदुगुप्त का नागों से युद्ध कौशाम्बी के निकट हुआ होगा। समुद्रगुप्त ने आटविक राजाओं एवं जंगली जातियों को भी आत्म समर्पण करने के लिए विवश कर दिया। जिन जातियों ने आत्म समर्पण किया, उनका उल्लेख अभिलेख

की 23 एवं 24 पंक्ति पर है। इसलिए इस अभिलेख से यह सिद्ध होता है कि उसका साम्राज्य कालिंजर क्षेत्र में भी था। डॉ0 भण्डारकर का विचार है कि महाकाण्टार का व्याघ्रराज निश्चय ही उच्च कल्प वंश के जयनाथ का पुत्र व्याघ्र ही था जिसने बुन्देलखण्ड के जासों और अजयगढ़ राज्यों में राज्य किया किन्तु महाकाण्टार राज्य विन्ध्य पर्वत के उत्तर में था दक्षिण में नहीं। जैसा कि इलाहाबाद अभिलेख में है। बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित में इस बात का उल्लेख मिलता है। कि नागसेन का पतन उसकी मूर्खता के कारण हुआ। उसने अपनी गोपनीय योजना एक सारिका के सम्मुख की जिसने उसे उजागर कर दिया। इस समय यमुना विदिशा एवं बुन्देलखण्ड के बीच का भाग रूद्रदेव अथवा रूद्रसेन वाकाटक के हाथों में था जिसे समुद्रगुप्त ने छीन लिया। प्रसिद्ध इतिहासकार डा0 राय चौधरी के अनुसार समुद्रगुप्त का आटविक राज्य, डाभाल क्षेत्र था, जो जबलपुर तथा ऐरण तक फैला हुआ था। कालिंजर क्षेत्र उसी के अन्तर्गत आता था। समुद्रगुप्त के पश्चात रामगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीस, कुमारगुप्त प्रथम, स्कन्दगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय तथागतगुप्त, कृष्णगुप्त, हर्षगुप्त, जीवितगुप्त, कुमारगुप्त त्रतीय, दामोदरगुप्त, महासेनगुप्त, देवगुप्त द्वितीय, माधवगुप्त, आदित्य सेन, देवगुप्त त्रतीय विष्णुगुप्त द्वितीय, जीवितगुप्त द्वितीय आदि राजाओं ने राज्य किया। इसके पश्चात ईसा की छठी शताब्दी के अंत में गुप्त वंश का पतन हो गया।

जब इस परिक्षेत्र का प्रशासन गुप्तवंशीय शासकों के हांथ में आया, उस समय छठी शताब्दी तक गुप्त यहां के किसी न किसी रूप में शासक रहे। इस युग में आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। इसी युग में व्यक्तियों के सांस्कृतिक जीवन का उत्थान हुआ। इसका लाभ कालिंजर परिक्षेत्र तथा मध्य भारत को हुआ। गुप्तकाल स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है। गुप्तकाल के दौरान कालिंजर क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ। यह एक प्रथक भुक्ति (प्रांत) के रूप में प्रसिद्ध हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त शासकों ने इस क्षेत्र को भुक्ति अथवा प्रशासनिक मण्डल का रूप दिया जिसका बहुत बड़ा भाग वर्तमान बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित था। इस युग में इस परिक्षेत्र को चेदि भुक्ति के नाम से जाना जाता था। बाद में यह क्षेत्र जैजाकभुक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस युग का एक अभिलेख चन्द्रगुप्त द्वितीय का इलाहाबाद जनपद के गढ़वा में उपलब्ध हुआ है जो इलाहाबाद से 8 मील दूर कौशाम्बी के समीप यमुना तट पर है। इस अभिलेख में कालिंजर का उल्लेख विशेषरूप से किया गया है। इससे स्पष्ट है कि गुप्तवंशीय शासकों को कालिंजर का महत्व ज्ञात था।[40] इसी युग के दो शिलालेख कालिंजर में भी उपलब्ध हुए हैं, जिनमें गुप्त युग की समृद्धि का वर्णन है। इन ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि गुप्त साम्राज्य अत्यन्त समृद्धशाली था, और उसका प्रशासनिक अस्तित्व कालिंजर क्षेत्र तक था। इस जनपद में गुप्त साम्राज्य का ईसा की 5 वीं शताब्दी तक निरन्तर बना रहा। बुन्देलखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्था परिव्राजक महाराज को दी गई। उसे हस्तिन के अन्तर्गत रखा गया। हस्तिन गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत था। बुद्ध गुप्त की मृत्यु के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। इस बात के पर्याप्त साक्ष्य हैं कि गुप्त साम्राज्य आन्तरिक संघर्षों के कारण पतित हुआ। इसी समय

हूणों का आक्रमण भी हुआ, और उन्होंनें जिन्होंने गुप्तों के अन्तर्कलह से फायदा उठाया। उत्तर गुप्तों का अस्तित्व कालिंजर परिक्षेत्र में बहुत समय तक बना रहा। हूणों के आक्रमण तेज होने के कारण गुप्तों का पतन हुआ। इस समय हूणों का नेतृत्व तोरमान कर रहा था। उसने मध्य भारत में आक्रमण किया और अपना राज्य स्थापित किया। इससे यह सिद्ध होता है कि कुछ समय के लिए कालिंजर परिक्षेत्र गुप्तों के अधिकार से हूणों के अधिकार में आ गया। तोरमान से लेकर उसके पुत्र मेहर कुल तक अर्थात 515 ई0 तक और उसके बाद उसके अन्य उत्तराधिकारी यशोधर्मन एवं नरसिंह गुप्त तक उनके राज्य में बना रहा।[41] इधर राजनीतिक परिक्षेत्र में कुछ ऐसी उथल-पुथल हुई कि परिवर्ती गुप्तों ने अपनी खोई हुई शक्ति को पुर्नर्जागृत करने का प्रयत्न किया। दुबारा गुप्तयुग की शान-शौकत और साम्राज्य को वापिस लेने का प्रयत्न किया गया किन्तु आन्तरिक कलह एवं असहयोग के कारण सफल नहीं हो सके तथा अपने ही क्रिया कलापों में उलझ गये। इसी समय एक नई शक्ति का उदय हुआ। यह शक्ति पाण्डु वंशीय नरेश उदयन के साथ विकसित हुई। ईसा की छठी शताब्दी तक इसका अस्तित्व बना रहा। इसका एक शिलालेख कालिंजर में उपलब्ध हुआ है। यह लगभग पाचवीँ शताब्दी के अंत का है। उसके पश्चात उदयन का नाती त्रिवरदेव उसका उत्तराधिकारी हुआ जिसने दक्षिण के कौशल राज्य की स्थापना की।

कालिंजर परिक्षेत्र में वर्धन साम्राज्य का अस्तित्व-

गुप्त साम्राज्य का पतन ईसा की पांचवी शताब्दी में हो गया। इनके पतन के बाद छठी शताब्दी में उत्तर पूर्वी भारत में मौखरियों ने अपना राज्य स्थापित किया। "हरहा" अभिलेख के अनुसार मौखरी वैवस्वत मुनि के वंशज थे। इसी वंश के अनुसार यह क्षत्रिय प्रतीत होते हैं। इन्होंने अपने राज्य का बिस्तार किया। अनेक स्थानों में इनके अभिलेख एवं मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। इस वंश का उत्कर्ष प्रारम्भ में मगधवर्ती प्रदेश में हुआ। इस वंश में यज्ञ वर्मा, शार्दूल वर्मा एवं अन्नत वर्मा आदि प्रारम्भिक नरेश हुए। इनकी एक शाखा कन्नौज में भी राज्य करती थी, जिनमें हरिवर्मा, आदित्य वर्मा, ईश्वर वर्मा, ईशान वर्मा, सर्ववर्मा, अवन्ति वर्मा, तथा गृह वर्मा शासक हुए। कन्नौज एवं गया के मौखरी वंशों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते, किन्तु कालिंजर परिक्षेत्र में कन्नौज की मौखरी शाखा का ही राज्य था। बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित से यह ज्ञात होता है कि गृहवर्मा अवन्ति वर्मा का ज्येष्ठ पुत्र था। उसने प्रभाकर वर्धन की पुत्री राज्यश्री से विवाह करने की चेष्टा की। डॉ0 मजूमदार के अनुसार अवन्तिवर्मा के उपरान्त गृह वर्मा ने राजसिंहासन सुशोभित किया तथा पुष्यभूति वंश के प्रभाकर वर्धन की पुत्री राज्यश्री से विवाह किया जिसके कारण उत्तरकालीन गुप्त वंश असुरक्षित हो गया और साथ ही राजनीतिक व्यवस्था भी असुरक्षित हो गई। गुप्त नरेश ने गौण नरेश शशांक से मित्रता एवं संधि की और कन्नौज पर आक्रमण करके गृहवर्मा की हत्या कर दी। गृहवर्मा पुत्र विहीन था। गृहवर्मा की मृत्यु सन् 606 ई0 में हुई। इसकी मृत्यु के पश्चात् हर्षवर्धन नें राज्यश्री व अन्य सदस्यों के कहने पर कन्नौज के शासन की बागडोर अपने हांथों में ले ली। हर्षवर्धन ने

सन् 606-647 तक राज्य किया। ''परमभट्टारक महाराजाधिराज'' प्रभाकर वर्धन के पुत्र हर्षवर्धन का जन्म सन् 591 में हुआ। ये बचपन से प्रतिभावान था। कहते हैं कि गृहवर्मन की मृत्यु के पश्चात् राज्यश्री सती होने के लिए कारागार से मुक्त होकर विन्ध्याचल श्रेणियों में गई थी। हर्ष वर्धन ने वहां पहुंचकर राज्यश्री को सती होने से बचाया और अपने साथ ले आया। कतिपय इतिहासकारों का मत है कि जिस स्थल में राज्यश्री सती होना चाहती थी वह स्थल कालिंजर परिक्षेत्र में ही कहीं था। हर्षवर्धन ने अपने राज्य का विस्तार उत्तर भारत में मथुरा, थानेश्वर ,सुधगांव, ब्रह्मपुर काशीपुर,रामपुर, पीलीभीत ,अहिछत्र, काली नदी के तट पर स्थित अतरंजी खेरा, संकिश (सांकश्य), अयोध्या, हयमुख, प्रयाग , कौशाम्बी ,श्रावस्ती, विशेक, रामग्राम, कुशीनगर, वाराणसी, वैशाली तथा वृज्जि क्षेत्र तक किया।

सन् 606 में अस्तित्व में आने के पश्चात हर्ष वर्धन ने सम्पूर्ण भारत में अपना राज्य स्थापित किया। कालिंजर उसी साम्राज्य में था। हर्ष वर्धन का काल ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के लिए अति महत्वपूर्ण माना जाता है। उसके शासनकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग 641-42 में भारत आया। उसने इस क्षेत्र का नाम चिच-ची-टू अर्थात चित्रकूट रखा, जिसकी राजधानी खजुराहो थी। उसके अनुसार हर्षवर्धन का साम्राज्य उत्तर पूर्व में 1000 मील तथा दक्षिण में 900 मील तक महेश्वर पुरा(ग्वालियर) तक विस्तृत था। इसकी राजधानी 15 क्षेत्रों से घिरी थी। कृषि की स्थिति बहुत अच्छी थी। सम्राट हर्ष वर्धन प्रारम्भ में हिन्दू धर्मावलम्बी था किन्तु बाद में बौद्ध धर्मावलम्बी हो गया। उसके सिद्धान्तों का पालन करने लगा। उसके दरबार में अनेक बुद्धिजीवी रहते थे।[42] इस विषय में थोड़ा संदेह किया जा सकता है कि जैजाक भुक्ति तथा चित्रकूट प्रदेश एक था अथवा अलग-अलग । इतिहासकारों का यह मानना है कि उसके राज्य में सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र भी शामिल था ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष वर्धन ने वर्मन राजकुमारों को सर्वत्र अपना माण्डलिक नियुक्त किया। हर्षवर्धन की मृत्यु सन् 647 ई0 में हुई। उसका कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण फिर से यह साम्राज्य पतित होने लगा। हर्ष की मृत्यु के पश्चात इस परिक्षेत्र में राजनीतिक स्थिति लड़खड़ा गई तथा कल्चुरियों का अधिकार हो गया।

छठी शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी तक-

छठी शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक कालिंजर परिक्षेत्र में कई राजवंशों कल्चुरयों, चालुक्यों, कन्नौज के गुर्जरप्रतिहारों, राष्ट्रकूटों एवं चंदेलों ने राज्य किया। कालिंजर में सबसे महत्वपूर्ण शासन चंदेलों का रहा, इन्होंने लम्बें अरसे तक शासन किया।

कल्चुरियों का कालिंजर परिक्षेत्र पर अधिकार-

सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तरी भारत का अधिकांश साम्राज्य राजनीतिक उथल-पुथल का शिकार हुआ। इस मौके का फायदा कल्चुरियों ने उठाया और अपने राज्य का विस्तार उत्तर भारत तक कर लिया। कालिंजर में भी अल्प समय के लिये शासन किया।त्रिपुरी का कल्चुरि राजवंश अत्यन्त शक्तिशाली

राजवंश था, कुल मिलाकर कल्चुरि राजवंश ने 1200 वर्षों तक राज्य किया। इस राजवंश की स्थापना सम्भवतः 248-49 ई0 में हुई। इस वंश से सम्बन्धित अनेक अभिलेख प्राप्त होते हैं, जिनसे इनके राज्य विस्तार का पता चलता हैं। इनका राज्य पूर्व में छत्तीसगढ़ तक, उत्तर में गोरखपुर एवं देवरिया तक विस्तृत था। उन्होंने अपने सम्पूर्ण अभिलेखों में संवत् 248-49 ई0 का ही उल्लेख किया है।[44] कल्चुरि राजवंश कलच्चुरि, कटच्चुरि, अथवा हैहय या अहिहय के नाम से जाना जाता था। इस संदर्भ में अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

यथा-

देवः श्रीकार्त्तवीर्यः क्षितिपतिरभवद् भूषणं भूतधाल्या,
हेलोक्षिप्ताद्रिविभ्यत्तुहिनागिरिसताश्लेष सन्तोंषितेशम् ।[45]

इस वशं में महिष्मती के कल्चुरि, सरयूपार के कल्चुरि और त्रिपुरी के कल्चुरि शामिल हैं। कालिंजर परिक्षेत्र में त्रिपुरी के कल्चुरियों का ही प्रभाव था। यह शासन गुर्जर प्रतिहारों के पहले हुआ तथा बाद के कल्चुरि शासक अपने राज्य विस्तार में लग गये। उन्होंने कालिंजर को अपने आधीन कर लिया। अनेक कल्चुरि राजाओं ने "कालिंजर पुरअधीश्वर " व "कालिंजर पुर राजाधिराज" की उपाधि धारण की।[46] इस विषय में कलहा में एक दानपत्र प्राप्त हुआ हैं, जो सन् 1077 ई0 का है। जिसमें कल्चुरि नरेश सोधदेव का उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि चंदेल नरेशों से पहले कालिंजर में कल्चुरियों का शासन था। जो में उसके उत्तराधिकारी राजपुत्र का उल्लेख है जो लक्ष्मण राजा में परिवार में उत्पन्न हुआ। उसके बड़े भाई के अधिकार में कालिंजर परिक्षेत्र था। यह घटना कन्नौज के प्रतिहारों के उत्थान के पूर्व की है।[47] दक्षिण भारत के कल्चुरि नरेश अपने को शिवा नरेश की संतान मानते हैं जो कृष्णराज या कृष्ण के नाम से जाना जाता था। यह एक ब्राह्मणी का पुत्र था। उसने कालिंजर के पुर नरेश का पालन-पोषण किया।वह भी कुछ दिन तक कालिंजर का नरेश रहा "नव लाख गांव 'जो डाहल (जंगल) मण्डल में थे, उसके आधीन हो गये। सम्भवतः यह चेंदिवंश का था। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिंजर उसी के आधीन रहा होगा। उस समय इनका शासक मंगलेश चालुक्य था। जिसका सम्पर्क कालिंजर से था।[44] इतिहासकार डॉ0 रमेशचन्द्र श्रीवास्तव के अनुसार कालिंजर परिक्षेत्र में छठी शताब्दी के पश्चात कल्चुरियों का राज्य स्थापित हो चुका था।इस बात की पुष्टि प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 एस0 के0 सुल्लेरे ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ " अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाएँ" में भी किया है। उनके मतानुसार कृष्णराज प्रथम ऐतिहासिक कल्चुरि शासक था, जिसका साम्राज्य मालवा ,मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र एवं विदिशा तक विस्तृत था। इसने कालिंजर एवं डहाल क्षेत्र को भी विजित किया। इस वंश का सबसे शक्तिशाली सम्राट विज्जल कल्याण था। यह सन् 1165 ई0 में गद्दी में बैठा। उसने दो उपाधियां "कालिंजर पुराधीश्वर" एवं दहाला-बिडंगा ग्रहण की। वह प्रसिद्धतम् कालिंजर नगर का आधिपत्य एवं दहाला प्रदेश का आभूषण था। इस वंश के अन्य राजाओं ने भी इस उपाधि

को धारण किया। कुछ काल के लिए कालिंजर पर सरयूपारी कल्चुरि नरेशों का अधिकार रहा। कृष्णराज की जो मुद्रायें यहां पर उपलब्ध हुई हैं। उनसे इनकी पुष्टि होती है। कृष्णराज छठी शदी के मध्य में शासक था। इस समय यहां पाण्डु वंशीय उदयन का राज्य था।बाद में इसके उत्तराधिकारी दक्षिण में कौशल की ओर चले गये। कालिंजर परिक्षेत्र को कृष्णराज ने विजित किया। प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान बिल्हण की सूक्त मुक्तावली में कालिंजर नरेश का नाम भीमता का उल्लेख है।जिसने पांच नाटकों की रचना की। जिसमें स्वप्न दर्शन सर्वाधिक प्रसिद्ध है। कशिया में एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें दो कल्चुरि राजकुमारों का उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस वंश का प्रारम्भ से ही कालिंजर पर अधिकार था। यहां पर 'भीमल' की समानता शिवराजा प्रथम के पुत्र से की गई है। लेकिन कृष्णराज ही ऐसा शासक प्रतीत होता है जिसने कालिंजर को जीता और जीतकर इस राज्य को अपने छोटे भाई लक्ष्मणराज को दे दिया। कालान्तर में इनका राज्य संकुचित हो गया। सागर में एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें शंकरगढ़ को रामराज देव का पदानुध्याता माना गया है। प्रसिद्ध विद्वान मिरासी इसे सातवीं शताब्दी का मानते हैं। प्रो0 के0 डी0 बाजपेयी इसे बुद्धिराजा का उत्तराधिकारी मानते हैं। रामराज ने कालिंजर के अभेद्य दुर्ग को जीता, जो कृष्णराज के समय से कल्चुरियों का सुदृढ़ आधार था। उसने अपनी राजधानी कालिंजर को बनाया जो प्रमुख धार्मिक केन्द्र भी था।[49] कुछ दिनों के पश्चात कालिंजर परिक्षेत्र का शासनाधिकार चालुक्यों के हांथ में चला गया और कुछ समय के लिए यहां का शासक मंगलेश चालुक्य रहा।

कालिंजर पर चालुक्यों का अधिकार-

चालुक्यों की उत्पत्ति के विषय में कोई स्पष्ट व्योरेवार उल्लेख नहीं मिलता । बादामी, कल्याणी तथा बेंगी के चालुक्यों से गुजरात के चालुक्यों का कोई सम्बन्ध था अथवा नहीं। इस बात का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। पूर्वी एंव पश्चिमी चालुक्य वंश अपनी उत्पत्ति बादामी के चालुक्य वंश से मानते हैं। परन्तु गुजरात का वंश अपने को चालुक्य के नाम से पुकारता है।[51] पृथ्वीराजरासो के अनुसार चालुक्यों की उत्पत्ति माउण्टआबू में स्थित वसिष्ठ के अग्निकुण्ड से हुई है। कल्चुरियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ कुमारपाल चरित एवं प्रबन्धचिंतामणि में भी कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं। इस वंश का प्रथम शासक मूलराज था। उसने सन् 941-996 ई0 तक राज्य किया। इसके बाद इस वंश में चामुण्डराज, बल्लभराज,दुर्लभराज ,भीमप्रथम, कर्ण जयसिंह, सिद्धराज आदि शासक हुए।

विजयादित्य ने अपने शिलालेख में इस बात का उल्लेख किया है कि कालिंजर परिक्षेत्र उस समय हैहय वंशीय क्षत्रियों के आधीन था। बाद में यही हैहय वंशीय कल्चुरि कहलाये। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर कल्चुरियों की प्रमुख शक्ति का केन्द्र था। कल्चुरि संवत के अनुसार यह तिथि लगभग 244 ई0 है।[52] इस समय तक कल्चुरि अर्ध स्वतंत्र राज्य के रूप में था। यह छठी शताब्दी तक इसी रूप में बना रहा। चालुक्यों का अधिकार कालिंजर पर भले ही अल्प समय के लिए हुआ हो किनतु कालिंजर पर

अधिपत्य कल्चुरियों का था। कल्चुरियों का विस्तृत इतिहास उपलब्ध नहीं होता, जिससे कालिंजर परिक्षेत्र में उनकी शासन व्यवस्था का विस्तार से अध्ययन हो सके किन्तु यह निश्चित ही उपलब्ध होता है कि कालिंजर परिक्षेत्र में यशोवर्मन का शासन रहा किन्तु यह कन्नौज के शासक गुर्जर प्रतिहारों के आधीन शासन करता रहा। यशोवर्मन का शासन काल लगभग 850 ई0 तक रहा। इसने अपने राज्य का विस्तार काफी किया था। किन्तु अंत में इनके राज्य का पतन काश्मीर नरेश ललितादित्य के कारण हुआ। यशोवर्मन को ललितादित्य के हांथों पराजित होना पड़ा। कालिंजर परिक्षेत्र में ललितादित्य के समय की स्वर्ण मुद्रायें उपलब्ध हुई है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र ललितादित्य के साम्राज्य के अन्तर्गत था।[53] इस ऐतिहासिक साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हां यह सम्भव है कि कुछ समय के लिए वह यहां आया हो जिसकी स्वर्ण मुद्रायें कतिपय कारणों से यहां प्राप्त हुई हों।[54]

कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों का कालिंजर पर शासन-

कल्चुरियों के पतन के पश्चात कालिंजर परिक्षेत्र में गुर्जर प्रतिहारों का अस्तित्व बढ़ा गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई वास्तविक साक्ष्य नहीं प्राप्त होते । उपलब्ध साहित्यक साक्ष्यों के अनुसार ये रघुकुल वंशीय क्षत्रिय हैं। ग्वालियर में उपलब्ध मिहिरभोज प्रशस्ति में उन्हें राम के छोटे भाई लक्ष्मण के साथ जोड़ा गया है।

श्याध्यस्तस्यानुजौऽसौ मघवमुदमुषोमेघनादस्य संख्ये।

सौमित्रिस्तीव्रदण्डः प्रतिहरणविधेर्यः प्रतीहार आसीत्।।[55]

इस अभिलेख के अनुसार रामचन्द्र जी के अनुज लक्ष्मण जी ने प्रतिहार का काम किया था, इसलिए ये लोग अपने नाम के आगे प्रतिहार लिखने लगे। यही बात कक्क के पटियाला अभिलेख में भी दोहरायी गयी है। पटियाला अभिलेख में प्रतिहारों के मूल पुरूष हरिचन्द्र को ब्राह्मण कहा गया हैं। जिसकी भद्रा नामक एक क्षत्रिय स्त्री से प्रतिहारों की उत्पत्ति हुई इस वंश के नरेश महेन्द्रपाल[56] को कवि राजशेखर,रघुकुलतिलक और रघुग्रामणी तथा महीपाल[57] को रघुवशं मुक्तामणि के नाम से सम्बोधित करता है। चन्दवरदाई द्वारा रचित पृथ्वीराजरासों के अनुसार गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति आबू पर्वत के यज्ञ कुण्ड से हुई है। कुछ लोगों का यह कथन है कि यह कोई विदेशी जाति के क्षत्रिय थे। जिन्हें यज्ञ के माध्यम से शुद्ध करके आर्य कुल एवं हिन्दू समाज में मिला लिया गया। किन्तु भारतीय इतिहासकार इस तथ्य को नहीं मानते। इसका खण्डन करने वालों में चिन्तामणि विनायक वैद्य[58] और महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा[59] ने किया। कुछ उनके मिलते जुलते तथा कुछ नये तर्कों के साथ धीरेन्द्रचन्द्र गांगुली[60], दशरथ शर्मा[61] कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी[62] कृष्णस्वामी अयंगार[63] बैजनाथ पुरी[64] और विशुद्धानन्द पाठक[65] ने इनके भारतीय होने का समर्थन किया है। विदेशी उत्पत्ति के सिद्धान्त को मान्यता देने वाले विद्वान उन्हें गुर्जर कबीले का राजा मानते हैं किन्तु भारतीयता का सिद्धान्त मानने वाले उन्हें गुर्जर देश का

राजा मानते हैं। कुल मिलाकर यह भारतीय मूल के ही थे। गुर्जर प्रतिहार वंश की दो शाखाऐं थीं- प्रथम- उज्जैन के गुर्जर प्रतिहार, द्वितीय, कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार, उज्जैन के गुर्जर प्रतिहार वंश में शक्तिशाली सम्राट नागभट्ट प्रथम, ककुस्थ, देवराज, वत्सराज आदि शासक हुए।

यशोवर्मन की मृत्यु के पश्चात जब तक कन्नौज राज्य में गुर्जर प्रतिहारों का पुनर्रूत्थान नहीं हुआ उस समय तक के कालिंजर का इतिहास अंधकारमय प्रतीत होता है। इस वंश के वत्सराज ने अपने राज्य का विस्तार उत्तर भारत में किया।[66] वत्सराज का पुत्र नागभट्ट द्वितीय उत्तराधिकारी हुआ। उसने कन्नौज में अपने शक्तिशाली राज्य की नींव डाली। उसका राज्यारोहण 800 ई0 के आसपास हुआ। इस शासन का प्रथम शक्तिशाली गुर्जर प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय था। इसका शासन लगभग 800-833 ई0 तक रहा। इसने कन्नौज साम्राज्य का विस्तार किया इसने अपने साम्राज्य का विस्तार राष्ट्रकूटों के आक्रमणों का प्रतिरोध करते हुए किया। राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द त्रतीय ने नागभट्ट द्वितीय से बुन्देलखण्ड क्षेत्र में युद्ध किया जिसमें नागभट्ट द्वितीय की पराजय हुई।[67] किन्तु कुछ समय बाद नागभट्ट द्वितीय ने अपनी स्थिति सम्भाली और पुनः खोई हुई सत्ता पर अधिकार कर लिया। इस समय ग्वालियर, कालिंजर उसके राज्य के अन्तर्गत थे।[68] नागभट्ट द्वितीय के पश्चात उसका पुत्र रामभद्र गद्दी पर बैठा। इसने कुल तीन वर्षों तक शासन किया। रामभद्र के पश्चात उसका पुत्र मिहिरभोज सन् 836 ई0 में राज्य का उत्तराधिकारी बना। इसके शासन काल में प्रतिहार साम्राज्य ने काफी उन्नति की।[69] इसने राज्य की बिगड़ती हुई स्थिति सुधारी तथा प्रतिहार वंश की गिरती शाख को पुनः बढ़ाया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने यह निश्चय किया कि वह अपने पूर्वजों की हार का बदला लेगा और उसने ऐसा करना प्रतिहार परिवार के सम्मान का अंग बना लिया था।[70] मिहिरभोज ने सिंहासन में बैठते ही उदमबिरविस्या को जीतकर कालिंजर को अपने शासन का एक मण्डल बनाया तथा उसे कान्यकुब्ज भुक्ति में शामिल किया। जो बन्धन उसके बाबा के समय में टूट गया था उसे पुनः उसने जोड़ा[71] इस बात की पुष्टि वाराह ताम्रपत्र से होती है। जो सन् 836 में लिखा गया। जो कैम्प महोदया में लगा था। उससे इस बात की पुष्टि होती है कि कालिंजर मण्डल कान्यकुब्ज भुक्ति का एक अंग था। जिसका निर्माण उसके पिता ने अपने शासन के दौरान किया था। कालिंजर परिक्षेत्र उसके आधीन था।[72] इस समय कालिंजर परिक्षेत्र की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। यह प्रदेश प्राकृतिक सम्पदा का धनी था। इस परिक्षेत्र में लूट एवं डकैती के अपराध बहुत कम होते थे।[73] इसके पश्चात उसका पुत्र महेन्द्रपाल शासक बना। यह 890 ई0 में सिंहासन पर बैठा। उसने अपने राज्य का विस्तार उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणियों से लेकर दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों तक किया। पश्चिम में उसके राज्य का विस्तार पश्चिमी समुद्र तट तक था।[74] यह विद्धानों का भी समादर करता था। उसके दरबार में अनेक विद्वान रहते थे। उनमें 'राजशेखर' नामक सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान भी था।[75]

महेन्द्रपाल के शासन के पश्चात इस साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। आन्तरिक संघर्षों के कारण

गुर्जर प्रतिहार अधोपतित हुए। इसी के शासन के दौरान ही चंदेलों का उत्थान हुआ। गुर्जर प्रतिहारों के साम्राज्य में चंदेलों का महत्वपूर्ण स्थान था। इन्होंने अवसर का लाभ उठाते हुए अपने विकास के लिए कार्य किया। इसी समय चंदेलों ने अपने विकास के लिए कार्य किया। इसी समय चंदेलों ने अपने स्वर्णिम इतिहास का भी निर्माण किया। उन्होंने धीरे-धीरे अपने साम्राज्य का शुभारम्भ प्रतिहारों के अधीनस्थ रहकर सर्वप्रथम खजुराहों में किया। राजा महेन्द्रपाल की मृत्यु 910 ई0 के पश्चात गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य की स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती चली गई। भोज द्वितीय और महिपाल के मध्य प्रतिहार सत्ता के लिए संघर्ष हुआ। सर्वप्रथम भोज द्वितीय को उत्तराधिकारी बनाया गया। उसको उत्तराधिकारी बनाने में काकुल्य देव ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय ने महिपाल को राजा बनाने के लिए चंदेल राजकुमार हर्ष की मदद ली। भोज द्वितीय और महिपाल के मध्य संधि करा दी गई। जिसके कारण इन दोनों का संघर्ष टल गया। हर्ष ने महिपाल को शासक मान लिया क्योंकि हर्ष ने समझा कि महिपाल के शासक बनने से खजुराहों का शासन सुरक्षित रहेगा। खजुराहो में एक अभिलेख उपलबध हुआ है, जिसमें गुर्जर प्रतिहार नरेश महिपाल का उल्लेख मिलता है।[76] इसी समय चंदेल नरेश हर्ष की शक्ति में वृद्धि हुई। आन्तरिक विद्रोह एवं बाहरी आक्रमणों के कारण प्रतिहारों का पतन निश्चित हो गया, और हर्ष का महत्व बढ़ गया। इसी समय राष्ट्रकूट नेरश इन्द्र तृतीय ने सन् 916-917 के मध्य गुर्जर प्रतिहारों के खिलाफ आक्रमण कर दिया और प्रतिहार नरेश महिपाल अपनी जान बचाकर भागा।[77] किन्तु राष्ट्रकूटों की यह विजय थोड़े ही दिनों तक रही। महिपाल ने चंदेल नरेश हर्ष की मदद से अपने शासन को पुनः प्राप्त कर लिया। महिपाल ने चंदेलों की स्थिति में वृद्धि की तथा चंदेल उसके बाद ही उत्तरी भारत के शक्तिशाली शासक बन गये। महिपाल अधिक दिनों तक सत्ता का दुबारा सुख नहीं भोग सका।[78] अब कालिंजर में राष्ट्रकूटों का शासन प्रारम्भ हो गया।

कालिंजर में राष्ट्रकूटों का शासन-

इतिहासकारों के अनुसार राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति के संदर्भ में कई सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। प्रसिद्ध अग्रेंज विद्वान डॉ0 फ्लीट के अनुसार राष्ट्रकूट राठौरों के वंशज थे, जबकि दूसरे विद्वान बर्नेल का विचार था कि ये लोग आंध्र के निवासी थे और द्रविड़ों से इनके सम्बन्ध थे। यह सम्भावना पाई जाती हैं कि मलखेद के राष्ट्रकूट, राष्ट्रिकों या राठिकों के वंशज थे। इस वंश की उत्पत्ति ई0पू0 तीसरी शताब्दी के मध्य में हुई। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार राष्ट्रकूट एक शासकीय पदवी थी। जिले के प्रमुख को राष्ट्रकूट के नाम से पुकारा जाता था। राजवंशी राष्ट्रकूटों ने दावा किया कि वे महाभारत काल के यदुवंश के हैं। ऐतिहासिक साक्ष्य उपलबध होता है कि गोविन्द त्रतीय के जन्म से राष्ट्रकूट वंश उसी प्रकार अजेय हो गया जिस प्रकार मुरारि या कृष्ण के जन्म से युदवंश अजेय हो गया था। 871 ई0 के संजान अनुदान के लेखक ने कृष्ण को राष्ट्रकूट वंश का आदिपूर्वज माना है। प्रतीत होता है कि लगभग 742 ई0 में राष्ट्रकूट वंशी गोविन्दराज चालुक्य, राजा विक्रमादित्य के अधीन सतारा- रत्नगिरि प्रदेश में राज्य करता था किन्तु यह निश्चित रूप

से नहीं कहा जा सकता कि पांचवी और छठी शताब्दी के राष्ट्रकूटों से इसका कोई सम्बन्ध था। अभिलेखों एवं मुद्राओं से ज्ञात होता है कि राठिक और महारथी परिवार महाराष्ट्र में और कर्नाटक के कुछ भागों में सामन्त शासकों के रूप में राज्य करते थे।डा0 अल्टेकर का कथन है कि उनका मूल स्थान कर्नाटक था और उनकी मातृ-भाषा कन्नड़ थी। राष्ट्रकूट वंश के प्राथमिक शासक दन्तिवर्मा, इन्द्र प्रथम, गोविन्द प्रथम, कर्कप्रथम और इन्द्र द्वितीय थे। इन्होनें कोई महत्वपूर्ण सफलताएं प्राप्त नहीं की। इन्होंने बरार में राज्य किया और इनका महत्वपूर्ण काल दन्तिदुर्ग के समय से प्रारम्भ होता है। उसने अपने राज्य का विस्तार किया। उसने माही, महानदी और रींवा नदियों तक युद्ध किये। अपने राज्य का विस्तार कांची, कलिंग, कौशल, श्री-शैल, मालव, लाट एवं टंका तक किय। उसने उज्जैन में 'हिरण्यगर्भ' यज्ञ किया जिसमें गुर्जर वंशी राजा तथा अन्य राजाओं को द्वारपाल बनाया। 747 ई0 में विक्रमादित्य द्वितीय की मृत्यु के पश्चात उसने अपना विजय अभियान प्रारम्भ किया। इसकी मृत्यु के पश्चात इसके प्रमुख शासकों में कृष्ण प्रथम 758-773 ई0 तक, गोविन्द द्वितीय 773-780 ई0 तक, ध्रुव 780-793 ई0 तक, गोविन्द त्रतीय 793-814 ई0 तक अमोघवर्ष 814-878 ई0 तक कृष्ण द्वितीय 878-914 ई0 तक, इन्द्र त्रतीय 914-922 ई0 तक, अमोघवर्ष द्वितीय 922-939 ई0 तक, कृष्ण त्रतीय 939-968 ई0 तक, खोत्तिग 968-972 तक, कर्क द्वितीय 972-973 ई0 तक इस प्रकार राष्ट्रकूटों ने 225 वर्ष तक शासन किया । तत्पश्चात उनका वंश राजसत्ता से हट गया।

कालिंजर परिक्षेत्र में राष्ट्रकूटों का अस्तित्व 940 ई0 के पश्चात प्रारम्भ हो गया। इसका श्रेय राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण त्रतीय को जाता है। जिसने प्रतिहारों के खिलाफ लगभग 940 ई0 में दुबारा आक्रमण किया तथा विजय प्राप्त की और साथ ही अपने साम्राज्य का विस्तार भी किया। युद्ध के परिणाम स्वरूप मध्य भारत का बहुत बड़ा भाग जिसमें कालिंजर और चित्रकूट शामिल थे, राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय के हांथ में आ गये,[79] कालिंजर पर राष्ट्रकूटों की विजय कल्चुरि नरेशों के कारण हुई थी। यह सफलता भी कुछ समय तक रही जैसी कि 917 के समय हुई थी। इस समय दक्षिण के साम्राज्य में आंतरिक कलह पैदा हो गई, इसलिए राष्ट्रकूटों को उत्तर भारत से अपना ध्यान हटाना पड़ा तथा इस अवसर का लाभ चंदेल शासक यशोवर्मन ने उठाया, जो हर्ष का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। उसने प्रतिहार नरेशों की मदद की तथा उसने सामान्य रूप से सफलता भी प्राप्त की। प्रतिहारों की राजसत्ता केवल नाममात्र की रह गई थी। प्रतिहार नरेशों ने यशोवर्मन की मदद से राष्ट्रकूटों और कल्चुरियों से अपने खोये हुए क्षेत्र पुनः प्राप्त कर लिये। मदद के बदले में चंदेल नरेश यशोवर्मन ने कालिंजर और चित्रकूट का परिक्षेत्र अपने पास रखा बांकी का सम्पूर्ण क्ष्क्षेत्र प्रतिहारों को वापस कर दिया।[80] यशोवर्मन द्वारा कालिंजर एवं चित्रकूट क्षेत्र ले लिये जाने के कारण प्रतिहारों के सम्मान को बहुत धक्का लगा। इसके बाद भी प्रतिहार नरेश इस क्षेत्र के नाममात्र शासक बने रहे। यशोवर्मन वास्तविक शासक बनकर उनके माण्डलिक के रूप में शासन करता रहा। इस प्रकार हम

देखते है कि राष्ट्रकूटों का कालिंजर परिक्षेत्र में अधिकार बहुत ही अल्पकालिक था। इस परिक्षेत्र में राष्ट्रकूटों का अंत हो गया और चंदेल शासक स्वतंत्र रूप से शासन करने लगे।

कालिंजर परिक्षेत्र पर चंदेल वंश का शासन-

जुझौति देश अथवा जैजाकभुक्ति में चंदेलों का विशेष महत्व है क्योंकि इनके शासन काल में कला और संस्कृति का उत्थान हुआ। कुछ समय तक चंदेल शासक गुर्जर प्रतिहारों के आधीन रहे, उसके पश्चात वे स्वतंत्र रूप से जैजाकभुक्ति के शासक बन गये।

चंदेलों की उत्पत्ति के संदर्भ में यह कहा जाता है कि इनका सम्बन्ध प्राचीन चन्द्रवंशीय क्षत्रियों से है। किन्तु कतिपय इतिहासकारों ने इनकी उत्पत्ति के संदर्भ में अनेक सिद्धान्तों का सृजन किया। उनको देखते हुए इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई निश्चित दृष्टिकोण बन पाना एक प्रसिद्ध परम्परा के अुनसार चंदेलों की उत्पत्ति हेमवती के गर्भ से हुई। हेमवती काशी के गहड़वार राजा इन्द्रजित के पुरोहित हेमराज की कन्या थी। वह बड़ी रूपवती थी। एक दिन जब वह रति-सरोवर में स्नान के लिए गई तो चन्द्रमा ने उसके रूप पर आकृष्ट होकर उसका आलिंगन कर लिया। जब वह आकाश की ओर लौटने लगा तब हेमवती व्यथित होकर शाप देने के लिए उद्यत हुई। चन्द्रमा ने रोककर कहा, देवि तुम शाप क्यों दे रही हो? इस गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह धरणी का शासक होगा और उससे अनेक राजवंशों की शाखाऐं निकलेंगी। हेमवती ने त्योरी बदलकर कहा, मैं एक अविवाहिता कन्या हूँ मेरे स्खलन का कलंक कैसे धुलेगा। चन्द्रदेव ने निकट आकर कहा, भयातुर और चिंतित न हो। तुम्हारा यह यशस्वी पुत्र कर्णवती के तट पर उत्पन्न होगा। फिर तुम उसे खजुराहो ले जाना और उसे देव-प्रसाद समझना। वह महोबा (महोत्सव नगर) में एक यज्ञ सम्पादित करेगा। फलस्वरूप वह वहां का शासक बनेगा और उसका प्रभाव भी बढ़ जायेगा। उसे एक पारसमणि प्राप्त होगी जिससे कुधातुओं को भी स्वर्ण बना देगा। कालिंजर के दिव्य पर्वत पर वह एक दुर्ग का निर्माण करेगा। हां यह ध्यान रखना कि जब तुम्हारा यह गौरवशाली पुत्र सोलह वर्ष का हो जाये, तब तुम भाण्डयज्ञ का अनुष्ठान करना, जिससे तुम्हारा यह कलंक धुल जायेगा। तत्पश्चात तुम बनारस का परित्याग कर कालिंजर पर्वत पर निवास के लिए चली जाना। यह कहकर चन्द्रमा अन्तर्धान हो गये।[81]

तदानुसार भविष्यवाणी सत्य उतरी। वैशाख शुक्ल एकादशी, शुभकारी दिन सोमवार को मंगलमय मुहूर्त में कर्णवती आधुनिक केन के तट पर हेमवती के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ वह रूप एवं प्रतिभा में द्वितीय चन्द्रमा ही मालुम पड़ता था।पूरे देव समाज के साथ चन्द्रमा वहां प्रगट हुए। उन्होंने उस बालक की जन्म कुण्डली बनाई और उसका नाम चन्द्रवर्मा रखा। जब चन्द्रवर्मा सोलह वर्ष का था उसने एक दिन आकस्मात एक सिंह का वध किया। इस पर चन्द्रदेव बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्होंने उस कुमार को पारसमणि प्रदान की। साथ ही उसे राजनीति की शिक्षा दी। चन्द्रवर्मा ने कालिंजर दुर्ग का निर्माण किया। तत्पश्चात खजूरपुर (खजुराहो) पहुंचकर एक यज्ञ की प्रतिष्ठा की। वहां उसने 85 देवालयों का निर्माण कराया।

जनश्रुति के अनुसार चन्द्रदेव ने हेमवती से यह बतलाया कि जब तक तुम्हारी संताने सुरापान नहीं करेंगी, ब्राम्ह-हत्या नहीं करेंगी, किसी स्त्री से अनुचित सम्बन्ध नहीं रखेगी तथा वर्मा उपाधि धारण करती रहेगी। उस समय तक तुम्हारी संतति राज्य करती रहेगी। दुर्भाग्वश राजा परमर्दिदेव चंदेल पृथ्वीराज से पराजित हुए। उस समय ये चारो नियम तोड़ चुके थे।[82] इसने सुरापान किया, ब्राम्ह-हत्या भी की, अपनी ही बहन से अनुचित सम्बन्ध किया और वर्मा नाम का परित्याग भी कर दिया। इस संदर्भ में कई पुरातन ग्रंथों में भी साक्ष्य उपलब्ध होते हैं।

श्री राधाकृष्ण बुन्देली उपरोक्त कथन को मात्र किवदंती स्वीकार करते हैं। क्योंकि इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। उनके मतानुसार अत्रि ऋषि के पुत्र चन्द्रात्रेय और हेमवती से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उससे चंदेल वंश की उत्पत्ति हुई। यह वंश भी सम्भवतः चन्द्रवंश का ही एक अंग था। चंदेलों की उत्पत्ति के संदर्भ में धंग देव का एक शिलालेख मिला है। इस लेख के अनुसार चंदेल वंश का प्रारम्भकर्त्ता नन्नुक देव बतलाया गया है।[83]

चंदेल शासकों की उत्पत्ति के संदर्भ में अनेक अभिलेख उपलब्ध होते हैं। इसमें सबसे प्राचीन महाराजा धंग का खजुराहो शिलालेख है। यह विक्रमी संवत् 1011 का है। इसमें श्री ब्रह्मेन्द्र मुनि के महनीय वंश का उल्लेख किया गया है। वंश का परिचय देते हुए यह लेख यशोवर्मा के पूर्वजों का विवरण इस प्रकार देता है "विश्व के रचयिता प्राचीन पुरूष, पवित्र ज्ञान के निलय उस मुनि से मरीचि आदि विमल चरित्र वाले प्राक मुनियों का प्रादुर्भाव हुआ। उनमें अत्रि से सहजोज्वलतर ज्ञान-प्रदीप, मुनि चन्द्रात्रेय की उत्पत्ति हुई, जिसने अपनी अविराम तपस्या से तीव्र प्रभाव अर्जित किया।[84] जो संसृति के क्षेत्र का कारण हो और जिसमें सभी विज्ञान सन्निहित हों उससे अद्भूत वंश निश्चित ही प्रशंसा का पात्र है। इस वंश में किसी के शौर्य ने न तो उद्वेग उत्पन्न किया न चाटुकारिता ने उल्लासातिरेक। इसमें दौर्बल्य की छाया भी नहीं आई और अभीष्ट प्राप्ति के लिए यहां किसी के स्वामित्व का विनाश भी नहीं सोचा गया। इस वंश के निष्कलंक कीर्ति वाले नृपतियों में सम्पूर्ण वसुन्धरा के पालन और संहार की शक्ति थी। उन्हीं में पुण्यश्लोक नन्नुक थे, जो मानो क्षात्र-दर्प-रूपी स्वर्ण की परख के लिए निकष (कसौटी) थे। (तत्रक्षत्र सुवर्णसार निकष ग्रावा)।"

इनकी उत्पत्ति के संदर्भ में विश्वसृक पुराण पुरूष में साक्ष्य उपलब्ध होता है-

मुनि मारीचि, अत्रि आदि

मुनि चन्द्रात्रेय

(अपनी अविराम तपस्या से जिसने तीव्र प्रभाव अर्जित किया।)

नृपति भूभुजाम्

(जो सम्पूर्ण वसुन्धरा का विनाश और उसकी रक्षा कर सकते थे)

इसी वंश में नन्नुक

वाक्पति[88]

इतिहासकार वी0 ए0 स्मिथ के अनुसार चंदेलों का प्रादुर्भाव निम्न जातियों से हुआ। उनके मतानुसार चंदेलों का उदय गोड़ों से हुआ तथा सामान्य सभ्यता वाली कुछ जातियों का इसमें मिश्रण हुआ। चंदेल लोग अपनी उत्पत्ति का स्थान मनियागढ़ बतलाते है, जो खजुराहो से थोड़ी दूरी पर केन के तट पर है। इस स्थान पर मनियादेवी का मंदिर भी है जो इनकी कुलदेवी है। जब चंदेल खजुराहो से महोबा में आयें तो वे अपने साथ मनियादेवी की पूजा भी लेते आये। स्मिथ के अनुसार ही मनियागढ़ गोंड़ शासकों का भी गढ़ माना जाता है। चन्दवरदाई ने इसका उल्लेख किया है।[86] प्रसिद्ध इतिहासकार डी0 एल0 ड्रेक ब्रॉंकमैन भी स्मिथ के विचारों का समर्थन करते हैं।

चंदेलों की उत्पत्ति के संदर्भ में डॉ0 अयोध्याप्रसाद पाण्डेय ने भी अपने विचार प्रकट किये हैं। वे पौराणिक कथा पर विश्वास करते हुए चंदेलों की उत्पत्ति के संदर्भ में डॉ0 स्मिथ के विचारों का समर्थन करते हैं।[87] तथा इस विषय में अनेक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। इण्डियन ऐन्टीक्वेरी के अनुसार चिन्तामणि वैन्द्य के वंशज चंदेल नरेशों के दीवान रहें।[88]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॅ0 विशुद्धानन्द पाठक इनकी उत्पत्ति का आधार विक्रमी संवत् 1011 में प्राप्त खजुराहो शिलालेख को मानते है। यह शिलालेख चतुर्भुज मन्दिर में उपलब्ध हुआ है। इनके अनुसार नन्नुकदेव इस वंश का प्रथम शासक था।[89] जिस अभिलेख का उन्होंने उल्लेख किया है उसका भी ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होता है।[90] इसी संदर्भ में एक दूसरा अभिलेख खजुराहो में विक्रमी संवत् 1050 का मिला है। इस अभिलेख के अनुसार अत्रि के नेत्र कमल से चन्द्रमा, चन्द्रमा से चन्द्रात्रेय चन्द्रात्रेय से चंदेलों की उत्पत्ति हुई।[91] इनकी उत्पत्ति के विषय में ही परमार्दिदेव का विक्रमी संवत् 1252 का बटेश्वर शिलालेख भी प्राप्त हुआ है। अभिलेख के अनुसार चंदेलों की उत्पत्ति अत्रि, चन्द्रमा और चन्द्रात्रेय से हुई। कालान्तर में

चंद्रात्रेय के वंशज ही चंदेल कहलाये। इस संदर्भ में चंदेल शासक यशोवर्मन के पौत्र देवलब्धि का एक अभिलेख दुधई चांदपुर में प्राप्त हुआ है। इसमें चन्देलों को चन्द्रेल्ल लिखा गया है।[92]

चूंकि चंदेलों की उत्पत्ति विवादित है। इसलिए इन्हें प्राचीन क्षत्रियों के वंशज मानना होगा। उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार चंदेलों का शासन विक्रमी संवत् 1011 से माना जा सकता है। इसके पहले इसके शासकों का कोई भी इतिहास प्राप्त नहीं होता है। इन्होंने अपने प्रारम्भिक शासन को खजुराहो में प्रारम्भ किया। बहुत समय तक ये लोग गुर्जर प्रतिहारों के आधीन माण्डलिक की हैसियत से शासन करते रहे। चंदेलों की एक प्राचीन वंशावली उपलबध होती है, जो इस प्रकार है-

1.	चन्द्रात्रेय	
	(समान)	
	चन्द्रवर्मा	सन् 740 ई0
2.	नृपति भूभुजाम्	सन् 770 ई0
		सन् 800 ई0
3.		
4.	नन्नुक	सन् 831 ई0
5.	वाकपति	सन् 845 ई0
6.	जयशक्ति सन् 860 ई0	7. विजयशक्ति सन् 880 ई0
		कनिष्ठ भ्राता
	(समान)	(समान)
	जेजा	विजय
	जेजाक	विजा
	जेज्जाक	विज्जाक
8.	राहिल	सन् 900 ई0
9.	हर्ष	सन् 915 ई0, कांचुका से विवाह किया।
10.	यशोवर्मन	सन् 930 ई0 पुष्पा से विवाह किया।
	(समान)	
	लक्ष्मणवर्मन	
		कृष्णप
11.	धंग सन् 950 ई0	
		देवलब्धि

12. गंड सन् 1000 ई0
13. विद्याधर सन् 1025 ई0
14. विजयपाल सन् 1040 ई0, भुवनादेवी से विवाह किया।
15. देववर्मा सन् 1055 ई0 (संतान-विहीन) 16. कीर्तिवर्मन सन् 1060 ई0
17. सल्लक्षणवर्मन सन् 1100 ई0
18. जयवर्मन सन् 1110 ई0
19. पृथ्वीवर्मन सन् 1120 ई0
20. मदनवर्मन सन् 1129 ई0 प्रताप (कनिष्ठ भ्राता)
यशोवर्मन
21. परमर्दि सन् 1165 ई0
22. त्रैलोक्यवर्मा सन् 1203 ई0
23. वीरवर्मा सन् 1245 ई0
24. भोजवर्मा सन् 1282 ई0 वीर विक्रम (कनिष्ठ भ्राता)
हमीरदेव
वीरवर्मा (द्वितीय) सन् 1300 ई0
कीर्तिराय सन् 1520 ई0
रामचन्द्र सन् 1569 ई0
दुर्गावती

चंदेलों का राज्य गुर्जर प्रतिहारों के आधीन उत्तर भारत में प्रारम्भ हुआ। इन लोगों ने गुर्जर प्रतिहारों के माण्डलिक होकर अपना विकास प्रारम्भ किया। धंग के खजुराहो- अभिलेख में नन्नुक की प्रशंसा की गई है। इस लेख में उसे 'नृप' नाम से सम्बोधित किया गया है। "जो मानो क्षात्र-दर्प-रूपी स्वर्ण की परख के लिये निकष था, जो चतुर्दिक स्त्रियों के वदन को अपनी ख्याति के गंधसार से लीलमा विभूषित कर देता था और जिसके आदेश को उसके शत्रु पुष्पोपहार की भांति शिरोधार्य करते थे।[93] धंग के एक दूसरे खजुराहो- लेख में उसे ' महीपति' कहा गया है। "जिसका शौर्य देवताओं और अर्जुन का स्मरण दिलाता था।"[94] इसने 831 से 845 ई0 तक शासन किया। प्रतिहारों के आधीन वाक्पति जिसने सन् 845 से लेकर 860 तक शासन किया। यह प्रतिहार राजा भोज के आधीन था। वाक्पति ने विन्ध्यमेखला को अपने मनोंरंजन के लिऐ क्रीड़ागिरि बनाया तथा विन्ध्यक्षेत्र को उसका क्रीड़ागिरी कहा गया है।वाक्पति के जयशक्ति ओर विजय शक्ति दो पुत्र थे। वाक्पति के मृत्युपरान्त ज्येष्ठ पुत्र जयशिक्त सन् 860 ई0 में

उत्तराधिकारी बना। इसको कई उपनामों से अलंकृत किया गया है। महोबा के एक खण्डित शिलालेख में यह कहा गया है कि "जेजा" (जयशक्ति) ने ही जेजा- भुक्ति नाम को ठीक उसी प्रकार से जन्म दिया जिस प्रकार से पृथु ने पृथ्वी को[96] चंदेल शासक जयशक्ति के ही नाम पर बुन्देलखण्ड का नाम जेजाभुक्ति पड़ा। यह बड़ा वीर योद्धा था, अल्पायु में ही इसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद विजयशक्ति शासक हुआ। यह अपने पूर्वजों की भांति वीर एवं महत्वाकांक्षी था। धंग के खजुराहो-अभिलेख में विजयशक्ति की प्रशंसा में कहा गया है कि " वह राम की भांति अपनी विजय की दौड़ में दक्षिण भारत के अंतिम छोर तक पहुँच गया था।[97] उसका कालिंजर मण्डल पर भी अधिकार था। विजयशक्ति के बाद उसका पुत्र राहिल सिंहासन पर बैठा। यह बड़ा ही शक्तिशाली शासक था, इसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। राहिल ने अपने नाम पर रसौं अथवा रासन नामक एक अन्य नगर भी बसाया[98] जो कालिंजर से 20 मील उत्तर -पूर्व बदौसा परगने में उसी नाम से एक गांव की पहाड़ी पर बसा था।[99] ये सभी शासक गुर्जर प्रतिहारों के आधीन रहकर शासन करते रहें।

हर्षवर्मन-

अब स्वतंत्र शासक के रूप में हर्ष इस वंश का पहला शासक था, जिसने बिना किसी की आधीनता स्वीकार किये शासन किया। यह सन् 915 ई0 में गद्दी पर बैठा। यह समय गुर्जर प्रतिहारों के लिए अच्छा नहीं था। इसने गुर्जर नरेश महिपाल की मदद की। चंदेल राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ाने में हर्ष ने नीति प्रयोग के अतिरिक्त अन्य राजवशों से वैवाहिक सम्बन्धों का मार्ग अपनाया। खजुराहो के एक खण्डित शिलालेख से ज्ञात होता है कि "हर्ष या यशोवर्मन चंदेल ने प्रतिहार शासक क्षितिपाल देव को पुनः गद्दी पर बैठाया।[100] चन्देलों ने प्रतिहारों का प्रभुत्व तो वस्तुतः सन् 954 ई0 अर्थात् धंग के शासन के कुछ कालतक ही माना है। धंग का नन्यौरा फलकाभिलेख सूचित करता है कि वह अपने आश्रितों के लिए कल्पबृक्ष, सज्जनों के लिए आनन्ददायक, मित्रों का अमृत, शत्रु समूह के लिए एक विशाल धूमकेतु की तरह अनिष्टकारक और युद्धरूपी समुद्र को पार करने के लिए सेतु के समान था।[101] हर्ष "परम्भट्टारक" था और वह एकतंत्र -स्वतंत्र राजा हो चुका था। इसके संदर्भ में धंग देव का सन् 999 ई0 का अभिलेख महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।[102] धंग के ही नन्यौरा पत्र सम्वत् 1055 में हर्ष के सम्बन्ध में कहा गया है कि " इसकी शक्तिशाली सेनाओं ने शत्रुओं के ह्रदय में आतंक मचा दिया था और अनेक राजाओं को करद बना लिया था।[103] उसने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी।

यशोवर्मन -

हर्ष के पश्चात उसका पुत्र यशोवर्मन चन्देल वंश का प्रथम प्रमुख विजेता एवं सम्राट हुआ। यह सन् 930 ई0 में गद्दी पर बैठा । इसने अनेक युद्धों पर विजय प्राप्त की एवं वंश का गौरव बढ़ाया । यशोवर्मन के साम्राज्य में पहले कालिंजर परिक्षेत्र शामिल नहीं था। उसने अपने प्रयासों से कालिंजर जीतने की इच्छा

प्रकट की, जो सैनिक महत्व की दृष्टि से अद्वितीय था। सामान्य रूप से कालिंजर तो हर्ष के समय ही प्रतिहारों से उसके मधुर सम्बन्ध के फलस्वरूप चंदेलों के प्रभाव में आ चुका था। किन्तु उसकी विजय का एक विशेष राजनीतिक महत्व था। कालिंजर दुर्ग सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध था। उत्तरी भारत का एकमात्र शासक बनने के लिऐ प्रत्येक विजेता के लिए कालिंजर दुर्ग की विजय एक मौलिक स्थान रखती थी। यद्यपि कालिंजर महाभारत काल में धार्मिक स्थल के रूप में प्रसिद्ध था, उससे कई गुना अधिक महत्व राजनीतिक दृष्टि से हो गया था। यशोवर्मन ने खेल-खेल में ही कालिंजर गिरि जीत लिया, जो शंकर का निवास- स्थान है और उसकी ऊँचाई दुपहरी के सूर्य की गति को बाधित करती है।

यस्मिन्मध्यन्दिने स्यात्तराणिरनुदिनं नीलकण्ठाधिवासम् ।

जग्राह क्रीडया यस्तिलकमिव भुवं किंच कालिंजराद्रिस।।[104]

अपने सैनिक महत्व और चन्देल राजधानी खजुराहो से करीब होने के कारण कालिंजर ने यशोवर्मन को सम्भवतः सबसे पहले आकृष्ट किया होगा। कहा जाता है कि उसने खेल-खेल में ही कालिंजर गिरि जीत लिया। लगता है कि उस महत्वपूर्ण दुर्ग के लिए उसे कोई बहुत ज्यादा प्रयास नहीं करना पड़ा। इस बात का ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो पता कि इस समय कालिंजर का शासक कौन था और उसने वह दुर्ग किससे जीता। राष्ट्रकूट राजा त्रतीय कर्ण के जूर के मैहर रियासत में उपलब्ध एक अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि कालिंजर पर सन् 940 ई0 के पूर्व कभी त्रतीय कर्ण का अधिकार था यह क्षेत्र राष्ट्रकूटों ने गुर्जर प्रतिहारों से जीता था। डॉ0 राय के अनुसार यशोवर्मन् ने कालिंजर को गुर्जर प्रतिहारों से नहीं राष्ट्रकूटों से जीता है। यशोवर्मन तृतीय कर्ण का समकालीन था।[105] उसने राष्ट्रकूटों के आक्रमणों से प्रतिहार शासक प्रथम महीपाल की रक्षा के बहाने अथवा बलात् कालिंजर वैसे ही हथिया लिया जैसे उसके पिता हर्ष ने चित्रकूट लिया था। दक्षिण दिशा के सभी दुर्ग उसके अधिकार में चले गये और गुर्जर राज के मन की सभी आशाऐं चित्रकूट और कालिंजर को पाकर समाप्त हो गई। चिन्तामणि विनायक वैद्य[106] एवं सर कनिंघम[107] की धारणा है कि यशोवर्मन ने कालिंजर को कल्चुरि शासकों से जीता । इस विश्वास का प्रमुख कारण यह है कि चेदि राजाओं ने अपने को कालिंजर के स्वामी के विरूद्ध "कालिंजर पुराधीश्वर " की उपाधि धारण की थी। कालिंजर दुर्ग के साथ-साथ जब उन्होंने जैजाकभुक्ति पर आधिपत्य कर लिया तब गर्वभरे " कालिंजराधिपति के विरूद से अपने को अलंकृत किया। भोजदेव के वाराह ताम्रपत्र में कहा गया है कि प्रतिहारों ने कालिंजर दुर्ग पर आधिपत्य स्थापित किया। यह भोजदेव ही था जिसने कालिंजर को अपने अधीन करके कालिंजराधिपति की गौरवपूर्ण कीर्ति अपने वंश के साथ जोड़ी । भोज के ही वाराह ताम्रपत्र के अनुसार कालिंजर मण्डल कान्यकुब्ज भुक्ति का एक भाग था।[108] इस प्रकार एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि चंदेल राजा यशोवर्मन् ने कालिंजर दुर्ग को प्रतिहारों से जीता न कि राष्ट्रकूट या कल्चुरि शासकों से । उसने अपने साम्राज्य को चारों दिशाओं में फैलाया ही नहीं वरन् अपनी सेना के लिए कालिंजर

में बहुत बड़ा दुर्ग- रक्षित शिविर भी बनाया । आगे चलकर यही कालिंजर चंदेलों की सैनिक राजधानी बन गया।

धंग-

यशोवर्मन के पश्चात धंग देव सन 954 में चन्देल राज्य का उत्तराधिकारी बना। इसने अपने राज्य को गुर्जर प्रतिहारों की आधीनता से मुक्त करा लिया और स्वतंत्र शासक बन गया। उसका राज्यक्षेत्र कालिंजर तक, मालवा नदी के किनारे स्थित भास्वत तक, वहां से कालिन्दी (यमुना) नदी के किनारे तक, वहां से चेदिदेश की सीमाओं तक तथा वहां से गोप नामक पहाड़ तक फैला हुआ था।[109] इसमें कोई संदेह नहीं कि धंगदेव को जो साम्राज्य उत्तराधिकार में था, उसकी नींव बड़ी सुदृढ़ थी।उसके पिता यशोवर्मन देव ने राज्य को विस्तृत किया था। किन्तु धंगदेव ने अपने राज्य का विस्तार ग्वालियर दुर्ग को जीतकर किया। अब उसके राज्य में कालिंजर और ग्वालियर दोनों ही शामिल थे। तोपखाने के ज्ञानाभाव वाले उस युग में अभेद्य कालिंजर दुर्ग का महत्व अत्यधिक था, जिसे अधिकृत रखने अथवा प्राप्त करने के लिए उस समय की सभी प्रमुख सत्ताएँ लालायित थीं। कालिंजर विजय वीरों के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था। इस समय तक कालिंजर राजनीतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया था। वह चंदेलों की राजधानी के रूप में सुशोभित था। धंग इस महत्व को भलीभांति समझता था। नन्यौरा के विक्रमी संवत् 1055 के एक लेख में उसे कालंजराधिपति कहा गया है।[110] सम्भव है कि उस समय तक उसने कालंजर को अपनी सैनिक शक्ति का सर्वप्रमुख केन्द्र बना लिया हो। फरिश्ता के कथनानुसार कालंजराधिपति धंगदेव ने विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध सेना और धन से शाही राजा जयपाल की सहायता की थी। इस आक्रमणकारी नासिरुद्दीन सुबुक्तगीन की मृत्यु सन् 997 में हुई। चन्देल इस समय तक इतने शक्तिशाली हो गये थे कि भारत वर्ष का कोई भी नरेश उनका मुकाबला नहीं कर सकता था। महोबा में एक खण्डित शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें यह उल्लेख है कि वह पृथ्वी के लिए आतंक का पर्याय बन गया था।

गंडदेव-

धंग के बाद उसका पुत्र गंडदेव सन् 1002 एवं 1003 के बाद गद्दी पर बैठा। इसी समय गजनी की राज गद्दी पर सुबुक्तगीन का महत्वाकांक्षी पुत्र महमूद गजनवी बैठा । उत्कीर्ण लेखों से गण्ड देव के शासन काल की घटनाओं का वर्णन मिलता है। चंदेलों का एक खण्डित शिलालेख जो कीर्तिवर्मन के शासन काल के बाद लिखा गया था। यह विक्रमी संवत् 1154 का है। इसमें गंडदेव के सम्बन्ध में बताया गया है कि वह सार्वभौम वीर था जिसने अपनी भुजाओं पर धरणी के समस्त भागों को धारणा किया था। मदनवर्मन के मऊ अभिलेख से ज्ञात होता है कि गंडदवे चारों दिशाओं में पृथ्वी का शासक था ओर शत्रुओं को उच्छिन्न करने में दक्ष था। यह विक्रमी संवत् 1186-1220 के मध्य का है। महमूद गजनवी ने सन् 1008 में लाहौर के आनन्दपाल पर आक्रमण किया क्योंकि ऐसा माना जाता था कि बिना इसे पराजित किये कोई भी विदेशी

शासक भारत में प्रवेश नहीं कर सकता। गण्ड्देव ने लाहौर के शासक को सहयोग देने के लिए वहां अपनी सेनाएं भेजी । कालिंजर के साथ ग्वालियर, कन्नौज, अजमेर तथा उज्जैन के शासकों ने अपनी सुसज्जित सेनाएं वहां (गोपुर) भेजी। इस समय हिन्दू नरेशों के अन्दर धार्मिक कट्टरता बहुत अधिक थी। इसलिए वे विदेशी आक्रमणों का डटकर मुकाबला करना चाहते थे। मगर नेतृत्व के अभाव के कारण इन्हें सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। महमूद का युद्ध झेलम नदी के तट पर हुआ। इस युद्ध में मुसलमान सेना कई हजार की संख्या में मौत के घाट उतारी गई। इधर यह अफवाह फैली कि आनन्दपाल ने राजपूतों को धोखा दिया है।जिसका विपरीत प्रतिफल हुआ। जीती हुई सेना में भगदड़ मच गई। जिससे वह महमूद के समक्ष पराजित हुई सर्वप्रथम सन् 1019 में महमूद गजनवी ने बदला लेने की भावना से कन्नौज के राजा राज्यपाल पर आक्रमण किया। उसने अनायास ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसने भारतीय नरेशों से कोई सहायता नहीं मांगी और न हीं उन्हें सूचित किया। राज्यपाल की इस हरकत से गण्ड देव और राजपूत शासकों ने बहुत बुरा माना। सुल्तान महमूद के जाते ही कालिंजर के चंदेल शासक गण्डदेव ने उसके इस आचरण को दण्डित करने के लिए राज्यपाल पर आक्रमण कर दिया। इस सेना का नेतृत्व चंदेल नरेश गण्डदेव का पुत्र विद्याधर कर रहा था। इस युद्ध में राज्यपाल की पराजय हुई तथा वह मार डाला गया।[112] इसके बाद उसका पुत्र त्रिलोचनपाल सिंहासन पर बैठा। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि विद्याधर ने इस अपमान को राष्ट्रीय अपमान माना इसके प्रतिशोध रूप उसने तीर से राज्यपाल की गर्दन उड़ा दी।

श्रीविद्याधरदेवकार्यनिरतः श्रीराज्यपालं हठात् ।
कण्ठास्थिच्छिदनेकबाणनिव हैर्हत्वाम हत्याहवे।।[113]

राज्यपाल की मृत्यु के पश्चात गण्डदेव के राज्य का विस्तार और अधिक हो गया। महमूद गजनवी को गण्ड का यह आचरण पसन्द नहीं आया। उसने तुरन्त अपनी राजधानी से कूच किया। सन् 1019 में उसने पुनः अभिमान शुरू किया। राजकुमार विद्याधर एवं गण्डदेव विशाल सेना लेकर उसे रोकने के लिए चल पड़ा। इस सेना में 1,45,000 पैदल, 36,000 घुड़सवार और 390 हांथी थे।[114] जयपाल ने राहिब में महमूद के बढ़ते कदम रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु अपने प्रयास में असफल होने पर वह विद्याधर से मिलने के लिए चल पड़ा। मगर दुर्भाग्यवश बीच में ही किसी भारतीय ने उसका वध कर दिया।[115] एक नदी के तटपर महमूद की सेना का मुकाबला गंड की सेना से हुआ। युद्ध प्रारम्भ हो गया। यह युद्ध बड़ा भयंकर था। रात्रि के समय सेनाएं अपनी-अपनी ओर लौट गई।[116] महमूद ने गण्ड के पास अपना एक दूत भेजा कि वह आत्मसमर्पण कर दे। गंड ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। सुल्तान एक ऊंचे स्थान गया ताकि वह गंड की समस्त सेना को देख सके तथा उसकी शक्ति का अंदाजा लगा सके। जब उसने विशाल सेना को देखा तो अपने सहसा आने पर उसको बड़ा ही पश्चाताप हुआ। फिर उसने समर्पण और आत्मग्लानि के भाव से अपने पूर्णमस्तक को भूमिपर टेककर दयानिधि से विजय के लिए प्रार्थना की।[117] गंड ने महमूद के

लज्जाजनक प्रस्ताव को ठुकरा दिया और युद्ध किया, युद्ध निर्णायक नहीं रहा लेकिन महमूद का साहस टूट चुका था मगर फिर उसने साहस इकट्ठा किया और कालिंजर पर दुबारा आक्रमण करने के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में उसने सर्वप्रथम ग्वालियर पर आक्रमण किया, ग्वालियर का शासक अर्जुन उस समय चंदेल शासक गंडदेव का सामंत था। अर्जुन ने चार दिनों तक साहस एवं सफलता से साथ सामना किया परन्तु अन्त में वह भयभीत हो गया और उसने पराजय स्वीकार कर ली। ग्वालियर के पश्चात सुल्तान महमूद ने कालिंजर की ओर रूख किया। उसने कालिंजर पर आक्रमण किया। कालिंजर का दुर्ग कठोर पत्थरों से निर्मित एक पर्वत के शिखर पर था। यह दुर्ग अजेय था। बताया जाता है कि इस में 5,00,000 लाख आदमियों 20,000 हजार पशुओं और 500 हांथियों के लिए स्थान था। इसमें पर्याप्त सामग्री , शस्त्रास्त्र एवं अन्य आवश्यक वस्तुएं विद्यमान रहती थी। यह दुर्ग सम्पूर्ण भारत में अपनी अद्वितीयता के लिए प्रसिद्ध था। महमूद ने दुर्ग पर घेरा डाला तथा बाहर के सभी मार्ग बन्द कर दिए, जिनसे दुर्ग में सामग्री पहुंचाई जाती थी जिससे व्यक्ति भूखों मरने की स्थिति में आत्मसमर्पण कर दें। घेरा बहुत दिनों तक चलता रहा। महमूद के लिए इस दुर्ग में प्रवेश करना मुश्किल था। उधर चंदेल सेना आयात मार्ग के अवरोध के कारण परेशान हो रही थी। तब गंड ने सम्मानजनक संधि का प्रस्ताव महमूद के पास भेजा। जिसमें गंड ने 300 हाथी दिये और वार्षिक कर देने का वचन दिया। उसने हांथियों को किले के बाहर खुला छोड़ दिया और और महमूद को उन्हें पकड़वा लेने का संकेत दिया। महमूद ने अपने तर्क साथियों को आदेश दिया कि वे उन्हें पकड़कर सवारी कर ली। सैनिकों ने सारथी विहीन हांथियों पर सवारी कर ली। गंड इससे बहुत प्रभावित हुआ। उसने स्वनिर्मित एक कविता सुल्तान की प्रशंसा में भेंट की। यह हिन्दी में लिखी गयी थी।[118] 15 अन्य दुर्गों को विजित करता हुआ महमूद गजनवी सन् 1023 में वापस लौट गया।

ग्वालियर के चूके चंदेलों ने कालिंजर में महमूद के उत्साह और साहस को ठण्डा कर दिया। गण्ड को चाहिए था कि वहीं ग्वालियर में सैन्य बल के साथ दृढ़ता के साथ महमूद का सामना करता। यह महान भूल थी और महाराज गण्ड देव द्वारा ऐसी राजनीतिक अदूरदर्शितापूर्ण भूल बड़ी खटकती है।

कालिंजर दुर्ग अपने समस्त विभव और सुदृढ़ता के साथ एक मार्मिक दुर्बलता का शिकार था तथा शासकों को इसका ही भय रहता था। उसी दुर्बलता का लाभ उठाकर महमूद ने कालिंजर की अजेयता का खण्डन किया। यह दुर्बलता थी पानी पहुंचने की और आज भी यही दुर्बलता सबसे पहले आती है। महमूद का कालिंजर पर आक्रमण दोनों शासकों के बीच परस्पर भेंट के आदान-प्रदान के बाद समानता की गौरवपूर्ण संधि में समाप्त हुआ। महमूद और चंदेल शासकों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कब तक चला इसका सही अनुमान लगाया जा सकता है। सन् 1029 में महमूद ने सेलजुक के पुत्र को पकड़वाकर भारत में कालिंजर के दुर्ग में बन्द रखने के लिए भेजा था।[119] इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय मैत्री घनिष्ठ थी किन्तु महमूद जब राजधानी की विषम समस्याओं में उलझ गया तब भारतीय राजनीति से उसका रूझान

कम हो गया।

गुण्डदेव का शासनकाल इस देश के इतिहास में हिन्दू-मुसलमानों के निरन्तर संघर्ष का काल था। इसमें संदेह नहीं कि चंदेलों ने ऐतिहासिक वीरता का परिचय दिया।

केशवचन्द्र मिश्र एवं पं0 गोरे लाल तिवारी के अनुसार महमूद गजनवी का आक्रमण गण्डदेव के समय हुआ था किन्तु डा0 विशुद्धानन्द पाठक द्वारा रचित उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास एवं बाँदा गजेटियर में महमूद का आक्रमण विद्याधर के समय ही माना है। यदि देखा जाय तो महमूद का आक्रमण विद्याधर के समय ही हुआ था, यही सत्य के निकट है। हम भी इसे ही उचित एवं सही समझते हैं।

विद्याधर-

गण्ड का पुत्र विद्याधर लगभग 1018 ई0 में गद्दी पर बैठ चुका था। अपने पितामह धंग के समान ही वह शक्तिशाली और युद्ध प्रिय सिद्ध हुआ। विद्याधर देव ने अपने शासनकाल के दौरान वंश के गौरव में वृद्धि की थी। विद्याधर के शासन के दौरान ही बहुत महत्वपूर्ण घटना उत्तर भारत के राजनीति में घटी ।इस घटना का वर्णन इस प्रकार वर्णित है कि महमूद गजनवी का आक्रमण वह घटना थी जो इसके पहले नहीं घटी थी। महमूद के आक्रमण को हम विद्याधर के समय में ही रखेंगे।

विद्याधर चंदेल राजगद्दी पर आने के साथ ही तत्कालीन भारतीय राजनीति में महमूद गजनवी द्वारा उत्थापित बवण्डर को चीरने में लग गया। अन्य भारतीय नरेशों की तरह वह स्वयं उस आंधी में उड़ नहीं गया बल्कि घटनाचक्रों की धुरी को स्वयं अपने हांथों में लेकर उसने अनेक बार सैनिक और राजनीतिक पहलें की, महमूद की चुनौतियों का डटकर मुकाबला किया। मुसलमानी साक्ष्य महमूद की सफलताओं का एक तरफा ढोल पीटते हैं। तथापि उनके ही उद्धरणों की बारीकी से जाँच करने पर मालुम होता है कि महमूद को अपने भारतीय आक्रमणों में विद्याधर एक ऐसी चट्टान के रूप में मिल जिसे वह तोड़ नहीं सका। जब विद्याधर ने कन्नौज के प्रतिहार राज राज्यपाल को 1017-18ई0 में महमूद के आक्रमण के समय बिना युद्ध किये ही भागते देखा तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। इब्न्-उल्-अतहर[120] यह बताता है कि विदा अर्थात विद्याधर राज्यसीमा की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राजा था और उसके पास सबसे बड़ी सेनाऐं थी। उसके देश का नाम खजुराहो था। इस उल्लेख का समर्थन विक्रमसिंह कछवाहा के वि0 सं0 1145 के दूबकुण्ड अभिलेख से होता है। उसमें कहा गया है कि विक्रमसिंह के प्रपितामह अर्जुन ने श्री विद्याधर देव के कार्य में निरत होकर अपने बाणों की बौछार से राज्यपाल के गले की हड्डियों को छेद दिया और उसे घोर युद्ध में मार डाला।[121] महोबा से प्राप्त चंदेल अभिलेख से भी इसी बात की पुष्टि होती है।[122] अतः यह निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि 'श्री विद्याधर देव' राज्यपाल को दण्डित करते समय युवराज नहीं,[123] अपितु चंदेलों का राजा हो चुका था। वास्तव में विद्याधर राज्यपाल का अन्तकर उत्तर भारत का सर्वप्रमुख सम्राट हो गया और 'परमेश्वरपरमभट्टारक' महाराजाधिराज की अपनी उपाधियों को पूर्णतः सार्थक करने लगा। इस समय

कन्नौज का शासक राज्यपाल का पुत्र त्रिलोचनपाल था। विद्याधर का प्रभाव पंजाब तक विस्तृत हो गया एवं शाही राजा उसकी सहायता से अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा एवं राज्य पुनः प्राप्त करने की ताक में लग गया।[125]

सन् 1019 ई0 में विद्याधर को लक्ष्य बनाकर महमूद अफगानिस्तान होता हुआ पुनः एक बार भारत के लहलहाते मैदानों में आ डटा। निजामुद्दीन कहते हैं कि यमुना[126] के किनारे नरोजयपाल ने अपना खेमा गाड़ दिया और युद्ध की तैयारी में लग गया। पंजाब का शाही राजा त्रिलोचनपाल[127] था, जिसने नदी के किनारे की ऐसी नाकेबन्दी कर रखी थी कि महमूद को उसे पार करने में सैनिक कौशल के अपने कई दाव दिखाने पड़े। त्रिलोचनपाल कई दिनों तक लड़ा और हार गया फिर विद्याधर से मिलने के लिए गया किन्तु रास्ते में कुछ हिन्दुओं ने उसे मार डाला[128] महमूद ने बारी को खूब लूटा फिर विद्याधर की ओर चल पड़ा दोनों का घमासान युद्ध एक नदी के किनारे हुआ किन्तु रात्रि में अपने-अपने शिविर में चले गये और दूसरे दिन महमूद ने मैदान खाली देखा। उसने जंगलों और झुरमुटों में विद्याधर की सेनाओं का पीछा किया और बड़ी संख्या मे हिन्दू सैनिकों को मारा किन्तु विद्याधर अकेले बच कर भाग गया। महमूद विजयी होकर गजनी लौट गया। यह अब्नुल-अतहर के विचार थे । किन्तु निजामुद्दीन ने इस मुठभेड़ का वर्णन कुछ दूसरे प्रकार से किया है। तदानुसार विद्याधर ने 36000 घोड़ों, 1,45000 पैदल और 390 हांथियों की एक विशाल सेना एकत्रित की। सुल्तान महमूद ने नन्दा अथवा विद्याधर की सेना के सामने अपना युद्ध मोर्चा गाड़कर इस्लाम स्वीकार करने को आमन्त्रित किया किन्तु विद्याधर ने यह प्रस्ताव नामंजूर कर दिया। महमूद ने एक ऊंचे स्थान में चढ़कर विद्याधर की सेना को देखा और उसकी शक्ति का अनुमान लगाया, उसकी शक्ति और विशालता को देखकर अपने आने पर पछतावा करने लगा। महमूद ने अपना सिर जमीन में बड़े विनयपूर्वक सभी दयाओं के दानी (ईश्वर) से विजय की प्रार्थना की। रात्रि होने पर विद्याधर भयातंकित हो गया और अपनी सभी सेना एवं शास्त्रास्त्रों को छोड़कर कुछ महत्वपूर्ण साथियों के साथ भाग गया। सुल्तान ने जब इसे सुना तो अपने घोड़े पर सवार होकर उन सभी स्थानों में देखा, जहाँ धोखे से छापा मारने के लिए विद्याधर के छिपे रहने की सम्भावना थी। मगर जब महमूद को यह यकीन हो गया कि विद्याधर का धोखे अथवा विश्वासघात का कोई इरादा नहीं है तो उसने लूट और विनाश प्रारम्भ कर दिया। इस्लाम सेनाओं के हांथों लूट में विशाल भण्डार प्राप्त हुआ। महमूद और विद्याधर के बीच दो घमासन युद्ध हुये। 1019-20 ई0 का महमूद-विद्याधर का युद्ध निर्णायक नहीं हुआ। इसलिए शायद 1022 ई0 में विद्याधर से निपटने के लिए उसने दोबारा उसके राज्य पर चढ़ाई की,सबसे पहले उसने विद्याधर के राज्य में स्थित ग्वालियर के किले पर चढ़ाई की। किले के शासक ने चार दिनों की घेरेबन्दी के बाद 35 हांथियों की भेंट देकर अपनी रक्षा की प्रार्थना की। अपनी शक्ति और अभेद्यता के लिए सारे हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध कालिंजर दुर्ग की महमूद ने घेरेबन्दी की, जो अधिक दिनों तक चलती रही। विद्याधर ने 300 हांथियों की भेंट देकर अपनी रक्षा की

प्रार्थना की। 300 मतवाले हाथियों को बिना पीलवानों के महमूद की सेना की ओर छोड़ा था, उन्हें तुर्कों ने महमूद की आज्ञा से अपने वश में कर लिया अथवा उन पर सवारी कर ली। विद्याधर ने हिन्दी की कविताओं में महमूद की प्रशंसा की और महमूद के पास भेजा, महमूद बड़ा प्रसन्न हुआ तथा हिन्दुस्तान कवियों को दिखाया महमूद ने विद्याधर को बधाइयां भेजीं, साथ ही अपनी तरफ से उपहार स्वरूप 15 किलों की किलेदारी का अधिकार दिया। इस प्रकार सुल्तान विजयी होकर गजनवी लौट गया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महमूद द्वारा कालिंजर का किला बहुत दिनों तक घेरे रहने के बावजूद भी अपनी सैनिक शक्ति से जीत नहीं सका और चंदेलों के विरूद्ध दोनों युद्धों में उसे सफलताएँ हांथ नहीं लगीं। विद्याधर के जीवन की यह सबसे बड़ी सफलता थी कि जहाँ महमूद के विजयी घावों की आँधी में भारत के सभी राजे-रजवाड़े उड़ गये, वह अकेला स्तम्भ की तरह खड़ा रहा और तुर्क उसके गढ़ कालिंजर से चंदेलों की शक्ति का भेदन न कर सके।[129] इस प्रकार हम देखते है कि कालिंजर का आक्रमण मात्र महमूद के लिए असफलता थी। इधर चंदेलों ने एक ऐसी नीति का निर्माण किया कि यदि कभी भविष्य में मुस्लिम आक्रमण हो तो वे उससे अपनी सुरक्षा कर सके। महमूद को कालिंजर पर आक्रमण करने का कोई लाभ नहीं हुआ, केवल विद्याधर ही एकमात्र ऐसा भारतीय शासक था जिसने मुसलमानों के विजय अभिमान को रोका।[130] यद्यपि कालिंजर मुसलमानों के हांथों में नही गया किन्तु यह कहने में अतियुक्ति न होगी कि तुर्कों ने चंदेलों की शक्ति को कमजोर किया और उसके संगठन को तोड़ा।

अपनी उन्नति की पराकाष्ठा के दिनों में विद्याधर चंदेल के हांथ में अति विशाल साम्राज्य था, जो उत्तर भारत में सबसे बड़ा था। अतः चंदेल इतिहास में यशोवर्मन देव से विद्याधर तक का समय असाधारण रूप से गौरवपूर्ण कहा जायेगा। राजपूत इतिहास में देश को एक बार और संघटित बनाने में सम्भतः इनका ही प्रयास अंतिम था।

विजयपाल देव-

विद्याधर के पश्चात विजयपाल ने राज्य की बागड़ोर अपने हांथों में ली। विजयपाल लगभग 1030 में सिंहासन में बैठा और 1050 तक शासन किया। इसके विषय में बहुत कम अभिलेख मिलते हैं तथा जो कुछ मिले है तो उनमें पर्याप्त जानकारी नहीं मिलती है किन्तु यह अवश्य है कि चंदेलों की सार्वभौम सत्ता अक्षुण थी एवं उसमें कोई कमी नहीं आई थी। मदनवर्मा का एक अभिलेख विजयपाल देव के व्यक्तित्व और आचरण का सर्वोत्तम चित्र उपस्थित करता है, यद्यपि राजनीतिक इतिहास में उसका कोई विशेष महत्व नहीं है।[131] विजयपाल अपनी कीर्ति के प्रसार से अधिक प्रसिद्ध और अपने धार्मिक आचरण से देश को पावन करने वाला हो गया। विजयपाल की राजस्थिति का परिचय चंदेल राज्य के अनेक अभिलेख मिलते हैं।[132] विजयपाल दृढ़ एवं पुनीत चरित्र वाला व्यक्ति था, वह प्रजा की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखता था। जनहित के कार्यों में वह सदैव लगा रहता था। इसके शासन में अपेक्षाकृत शान्ति थी। उसने अपने शासन

का विस्तार समुद्रतट तक किया।

देववर्मनदेव-

विजयपाल के पश्चात उसका पुत्र देववर्मन उत्तराधिकारी बना। इसने 1050-1060 तक शासन किया। उसके दो अभिलेख नन्यौरा[133] और चरखारी[134] से प्राप्त हुए हैं। किन्तु आश्चर्य यह है कि इस 'कालंजराधिपति' का नाम तक उसके वंशजों के सभी अभिलेखों में नहीं है और कीर्तिवर्मा को सीधे विजयपाल का उत्तराधिकारी बताया गया है। देववर्मन के संदर्भ में हमीरपुर जिले के पानकरी,जैतपुर तहसील के नन्यौरा ग्राम में प्राप्त दानपत्र से मिलता है। इसी पत्र के साथ यहां पर धंग देव का भी दानपत्र प्राप्त हुआ है।[135] किन्तु इन दानपत्रों में देववर्मन के किसी राजनीतिक घटना का उल्लेख नहीं हैं। मदनवर्मा के मऊ अभिलेख में विजयपाल के पश्चात कीतिवर्मन का नाम आता है। महोबा में प्राप्त खण्डित शिलालेख में भी इसी बात की पुष्टि होती है।[136] देववर्मन अपने चरित्र के लिए बहुत प्रसिद्ध था। वह सच्चाई में युधिष्ठिर, उदारता में कर्ण, गम्भीरता में महासागर, शक्ति में इन्द्र, सौन्दर्य में कामदेव और सूक्ष्म बुद्धि में शुक्र तथा बुद्धि में वाचस्पति को लज्जित करने वाला था। वह अपने पिता के समान गुणवान एवं बुद्धिमान था। वह न्यायप्रिय, पराक्रमी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, साधु-रंजक और शुभ-मूर्ति था।

नन्यौरा में विक्रमी संवत् 1107 का एक ताम्रलेख मिला है। इसमें देववर्मा का विरूद कालंजराधिपति लिखा है । इसमें इसकी माँ का नाम भुवनादेवी लिखा है। जिननाथ देव के एक जैन मंदिर में जो देववर्मा के प्रपितामह के समय में बना था। देववर्मा के समय में एक शिलालेख लगाया गया था। इस लेख में देववर्मा और उसके पूर्वजों के नाम लिखे हैं। यह मंदिर खजुराहो में है।[137]

कर्ण-द्वारा चंदेलों की पराजय की चर्चा बिल्हण ने भी की है। उसने डाहल के शासक कर्ण को कालिंजर के राजा के लिए काल "(कालः कालंजरगिरिपतेर्यः)" बतलाया है। इसमें संदेह नहीं कि चंदेलों को शौर्यशाली कर्ण द्वारा हार खानी पड़ी । आगे चलकर हम देखेंगें कि कीर्तिवर्मा ने चंदेल सत्ता के इस दुर्दिन का अंत किया।

कीर्तिवर्मन देव-

देववर्मन के बाद उसका छोटा भाई कीतिवर्मन सिंहासन पर बैठा। देववर्मन संतान हीन था। इसने सन् 1060 से 1100 तक राज्य किया। इसकी राज्यावधि 40 वर्ष की थी। उसका एक लेख देवगढ़ में विक्रम संवत् 1154 का है। कीर्तिवर्मन ने महोबा के पास का कीरतसागर नामक तालाब का निर्माण करवाया था। इसके नाम के अनेक सोने के सिक्के भी मिले हैं। जिन पर इसका नाम श्रीमत् कीर्तिवर्म्म देव लिखा है। कलचुरि राजा कर्णदेव को कीर्तिवर्मा ने पराजित किया था। इस विजय से कीर्तिवर्मा को इतनी अधिक खुशी हुई कि उसने विजय के उपलक्ष में एक नाटक "प्रबोधचन्द्रोदय' बनवाया। इसमें कीर्तिवर्मा की विजय एवं कर्ण की पराजय का वर्णन विस्तार से है। इसके साथ-साथ कीर्तिवर्मा की इसमें काफी प्रशंसा की गई है।[138]

चेदिराज पर कीर्तिवर्मा के विजय सम्बन्धी 'प्रबोधचन्द्रोदय' के उल्लेखों का समर्थन चंदेलों के अभिलेखों से भी होता है।[139] उसमें "प्रजेश्वर कीर्तिवर्मा" की नूतनराज्यसृष्टि के लिए प्रशंसा की गई है। अभिलेखों से यह भी ज्ञात होता है कि इसने चंदेल शासन का पुनरूत्थान किया। वह नवीन साम्राज्य के जन्मदाता के रूप में अगस्त्य के समान था।[140]

कीर्तिवर्मन के समय का एक लेख महोबा में मिला है। यह पीर मोहम्मद की दरगाह की दीवार में लगे हुए एक पत्थर पर था। अब यह पत्थर इलाहाबाद के अजायबघर में है। इस अभिलेख में चंदेल राजाओं की वंशावली धंगदेव से कीर्तिवर्मा तक दी हुई है। इसमें चेदि देश के कलचुरि राजा गांगेयदेव का नाम भी आया है। कीर्तिवर्मा का एक शिलालेख अजयगढ़ में मिला है। इसकी राजधानी खजुराहों में थी।[141] इसका राज्य बहुत विशाल था। कीर्तिवर्मा बहुत अधिक लोकप्रिय था। सुप्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ प्रबोधचन्द्रोदय से इसके शासनकाल की शासन व्यवस्था का बोध होता है। राज व्यवस्था देखने के लिए अमात्यों की नियुक्ति स्वयं राजा करता था। अमात्य राजा के प्रति उत्तरदायी था। बेतवा के तटपर ललितपुर पर्वतश्रेणियों के समीप देवगढ़ दुर्ग के नदी वाले गोपुर के समीप एक प्रस्तर अभिलेख प्राप्त हुआ हैं, जिसमें अमात्य वत्सराज का परिचय दिया गया है। वत्सराज ने अपनी सेना के बल से शत्रुओं को पराजित किया था। इसके दरबार का एक दरबारी गोपाल था, जिसका वर्णन हमें 'प्रबोधचन्द्रोदय' से मिलता है, वह नीतिज्ञ एवं वीर था। सात-सात बार उसने निरंकुश शासकों को समाप्त किया और रक्त की सरिता में स्नान किया। मदनवर्मा के मऊ अभिलेख से ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मा के प्रमुख अमात्यों में एक अनन्त भी था। वह निस्कलंक, पवित्र ज्ञान का भण्डार था, साथ ही शौर्य कौशल का भी अनोखा समन्वय था। दूसरे कर्मचारी का नाम वास्तव्य कायस्थ महेश्वर था जिसकी चर्चा भोजवर्मन के अजयगढ़ वाले प्रस्तर अभिलेख में मिलती है। कीर्तिवर्मन ने जो पीतशैल विषय के राजाओं में चूड़ा के समान था।[142] उसे कालिंजर के 'वशिस' की उपाधि दी थी। इस पीतशैल का तादात्म्य अभी ठीक से नहीं हुआ है। डॉ0 राय के अनुसार 'वशिस' एक शासकीय पदवी थी।[143]

सल्लक्षणवर्मन-

कीर्तिवर्मन के उपरान्त सल्लक्षण वर्मन ने सत्ता की बागडोर अपने हांथ में ली। सल्लक्षणवर्मन ने सन् 1100-1115 ई0 तक शासन किया। इसके शासन काल में चंदेलों का शासन गंगा-यमुना की सीमा तक फैला था। इसने चेदियों पर भी विजय प्राप्त की थी और उनके गौरव को अपहृत कर दिया। इसकी पुष्टि भोजवर्मन देव के अजयगढ़ अभिलेख से होती है। इसके संदर्भ में विशेष जानकारी जनरल कनिंघम और वी0 ए0 स्मिथ ने प्राप्त की। इसके नाम के सोने और ताँबे के सिक्के प्राप्त हुए हैं उन पर इसका नाम हलक्षण लिखा है।[144] इसके शासनकाल का कोई भी अभिलेख उपलब्ध नहीं होता । अजयगढ़ अभिलेख से यह प्रगट होता है कि सल्लक्षणवर्मन के कृपाण ने मालवों के गौरव को नष्ट किया । सुल्लक्षणवर्मा अपनी वीरता और विजयों से अधिक अपने राजोचित चरित्र के लिए विख्यात था। वह गुणवालों का साथी और नाना गुणों का

कोष था।वह सदाचारी भी था।[145]

जयवर्मनदेव-

सल्लक्षणवर्मन का पुत्र जयवर्मन देव सन् 1115 में राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ और उसने सन् 1120 तक शासन किया। इसने अपने नाम के ताँबे के सिक्के चलाये, जो काफी मात्रा में मिले है। ये सिक्के इंग्लैण्ड के अजायबघर में औरंगजेब ने रखे हैं। खजुराहों में धंगदेव के बनवाए शिवमंदिर में जो शिलालेख था उसे जयवर्मन ने सुधरवाया। जयवर्मन का मंत्री गौड़ कायस्थ था। यह बहुत विद्वान था। अजयगढ़ के शिलालेख से ऐसा भी ज्ञात होता है कि इससे और चेदि राज यशः कर्णदेव तथा मालवाधिपति लक्ष्मणदेव से भी युद्ध हुआ, परन्तु विजय जयवर्मा की हुई थी।[146] इस राजा का केवल एक अभिलेख खजुराहो में प्राप्त हुआ है जो विक्रमी संवत् 1173 अथवा सन् 1117 का है। कालिंजर में उपलब्ध अभिलेख से ज्ञात होता है कि जयवर्मन शासनसत्ता से बहुत परेशान था।[147]

पृथ्वीवर्मन-

पृथ्वीवर्मन ने 1120-1129 ई0 तक शासन किया। जयवर्मा के कोई पुत्र नहीं था, इसलिए उसके बाद उसका चाचा पृथ्वीवर्मन गद्दी पर बैठा । वस्तुतः यह निर्विवाद है कि चचा ने भतीजे के पश्चात सिंहासन प्राप्त किया । इसकी पुष्टि कालिंजर के उत्कीर्ण लेख से भी होती है, जो पूर्णयता सम्पादित नहीं है। मदनवर्मा के औगासी पत्र से प्रकट होता है कि पृथ्वीवर्मन सदा कीर्तिवर्मन के चरणों की पूजा करता था, जिससे सिद्ध होता है कि वह कीर्तिवर्मन का पुत्र था। मदनवर्मा के मऊ अभिलेख में यह वर्णन हैं कि पृथ्वीवर्मन राजा सल्लक्षणवर्मा का सहोदर भाई था।[148] किन्तु जनरल कनिंघम ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। यह प्रतीत होता है कि वह एक कमजोर शासक था, जिसमें महान राजाओं की कोई योग्यता नहीं थी।

मदनवर्मनदेव-

पृथ्वीवर्मन के बाद उसका वीर पुत्र मदनवर्मा ने सत्ता की बागडोर सम्भाली। इसने 1129-1163 तक एकछत्र राज्य किया। मदनवर्मा चंदेल वंश के अनेक महान शासकों में एक था। चंदेल राज्य के विभिन्न भागों से पाये जाने वाले उसके समय के लगभग 15 अभिलेख, लगभग एक दर्जन सोने के सिक्के तथा चालीस से अधिक चाँदी के सिक्के उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा और आर्थिक समृद्धि के प्रतीक हैं। उसकी विशेषता इस बात से प्रमाणित है कि गोविन्दचन्द्र गाहडवाल (1114-1154) तथा जयसिंह सिद्धराज चौलुक्य (1094-1142 ई0) जैसे समकालिक विजेताओं ने भी उसकी ओर आँख उठाने का साहस नहीं किया। चेदियों और परमारों[149] की पतोन्नमुख सत्ताओं का तो कहना ही क्या? विद्याधर के बाद चंदेलों की प्रतिष्ठा एवं शक्ति में जो धूमिलता आ गयी थी, उसे दूरकर मदनवर्मा ने चंदेल सत्ता को पुनः एक बार चमकाया। उसकी महानता के गीत स्थानीय जनश्रुतियों में भरे पड़े हैं।

मदनवर्मा का राजत्वकाल चंदेल शासन के इतिहास में युगान्तरकारी सिद्ध हुआ। इसके समय में

कालिंजर, खजुराहो, अजयगढ़ और महोबा का विकास हुआ। यह इन सब केन्द्रों का स्वामी था। औगासी तथा मऊ अभिलेखों से प्रकट होता है कि इसका राज्य बाँदा और झाँसी जिलों तथा पड़ोसी भू-भाग पर भी था। सन् 930 ई0 से लेकर सन् 1203 ई0 तक समय-समय पर चंदेल राज्य की सीमाएँ घटती बढ़ती रहीं। इनके राज्य की प्रमुख तीन राजधानियाँ खजुराहों, कालिंजर और महोबा थीं। इतिहासकार स्मिथ की राय है कि हमीरपुर जिले के उत्तरी भाग में स्थित परगना सुमेरपुर कभी चंदेल राज्य में था किन्तु इसका कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं होता।[150] उसकी विजय के संदर्भ में मदनवर्मा के दानपत्र विक्रमी संवत् 1190 से जानकारी मिलती है-''उस विजयमूर्ति ने अपने विक्रम से समस्त शत्रु समूह का उच्छेदन कर दिया-सचमुच उसके शौर्य का भार दुर्वह था।'' मदनवर्मा ने मालवा नरेश पर विजय प्राप्त की थी। इसकी इस बात से पुष्टि होती है कि उसने इस जनपद में अवगासी में कुछ भूमि भेलस्वामिनी विदिशा के ब्राह्मणों को सन् 1134 ई0 में प्रदान की थी।[151] मदनवर्मा के कालिंजर अभिलेख से यह प्रकट होता है कि क्षणमात्र में उसने गुर्जर नरेश को परास्त किया। ठीक उसी तरह जैसे भगवान कृष्ण ने कंस का विनाश किया था।[152] इस बात की पुष्टि **'कीर्तिकौमुदी'** से भी होती है। इस ग्रंथ के अनुसार मालव राजधानी धारा की विजय करता हुआ जयसिंह सिद्धराज कालिंजर गया किन्तु ''कुमारपालचरित'' में वर्णित है कि उस चौलुक्य राज सिद्धराज को झुकने और संधि करने के लिए मदनवर्मा ने बाध्य किया।[153] चन्दवरदाई भी ''पृथ्वीराजरासो'' में यह वर्णन करता है कि मदनवर्मा ने जयसिंह को हराया।[154] अन्य शासकों की भाँति मदनवर्मा ने भी ''कालंजरपुरमहाधिपति'' की उपाधि धारण की थी। मदनवर्मा का शासन उत्तर में यमुना नदी तक फैला था, पश्चिम में उसका साम्राज्य बेतवा तक, दक्षिण में नर्मदा तक तथा दक्षिण पूर्व में रींवा तक फैला हुआ था। उत्तर भारत में इस राज्य का महत्वपूर्ण स्थान था। अनेक प्रकार के शिलालेख एवं परम्परागत साहित्यिक ग्रंथों से इसकी पुष्टि होती हैं। अनेक शिलालेख एवं ताम्रपत्र मदनवर्मा के समय के उपलब्ध होते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि चंदेलों की शक्ति सर्वाधिक विकसित थी।छतरपुर से मदनवर्मा का 1147 ई0 का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। जिससे निश्चित है कि अपने पैतृक क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करने के लिए उसका गोविन्दचन्द्र से युद्ध हुआ होगा। मदनवर्मा के संदर्भ में मऊ अभिलेख में कहा गया है कि '' गदाधर ने छः साधनों के प्रयोग से क्रमशः राजाओं को आश्रित बनाकर अपने सम्राट की पृथ्वी पर सार्वभौम सत्ता प्रतिष्ठित की, जो एकछत्र थी।[155]

मदनवर्मा ने महोबा के निकट एक सुन्दर तालाब का निर्माण कराया। इस तालाब का नाम मदन सागर है। तालाब के किनारे दो मंदिर है। यह मंदिर भी इसी ने बनवाये थे, जो अब तक यहाँ मौजूद है। मदनवर्मा ने एक नगर भी बसाया था। इस नगर का नाम मदनपुर हैं, यह सागर जिले में स्थित है। मदनवर्मा का पहला लेख कालिंजर के नीलकण्ठ मंदिर के बारह की एक शिला पर मिला हैं। यह लेख विक्रमी संवत् 1186 का है।[156] यहीं विक्रमी संवत् 1187 का एक अन्य लेख भी मिला है। एक और शिलालेख विक्रमी संवत् 1188 का प्राप्त हुआ है। यह नीलकण्ठ मंदिर के बांई ओर है। यह वर्धा (बैल) की मूर्ति में है, इसमें

राजा का नाम अंकित है इस मूर्ति का निर्माण नीलकण्ठ मंदिर के साथ हुआ था। कालिंजर में ही एक शिलालेख विक्रमी संवत् 1192 का उपलब्ध हुआ है। जिस व्यक्ति ने नीलकण्ठ मंदिर व नीलकण्ठ प्रतिमा का निर्माण किया वह इसी तिथि की है। यह लेख अब निसमा ठकुर्रा में है। यह अभिलेख एक चट्टान में अलग से अंकित है और इसमें निसमा ठकुर्रा अंकित है। यहीं पर एक गुफा में एक अन्य अभिलेख प्राप्त हुआ है, जो विक्रमी संवत् 1194 का है। इसमें भारद्वाज गोत्र के दो ब्राह्मणों के नाम अंकित हैं।

मदनवर्मा के समय में कालिंजर एक प्रधान नगर रहा होगा जैसा कि मदनवर्मा के पूर्वजों के समय में था। इस प्रकार मदनवर्मा चंदेलवंश का पराक्रमी एवं यसस्वी शासक सिद्ध हुआ। मदनवर्मा के पश्चात उसका पुत्र यशोवर्मन द्वितीय उत्तराधिकारी बना। इसने केवल दो वर्षों तक शासन किया।[157]

परमर्दिदेव-

परमर्दिदेव ने 1165 से 1202 तक शासन किया। जनश्रुति के अनुसार परमर्दिदेव अंतिम चंदेल शासक था, जिसने सम्पूर्ण चंदेल साम्राज्य पर शासन किया। यशोवर्मन द्वितीय के बाद परमर्दिदेव शासक बना। परमर्दिदेव के लगभग एक दर्जन अभिलेख मिले हैं किन्तु उनसे उसके "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" और "परममाहेश्वर श्री कालंजराधिपति" जैसे विरूदों को छोड़कर कोई विशेष राजनीतिक महत्व की जानकारी नहीं प्राप्त होती।

इसका राज्य विषम परिस्थितियों से भरा हुआ था। इसके राज्य में दो बहादुर बनाफर वंश के योद्धा आल्हा और ऊदल निवास करते थे। जिनके प्रभाव से परमर्दिदेव का राज्य उस भू-भाग में बराबर कायम रहा जहां उसके पितामह मदनवर्मा का अधिकार था। परमार्दिदेव ही ऐसा लोकप्रिय शासक है, जिसकी चर्चा सर्वत्र उपलब्ध होती है।

परमर्दिदेव के समय का ताम्रपत्र विक्रमी संवत् 1228 का इछावर नामक ग्राम में उपलब्ध हुआ। यह गाँव पैलानी के सन्निकट है। यहाँ दो ताम्र अभिलेख भी उपलब्ध हुए हैं जिनमें गजलक्ष्मी की मूर्ति बनी है साथ ही नंदिनी का नाम भी अंकित है। नंदिनी नामक ग्राम जो नंदन बन में था। सेनापति मदनपारेसर को भूमिदान के रूप में प्रदान की गई थी। इसमें परिमर्दिदेव को 'कालिंजराधिपति' के नाम से दर्शाया गया है। एक और अभिलेख जो परमार्दिदेव का है वह विक्रमी संवत् 1258 का है। यह एक बड़े काले पत्थर में अंकित है जो नीलकण्ठ मंदिर में लगा हुआ है। इसमें एक लम्बी संस्कृत की कविता है जिसमें भगवान शिव-पार्वती की वंदना एवं महिमा का वर्णन है। इसी में दास अरिन्दनाथ अंकित है। इसका निर्माण स्वतः परमार्दिदेव ने किया था। इसमें परमर्दिदेव को दसरनअधिपति नाम से सम्बोधित किया गया है। एक अन्य शिलालेख परमर्दिदेव का वक्रिमी संवत् 1240 का कालिंजर में ही प्राप्त हुआ है।[158] इन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि परिमर्दिदेव के समय राज्य का पुनरूत्थान हुआ तथा सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र राजा परिमार्दिदेव के शासन में ही आता था।[159]

चंदेल नरेश परमर्दिदेव का सबसे बड़ा शत्रु पृथ्वीराज चौहान था। जिसने सन् 1178-1192 तक शासन किया।यह दिल्ली और अजमेर के चौहान नरेश के रूप में विख्यात था। परमर्दिदेव का सर्वप्रथम संघर्ष पृथ्वीराज से हुआ। साथ ही साथ कलचुरियों से भी उसका संघर्ष बराबर चलता रहा। संघर्ष काल में चौहान ने अवसर प्राप्त करके उत्तर में अपना सुदृढ़ राज्य स्थापित कर लिया। धीरे-धीरे वह दक्षिण की ओर बढ़ा जिसके कारण चंदेलों से संघर्ष आवश्यक हो गया। आल्हखण्ड में इस इतिवृत्ति का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है।[160] इस युद्ध में पृथ्वीराज के द्वारा परिमर्दिदेव पराजित हुआ। जब पृथ्वीराज चौहान युद्ध जीतकर लौट रहा था तब उसने ललितपुर के सन्निकट मदनपुर में एक शिलालेख खुदवाया। जिसमें जैजाकभुक्ति की विजय का वर्णन अंकित कराया।[161] कवि चन्दवरदाई ने इसका बड़ा ही वीभत्स वर्णन किया। यह युद्ध उरई से चौदह मील की दूरी पर बैरागढ़ में हुआ। यह दुर्ग बेतवा के तटपर राठ और सिरसागढ़ के मध्य में है।पृथ्वीराज ने भागते हुए चंदेलों का पीछा किया। कुछ समय बाद महोबा में भी उसका अधिकार हो गया। चौहानों की यह विजय मार्च सन् 1182-1183 के मध्य हुई। इस बात का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं होता कि जयचन्द्र ने चंदेलों की मदद की अथवा नहीं। इस युद्ध में आल्हा-ऊदल ने अपनी वीरता का परिचय दिया था। चंदेलों की पराजय से राष्ट्रीय संकट उपस्थित हो गया और संगठन शक्ति भी कमजोर हुई। चंदेलों के समय में भारतवर्ष में केवल दो ही शक्तिशाली राज्य थे। पहला चंदेलों का और दूसरा चौहानों का। दोनों के आपसी संघर्ष के कारण इनकी शक्ति कमजोर हुई। इसी समय भारतवर्ष में तुर्कों के आक्रमण होने जा रहे थे। यदि इन दोनों मे ंएकता होती तो सम्भवतः तुर्क भारत वर्ष की भूमि में प्रवेश नहीं कर पाते।

चौहानों ने अपने शासन काल में भारतवर्ष के अनेक स्थलों को जीता। पृथ्वीराज चौहान की यह विजय स्थाई नहीं रहीं। सन् 1191-92 में वह मुहम्मद गोरी के युद्ध में व्यस्त था। इसी युद्ध के दौरान चौहान की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु ने परमर्दिदेव को यह अवसर प्रदान किया कि वह हारे हुए राज्य पर पुनः अपना अधिकार कर ले। इस समय चंदेलों की शक्ति का संचालन कालिंजर से होता था। इस विषय में कालिंजर से एक शिलालेख सन् 1204 का प्राप्त हुआ है, जिसमें कालिंजर नरेश को दसरनअधिपति की उपाधि से सम्बोधित किया गया है। इस समय चंदेल पुनः शक्तिशाली तो बन गये किन्तु पहले जैसी शक्ति को अर्जित नहीं कर पाये। मुहम्मद गोरी ने जो क्षेत्र विजित किये थे तथा अपने आक्रमणों से चाहानों को पराजित किया था, उससे भारत वर्ष की शक्ति क्षीण हुई। उसने भारत वर्ष में जिन क्षेत्रों को जीता, उनकी शासन व्यवस्था के लिए कुतुबुद्दीन ऐबक को यहाँ रख छोड़ा। कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1193 में कन्नौज, दिल्ली को जीत लिया और उसने अन्य क्षेत्रों में भी लूटपाट का सिलसिला जारी रखा। कुतुबुद्दीन ऐबक ने सन् 1202 में कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया और दुर्ग अपने अधिकार में कर लिया। समकालीन मुस्लिम लेखक "हसननिजामी" ने अपनी पुस्तक "ताजुलमा अतहर" में इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार किया है-599 हिजरी अथवा सन् 1202 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर आक्रमण किया। इस सेना का नेतृत्व साहिब-किरान शम्सुद्दीन

अल्तमश (इल्तुतमिश) ने किया। कालिंजर का राजा अभिशप्त परमार युद्ध मैदान में सामना करने के पूर्व भग्नाश किले में भाग गया। बाद में आत्मसमर्पण करके उसने गले में पराधीनता का कण्ठभूषण पहन लिया किन्तु राज्य भक्ति का वचन देने के पश्चात उसे उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया।जिस रूप में महमूद सुबुक्तगीन द्वारा उसके पूर्वज ग्रहण किये थे तथा उसने महमूद सुबुक्तगीन को हर्जाने के रूप में रकम और हांथी देने की शर्त स्वीकार की, किन्तु इस शर्त का पालन करने के पूर्व ही परमार्दिदेव की मृत्यु हो गई। उसका मंत्री या दीवान अजयदेव था। वह उतनी आसानी से आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार नहीं था जितनी सरलता से उसके मालिक ने आत्मसमर्पण किया था। वह अपने शत्रुओं को परेशान करता रहा। उसको आत्मसमर्पण के लिए मजबूर किया गया और दुर्ग के ऊपर के सभी जलाशयों को सुखा दिया गया। अब उसके पास आत्मसमर्पण के सिवा कोई रास्ता नहीं था। तब बीसवीं राजब सोमवार को दुर्ग रक्षक सेना अत्यन्त छिन्न-भिन्न एवं दुर्बल अवस्था में बाहर आई। उनको अपने स्थान को खाली करना पड़ा। कालिंजर दुर्ग, जो विश्व भर में सिकन्दर की दीवार की भाँति मजबूती एवं सुदृढ़ता के लिए प्रसिद्ध था। कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा ले लिया गया। मंदिर, मस्जिद बना दिये गये। सौजन्य के स्थान, अक्षमाल के जाप करने वालों के स्वर, प्रार्थना के लिए आमंत्रित करने वाली वाणी इन सबका अन्त कर दिया गया। पचास हजार आदमी गुलाम बनाये गये। वह भाग या स्थान हिन्दू-विहीन हो गया। हांथी, पशु, और अगणित शस्त्रास्त्र भी विजेता के हांथ लगे। कालिंजर का शासन हाजाब्बारूद्दीन हसन के जिम्में किया गया। अब वह वहां का सूबेदार था। विजय की बागडोर कालिंजर के बाद महोबा की ओर फेरी गई।[162]

12वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक कालिंजर की ऐतिहासिक स्थिति -

कुतुबुद्दीन ऐबक के समय में कालिंजर पर तुर्कों की विजय अवश्य हो गई थी मगर ऐसा मालुम होता है कि यह विजय स्थाई नहीं रही। परमर्दिदेव का पुत्र त्रैलोक्यवर्मन का एक शिलालेख उपलब्ध हुआ है। जिससे यह सिद्ध होता है कि त्रैलोक्यवर्मन ने अपने पिता द्वारा हारी हुई राजधानी कालिंजर को पुनः अपने अधिकार में ले लिया।[163] इसीप्रकार एक दानपत्र में वर्णन मिलता है कि युद्ध में त्रैलोक्यवर्मन विजयी हुआ और उसने अपने पूर्वजों के प्रसिद्ध सैनिक केन्द्र कालिंजर को मुक्त कर लिया है[164] ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्टि होती है कि राजा-द्वारा 'कालंजराधिपति' का विरूद धारण किया गया था। मलिक तयासी इस समय बयाना और कालिंजर का सूबेदार था।उसने कालिंजर पर आक्रमण किया तथा विजय हासिल की ।यहां से ये लगभग सवा करोड़ मुद्राएं लूट कर ले गया। इस युद्ध में चंदेलों को बड़ी हानि पहँची पर पीछे से त्रैलोक्यवर्मन ने इसकी पूर्ति कर ली।[166] यद्यपि कालिंजर इस सेना के आधीन नहीं हो पाया। सन् 1233 में जब कालिंजर पर आक्रमण हुआ उस समय कालिंजर का राजा अपनी स्थिति संदिग्ध देखकर भाग गया। इस आक्रमण से प्रमाणित होता है कि उस समय कालिंजर और सम्बन्धित राज्य-हिन्दू राजा के हांथ में आ

चुका था। कालिंजर का यह राजा निश्चित रूप से त्रैलोक्यवर्मन ही था, क्योंकि उसके अभिलेख लगभग सन् 1205 से सन् 1241 तक के प्राप्त होते हैं। इतना कहना जरूर कठिन है कि कालिंजर दिल्ली के तुर्कों के हांथों से पुनः चन्देलों के हांथ में किस तिथि को आया था।[167] सन् 1247 में दुबारा कालिंजर परिक्षेत्र पर बलवन के नेतृत्व में आक्रमण किया गया। बलवन नसीरूद्दीन का प्रधानमंत्री था।उसने स्वतः सेना का संचालन किया। इस समय यहां पर बघेलराजा दलकेश्वर और मलकेश्वर राज्य करते थे। यहां पर इनका प्रभाव अधिक था। बल्कि वे ही इस परिक्षेत्र के स्वामी थे। इस युद्ध में नसीरूद्दीन की विजय हुई तथा इसने कालिंजर को मनमाना लूटा। उसे इस लूट में धन के अतिरिक्त बहुत सारा भाग मिला। नसीरूद्दीन जैसे ही वापिस लौटा कालिंजर दुर्ग पुनः हिन्दुओं ने मुसलमानों से छीन लिया। विक्रमी संवत् 1308 (सन् 1251) तक यह दुर्ग कई बार हिन्दुओं से मुसलमानों के हाथ में और मुसलमानों के हांथ से हिन्दुओं के हांथों में आता जाता रहा। यह सिलसिला इसी तरह चलात रहा। अंत में इसने विक्रमी संवत् 1308 (सन् 1251) में एक विशाल सेना लेकर कालिंजर पर चढ़ाई की। कालिंजर पर चढ़ाई करने के लिए नसीरूद्दीन ने दिल ग्वालियर कन्नौज तथा सुल्तान कोट से भी सेना बुलवाई थी। इस समय तो कालिंजर मुसलमानों के ह आ गया परन्तु फिर पुनः ही उनसे निकलकर हिन्दुओं के हांथ में चला गया।[168] यह बहुत दिनों तक हिन्दु के हांथ में नही रहा। पहले त्रैलोक्यवर्मन को त्रिलोकवाम देव के नाम से जाना जाता था किन्तु बाद में इतिहासकार कनिंघम ने उसका नाम तिलकवाम देव बताया है।त्रैलोक्यवर्मन के विषय में कहा जाता है कि कालिंजर से लेकर कड़ा तकसम्पूर्ण भूमि का एकछत्र राजा था। उसके राज्य बांदा आदि भी आते थे। जल्दी ही कालिंजर मालवा एवं कड़ा स्वतंत्र एंव शक्तिशाली हो गये।[169]

बलवन एकमात्र ऐसा शासक था, जिसने सुल्तानों की कमजोर सत्ता का पुनरूत्थान किया। अनेक क्षेत्रों को अपने राज्य में शामिल करके राज्य की स्थिति मजबूत की। इस समय शासन के मुखिया जो किसी कारणवश सत्ता से हट जाते थे और जब उनकी स्थिति मजबूत नहीं होती थी। तब वह दूसरों की मदद से ऊपर उठने का प्रयास करते थे।[170] सन् 1551 में कालिंजर पुनः तुर्कों के अधिकार में आ गया। सन् 1255 में कलतुग खान ने यहां शरण ली। यह तुर्की सेना का नायक था। कुछ समय तक यह इलाका अस्थाई रूप में उसके नियंत्रण में रहा त्रैलोक्यवर्मन की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र वीरवर्मन सन् 1241 के बाद और सन् 1261 के पूर्व शासक बना। उसने अपने को 'कालंजराधिपति' की पदवी से विभूषित किया। किवदंति के अनुसार उसको हमीरपुर और महोबा का आधिपति माना जाता रहा है। हमीरपुर गजेटियर में इस बात का उल्लेख है कि इस क्षेत्र में सन् 1252 से 1280 तक भरवंशिय (भारवंशिय) राजपूतों ने शासन किया। फरिश्ता ने भी बताया है कि इस राजा ने कालिंजर पर राज्य किया तथा यमुना के समस्त दक्षिणी राज्य पर अपना अधिकार कर लिया था। मालवा और कड़ा तक के राजाओं की सेनाओं को नष्ट कर दिया था।[171] वीरवर्मन अभी भी उस बहुत बड़े भाग का शासक था, जहां उसके पूर्वजों ने शासन किया था। वीरवर्मन का

पुत्र भोजवर्मन शासन का उत्तराधिकारी हुआ। कालिंजर के सम्बन्ध में ऐसे प्रमाण मिले है जिनसे पता चलता है कि कालिंजर और उसके चारो ओर का राज्य सोलहवीं शताब्दी तक चंदेलों के आधीन रहा। कालिंजर में सदैव मुस्लिम शासकों के आक्रमण होते रहते थे परन्तु प्रायः चन्देल शासक ही विजयी होते थे। कालिंजर राजधानी पर केन्द्रित एक विस्तृत भू-भाग पर भोजवर्मन देव का अधिकार बना रहा परन्तु अन्दर ही अन्दर चन्देल शासन की नींव खोखली हो चली थी। भोजवर्मन के पश्चात चंदेल शासन का उत्तराधिकारी हमीरवर्मन बना। कालिंजर में उसका अवशिष्ट साम्राज्य कायम रहा। प्रश्न यह उठता है कि हम्मीरवर्मनदेव कौन था जो 1308 में कालिंजर में राज्य कर रहा था? यह स्पष्ट है कि भोजदेव चन्देल का ही उत्तराधिकारी था, जो उसके उपरान्त कालिंजर राजधानी में राज्य कर रहा था। हम्मीरवर्मनदेव के बाद चन्देलों की सत्ता का दर्शन तब होता है जब कालिंजर के राजा कीरतसिंह सन् 1544 ई0 में शेरशाह सूरी का सामना किया था।इस समय बुन्देलखण्ड के पूर्व में बघेलों का राज्य फैल रहा था इनके इतिहास से जाना जाता है कि ये लोग सन् 1233 के लगभग कालिंजर के समीप मड़फा नामक ग्राम में पश्चिम से आकर बसे थे। यह ग्राम कालिंजर के ईशान में 18 मील पर है। कालिंजर के निकट बघेलबाड़ी और बघेलन नाम के दो ग्राम है। ये दोनों नाम सम्भवतः बघेलों के नाम पर से ही पड़े।

कालिंजर के पास मड़फा में सन् 1233 ई0 में व्याघ्रदेव बघेल का राज्य था। सरकार टाड के अनुसार व्याघ्रदेव सन् 1150 में इस परिक्षेत्र में आया था। वह कलचुरि नरेश नरसिंह देव का समकालीन था।[172] इसके उत्तराधिकारी के रूप में कुछ पीढ़ियों के बाद वीरसिंह बघेल नरेश हुए। इसके बाद वीरभान देव हुमायूँ का समकालीन बघेल राजा हुआ। इस विषय में यह उल्लेख मिलता है कि जिस समय शेरशाह सूरी की मृत्यु हुई, उस समय कालिंजर परिक्षेत्र में बघेलों का शासन था। कालिंजर और बांधोगढ़ दोनों ही बघेल राजा रामचन्द्र के अधिकार में थे। कहते हैं कि कालिंजर परिक्षेत्र राजा रामचन्द्र बघेल ने शेरशाह के दामाद अली खां से लिया था। कुछ लोग इसका नाम बिजली खाँ बतलाते हैं। अलीखाँ कालिंजर का सूबेदार था। राजा रामचन्द्र वीरभान के पुत्र प्रतीत होते हैं। यह विक्रमी संवत् 1612 सन् 1555 में गद्दी पर बैठा था। कहते हैं कि गद्दी पर बैठते ही इब्राहीम सूर ने कालिंजर में चढ़ाई की। वह युद्ध में पराजित हुआ फिर भी कालिंजर नरेश रामचन्द्र बघेल ने उसके साथ अच्छा व्यवहार किया। सन् 1569 में रामचन्द्र ने कालिंजर तथा उसके आस-पास का बहुत सा परिक्षेत्र अकबर को सौंप दिया। इस प्रकार अकबर द्वारा कालिंजर का किला लेने पर बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग उसके अधिकार में चला गया। इस समय मुगलों के पास पूर्व में कालिंजर ,पश्चिम में धसान नदी के पश्चिम का भाग और उत्तर की ओर कालपी के आस-पास का सम्पूर्ण प्रदेश था।[173]

मुहम्मद शाह जो अंतिम तुगलक शासक था जिसने 'मालिक शार्क ख्वाजा जहान' की पद्वी धारण की थी। यह दिल्ली का बादशाह था। वह हिन्दुस्तान का बादशाह बनने की इच्छा रखता था। कालिंजर, बिहार, कड़ा, अवध, सिन्ध, दालमऊ, बहराइच, तिलहुट आदि उसके राज्य के शासन के केन्द्र थे। उसने

यमुना के दक्षिणी भाग में भी अपना राज्य स्थापित किया।[174] तैमूर लंग का जब दिल्ली पर आक्रमण हुआ उस समय दिल्ली में काफी उथल-पुथल हुई। इसी वजह से अनेक रियासते स्वतंत्र हो गई। कालपी और महोबा की रियासतें महमूद खांन के आधीन हो गई। यह मलिक जदा फिरोज का पुत्र था।[175] इसके पश्चात् इब्राहिम शाह शर्की को कालपी छोड़ना पड़ा। इस समय बाँदा और कालिंजर महमूद खान के पुत्र कादिर खान के पास था। उसका प्रभाव यहां रहा अथवा नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिंजर परिक्षेत्र सन् 1426 तक स्वतंत्र रूप से अपना शासन चलाता रहा। कभी यह परिक्षेत्र जौनपुर परिक्षेत्र में कभी मालवा परिक्षेत्र में चला जाता था। तभी बघेलों ने अपनी शक्ति का विस्तार कालिंजर परिक्षेत्र में किया और उन्होंनें इस क्षेत्र के पूर्वी भाग पर अपनी सत्ता कायम की।[176] लेकिन इस क्षेत्र का अन्य शेष भाग 1479 तक जौनपुर के शर्की के शासन के आधीन था। वह बहलोल लोदी का गवर्नर मात्र था। अब राजा भेदचन्द्र बघेल खण्ड का राजा था। इसने भाटगहोरा में अपने राज्य की स्थापना की। वह अपने परिक्षेत्र को पूर्ण स्वतंत्र होने की बात सोचने लगा। ऐसा ज्ञात होता है कि ग्वालियर नरेश मानसिंह ने हुसैन शाह शर्की को खोई हुई जागीर दिलाने में मदद की थी।उसके विरूद्ध बगावत करने के आरोप में बाचकोटिस को सजा दी गई, उसके स्थान पर मुबारक खान नुहानी को जौनपुर का सूबेदार बनाया गया। सन् 1993 तक इस परिक्षेत्र के शासकों की शर्की शासकों से मित्रता बनी रही।[177] इस संदर्भ में कोई विशेष ऐतिहासिक साक्ष्य उपलबध नहीं होते केवल इतना ही मिलता है कि सन् 1495 में सुल्तान सिकन्दर लोदी का आक्रमण इस क्षेत्र में हुआ। उसका युद्ध बघेल नरेश वाहआर्य देव से हुआ। यह भेदचन्द्र का पुत्र था। सिकन्दर लोदी विजयी हुआ। इसके बाद दिल्ली सल्तनत में आपसी संघर्ष प्रारम्भ हो गये। जिसका फायदा भेदचन्द्र के द्वितीय पुत्र लक्ष्मीचन्द्र ने उठाया। सुल्तानों और बघेलों के युद्ध के कारण कालिंजर परिक्षेत्र काफी प्रभावित हुआ तथा जन-धन की बहुत अधिक हानि हुई।

इब्राहिम लोदी के प्रारम्भिक शासनकाल में सन् 1517-1526 तक उसके भाई जलाल खां ने अपने आप को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और कालपी एवं कालिंजर को अपने अधिकार में ले लिया।[178] जलाल खां ने कालिंजर के जागीदार आजम हुमायूँ शेरवानी को पराजित किया। यह आक्रमण कालिंजर में 17 जनवरी 1518 में हुआ। उसने आगरा छोड़ा उसके पश्चात उसने कालपी पर अधिकार किया, फिर बिना किसी बाधा के कालिंजर पर भी अपना अधिकार जमा लिया।[179] जैसे सुल्तान इब्राहिम लोदी के राज्य में राजनीतिक व्यवस्था गड़बड़ाई एवं उथल-पुथल प्रारम्भ हुई वैसे ही कालिंजर परिक्षेत्र हिन्दू राजाओं के अधिकार में पुनः आ गया और यह बाबर द्वारा दिल्ली में राज्य स्थापित किये जाने के बाद तक बना रहा।

कालिंजर में मुगलों का आधिपत्य-

बाबर को मुगल साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। यह इब्राहिम लोदी को पराजित कर दिल्ली का बादशाह बन गया। हुमायूँ ने अपने पिता बाबर के जीवन काल में ही सन् 1530 में कालिंजर पर आक्रमण

किया। इस आक्रमण का कारण यह था कि कालिंजर दुर्ग का शासक अफगानों का शुभचिन्तक समझा जाता था। यह घेरा कई महीनों तक पड़ा रहा किन्तु पिता की अस्वस्थता की सूचना पाकर वह वापित दिल्ली चला गया। कालिंजर पर आक्रमण का अभियान उसकी एक महान भूल थी क्योंकि कालिंजर के राजा को पराजित नहीं कर सका और हुमायूँ अपने लक्ष्य की पूर्ति में असफल रहा। वह चाहता तो राजा को अपनी तरफ मिला लेता और उसे अपना मित्र बना लेता। कालिंजर से वापिस जाने का एक अन्य कारण भी था। महमूद लोदी के संचालन में बिहार के अफगान मुगल प्रदेश जौनपुर की ओर बढ़ते चले आ रहे थे। इस कारण ने हुमायूँ को कालिंजर का घेरा उठाने के लिए बाध्य कर दिया।[180] जब बाबर के पुत्र हुमायूँ ने कालिंजर पर आक्रमण किया उस समय भी यहां हिन्दू राजा था। बाबर की अस्वस्थता की सूचना के आगे हुमायूँ ने कालिंजर विजय को महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया और वापिस चला गया।[181] पिता की मृत्यु के पश्चात हुमायूँ ने सन् 1531 ई0 में कालिंजर पर पुनः आक्रमण किया। दो माह तक बराबर कालिंजर का घेरा डाले रहा। राजा ने सम्मान के साथ समर्पण किया[182] तथा हुमायूँ से सन्धि कर मित्रता बनाये रखी और हुमायूँ धन लेकर वापिस लौट गया। कालिंजर पर वहां के शासक का अधिकार पूर्ववत बना रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय यहां का राजा चंदेल वंश का था। हुमायूँ ने कालिंजर पर सन् 1530-1531 के बीच दो बार आक्रमण किया फिर भी वह कालिंजर को नहीं विजित कर पाया था।[183]

कालिंजर पर शेरशाह सूरी का आक्रमण-

सन् 1540 ई0 में मुगल सम्राट हुमायूँ को पराजित करके शेरशाह सूरी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। राजस्थान की विजय के उपरान्त शेरशाह सूरी कालिंजर की ओर चल दिया।इसने नवम्बर सन् 1545 ई0 में कालिंजर पर आक्रमण कर दिया। इस समय कालिंजर दुर्ग कीर्तिसिंह चंदेल के हांथों में था।यह चंदेल वंश का अंतिम शासक प्रतीत होता है जिसके अधिकार में कालिंजर था। साथ ही यह किले का रक्षक भी था। शेरशाह सूरी के कालिंजर आक्रमण का प्रमुख कारण नर्तकी थी। कुछ लोगों का यह विश्वास है कि कीर्तिसिंह के दरबार में एक नर्तकी रहती थी। उस नर्तकी का यश नृत्य के क्षेत्र में चारो ओर फैला हुआ था। कीर्तिसिंह उसे अपने दुर्ग में बन्द किए हुए था। शेरशाह सूरी उस नर्तकी को कीर्तिसिंह से मांग रहा था। यह नर्तकी इस समय सुप्रसिद्ध नर्तकियों में मानी जाती थी।[184] कीर्तिसिंह ने शेरशाह सूरी को नर्तकी देने से मना कर दिया। इससे शेरशाह सूरी रूष्ट हो गया और कालिंजर पर आक्रमण कर दिया।इसने तोप के गोले कालिंजर दुर्ग पर छोड़े जिसके परिणाम स्वरूप दुर्ग की दीवार शेरशाह सूरी के ऊपर गिर पड़ी और वह घायल हो गया। जब उसने यह सुना कि उसने कालिंजर दुर्ग को जीत लिया है यह सुनने के पश्चात ही शेरशाह सूरी की मृत्यु हो गई।[185] मृत्यु के पांचवें दिन कालिंजर दुर्ग में ही उसका पृत्र जलाल खां दिल्ली का शासक बनाया गया। उसने इस्लामशाह की उपाधि धारण की और वह इस उपाधि इस्लाम शाह के नाम से विख्यात हुआ।[186] गद्दी में बैठने के पश्चात उसने कालिंजर के राजा और उसके 70 विश्वासपात्र सिपाहियों

को कैदी बनाया। इस प्रकार कालिंजर दुर्ग का विनाश हो गया।[187]

एक अन्य इतिहासकार के अनुसार शेरशाह सूरी ने कालिंजर दुर्ग पर अपना आक्रमण नवम्बर 1544 में किया था। दुर्ग की अभेद्य स्थिति को देखकर वह स्तब्ध हो गया, परन्तु कुछ सोच विचार के पश्चात उसने दुर्ग के समीप घेरा डाल दिया।सभी सम्भव उपाय करने के बावजूद एक वर्ष तक वह दुर्ग पर अधिकार नहीं कर पाया था। कालिंजर पर आक्रमण करने का एक अन्य कारण भी था। रीवां का राजा वीरभान बघेला जिसे दरबार में बुलाया गया था जो कलिंजर के राजा कीर्तिसिंह के यहां शरण पाने के लिए चला गया था। शेरशाह ने कालिंजर के राजा से प्रार्थना की थी कि राजा वीरभान को उसे सौंप दिया जाये, किन्तु उसकी इस प्रार्थना को ठुकरा दिया गया। जिससे अफगान बादशाह को उसके विरूद्ध कार्यवाही करने का अवसर प्राप्त हुआ। कालिंजर के राजा को सजा देने के लिए शेरशाह कालिंजर की तरफ तीव्र गति से बढ़ा और नवम्बर 1544 ई0 में दुर्ग पर घेरा डाल दिया। जब वह काफी दिनों तक कालिंजर पर अधिकार नहीं कर पाया तब उसने अंत में दुर्ग को गोला-बारूद से उड़ा देने की योजना बनाई । साथ ही साथ उसने अपने एवं आक्रमणकारियों के बचाव के लिए ढकी हुई नालियों का निर्माण भी कराया। एक इतना ऊँचा बुर्ज बनवाया जिससे दुर्ग का भीतरी भाग स्पष्ट रूप से दिखाई देता था। 22मई, 1545 ई0 को शेरशाह ने दुर्ग पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। आक्रमणकारियों के साथ वह भी आगे बढ़ा। वह बुर्ज पर चढ़ गया। उसने अपने आदमियों को बारूद के पलीते लाने की आज्ञा दी और कहा इन्हें दुर्ग के अन्दर फेंका जाये। इसमें से एक गोला नगर द्वार से टकराकर फटा और लौटकर गोला-बारूद के ढेर में जो शेरशाह के खड़े होने के स्थान के नीचे थी आ गिरा। जिससे भंयकर विस्फोट हुआ। शेरशाह बहुत बुरी तरह जल गया। उसे खेमे में लाया गया। उसने अपने आदमियों को आक्रमण जारी रखने की आज्ञा दी। आक्रमण सफल हुआ और शाम को दिन ढलने के वख्त कालिंजर दुर्ग पर अफगानों का अधिकार हो गया। जब दुर्गरक्षकों के कत्लेआम का समाचार शेरशाह को सुनाया गया तो "प्रसन्नता और सन्तोष के चिन्ह उसके चेहरे पर प्रकट होने लगे।" इसके तुरन्त बाद शेरशाह सूरी 22 मई, 1545 ई0 को कालिंजर दुर्ग में स्वर्ग सिधार गया।[188]

शेरशाह के आक्रमण के संदर्भ में पं0 गोरेलाल तिवारी यह साक्ष्य प्रस्तुत करते है कि शोरशाह ने कालिंजर पर इसलिएं आक्रमण किया कि इसका शत्रु वीरसिंह बुन्देला कालिंजर दुर्ग में छिपा था। इसलिए कालिंजर दुर्ग में उसकी लड़ाई बुन्देला शासकों से हुई। इस कथन की पुष्टि प्रसिद्ध इतिहासकार अहमद यादगार ने भी की है। अहमद यादगार का यह कथन सत्य नहीं प्रतीत होता । कालिंजर के संदर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य यह उपलब्ध होता है कि शेरशाह के समय पर यहां कीर्तिसिंह चंदेल का राज्य था। रानी दुर्गावती उसकी पुत्री थी। कालिंजर का किला शेरशाह की मृत्यु के पूर्व ही उनके अधिकार में आ गया। कालिंजर के युद्ध में शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह ने भी अपने पिता का साथ दिया।[189]

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार यह पता लगता है कि कुछ समय पश्चात रींवा नरेश रामचन्द्र बघेल

ने इस दुर्ग को किलेदार से खरीद लिया और कुछ समय तक बघेलों ने स्वतंत्र रूप से यहां राज्य किया और कालिंजर दुर्ग को अपने अधिकार में रखा।[190] रींवा का राजा रामचन्द्र कीर्तिसिंह का उत्तराधिकारी था। रामचन्द्र बघेल ने जिस किलेदार से कालिंजर दुर्ग प्राप्त किया था, उसका नाम अली खां था। कुछ लोग इसे बिजली खाँ भी कहते हैं। यह शेरशाह सूरी का दामाद था। बघेल राजा रामचन्द्र कीर्तिसिंह का पुत्र था अथवा वीरभान का इसमें संदेह है। इस प्रकार कालिंजर दुर्ग एक बार पुनः चंदेलों के शासन में आ गया। राजा रामचन्द्र बघेल सन् 1555 ई0 में बाधोगढ़ और कालिंजर का शासक बना।[191] अकबर ने तब तक कालिंजर पर आक्रमण नहीं किया जब तक कि उसने राजपूतों के राजवंशों पर क्रमशः अपनी नीति और कौशल से अधिकार नहीं कर लिया।[192] कालिंजर दुर्ग सन् 1569 ई0 तक रामचन्द्र बघेल के अधिकार में रहा। उसने कालिंजर दुर्ग और उसके आस-पास का बहुत सा प्रदेश अकबर को दे दिया।[193] अकबर की ओर से मजनू खां काकशाह किलेदार रहा। मजनू खां ने यहां की शासन व्यवस्था तद्युगीन परिस्थितियों के अनुसार की। इस व्यवस्था के अनुसार कालिंजर परिक्षेत्र मुगल शासन का एक भाग था। कुछ समय के लिए राजा बीरबल को कालिंजर का जागीरदार बना दिया गया किन्तु ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते कि राजा बीरबल कितने वर्षों तक कालिंजर के शासक रहे। ऐसा कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास और बीरबल दोनों ही एक दूसरे के मित्र थे।[194]

सन् 1568 ई0 में अकबर ने चित्तौड़ और रणथम्भौर के दुर्गों पर विजय प्राप्त की। इससे अकबर की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ गयी। कालिंजर का दुर्ग उत्तर भारत का दूसरा अभेद्य दुर्ग समझा जाता था। इस दुर्ग से शेरशाह, जूझकर हार गया था। ओर इस समय रीवां के राजा रामचन्द्र के अधिकार में था। यह दुर्ग अगस्त 1569 ई0 में मजनू खां काकशाह को उसके विरूद्ध रवाना कर दिया गया। रामचन्द्र चित्तौड़ और रणथम्भौर के साथ जो कुछ हुआ वह उन घटनाओं को सुन चुका था। रामचन्द्र ने इनकी सेना का डटकर मुकाबला किया मगर शैन्यशक्ति की कमी के कारण उसकी पराजय हुई । कालिंजर दुर्ग रामचन्द्र के हांथ से निकल गया। विजयी होने पर भी अकबर रामचन्द्र के शौर्य से बहुत अधिक प्रभावित हुआ और अकबर ने बघेल राजा रामचन्द्र को कालिंजर दुर्ग के बदले में इलाहाबाद के पास की जागीर दे दी और अब कालिंजर का शासन मुगलों के हांथ में आया। अकबर ने मजनूं खां को कालिंजर का दुर्ग सौंप कर उसे भी सम्मानित किया।[195] जब से कालिंजर दुर्ग पर अकबर की विजय हुई तब से लगभग 120 वर्ष तक वह मुगल साम्राज्य का अभिन्न अंग बना रहा। अकबर के शासनकाल में कालिंजर इलाहाबाद सूबे का एक भाग था।

जब यह परिक्षेत्र अकबर के शासन में आया उस समय प्रशासनिक दृष्टि से इसे दो भागों में विभाजित कर दिया गया। ये भाग कालिंजर और भाट गहोरा कहलाये। इन्हें इलाहाबाद सूबे के अन्तर्गत रखा गया। इसके पश्चात आठ प्रशासनिक क्षेत्रों का निर्माण हुआ जिन्हें तहसीलों के नाम से पुकारा गया। ये तहसीलें- औगासी, स्योढ़ा, सिमौनी, शादीपुर, रसिन, कालिंजर , मडेह, खडेह आदि हैं। इस परिक्षेत्र में अजयगढ़ का

बाहरी हिस्सा भी शामिल था। इन आठों स्थानों से मालगुजारी वसूली जाती थी। आइने अकबरी के अनुसार कालिंजर दुर्ग में प्रतिवर्ष यह आय जमा होती थी। स्योढ़ा सबसे बड़ा परिक्षेत्र था। यहां के मूल निवासी गोंड़ और चंदेल थे। इससे प्रतिवर्ष 62,62,833,1/2 दाम मालगुज़ारी प्राप्त होती थी। रसिन का क्षेत्र रघुवंशी राजपूतों के हांथ में था। रसिन 5,12,026 दाम मालगुजारी देता था। कालिंजर परिक्षेत्र इन सब में बहुत छोटा था, जिसमें कालिंजर हवेली, रसिन, बदौसा आदि शामिल थे। कहां जाता है कि सन् 1812 में कालिंजर चौबे परिवार के कब्जे में था। कालिंजर उस समय 9,70,259 दाम मालगुजारी देता था। मालगुजारी के प्रमुख अधिकारी स्योढ़ा में रहा करते थे जबकि सेना का प्रमुख मुख्यालय कालिंजर था।[196] रसिन, कालिंजर से इलाहाबाद जाने वाले मार्ग से जुड़ा था। रसिन में केवल 20 घुड़सवार और 300 पैदल सेना रहती थी। कालिंजर और शादीपुर में 700-500 तक जवानों का दस्ता हमेशा तैयार रहता था। इस समय रसिन में 20 हांथी, स्योढ़ा में 25 हांथी, कालिंजर में 7 हांथी तथा अवगासी में 10 हांथी रहा करते थे।

अकबर की मृत्यु के पश्चात शाहजहां के शासन तक यहां एक व्यापक उथल-पुथल रही। मुगल शासन का विद्रोही खान जहान जब वहां से भागा तो उसने शाही सेना से छिपकर कालिंजर में शरण ली इसी बीच वह अपने पुत्र हसन और उसके साथ शैय्यद अहमद किलेदार को कालिंजर किले में रखा[197] किन्तु उसके विरूद्ध यह संघर्ष बराबर चलता रहा जब तक कि उसकी मृत्यु नहीं हो गई। चम्पतराय ने हमीरपुर और उसके पुत्र ने महोबा में अधिकार कर लिया। बुन्देलों की शक्ति के आगे मुगलों की शक्ति कमजोर पड़ गई सन् 1691 में बुन्देलों ने अपनी राजधानी पन्ना बनाई फिर यहां से उनका बाँदा के दक्षिणी भाग एवं कालिंजर किले में कब्ज हो गया। शाही सेना यमुना के उत्तरी किनारे में ही रोक दी गई और उन्हें बुन्देलों की दया पर छोड़ दिया गया।[199]

अकबर के समय से लेकर औरंगजेब के शासनकाल तक यह दुर्ग मुगलों के हांथ में ही रहा। प्राकृतिक स्थिति के कारण एवं दुर्गमता की दृष्टि से मुगलों ने भी इसे सैनिक केन्द्र बनाया था। मुगलों के समय में इसका पुर्ननिर्माण भी कराया गया। केवल यह बात दुखदाई एवं दुर्भाग्यपूर्ण है कि मुगलों ने पुर्ननिर्माण के लिए हिन्दुओं के भवनों व मंदिरों को गिराकर उसकी सामग्री का उपयोग किया गया। सम्राट अकबर ने अपने अधिकारियों के लिए दुर्ग के ऊपर कई भवनों का निर्माण कराया । इस प्रकार सम्राट अकबर के बाद औरंगजेब के समय तक का कालिंजर दुर्ग से सम्बन्धित कोई महत्वपूर्ण इतिहास नहीं उपलब्ध होता है।

औरंगजेब के समय तक कालिंजर मुसलमानों के हांथ में रहा उसके बाद महाराज छत्रसाल ने कालिंजर पर अपना अधिकार कर लिया।[199]

17वीं शताब्दी से 1947 तक कालिंजर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-

17वीं शताब्दी के प्रारम्भ होती ही मुगल सल्तनत का पराभव प्रारम्भ हो गया था, जिसके कारण

अनेक स्थानों पर विद्रोह प्रारम्भ हो गये। बुन्देलखण्ड में यह विद्रोह वीरसिंह जू देव के नेतृत्व में अकबर के समय में ही प्रारम्भ हो गया था किन्तु एक ऐतिहासिक सत्य है कि जहॉगीर वीरसिंह जू देव के परम मित्र थे। इसलिए जब वे दतिया और ओरछा के राजा बने उस समय उन्होंने दोनों स्थानों में जहाँगीर महल का निर्माण कराया। उसके पश्चात विद्रोह का यह क्रम छत्रसाल के पिता चम्पतराय के युग में भी प्रारम्भ रहा। इस परम्परा को बुन्देलखण्ड केसरी छत्रसाल ने भी बनाये रखा।छत्रसाल का जन्म जेष्ठ शुक्ल त्रतीय भृगुवार विक्रमी संवत् 1706 में हुआ। तदानुसार वे सन् 1649 में पैदा हुए। उनका जन्म मोर पहाड़ी के सन्निकट डांग-ककर कचनए ग्राम की एक पहाड़ी कन्दरा में हुआ। लालकवि ने उनके जन्म के सम्बन्ध में छत्रप्रकाश में यह उल्लिखित किया है-

सत्रहसौ छैः को विलम्बी नाम सम्वत्सर ।
जेठ तिथि तीजसित पक्ष भृगुवार है ।।[200]

-(छत्रप्रकाश लालकवि)

छत्रसाल जब से राजसत्ता में आयें । इस समय से लेकर जीवन की अंतिम सांस तक मुगलों से संघर्ष करते रहे। उन्होंने अपने बाहुबल से अपने साम्राज्य का व्यापक विस्तार किया। जुलाई सन् 1682 ई0 में छत्रसाली दल ने कालिंजर के समीप के गॉवों और कस्बों पर धावा करके लूटमार मचा दी। कालिंजर का किलेदार मुहम्मद अफजल ने उनका दमन करने के लिए अपनी सेना लेकर युद्ध छेड़ दिया। युद्ध में दोनों ओर के सामन्त मारे गये। छत्रसाली दल कालिंजर की लूट करके महोबा होते हुए आगे की ओर चला गया। यह दल एक जगह नहीं ठहरता था।[201] छत्रसाल का युद्ध मुगल सेना के सेनापति शेर अफगन से सन् 1699 में हुआ। इस समय पन्ना की सेना का नेतृत्व छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह कर रहे थे। उन्होंने शेर अफगन का सिर काट लिया। इस प्रकार मुगल साम्राज्य का एक बड़ा भाग छत्रसाल के अधिकार में आ गया। मुगल बादशाह ने इस युद्ध का बदला लेने के लिए इटावा के फौजदार खैरअन्देश खां ने कालिंजर पर आक्रमण कर दिया किन्तु वहां उसे कोई सफलता नहीं मिली और वह कालिंजर पर अधिकार करने में पूर्णतः असफल रहा। इस युद्ध में उसे पूर्ण छति उठा कर वापिस लौटना पड़ा। इसके पश्चात वह धामोनी गया। यह घटना सन् 1701 की है।1 जनवरी सन् 1707 में औरंगजेब और छत्रसाल के मध्य एक संधि हुई जिसमें औंरगजेब ने छत्रसाल को राजा की उपाधि प्रदान की और उसके पुत्र हृदयशाह पद्मसिंह को चार हजार का मनसब प्रदान किया।[202]

ओरछा के राजा चम्पराय का पुत्र छत्रसाल उत्तरी भारत में औरंगजेब का बहुत पराक्रमी शत्रु था। जब 1661 ई0 में शाही सेना के अधिक शक्तिशाली होने के कारण चम्पतराय को मजबूर होकर आत्मसमर्पण करना पड़ा उस समय छत्रसाल ने कुछ समय तक मुगल सम्राट औरंगजेब के यहां नौकरी शुरू की थी। जब छत्रसाल की मुलाकात शिवाजी से हुई तो शिवाजी ने छत्रसाल को यह सलाह दी कि वह बुन्देलखण्ड जाकर

मुगलों के विरूद्ध विद्रोह भड़काये। शिवाजी का कथन मानकर छत्रसाल बुन्देलखण्ड आ गये। हिन्दू जनता ने उन्हें राजा के रूप में स्वीकार किया। उसने धामोनी तथा सिरौज पर आक्रमण करके मुगल सेनाओं को परास्त किया। वह आस-पास के मुगल साम्राज्य के क्षेत्रों से "चौथ" भी वसूल करने लगा। कुछ ही वर्षो में छत्रसाल ने कालिंजर और धामोनी पर अधिकार कर लिया। समस्त मालवा को ध्वंस कर दिया। उसने इतनी महान सफलता प्राप्त कर ली कि 1705 में विवश होकर औंरगजेब को छत्रसाल से संधि करनी पड़ी। छत्रसाल को 4,000 (चार हजार) का मनसबदार नियुक्त किया गया। दक्षिण की सेना में एक पद भी दिया गया। 1707 ई0 में सम्राट औरंगजेब की मृत्यु होने के पश्चात छत्रसाल पूर्ण स्वतंत्र हो गये, उन्होंने स्वतंत्र सत्ता स्थापित की।[203] औरंगजेब के समय तक कालिंजर मुसलमानों के हांथ में रहा उसके बाद महाराजा छत्रसाल ने कालिंजर पर अपना अधिकार कर लिया।

कालिंजर दुर्ग पर छत्रसाल का अधिकार और स्थायित्व-

भौगोलिक और सैनिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड क्षेत्र के नियन्त्रण को स्थायित्व प्रदान करने के लिए कालिंजर दुर्ग की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समस्त उत्तर भारत के दुर्गों में कालिंजर दुर्ग सबसे अधिक सुदृढ़ माना जाता है। इसी दुर्ग को जीतने की चेष्टा में शेरशाह सूरी ने अपने प्राण गवाँ दिये थे। छत्रसाल जैसी सूझ-बूझ वाला सैनिक सामरिक दृष्टि से कालिंजर दुर्ग के महत्व को समझता था, इसलिए उन्होंने सबसे पहले कालिंजर को ही मुगलों के हांथ से छीनकर अपने अधिकार में कर लिया था। छत्रसाल की इस सफलता के कारण विद्रोहियों की सैनिक गतिविधियों को उत्तर बुन्देलखण्ड में बहुत अधिक निरापद बना दिया था।[204]

छत्रसाल सॅडवा-वाजने से व्याह करके मऊ में आ गए। यहाँ पर चार महीने बरसात में विश्राम करके विजयदशमी के दिन अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना लेकर कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। कालिंजर दुर्ग इस समय मुसलमानों के अधिकार में था, यहां पर मुगलों की एक बड़ी सेना रहती थी। मुगलों की ओर से यहाँ का किलेदार करमइलाही था। छत्रसाल की सेना ने दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। छत्रसाल की ओर से सेनापति बल दिवान थे। कालिंजर दुर्ग के किलेदार करम इलाही के आदेशानुसार किले से छत्रसाल के वीर सैनिकों पर लगातार गोलियाँ चलती रहीं, जिससे बुन्देला सेना की बहुत हानि हुई किन्तु वीर बुन्देले अपने लक्ष्यपूर्ति के लिए बहादुरी से युद्ध करते रहे। इस युद्ध में अनेक बुन्देला सैनिकों को वीरगति प्राप्त हुई परन्तु फिर भी वह किले के चारों ओर से इस प्रकार घेरा डाले रहे कि किले के अन्दर की सेना को खाने-पीने तथा अन्य किसी प्रकार की रसद का सामान न पहुंच सके। किले के अन्दर की सेना लगातार 18 दिन तक गोले चलाती रही और जब दुर्ग के अन्दर की भोजन सामाग्री समाप्त हो गई तब मुगल सेना को मजबूरन दुर्ग के बाहर आना पड़ा जिस द्वार से मुस्लिम सेना बाहर आई उसी द्वार से बुंदेला सेना ने अन्दर जाना प्रारम्भ कर दिया। यह युद्ध बड़ा भयंकर हुआ। इस युद्ध में नन्दन छीपी, कृपाराय चंदेल बाघराज पड़िहारे आदि

वीरगति को प्राप्त हुए और 27 सरदार घायल हुए परन्तु बुन्देलों की वीरता, धैर्य और साहस के बल से कालिंजर दुर्ग पर महाराजा छत्रसाल की विजय हुई। महाराजा छत्रसाल ने अपनी तरफ से कालिंजर दुर्ग की रक्षा हेतु मान्धाता चौबे को अधिकारी नियुक्त किया और दुर्ग की रक्षा के लिए कुछ सेना भी यहां छोड़ गये। इसके पश्चात् महाराजा छत्रसाल पन्ना होते हुए मऊ आ गए। चौबे वंश के लोग कालिंजर में बहुत दिनों तक रहे और आज भी कालिंजर में उनके द्वारा किये गये कार्यों के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। कालिंजर विजय से उत्साहित होकर छत्रसाल ने ग्वालियर, कालपी, ओरछा आदि राज्यों पर आक्रमण कर अपनी अधीनता स्वीकार कराई।[205]

मऊ के समीप एक जंगल में छत्रसाल को बाबा प्राणनाथ मिले। बाबा प्राणनाथ जामनगर के क्षेमजी नामक एक धनी व्यक्ति के पुत्र थे। उन्होंने घरबार छोड़कर वैराग्य ले लिया था। यह एक पहुंचे हुए योगी थे। छत्रसाल ने इन्हें अपना दीक्षा-गुरू बनाया। छत्रसाल को बाबा प्राणनाथ ने आशीर्वाद दिया और वे सदा छत्रसाल को धर्म और देश रक्षा के कार्य में सलाह और सहायता देते रहें। बाबा प्राणनाथ ने छत्रसाल से कहा था-

छत्ता तेरे राज में धक-धक धरती होय।
जित-जित घोड़ा मुख करे तित-तित फत्ते होय।।

कहते हैं कि जिस तरफ राजा छत्रसाल का घोड़ा मुख करता था। उसी तरफ उसकी विजय श्री का झण्डा फहर जाता था।

प्रसिद्ध इतिहासकार महेन्द्र प्रताप सिंह ने छत्रसाल की कालिंजर विजय का वर्णन इस प्रकार किया है कि सन् 1677-1678 ई0 के आस-पास ही अचानक आक्रमण करके दिलेर खाँ रूहिल्ला के भतीजे मुराद खाँ के हांथों से कालिंजर के साथ-साथ आधुनिक बाँदा, सतना और इलाहाबाद जिले का जमुना तट तक फैला प्रदेश बुन्देलों द्वारा पददलित कर दिया गया था। मुराद खाँ कालिंजर सरकार का फौजदार और शासक था। इसी ने कालिंजर के मुख्य द्वार को तुड़वाकर सन् 1673-74 ई0 में उसका नाम आलम दरवाजा (आलमगीर के नाम पर) रखा था।[207] इस समय इलाहाबाद का सूबेदार औंरगजेब के धाय भाई बहादुर खाँ, खानजहाँ कोकलताश और कालिंजर का दुर्गपति बहादुर खाँ रूहिल्ला (शाहजहाँ काल) का पुत्र एवं दिलेर खाँ रूहिल्ला खाँ भतीजा मुराद खाँ था अतः गर्व में फूला हुआ मुराद खाँ स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। कि छत्रसाल कभी कालिंजर जीतने का दुस्साहस कर सकेंगा छत्रसाल के नेतृत्व में अचानक बुन्देलों की सेना वहां प्रकट हो गई एवं युद्ध में असाधारण वीरता के बावजूद मुराद खाँ खेत रहा। इस आक्रमण में कालिंजर जैसे दुर्ग के अतिरिक्त बुन्देलखण्ड का समस्त उत्तर-पूर्वी कोने का मुगल फाटक टूट गया और सिंह की माँद पुनः सिंह के हाथ में आ गई।[208] फिर छत्रसाल ने सन् 1686-1687 में नौगाँव छावनी के निकटवर्ती गाँव के मान्धाता चौबे नामक जुझौतिया ब्राह्मण को कालिंजर का दुर्गपति (किलेदार) नियुक्त

किया था। मान्धाता चौबे के वंशजों से अंग्रेजों ने कालिंजर का दुर्ग छीनकर चौबे वशं को कालिंजर से पूर्व की ओर चित्रकूट के निकट जागीर प्रदान की थी। चौबे वंश के कागजातों में उनके कालिंजर का किलेदार बनने का प्रमाण-पत्र सुरक्षित है। चौबे जागीरदारों के प्राप्त लेख से यह निश्चित करना भूल होगी कि छत्रसाल ने संवत् 1743 में ही इस दुर्ग को जीता था।

बुन्देलखण्ड के कालिंजर दुर्ग[209] सहित समस्त दुर्ग छत्रसाल के हांथ में आ चुके थे। अतः यहाँ की स्थिति कहीं ज्यादा विषम हो गई थी। छत्रसाल ने एक कुशल खिलाड़ी की तरह थका-थकाकर बादशाही साम्राज्य में भुमियावट का शिकार खेला था। कालिंजर दुर्ग की प्रशंसा करते हुए श्री लक्ष्मीप्रसाद मिश्र का कथन है कि सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कालिंजर दुर्ग सन् 1691 में छत्रसाल के अधिकार में आ गया था। जिसे उन्होंने अपने किलेदार मान्धाता चौबे को सौंप दिया था। छत्रसाल के पूर्व औरंगजेब के समय तक यह दुर्ग मुगलों के अधिकार में रहा।[210]

छत्रसाल के जीवन के अंतिम काल के समय में इलाहाबाद और कड़ा का सूबेदार मुहम्मद बंगस ने सन् 1728 के लगभग बुन्देलखण्ड में आक्रमण किया। इस समय छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह ने छत्रसाल से विद्रोह कर दिया था। इसलिए मजबूरन उसे वाजीराव पेशवा को मदद के लिए बुलाना पड़ा। बाजीराव पेशवा के सहयोग से उसने मुहम्मद बंगस को परास्त, किया राज्य का कुछ भाग बाजीराव पेशवा को पुरस्कार स्वरूप भी दिया तथा हुजूरिन रानी से उत्पन्न अपनी पुत्री मस्तानी को भी बाजीराव को सौंप दिया।

वीर छत्रसाल ने जीवन पर्यन्त मुगलों से संघर्ष किया और अपने जीवन में पर्याप्त यश भी प्राप्त किया। बुन्देलखण्ड केसरी छत्रसाल की मृत्यु 12मई सन् 1731 ई0 के दिन हुई। बुन्देलों ने एक ऐसा वीर खो दिया, जिसकी कमी कभी पूरी नहीं हुई बल्कि उनकी कमी हमेशा खटकती रही। महाराज छत्रसाल ने अपनी मृत्यु के पूर्व ही अपने राज्य का विभाजन अपने पुत्रों के मध्य तीन भागों में कर दिया था।

प्रथम भाग- यह भाग महाराजा छत्रसाल ने अपने पुत्र हृदयशाह को पन्ना, मऊ, गढ़कोटा, कालिंजर, शाहगढ़ तथा इनके समीपवर्ती क्षेत्र का राज्य सौंप दिया। यह भाग प्रतिवर्ष 42 लाख रूपये का राजस्व प्राप्त करता था।

द्वितीय भाग- यह भाग महाराज छत्रसाल ने अपने पुत्र जगतराज को दिया। इसमें जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, विजावर, सरीला, भूरागढ़ व बाँदा के क्षेत्र सम्मिलित थे। इस भाग की सालाना आय 36 लाख रूपये थी।

तृतीय भाग- महाराज छत्रसाल ने अपने राज्य का तीसरा भाग पेशवा बाजीराव को दिया। यह छत्रसाल की मृत्यु के पूर्व पन्ना गये थे, इसलिए यह भाग इन्हीं को प्रदान कर दिया। इस भाग की आमदनी 33 लाख रूपये वार्षिक थी। पेशवा के हिस्से में कालपी, जालौन, हटा, झाँसी, हृदयनगर, गुना, गुरसराय, सिरौंज और सागर आये। इसके अतिरिक्त भी छोटी-छोटी जागीरें दी गई थीं।[211]

ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार कालिंजर परिक्षेत्र राजा हृदयशाह को मिला था। महाराज हृदयशाह ने 8 वर्ष तक यहाँ पर शासन किया था। इनका स्वर्गवास सन् 1739 ई0 में हो गया। इनके निधन के पश्चात् इनके पुत्र सभासिंह राज्य के उत्तराधिकारी हुए। यह अधिक समय तक राज्य का सुख नहीं भोग सकें। इनकी मृत्यु सन् 1752 ई0 में हो गई। सभासिंह के समय में हीरे की खदानें खोदी जाने लगी। थीं। इन्होंने हीरे की खाने खुदवाकर राज्य की आय बढ़ाई। सभासिंह के अमानसिंह, हिन्दूपत और खेत सिंह तीन पुत्र थे। इन्होंने अपना उत्तराधिकारी हिन्दूपत को न बनाकर अमान सिंह को बनाया। सभासिंह अमान सिंह से बहुत खुश रहते थे। क्योंकि ये बहुत योग्य एवं बुद्धिमान थे। प्रजा भी अमान सिंह से बहुत अधिक प्रसन्न रहती थी।इनकी उदारता और दानवीरता बुन्देलखण्ड में विख्यात है। सन् 1758 ई0 में राज्य के लोभ से हिन्दूपत ने अमान सिंह को मरवा डाला और स्वयं ही राजा बन गया। हिन्दूपत के तीन पुत्र थे। अनिरूद्ध सिंह धौकल सिंह और सरमेद सिंह। सरमेद सिंह सबसे बड़े थे, हिन्दूपत इन्हें उत्तराधिकारी नहीं बनाना चाहते थे, उन्होने अनिरुद्ध सिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाय। बेनी हजूरी को दीवान और कामयजी चौबे को कालिंजर का शासक नियुक्त कर दिया। हिन्दूपत का सन् 1777 ई0 में देहान्त हुआ। हिन्दूपत के पश्चात् अनिरूद्ध सिंह पन्ना के राजा हुए। इनके राज्य का कार्य बेनी हजूरी और कायमजी चौबे ही करते थे। कामयजी चौबे का वास्तविक नाम खेमराज चौबे था कायमजी चौबे और बेनी हजूरी से तकरार हो गई।अनिरूद्ध सिंह कायम जी चौबे को बहुत मानते थे, इसलिए कायमजी चौबे ने सरमेद सिंह को उकसाया। बेनी हजूरी ने भी यह मौका हांथ से नहीं जाने दिया और वह स्वतः मैहर की जागीर पर अधिकार कर बैठा। अनिरूद्ध सिंह की मृत्यु सन् 1779 ई0 में हुई। सरमेद सिंह ने कायमजी चौबे के कहने पर जैतपुर जाकर खुमान सिंह से सहायता मांगी और खुमान सिंह के सेनापति अर्जुन सिंह पँवार ने छतरपुर के निकट गठेवरा के मैदान में अनिरूद्ध सिंह को हराया। इस युद्ध में बेनी हजूरी मारा गया, इधर अनिरूद्ध सिंह का भी देहांत हो गया। सरमेद सिंह नाम मात्र के लिए सिंहासन पर बैठा। इन्होंने चार वर्ष तक राज्य किया। इसके पश्चात धौकल सिंह 1785 ई0 में राजा हुए 13 वर्ष तक शासन किया। बुन्देलखण्ड में आपसी झगड़ों के कारण राज-व्यवस्था बिगड़ती गई। इस समय डाकुओं का आतंक बढ़ा। कायमजी चौबे के पश्वात कालिंजर का दुर्ग उनके लड़के रामकिशन चौबे के अधिकार में आ गया। पन्ना में जब छत्रसाल के वंश के सरमेद सिंह राजा थे, उस समय कालिंजर दुर्ग के किलेदार रामकिशन चौबे थे। कुछ समय बाद मौके का फायदा उठाकर वह यहां के स्वतत्र शासक बन गये थे। लगभग 10 वर्ष तक इन्होंने स्वतंत्र रूप से कालिंजर पर शासन किया। धौकल सिंह की मृत्यु 1798 में कालिंजर में हुई। इसके बाद कालिंजर में उनके पुत्र किशोर सिंह 1798 ई0 में राजा हुए। इनके समय में पन्ना रियासत के कई जागीदार स्वतंत्र राजा बन गए। किशोर सिंह को जानवर पालने और शिकार का बड़ा शौक था। जब लार्ड डलहौजी इनसे मिलने आए तब किशोर सिंह अपने साथ दो शेर लेकर उनसे मिलने गये। इनको देखकर लार्ड डलहौजी डरकर इनसे मिले बगैर चले गए।

किशोर सिंह के पश्चात् हरिवंशराय गद्दी पर बैठे। इनके राज्य का कार्यकाल 1840 से प्रारम्भ होता है। इन्होंने 9 वर्ष तक राज्य किया। इनके कोई पुत्र न होने के कारण इनके छोटे भाई नृपतिसिंह राजगद्दी पर बैठे। इनका राज्यकाल 1849 से प्रारम्भ होता है। जब 1857 की क्रान्ति हुई उस समय पन्ना के राजा यही थे और इन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया।[212]

अलीबहादुर ने रीवॉ-नरेश को हरा दिया किन्तु कालिंजर के चौबे ने अलीबहादुर की अधीनता न स्वीकार की । कालिंजर का किला कायमजी चौबे के पुत्र रामकिशन चौबे के अधिकार में था। यह चौबे वास्तव में जागीदार था परन्तु अब पन्ना राज्य से स्वंतत्र हो गया था और अलीबहादुर का आधिपत्य भी स्वीकार नही करता था। अलीबहादुर ने हिम्मत बहादुर गोसाई के सहयोग से अपने राज्य का विस्तार किया। नवाब अलीबहादुर प्रथम हिम्मत बहादुर गोसाई के साथ सन् 1791 में पूना से बाँदा आया था। वह यहां का नवाब बन गया। अब कालिंजर को वश में करने के लिए अलीबहादुर ने हिम्मत बहादुर से सलाह ली। कालिंजर का किला ऊँचे पहाड़ पर है और बहुत मजबूत बना हुआ है। इसको पाने के लिए हिम्मत बहादुर ने बड़ी भारी तैयारी की। सन् 1802 ई0 में पूरी तैयारी के साथ उसने कालिंजर दुर्ग पर चढ़ाई कर दी किन्तु कालिंजर दुर्ग दुर्भेद्य होने से वह किसी भी प्रकार से हिम्मत बहादुर के अधिकार में न आ सका। हिम्मत बहादुर और अली बहादुर दोनों ने अपने प्रयत्न नहीं छोड़े तथा दुर्ग पाने के लिए ये लोग निरन्तर लड़ते ही रहे। जब इन्हें अहसास हुआ कि दुर्ग को पाने के लिए कई वर्ष लग जायेंगे तब दोनों ने दुर्ग के पास मैदान में रहने के लिए मकान बनवा लिए। यहाँ से दोनो दो वर्ष तक बराबर लड़ते रहे परन्तु कालिंजर का किला इनके हांथ में न आ सका। इस युद्ध के दौरान ही दुर्भाग्यवश 1802 ई0 में अलीबहादुर की मृत्यु कालिजंर में हो गई। अलीबहादुर के मरने पर भी हिम्मत बहादुर ने कालिंजर पाने का प्रयत्न नहीं छोड़ा।

अलीबहादुर के दो पुत्र थे, शमशेरबहादुर और ज़ुल्फिकार अली। शमशेरबहादुर बड़ा पुत्र था। परन्तु जब पिता की मृत्यु हुई तब शमशेरबहादुर पूना में था। अलीबहादुर के चाचा गनीबहादुर और हिम्मतबहादुर ने मिलकर ज़ुल्फिकार अली को अलीबहादुर की जगह नवाब बना दिया। यह समाचार शमशेर बहादुर को पूना में मिला । पिता की मृत्यु और गनीबहादुर की साजिश का समाचार पाते ही शमशेर बहादुर पेशवा से सहायता लेकर कालिंजर पहुंच गया। पेशवा भी गनीबहादुर से नाराज था। इसी वजह से पेशवा ने शमशेरबहादुर को सहायता देना उचित समझा। शमशेरबहादुर ने मराठों की सेना की सहायता से अलीबहादुर (पिता) का राज्य अपने अधिकार में कर लिया और कालिंजर पहुंचकर गनीबहादुर को पकड़ लिया। उसके बाद उसे अजयगढ़ दुर्ग में कैद कर दिया। इस दुर्ग में ही शमशेरबहादुर ने गनीबहादुर को जहर दिलवा कर मार डाला। हिम्मत बहादुर को जब यह पता लगा कि गनीबहादुर को शमशेर बहादुर ने मरवा डाला है। तो वह शमशेर बहादुर से नाराज हो गया तथा उसे अपना शत्रु मानने लगा। जब शमशेर बहादुर ने देखा कि हिम्मतबहादुर ने सहायता देना बन्द कर दिया है तब उसने कालिंजर दुर्ग को प्राप्त करने का

प्रयास छोड़ दिया और वह बाँदा वापिस आ गया।[213]

देश में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। इसी समय कालिंजर के किलेदार रामकिशन चौबे के पुत्र (बलदेव, दरियाव सिंह, भरतजू, गोविन्ददास, गंगाधर, नवलकिशोर, सालिगराम और छत्रसाल) कालिंजर दुर्ग में ही रहते थे। बलदेव की मृत्यु हो जाने के पश्चात दरियाव सिंह किलेदारी करते थे। इन्होंने अंग्रेजो से संधि करनी चाही और बुन्देले राजाओं के समान हक मांगे किन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सका। अंग्रेज लोग इस क्षेत्र में शान्ति बनाये रखना चाहते थे। इसलिए चौबे परिवार की तरफ से दरियावसिंह को सनद दी गई। इसके अलावा भी इन्होंने कुछ और ग्रामों का दावा किया पर वे सब ग्राम अजयगढ़ के किलेदार के पास थे, इससे न मिल सके।

अंग्रेजों की इस सन्धि से दरियाव सिंह प्रसन्न नहीं थे तथा गुप्त रूप से अंग्रेजों से पीछा छुड़ाने का प्रयास करते रहे। वे चाहते थे कि अंग्रेजों के विरूद्ध इस क्षेत्र में राजविद्रोह उत्पन्न हो जाये और यह गुप्त रूप से राजविद्रोहियों को सहारा दिया करते थे। अंग्रेज समझ गये थे कि दरियाव सिंह स्वतंत्र विचार धारा का व्यक्ति है और अवसर पाते ही स्वतंत्र होने का प्रयत्न करेगा। इसलिए अंग्रेजों ने कालिंजर दुर्ग को दरियाव सिंह से अपने अधिकार में लेना ही उचित समझा परन्तु दरियाव सिंह किसी भी स्थिति में कालिंजर दुर्ग अंग्रेजों को देना नहीं चाहते थे। इससे अंग्रेज रूष्ट हो गये तथा युद्ध अनिवार्य हो गया। 16,18 जनवरी सन् 1812 ई0 में कर्नल मार्टिण्डल के नेतृत्व में अंग्रेजों ने इस दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। लगभग आधा घण्टे के युद्ध में कई सैनिक एवं अधिकारी घायल हुए तथा कुछ सैनिक एवं अधिकारी मारे गये। युद्ध का परिणाम यह निकला कि चौबे परिवार के लोगों का साहस एवं धैर्य छूट गया और वह अंग्रेजों से संधि करने के लिए तैयार हो गये। अगर वह कुछ देर और धैर्य एवं वीरता के साथ अंग्रेजों से युद्ध करते रहते तो शायद अंग्रेज दुर्ग छोड़कर लौट जाते। इसी समय दरियाव सिंह और अंग्रेजों में इस बात को लेकर सहमति (संधि) हुई कि यदि इतनी ही आमदनी वाला दूसरा क्षेत्र दे दिया जाये तो वह कालिंजर दुर्ग अंग्रेजों को सौंप सकते हैं। इस समय चौबे परिवार में घरेलू झगड़ें मचे हुए थे। इससे परिवार के प्रत्येक व्यक्ति तथा इसी परिवार के वकील राव गोपाललाल को भी अलग-अलग सनदें दे दी।

इस बँटवारे के समय ही गोविन्ददास एवं गंगाधर का स्वर्गवास हो गया। इसलिए इनकी ओर से पोकरप्रसाद (पुष्करप्रसाद) और गयाप्रसाद उपस्थित हुए । ऐसे ही दो हिस्सों पर छत्रसाल की माँ एवं भरत जू की स्त्री इन दो विधवाओं का अधिकार था। इन दोनों ने अपने हिस्से में पोकरप्रसाद और गयाप्रसाद के हिस्से क्रमानुसार मिला लिए पर बाद में नवलकिशोर और भरत जू की विधवा में झगड़ा हो गया। 1817 ई0 में इन दोनों के हिस्से अलग-अलग कर दिए गए और दोनों को सनदें अलग-अलग दे दी गई।

भरत जू की विधवा का स्वर्गवास 1836 ई0 में हुआ। इस वंश की प्रचलित परम्परा के अनुसार इसका हिस्सा और छत्रसाल की मां "ओरी" का हिस्सा भी दूसरे-दूसरे हिस्से में मिला दिये गये। इसके बाद पुरवा

जागीर का मालिक पोकरप्रसाद का पुत्र बिसेन प्रसाद (विष्णु प्रसाद) हुआ। यह सन् 1855 ई0 में एक कत्ल के मामले में शामिल था। इसलिए इसकी जागीर जब्त कर ली गई। छत्रसाल की मृत्यु के बाद जगन्नाथ उत्तराधिकारी हुआ। सन् 1843 ई0 में इसका प्राणान्त हो गया। इसकी विधवा नन्हीं दुलैया जागीर की मालकिन हुई। इसके कोई पुत्र नहीं था। अतः इसने वंशगोपाल को गोद लेना चाहा, परन्तु हिस्सेदारों ने इसका विरोध किया और कहा कि यह रामकिशन चौबे वंश में से नहीं है। अंग्रेजों ने चौबे वंश की प्रथा के अनुसार उसका गोद लेना उचित समझा किन्तु हुक्म होने के पूर्व ही वंशगोपाल का निधन हो गया। जनवरी सन् 1864 ई0 में नन्ही दुलैया भी स्वर्गवासी हो गई। नन्हीं दुलैया ने मरने के पूर्व ही वंशगोपाल के पुत्र बिहारी लाल को गोद लेने की वसीयत की थी किन्तु ऐसा गोद लेना सनद की शर्तों के विरूद्ध था, इसलिए इसे नामन्जूर कर दिया गया और छत्रसाल का हिस्सा भी दूसरे भागों में मिला दिया गया। अब रामकिशन चौबे की जागीर के 9 हिस्से रह गये, जिनमें से चार पालदेव, तरॉव, पहरा और मसौदा चौबे वंश के अधिकार में हैं तथा पांचवी जागीर कामता-रजोला है। यह वकीलराव गोपाललाल वकील के वंशजों के अधिकार में थी।

पथरा पालदेव जागीर चित्रकूट के निकट गुप्तगोदावरी के समीप है। यह जागीर चौबे दरियाव सिंह को 1812 ई0 में मिली थी। दरियाव सिंह के मरने के बाद उसका पुत्र नाथूराम उत्तराधिकारी बना। फिर उसका पुत्र राजाराम 1840 ई0 में जागीर का मालिक हुआ मगर इसके कोई सन्तान न होने के कारण इसके मरने पर इसके चाचा शिवप्रसाद को ही जागीर दे दी गई। इसकी मृत्यु 1865 ई0 में हुई। इसका पुत्र मुकुंद सिंह जागीर का मालिक हुआ। यह सन्तानहीन था। इसकी मृत्यु 1874 ई0 में हुई। निः सन्तान होने के कारण इसका भाई अनिरूद्ध सिंह गद्दी पर बैठा और इसके पश्चात जगतराज उत्तराधिकारी बना। इनके दो पुत्र गोविन्दप्रसाद और दरियावसिंह थे। किन्तु गोविन्द प्रसाद का देहान्त हो गया। यहां के जागीरदार की उपाधि रावबहादुर है। उस समय जागीर की वार्षिक आय 26000 हजार रूपये थी।[214]

चौबे वंश के पतन के कालिंजर के संदर्भ में कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हो पाता । इधर अंग्रेजों की शक्ति निरन्तर बढ़ रही थी। कालिंजर परिक्षेत्र की जनता अंग्रेजों से काफी त्रस्त थी। उसका मूल कारण यह था कि अंग्रेजों ने जनता का शोषण करने के लिए मालगुजारियाँ ऊंची दरों में उठाई थी। इसीलिए जनता अंग्रेजों से नाराज थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने केवल अपने आर्थिक हितों को ध्यान में रखा था। इसलिए जानबेली, इरिस्किन, वाउचोप , स्कॉट वेयरिंग वालपी आदि सभी ने बाँदा, कालिंजर परिक्षेत्र के सभी स्थानों में मालगुजारी बन्दोबस्त की तरफ सर्वाधिक ध्यान दिया, जिसके परिणामस्वरूप सन् 1804-1805 से 1820-1821 तक छः मालगुजारी व्यवस्थाएं या बन्दोबस्त लागू कर दिए गए। इनका मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक वसूली कर अंग्रेजी कम्पनी के कोषागार को भरना था। अंग्रेज अधिकारियों में मालगुजारी बढ़ाने और उसकी वसूली करने की होड़ लग गई। जो मालगुजारी सन् 1806-1807 में 13,75,530 रू0

थी वह क्रमशः सन् 1814-15 में 14, 94, 908 रुपये सन् 1815-16 में 19,21,226 रू0 और सन् 1819-20 में बढ़कर 20,36,508, हो गई।[215] यह वृद्धि निरन्तर बढ़ती गई। निरन्तर पड़ते अकालो, सूखों और कांस के प्रसार से उपजाऊ भूमि के नष्ट हो जाने की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया और सभी रैय्यत पर बहुत अधिक अत्याचार कर उसका जीवन जीना दूभर कर दिया गया।

सन् 1809 से सन् 1830 के बीच अकालों, सूखों, अत्यधिक वर्षा और तूफानों -बावंडरों का क्रम-सा चलता रहा। इसी समय खेतों में कांस की असाधारण वृद्धि हो गई जिससे उपजाऊ भूमि नष्ट हो गई। इसी कारण कालिंजर परिक्षेत्र की आम जनता दिवालिया हो गई और देहात उजड़ने लगे थे।[216] जनता मालगुजारी की किस्तों का भुगतान करने में असमर्थ हो गई। सन् 1829-30 में बकाया मालगुजारी की राशि वसूली के लिए 4,19,076 रू0 ही रह गई।[217] आर्थिक दशा से परेशान जनता विद्रोह करना चाहती थी। इस समय 588 जमीदारों ने अपनी जमीदारियाँ छोड़ दी।[218] सन् 1833-34 में अकाल की स्थिति आ गई। मालगुजार भी अपना कर्ज नहीं चुका सके। इसलिए उनकी खानदानी जमीनें भी चली गई। ये जमीनें सूदखोंरों के पास चली गई। इस परिक्षेत्र की जनता पढ़ी लिखी नहीं थी। इसलिए उसे साहूकारों के शोषण का शिकार होना पड़ा।

जहां आर्थिक स्थिति का पतन हुआ, वहीं उद्योग-धन्धें भी उजड़े। पहले कालिंजर परिक्षेत्र से अच्छे किस्म की रूई बाहर जाती थी, जो अच्छे किस्म के लिए प्रसिद्ध थी। सन् 1829-30 में अमेरिकन रूई बाजार में आ जाने से यहाँ का कई उद्योग चरमरा गया।[219] सन् 1842 के आस-पास यहां उत्पन्न होने वाले कपास का औसत 24-25 प्रतिशत रह गया।[220] मांग के अभाव में कपास के दाम काफी गिरे, जिसकी वजह से कपास की खेती समाप्त हो गई तथा कपड़ा उद्योग भी नष्ट हो गया। जुलाहे, रंगरेज और छीपियों में बेकारी फैल गई। जो लोग रियासतों में जागीरदारों के यहां सिपाहीदारी करते थे वे भी बेरोजगार हो गये। सन् 1804 और 1817-18 में अंग्रेजों और देशी राजाओं से जो सन्धियाँ हुईं, उनमें सैनिकों की संख्या सीमित कर दी गई इसलिए बहुत से सैनिक बेरोजगार हो गये। बेरोजगार सैनिक अपनी जीविका मुश्किल से चला पाते थे। जब व्यक्तियों का जीवन यापन मुश्किल हो गया तो व्यक्ति रोजगार की तलाश में बाहर पलायन करने लगे। सन् 1853 तक कालिंजर परिक्षेत्र की आबादी बहुत कम हो गई।

इसी समय भारतवर्ष में ईसाइयों का आगमन हुआ। जब भारतीय शिक्षा व्यवस्था को अंग्रेजों द्वारा कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया तो हिन्दू और मुसलमान दोनों ही आन्दोलित हो उठे। सन् 1850 में इस परिक्षेत्र में 125 उर्दू पाठशालॉए थी। इन पाठशालाओं में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत ,अरबी, फारसी आदि पढ़ाई जाती थी। इन लोगों ने जो स्कूल खोले उनका उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करना था। 1856 में अंग्रेजी स्कूल खोले गये। बाँदा के निकटवर्ती कस्बों कालिंजर, तिंदवारी, स्योढ़ा, तरौहा, कमासिन आदि में ईसाई धर्म प्रचारकों की गतिविधियाँ बढ़नें लगीं। बाँदा के तत्कालीन कलेक्टर एफ0 ओ0 मेन ने चर्च

और मिशनरियों को लगातार प्रोत्साहन मिल रहा था जिससे जनता में उग्र रवैया और उत्तेजना फैल रही थी।[221] 1857 की क्रंाति (सिपाही विद्रोह) का कारण धार्मिक पहलू भी था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 रमेशचन्द्र मजूमदार का कथन है कि " निःसंदेह इन शिकायतों में उनको सबसे गम्भीर शिकायत थी, पुराने समय से चले आए धार्मिक रीति-रिवाजों और सामाजिक तौर-तरीकों एवं परम्पराओं में हस्तक्षेप किसी न किसी तरह उनमें से बहुतों के मन में यही गहरी धारणा जड़ पकड़ गई थी कि अंग्रजों का समझा-बूझा उद्देश्य उन्हें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तरीकों से ईसाई धर्म में दीक्षित करना है।[222]

कालिंजर परिक्षेत्र में भी अंग्रेजों के विरूद्ध विप्लव की चिंगारी ने ज्वाला का रूप लेना प्रारम्भ कर दिया था। इधर इस बात की अफवाह उड़ी की अंग्रेज अधिकारी भारतीय सैनिकों को सुअर और गाय की चर्बी लगे कारतूस प्रदान करते है। यह अफवाह पूरी तरह सच थी। इससे आन्दोलित होकर जनवरी 1857 में कलकत्ता से 5 मील उत्तर, दमदम की छावनी में एक निम्न जाति के खलासी और ब्राह्मण सैनिक की आपसी बातचीत और तानेबाजी से शुरू हुई। शीघ्र ही 15 मील दूर बैकरपुर और बरैहामपुर की छावनी तक यह अफवाहें जा पहुंची ।[223] इससे वहां की 34 वीं नेटिव इन्फेंट्री के हिन्दुस्तानी सिपाही इन अफवाहों से भड़क उठे और उन्होंने सरकारी इमारतों एवं अंग्रेज अधिकारियों के बंगलों में आग लगा दी। इस बात का प्रभाव उत्तर प्रदेश में भी पड़ा। 34 वीं नेटिव इन्फेंट्री मेरठ छावनी का एक ब्राह्मण सिपाही मंगल पाण्डे भड़क उठा। 29 मार्च 1857 को उसने अपने साथियों को धर्म का वास्ता दिया और अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। उसने लेफ्टिनेंट बफ के ऊपर गोली चला दी मगर निशाना चूकने पर उसने तलवार से बार किया तभी अंग्रेज अधिकारियों ने उसे घेर लिया। स्वयं को निस्सहाय पाकर मंगल पाण्डे ने अपने ही ऊपर गोली चला ली किन्तु वह बच गया। उस पर मुकदमा चला। उसे मृत्यु दण्ड की सजा दी गई और उसकी 34 वीं नेटिव इन्फेंट्री सेना को भंग कर दिया गया।[224]

मंगल पाण्डे की कुर्बानी व्यर्थ नहीं गई। बैरकपुर से 1857 के विप्लव की जो चिनगारी उड़ी उसने उत्तरी भारत में शीघ्र ही दावाग्नि का वह भयंकर रूप धारण कर लिया, जिसमें अंग्रेजी साम्राज्य झुलस कर अपनी अंतिम साँसे गिननें लगा। मार्च 1857 के अन्त में जून 1857 के मध्य तक के ढाई महीनों में ही यह क्रान्ति अम्बाला ,मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, अलीगढ़, इलाहाबाद, अवध, उत्त्री पश्चिमी, सीमाप्रान्त, इटावा, मैनपुरी रूढ़की, मथुरा, बरेली, शाहजहांपुर , फैजाबाद , फतेहपुर, फतेहगढ़, आदि आधुनिक उत्तर प्रदेश के सभी जिले में फैली। बुन्देलखण्ड में भी क्रान्ति का बिगुल बज उठा। क्रान्ति में झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, , बाँदा के नवाब अलीबहादुर द्वितीय , बानपुर का बुन्देला राजा मर्दन सिंह और शाहगढ़ का राजा बख्तबली आदि सभी ने अपने प्राणों की चिन्ता त्याग कर यज्ञ में कूद पड़े और जाते-जाते बुन्देलखण्ड के इतिहास में अपना नाम अमर कर गये।

यह क्रान्ति सम्पूर्ण उत्तरी भारत में बड़ी तेजी से फैली और बाँदा में भी क्रान्ति भड़कने के आसार नजर

आने लगे। तब बाँदा का कलेक्टर एफ0 ओ0 मेन चिन्तित हो उठा तथा जब उसने यह सुना कि चारो ओर क्रन्ति की ज्वाला भड़क रही है तो उसने बाँदा में विद्रोहियों को प्रवेश से रोकने और विदोहियों को पनपने न देने के लिए आगे की तैयारियाँ शुरू कर दी। बाँदा के पुलिस थानों में सिपाहियों की संख्या बढ़ा दी गई। जिले के मुख्य मार्गों यमुना के घाटों पर विद्रोहियों की गतिविधियों पर नजर रखने और बाँदा में उनकी घुसपैठ रोकने के लिए पहरे और चौकियाँ बिठा दी गई। बाँदा नगर के प्रवेश मार्गों की नाकाबन्दी कर हमीरपुर एवं फतेहपुर से आने वाली सड़कों पर घुड़सवारों के दल कड़ी निगरानी के लिए तैनात कर दिए गए। यमुना नदी पर चिल्ला तारा के घाट पर आगमन के लिए नावों का पुल था। कलेक्टर मेन ने वहां मुहम्मद सरदार खाँ को सैन्य दल सहित नियुक्त किया और उसे कठोर आदेश दिया कि कोई भी क्रान्तिकारी बाँदा जनपद की सीमा में प्रवेश न कर सके।[225]

मेन ने अपने सहायक मजिस्ट्रेट वेबस्टर , डॉ0 क्लार्क, ब्रूस और बाँदा के कुछ विश्वासपात्र नागरिकों को साथ लेकर बाँदा, चिल्ला और हमीरपुर की सड़कों पर गश्त लगाना प्रारम्भ कर दिया। अधिकारियों को आदेश दिया कि वह प्रत्येक घर, प्रत्येक दुकान में तलाशी ले और एक-एक, दो-दो सशस्त्र चौकीदार रख लेने की स्वीकृति दे दी। इस समय मेजर एलिस बुन्देलखण्ड का सहायक पोलिटिकल एजेण्ट था। मेन ने उससे सलाह ली फिर गौरिहार के किलेदार राजधर, अजयगढ़ तथा चरखारी के राज्यों से रक्षा के लिए तोपों सहित बन्दूकचियों एवं सवारों के सैन्यदल तुरन्त रवाना करने के आदेश भेजे।[226] बाँदा में विद्रोह फैलनें की इतनी आशंका नहीं थी इसलिए नई सेना के भर्ती करने के आदेश अधिकारियों को नहीं मिले।

बाँदा जनपद और कालिंजर परिक्षेत्र में क्रान्ति का शुभारम्भ जून सन् 1857 में प्रारम्भ हो गया। लोग अस्त्र-शस्त्र इकट्ठा करने लगे, गुप्त मंत्रणायें होने लगी तथा लोग बड़े उत्साह के साथ अन्य स्थानों के समाचार सुनते थे। यह बात बाँदा के प्रदेशों में फैली कि जिलाधिकारी मेन बाहरी व्यक्तियों को बाँदा आने से रोक रहा है।[227] इसका परिणाम यह हुआ कि यमुना से लगे मऊ, बबेरू एवं दरसैंडा परगनों में अंग्रेज विरोधी उपद्रव शुरू हो गये। विरोधियों ने मिलकर मऊ तहसील पर आक्रमण कर दिया। वहां के कागजाद फाड़कर जला दिया ताकि कर्जे और देनदारी के कोई भी कागज हिन्दुस्तानी सरकार बनने पर उसके हांथ न लगे। अब कमासिन, बबेरू, सिमौनी और पैलानी में भी विद्रोह फैला । धीरे-धीरे विद्रोह बाँदा की ओर बढ़ रहा था। इस समय मेन विद्रोह रोकने में बिल्कुल असहाय और असमर्थ था फिर भी मेन ने साहस से काम लिया। इस समय बाँदा के खजाने में 8 लाख रूपये थे, इस रकम में दो लाख रूपये नारायणराव और माधवराव के भी शामिल थे। इस धन राशि को बाँदा में रखना खतरे से खाली नहीं था। इस धन को उसने गुप्तरूप से इलाहाबाद, कानपुर के कोषागार में भेज दिया। केवल वेतन और पेंशन के भुगतान के लिए 2 लाख 75 हजार रूपये अपने पास रख लिये। इसी समय जेल के कैदियों में यह अफवाह उड़ाई गई कि कैदियों को जो खाना दिया जाता है। उसमें गाय की हड्डियाँ पीसकर मिलाई जाती है, इन खबरों से

वातावरण उत्तेजित हो गया।[228] बाँदा से लगे फतेहपुर जिले की स्थिति बहुत ही नाजुक हो गई जिससे 8 जून 1857 को अंग्रेजी अधिकारियों को वहाँ से भागना पड़ा उन्होंने फतेहगंज से सीधा बाँदा का रास्ता पकड़ा और चिल्ला तारा घाट पर एकाएक उनकी भीड़ सी आ पहुंची । मेन द्वारा वहाँ नियुक्त डिप्टी कलेक्टर मुहम्मद सरदार खाँ ने भूल से उन्हें बागी समझ लिया उसने एक सवार द्वारा यह खबर मेन के पास पहुंचा दी। यह खबर बाँदा नगर में तेजी से फैल गई और उपद्रवी लोगों ने तुरन्त नगर की लूटपाट शुरू कर दी। उसी शाम को मुहम्मद सरदार खाँ फतेहपुर से भागे शरणार्थियों को लेकर बाँदा चला आया। इस प्रकार फतेहपुर बाँदा मार्ग खुला रह गया। अब परिस्थिति इतनी बिगड़ गई की अंग्रेजों द्वारा सम्भाले नहीं सम्भली। एक दल के संरक्षण में अंग्रेज महिलाओं को नवाब के महल में सुरक्षा की दृष्टि से भेज दिया गया और दूसरे दल ने कलेक्टर मेन के निवास-स्थान पर अपना डेरा जमाया।[229] मुहम्मद सरदार खाँ के बाँदा चले आने से चिल्ला तारा घाट आरक्षित हो गया। मेन ने वहां की पुनः नाकाबन्दी करने के लिए गौरिहार से आये सैनिकों को उस ओर रवाना किया पर वे रास्ते से ही लौटकर अपने-अपने घर चले गए। अब विद्रोहियों को चिल्ला घाट से बाँदा आनें की खुली छूट मिल गई। वे काफी संख्या में जिले भर में फैल गए। गाँव के गाँव अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध उठ खड़े हुए यहां तक कि पुलिस भी विद्रोहियों से जा मिली और अंग्रेज अधिकारियों को पुलिस में नयी भरती के लिए आदमी नहीं मिले।[230] शुक्रवार 12 जून को विद्रोहियों ने अंग्रेजों के दो बंगलों में आग लगा दी, अब कलेक्टर मेन का बंगला भी सुरक्षित नहीं था। उसने सभी अंग्रेज अधिकारियों को नवाब अलीबहादुर की शरण में भेज दिया मगर नवाब के अनुयायी और सेवक हिन्दू और मुसलमानों दोनों थे जो अंग्रेजों के शत्रु हो उठे थे। अतः यहां भी अंग्रेजों की सुरक्षा व्यर्थ थी। मेन भी यह महसूस करने लगा कि यहां पर शरणार्थी यूरोपियन अधिकारी सुरक्षित नहीं है। वे केवल नवाब की दया पर निर्भर थे। 14 जून तक स्थिति उसी प्रकार भयानक बनी रही। बाँदा में नियुक्त प्रथम नेटिव इन्फेंट्री के सैनिकों को कानपुर की घटनाओं के पूरे-पूरे समाचार प्राप्त हो गए थे। इधर बाँदा की सीमा से लगे हमीरपुर की 53 नेटिव इन्फेंट्री रेजीमेंट के सैनिकों ने 14 जून को विद्रोह कर वहां के ईसाइयों को ठिकाने लगा दिया । विद्रोह का आभास होते ही मेन ने सरकारी कोष की धनराशि रेजीमेंन्ट की छावनी में रख दी गई। मगर उसे मालूम नहीं था कि यहां के दरोगा और कर्मचारी मिलकर विद्रोह करेंगे। कलेक्टर मेन ने अजयगढ़ से सहायता के लिए आये हुए सैनिकों को आदेश दिया कि वे जेल को घेर ले किन्तु उन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और बाँदा के विद्रोहियों ने रेजीमेंट छावनी में रखा हुआ रूपया भी मेन को देने से मना कर दिया । सैनिकों का कोई भी समझौता अंग्रेजों से नहीं हो सका, उनकी यह योजना जहां की तहां रह गई। कलेक्टर मेन के कहने पर बाँदा के नवाब अलीबहादुर ने अंग्रेजों को सहयोग देना चाहा किन्तु बाँदा की जनता के बिगड़ जाने के कारण नवाब उसे कोई सहयोग नहीं दे सका। इस बात का उल्लेख मेन ने अपनी रिपोर्ट में किया है।[231] यह नवाब की लोकप्रियता और सहायता ही थी जिसनें 14 जून को यूरोपियनों को जन-आक्रोश से बचा

लिया था। मेन ने भी इस बात को स्वीकार किया था।

नवाब के सिपाही और प्रथम नेटिव इन्फेंट्री की छावनी के सैनिक मिलकर फिरंगियों को खत्म कर देने का बीणा उठाया। यहां की स्थिति को बिगड़ता देखकर अंग्रेजों ने इस क्षेत्र से भागने का निश्चय किया। अंग्रेज अधिकारियों के पास केवल 17 महिलाएँ और बच्चे ही थे। इसी समय बाँदा के चारो ओर के कानपुर ,इलाहाबाद, फतेहपुर, हमीरपुर, महोबा और नौगावँ आदि प्रदेश विद्रोहियों के हांथों में थे। नवाब ने मेन से साफ-साफ कह दिया कि वह अब उनकी रक्षा नहीं कर सकते, मेन ने बिना समय नष्ट किए उन्हें बाँदा छोड़ने की तैयारी कर डाली। मेन के सहायक मजिस्ट्रेट वेब्सटर ने अन्य यूरोपियनों के सहयोग से महल के बाहर कालिंजर की ओर जाने वाले मार्ग पर निगरानी रखी और मेन ने महिलाओं एवं बच्चों को एकत्र कर उनकी सवारी और सुरक्षा की जो व्यवस्था हो सकी कर डाली। विद्रोही सैनिक इस समय छावनी को लूटने में लगे हुए थे। 14 जून की रात 8 बजे मेन के नेतृत्व में बाँदा से भाग निकले। उनके बाँदा से निकलते ही विद्रोहियों ने बाँदा छावनी में आग लगा दी यह आग इतनी तेज थी कि भागे हुए यूरोपियनों को मीलों दूर दिखाई देती रही। मेन और उसके साथी 15 जून को सबेरा होते ही कालिंजर जा पहुंचे फिर दूसरी रात 36 मील दूर नागौद सुरक्षित पहुंच गए। यहां से रींवा पहुंचे । रींवा पहुंचते ही मेन ने लेफ्टिनेट आस्बर्न से मिलकर बाँदा पर चढ़ाई करने की योजना बनाना शुरू कर दी। पर तभी उसे इलाहाबाद चले आने के आदेश मिले। इसलिए यह योजना पूरी नहीं हो सकती। 14 जून को मेन तथा अन्य यूरोपियनों के बाँदा से भाग जाने के पश्चात वहां का नियंत्रण विद्रोही सैनिकों के हांथ में आ गया। नवाब के सहारे रूके बेजमिन, ब्रूस एवं लायड आदि को उनके परिवार सहित मौत के घाट उतार दिया। उसी दिन दुर्भाग्य से बाँदा का डिप्टीकलेक्टर कॉकरेल जो करवी में था, कुछ खजाने सहित सबेरे-सबेरे बाँदा आ पहुंचा उसे मेन ने बाँदा से भागते हुए एक चेतावनी पत्र भेजा था। वह पत्र काकरेल को समय से नहीं मिला। मेन ने फिर दूसरे दिन कालिंजर से एक और पत्र उसे भेजा, पर उसे बहुत देर हो चुकी थी। वह खजाने सहित नवाब अली बहादुर से बाँदा भेट करने चला आया, पर वह महल के प्रवेश द्वार तक ही पहुंचा था कि विद्रोहियों ने उसे कत्ल कर दिया। विद्रोहियों में बहुत अधिक रोष बढ़ गया था, उन्होंने कलेक्टरी जजी और तहसीलों के कार्यालयों को लूटा और कागजों को आग लगा दी। जेल के कैदियों को रिहा कर दिया तथा वहां की दो तोपों पर अपना अधिकार कर लिया। अंग्रेजों के पिट्ठू एवं व्यापारी विद्रोहियों से भयभीत हो गये तथा उनके बीच शामिल हो गये। अंग्रेजों का शासन समाप्त होने की खुशी में उनमें मिठाई बाटी गई। जब यह बस हो रहाथा। तभी नवाब अली बहादुर ने अपने मुसाहिबों से सलाह कर बाँदा को अपने अधिकार में ले लिए जाने की घोषणा करते हुए यह मुनादी करवा दी।

"खलक खुदा का , मुल्क बादशाह का"

"हुकुम नवाब अली बहादुर का।"

नवाब ने यह घोषणा करने में जल्दबाजी से काम लिया था जिससे विद्रोही उससे नाराज हो गये और नवाब से रूष्ट होकर उन्होंने बाँदा में सिपाही राज्य स्थापित किया और यह मुनादी फिरवा दी कि-

खलक खुदा का मुल्क बादशाह का''

हुकुम सूबेदार सिपाही बहादुर का

नवाब अलीबहादुर पहले तो इससे घबरा उठा परन्तु उसने चतुराई से काम लिया। शुरू मे ंउसने सिपाहियों की सत्ता स्वीकार करके उनकी उत्तेजना को शान्त कर दिया और उन्हें समझा बुझाकर मिठाइयों की बढ़ियॉ-बढ़ियाँ दावते देकर अपनी तरफ कर लिया। सिपाहियों का क्रोध शान्त होते देर नहीं लगी और उन्होंने नवाब अली बहादुर को बाँदा का शासक मान लिया।

इस प्रकार थोड़े समय (दस महीनें) के लिए बाँदा से अंग्रेजी हुकुमत का अन्त हो गया। बाँदा 15 जून 1857 से 20 अप्रैल 1857 तक नवाब अली बहादुर के शासन के अन्तर्गत रहा। जिस समय यहां का शासन सम्भाला उस समय वह युवा ही था। बाँदा के कलेक्टर मेन ने बाँदा छोड़ने के पश्चात अली बहादुर के विद्रोहियों के नेता बन सकने की सम्भावना पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उस विषय में लिखा था। कि नवाब मैदानी खेलों और पुरूषोचित व्यायामों का हमेशा से ही शैकीन रहा है। वह रायफल एवं पिस्तौल दोनों का ही अच्छा निशाने बाज , एक प्रथम श्रेणी का हकाई करने वाला और श्रेष्ठ सहासी घुडसवार है तथा बेहद व्यक्तिगत कष्ट झेल सकता है। अतएवं उसमें बहुत से ऐसे गुण हैं जो उसे विद्रोहियों के लिए अच्छा नेता बना सकते है। नवाब अली बहादुर ने अपने शासन की घोषणा के साथ अपनी स्थिति मजबूत करने का प्रयत्न तेजी से प्रारम्भ कर दिया।

इसी बीच 19 जून को बाँदा की विद्रोही प्रथम नेटिव इन्फेंट्री के अधिकांश सिपाहियों ने दो लाख का खजाना और तोपें लेकर कानपुर की ओर जाने को बाँदा से कूच किया। नवाब अली बहादुर को इससे बड़ी राहत मिल। उसने तुरन्त ही तहसील, अदालातों के कर्मचारियों और पुलिस के सिपाहियों के रूके हुए वेतन काभुगतान करने के साथ ही उनके वेतन बढ़ा दिए। जिन लोगों ने अंग्रेजों के विरूद्ध और काकरेल की हत्या में शामिल थे उन्हें माफ कर दिया गया और अपनी जगह बहाल कर दिया गया। नवाब ने शासन में अपनी सहायता के लिए एक समिति बना डाली- इसके सदस्य थे- विलायत हुसैन, मिर्जा इमदाद अली, बेग, मीर इंशअल्ला, मुहम्मद सरदार खाँ, तहसीलदार मीर, फरहत अली एवं बाँदा का नगर सेठ उदयकर्ण। मुहम्मद सरदार खाँ को नाजिम मीर इंशाअल्ला को सिपहसालार विलाय हुसैन नवाब रियासत औरमिर्जा इमदाद अली बेग माल विभाग के मुंतजिम बनाये गये। नवाब के नाम पर आए-दिन होने वाले उपद्रवों एवं डकैतियों को रोकने के लिए कठोर प्रबन्ध किये। नवाब को यह आंशका थी कि कहीं अंग्रेज दुबारा लौट न आये इसलिए वह सावधानी से शासन कर रहा था। नवाब जब अपने शासन को मजबूत करनेकी तैयारी में व्यस्त था तभी जालौन के पंडितों ने बाँदा के पश्चिम का खानदेह का परगना में अपना दावा ठोंक दिया। कर्वी के

नारायण राव और माधवराव पंडितों ने वहां अपना शासन घोषित कर दिया इधर मौके का फायदा उठाकर अजयगढ़ का दौवा भी बाँदा में अपना अधिकार जताने लगा। इस विप्लव में अजयगढ़ के रणजोर दौवा ने अंग्रेजों का साथ विद्रोह को दबाने में दिया। बाँदा नवाब इस समय अपनी स्थिति मजबूत कर रहा था। 30 जून को गोयरा मुगली के जमीदार नौगॉव से भागे कैप्टन स्काटॅ , लेफ्टिनेंट , रेमिंगटन, लेफ्टिनेंट फ्रेंक्स (फ्रांसिस) बोयली, बैंड मास्टर ल्यूकस तथा एक महिला को बंदी बनाकर बाँदा ले आये। नवाब ने इनके साथ सहानुभूति रखते हुए अच्छा व्यवहार किया। उन्हें 12 जुलाई को सुरक्षित नागौद पहुंचा दिया गया। इसी प्रकार नवाब ने माधौपुर (सिहुड़ा) में भटकी एक अंग्रेज महिला और 20 अन्य यूरोपियन शरणार्थियों का`उनके परिवारों सहित नागौद पहुंचा दिया। इस तरह नवाब अली बहादुर ने लगभग 50 यूरोपियन ईसाइयों की विद्रोहियों से उनके जीवन की रक्षा की। नवाब अली बहादुर किसी प्रकार का खतरा मोल नहीं लेना चाहता था। अतः उसने अंग्रेजों और विद्रोहियों दोनों से सम्पर्क बनाये रखा। इसके सिवा उसके फिलाहाल कोई अन्य रास्ता भी नहीं था। जैसे-जैसे विद्रोहियों के दल बाँदा आनेलगे और अंग्रेजी शासन समाप्त होने का समाचार जोर पकड़ने लगा, वैसे -वैसे नवाब अली बहादुर के मन में बाँदा में अपना शासन स्थायी रूप से जमा लेने की आकांक्ष बलवती होती गई। 1857 के मध्य बाँदा को लेकर रणजोर दौवा ओर अली बहादुर के बीच एक जोरदार लड़ाई भूरा गढ़ के किले में हुई। भूरागढ़ पर दौवा की सेनाओं ने अधिकार कर लिया। इसी बीच विद्रोही सैनिकों के कई सैन्यदल बाँदा आ पहुंचे । सातवीं और आठवीं हिन्दुस्तानी पैदल रेजिमेंट 2 सितम्बर को दीनापुर से बाँदा आ पहुंची । 3 सितम्बर को नागौद के विद्रोही दूत बाँदा आ गये। 12 सितम्बर को नवाब के सैनिकों नेमिलकर नागदा पर आक्रमण किया और वहां लूटपाट कर 27 सितम्बर को बाँदा वापस लौट आये। दो दिन पश्चात् 29 सितम्बर को कुंवर सिंह 2,000 सेना सहित, जिसमें 40वीं हिन्दुस्तानी पैदल सेना के बागी सैनिक भी शामिल थे, बाँदा आ पहुंचा । इस तरह बाँदा में विद्रोही सैन्यदलों का जमघट सा हो गया। सभी का अच्छा स्वागत-सत्कार कियागया। अली बहादुर एवं स्थायी जनता के जोश का ठिकाना न था। नितनयी योजनाएँ बनने लगी। परन्तु इन सभी को अली बहादुर ओर अजयगढ़ के दौवा का मनमुटाव खटकता था उन्होंने समझौता करना चाहा मगर समझौता नहीं हो सका। दौवा के इसी जिद्दी ओर असहयोग पूर्ण रवैये से उत्तजित होकर नवाब और बाँदा में पडे विद्रोहियों के सैन्यदलों ने मिलकर संयुक्त रूप से निमनीपार की दौवा की अजयगढ़ की गढ़ी पर आक्रमण कर दिया। तीन दिन तक भयंकर युद्ध होता रहा। रणजोर दौवा और उसके अनुयाइयों को आत्मसमर्पण करना पड़ा। निमनीपार की गढ़ी ध्वस्त कर दी गई। रणजोर दौवा को उसके दो सगे सम्बन्धियों सहित अली बहादुर के महल में कैद कर दिया गया। गौरिहार के राजा राजधर की जागीर की भी लूटपाट कर वहाँ की प्रमुख इमारतों को ध्वास्त कर दिया गया।

अक्टूबर 1857 के मध्य अस्थायी सवार सेना के 500 विद्रोही सैनिकों ने भागलपुर से आकर बाँदा

में पड़ाव डाला। विद्रोहियों का जमाव बाँदा में बराबर बढ़ता ही जा रहा था। नवाब और बाँदा निवासियों पर सैन्यदलों को बढ़ने से भार बढ़ता जा रहा था। इसलिए 18 अक्टूबर को कुँवर सिंह अपनी सेना सहित कालपी फतेहपुर की ओर चल पड़ा। 25 अक्टूबर को 7वीं ओर 8वीं हिन्दुस्तानी रेजीमेंट चिल्लातारा की ओर कूच कर गए। इस समय नवाब की सेना की संख्या बढ़कर 12,000 हो गई थी। आर्थिक स्थिति को बिगड़ता देख बाँदा के नगर सेठ उदयकर्ण के द्वारा नारायणराव से अली बहादुर ने कर्ज लेना चाहा किन्तु जब उसने कर्ज देने से इन्कार कर दिया तो बाँदा के नवाब ने 15 नवम्बर को कर्वी पर आक्रमण करने चल पड़ा। वहाँ बागी सैनिकों की दो और कम्पनियाँ उसके साथ हो गई। नारायण राव ने नवाब से समझौता कर लिया जिसमें नारायण राव के पास मऊ, कमासिन, करवी , बदौसा, सहित आधे बबेरू की तहसीलें रही, जिनमें छिबू, दरसौडा, तिरौळा आदि शामिल थे और नवाब को पैलानी सिमौनी आधा बबेरू तथा स्योढ़ा आदि मिल गए। कर्वी में आक्रमण के पश्चात नवाब अली बहादुर 3 दिसम्बर को लौट आया। इसी समय बाँदा में 32 वीं रेजीमेंट के बागी सिपाहियों की दो और रेजीमेंट 18 तोपों सहित आ गई थी। ये 22 दिन तक यहां रहे। 26 जनवरी को कालपी की ओर चली गई। जनवरी 1858 में उसनेखानदेह और मौदहा पर अधिकार कर लिया। फरवरी में बाँदा के ईसाई चर्च ईसाई कब्रगाह , अंग्रेजी शासन के समय के कार्यालय उनके कागज पत्र और यहां तक कि जेल भी नष्ट कर दिये गये। प्रत्येक साधारण व्यक्ति अंग्रेजो से घृणा एवं नफरत करता था। बाँदा नवाब महारानी लक्ष्मीबाई की सहायता करने के लिए झाँसी चले गये। नवाब अली बहादुर के जाने के बाद भी यहां क्रान्ति की ज्वाला ठण्डी नहीं हुई। बाँदा में जिन व्यक्तियों पर अंग्रेजों के वफादार होने और उन पर सम्बन्ध बनाये रखने का संदेह था। उन्हें दण्डित किया गया उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। उन पर जुर्बानो कर बाँदा की सैनिक स्थिति सम्भालने की कोशिश उन पर जुर्बाने कर बाँदा की सैनिक स्थिति सम्भालने की कोशिश की गई। उदाहरण के लिए कीर्ति परवार मदारी लाल, जमुनादास बिहारी लाला साहू लल्ला ब्राह्मण तहसीलदार मीर फरहत अली आदि नवाब के कोष भाजन बने।

सैनिक सुरक्षा और मोर्चेबन्दी के ख्याल से नवाब ने यमुना के घाटों पर पहरे-चौकियाँ बिठा दी और केन नदी पर स्थित भूरागढ़ के किले की मरम्मत ओर किलेबन्दी शुरू कर दी। इसके अलावा भी वह सैनिक तैयारियों में पहले से ही लगा हुआ था। नवाब अली बहादुर के हौसले अब बहुत ज्यादा बढ़ गये थे। बाँदा से 22 मील दूर कालिंजर का सुदृढ़ दुर्ग था। विद्रोह के शुरूआत से ही इस किले की सुरक्षा की देख-भाल पन्ना की सेना कर रही थी। 12 वीं बंगाल पैदल बंगाल सेना का लेफ्टिनेंट रेमिंगटन कालिंजर दुर्ग में अपनेसंन्यदल सहित पहुंच गया। इस क्षेत्र में कालिंजर ही अकेले ऐसा रहा गया था। जो अभी भी अंग्रेजों के हांथ में था। अतः नवाब अली बहादुर ने कालिंजर जीत लेनक की ठानी और कालिंजर का घेरा डाल दिया। इसी समय यह पता लगा कि विद्रोह को दबाने के लिए सागर से ह्यूरोज के और जबलपुर से मेजर जनरल व्हिटलॉक के नेतृत्व में बुन्देलखण्ड का विद्रोह दबाने के लिए चल पड़े । ह्यूरोज झाँसी 1858 के

अन्त होते ही अपनी सेनाएं लेकर निकल पड़ें। ह्यूरोज झाँसी की ओर चला गया तथा व्हिटलॉक बाँदा की ओर बढ़ आया। नवाब अली बहादुर को मजबूर होकर अब कालिंजर का घेरा उठा कर व्हिटलॉक से लोहा लेने बाँदा लौटना पड़ा। उसने व्हिटलॉक को आगे बढ़ने से रोकने के लिए अपनी सेना महोबा की तरफ भेजी। कबरई में व्हिटलॉक और नवाब की सेना का संघर्ष हुआ। यह घटना 17 अप्रैल 1858 की है। नवाब की सेना व्हिटलॉक की सेना के सामने टिक नहीं सकी तथा वे पीछे हट गये। व्हिटलॉक की सेना बाँदा की ओर तेजी से बढ़ी। 19 अप्रैल को बाँदा के 8 मील पश्चिम गोयरा मुगली के समीप ऊबड़-खाबड भूमि पर मोचबिन्दी करके नवाब जम गया।व्हिटलॉक ने यही उस पर हमला कर दिया। नाब और नवाब की सेना ने वीरता के साथ युद्ध किया किन्तु नवाब की सेना परास्त हुई। उसके 800 सैनिक मारे गये । 9 तोपें अंग्रेजों के हाथ लगी। अंग्रेजी सेना नले 20 अप्रैल को बाँदा में प्रवेश किया परन्तु अब तक बाँदा नगर उजाड एवं वीरान हो चुका था। व्हिटलॉक की सेना के एक मेजर डूलास ने बाँदा के निकटवर्ती जौळरपुर बेंदा आदि के उपद्रवियों को कठोरता से दमन कर बाँदा में शान्ति स्थापित की। 29 अप्रैल को कलेक्टर मेन पुनः बाँदा लौट आया और उसने अपना कार्यभार सम्भाल लिया। कर्वी के दोनों पंडित भाई नारायणराव और माधौराव अपने को पेशवा कहते थे। बाँदा जिले का पूर्वी प्रदेश उनके अधिकार में था। उनके पास अपनी 15,0000 सैनिकों की सेना और 40 तोपों की एक सेना भी थी। व्हिटलॉक को यह आशा थी। कि कर्वी में कड़ा मुकाबला होगा। 1 जून 1858 को व्हिटलॉक ने कर्वी पर आक्रमण करने के लिए बाँदा से प्रस्थान कर दिया। उसे कर्वी को जीतने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई। दोनो पंडित भाइयों ने व्हिटलॉक के सामने बिना कोई शर्त के अपने खजानों और तोपों सहित आत्मसमर्पण कर दिया। उनके तहखानों में जो अपार धनराशि और जवाहरात मिले उससे अंग्रेज आश्चर्य चकित रह गए। उनके यही खजाने बाँदा-कर्वी प्राइज मनी के नाम से विख्यात हुए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो विद्रोह अंग्रेजों के विरूद्ध सन् 1857 में उठा था। वह जून 1858 तक पूरी तरह समाप्त हो गया। भगवान दास श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक बाँदा का बागी नवाब अलीबहादुर द्वितीय में इस बात का उल्लेख है कि 1857 के विद्रोह कादमन बड़ी निर्दयता के साथ अंग्रेजों ने किया। भूरागढ़ में जो युद्ध नवाब की सेनाओं से अंग्रेजों का हुआ था, उसमें केवल अंग्रेजों के 5 सिपाही मारे गये थे, 29 घायल हुए थे। इन घायलों में से ब्रिटिश फोर्स का लेफ्टिनेंस जान, कर्नल कालवेक एवं ब्रिगेडियर गिलर थे। अंग्रेजों की सेना 5 दिनों तक बराबर बाँदा नगर को तबाह करती रही। बाँदा नवाब 1858 में बाँदा से भागा था। इस समय बाँदा नगर की एक वीरांगना शीलादेवी अपनी एक सौ महिलाओं के साथ अंग्रेजों से युद्ध करती रही। महिलाओं पर हांथ उठाना नैतिकता के विरूद्ध है किन्तु बाँदा में कब्जा करने के लिए अंग्रेजों ने ऐसा किया। शीला देवी का सिर कट गया अन्य सौ महिलाओं को भी अपना बलिदान करना पड़ा। बाँदा नवाब को बाँदा से जाने का बड़ा अफसोस था। जनरल व्हिटलॉक को नवाब के महल से नगद रूपया

कीमती वस्तुएँ तथा 38 सौ 28 रूपये के स्टाम्प प्राप्त हुए थे। अंग्रेजों के आदेशानुसार 7 दिसम्बर 1858 को नवाब अली बहादुर की सारी सम्पत्ति अंग्रेजों द्वाराजब्त कर ली गई तथा विद्रोह का आरोप लागर उसकी पेंशन भी समाप्त कर दी। जिन लोगों की पेंशन बन्द की गई, उनमें बाँदा के नवाब अली बहादुर शिवलाल भट्ट कालिंजर का हिम्मत अली कालिंजर का हुसैन वक्स ये दोनो भूतपूर्व माफीदार थे। ख्वाजा यूसुफ तहव्वर खाँ, मनसुख, मोहनदास, जुगुलप्रसाद , झाऊलाल, लक्ष्मन बाई की पेंशन बंद कर दी गई। एकबार 22 अप्रैल को पुनः अंग्रेजों को बाहर निकालने का प्रयत्न किया गया। इस समय बड़ी लूटपाट की गई बाँदा स्थिति जालौन के राजा एवं कादिर खां के मकान नहीं जलाये गये क्योंकि ये लोग नवाब के साथी थे। 24 अप्रैल को अनेक विद्रोहियों को मौत की सजा दी गई। इनमें डिप्टी कलेक्टर इमदाद अली बेग पैलानी के तहसलीदार मोहम्मद महसूल भी शामिल थे। जो लोग नवाब के साथ नहीं भाग सके उन्हें भीपकड़ लिया गया। जिन लोगों ने अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति में भाग लिया उनमें मानसिंह प्रमुख था, यह विद्रोहियों की सेना का कमाण्डर इन चीफ था। मानसिंह प्रमुख था, यह विद्रोहियों की सेना का कमाण्डर था। 19 अप्रैल 1858 को जब जनरल व्हिटलॉक ने बांदा पर हमला बोला तो दीनदयाल गिरि ने भूरागढ़ पर घमासान युद्ध किया। यह अंग्रेजी सेना द्वारा पकड़ा गया तथा 26 अप्रैल 1858 को इसे फांसी पर लटका दिया गया। इमदाद अली बेग (डिप्टी कलेक्टर) भी नवाब के साथ विद्रोही हो गये। पैलानी का तहसीलदार मुहम्मद मसूल सरदार खाँ (डिप्टी कलेक्टर बांदा) ने अंग्रेजों के समक्ष 12 मई 1858 को आत्मसमर्पण किया। ख्वाजा बक्स सेठ उदयकरण मीरफरहत अली (तहसीलदार) मिर्जा विलायल हुसैन नवाब का मंत्री मिर्जा गुलाम हैदर खाँ नवाब का सलाहकार भूरे साहब (नवाब का सहयोगी) मान खाँ, नवाब की सेना का मुसरिम-ए-फौज रहमुद्दीन नवाब के शासन का उच्चधिकारी गुलाबराय कर्वी के पेशवा का अधिकारी खुदा-बक्स कर्वी का किलेदार इनायत हुसैन बाँदा के डिप्टी कलेक्टर सरदार खाँ का पुत्र, छेदी खाँ उर्फ मुसर्रफ अली ने विन्जामन की पत्नी को मार डाला था। हनुमंत माधव बालगोविन्द लल्ला सुखा गणेश भ्राता गंज शिव बक्स मुहम्मद उद्दीन बादरे अहसान अली नवाब का अधिकारी मिर्जा लियाकत नवाब अली पुत्र वसायत अली अकबर गोलन्दाज फैज मुहम्मद मुख्तयार बिहारी उर्फ कुंज बिहारी रहीम अली तुर्क सवार इसने कर्वी के ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट ककरौल की हत्या की । शिवलाल तिवारी 50वीं पल्टन का सूबेदार मेहताब अली 8वीं पल्टन का सूबेदार भजन सिंह फतेह सिंह चिरौजी लाल स्यौढ़ा का तहसीलदार ज्वालाप्रसाद तहसीलदार बाँदा, मोरे मोहम्मद तकी, मोहम्मद मोहिसन, सिराजुद्दीन , अब्दुल शकूर कर्वी का तहसीलदार मोहम्मद अब्बास खॉ, मौदहा का तहसीलदार आदि ने 19 सितम्बर को अंग्रेज अधिकारी लायर्ड को 1857 में मारा था करतव अली बवरची शेख अब्बू, आवास, अली अथूटा उर्फ बेगा विन्जामिन का वध किया चौधा चुन्नी इलाही बक्स वासिल वाकी नवीस गाजी चपरासी पारो चपरासी इन्होनें 8 जून 1857 को तहसीलदार के माली का वध किया दुर्गा बन्दवा बल्तरूवा शिवदत्त गोबरधीन गंगादीन सत्तन महिपाल लक्ष्मण गिरराज

उम्मेदसूका सुताधोकत देवीदेनी बबेरू का कारिन्दा सज्जात अली को देवी दीन ने मार डाला था। यह घटना 12 जून 1857 की हैं देवीकी नेईश्वरी कायस्थ का भुजरख में वध किया। मुस्लिया मथुरा गोदीन गिरि गोसाई इनका महत्वपूर्ण योगदान कालिंजर परिक्षेत्र और बाँदा की क्रान्ति में रहा। इनकी स्मृतियाँ सदैव बनी रहेंगी। कालिंजर परिक्षेत्र की यह क्रान्ति भले ही अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रही हो किन्तु इस क्रान्ति ने अंग्रेजों के हृदय में भय पैदा कर दिया था। बाँदा जनपद में 1857 की क्रान्ति समाप्त हो गई किनतु वह अपने ही कुछ कमियों से असफल रहीं। असफला का मूल कारण था कि क्रान्तिकारियों का एक सर्वसम्मत नेता नहीं था, इसके अलावा भी देशी रियासतों ने क्रान्तिकारियों को कोई सहयोग नहीं प्रदान किया। क्रान्ति का प्रभाव केवल बुन्देलखण्ड तक ही सीमित रहा, अन्य क्षेत्रों में इसका प्रभाव नहीं पड़ सका। यह क्रान्ति कुछ व्यक्तिगत कारणों से भी प्रारम्भ हुई थी। इसलिए व्यापक जन समर्थन इस क्रान्ति को नहीं मिल सका सन् 1858 के पश्चात यह क्रान्ति बुरी तरह दबा दी गई। अंग्रेजों ने बड़ी ही क्रूरता के साथ यहां की जनता का दमन किया। सन् 1860 में महारानी का घोषणा पत्र जारी हुआ। भारत वर्ष में लार्ड कैनिंग ने इस घोषणा पत्र को जारी किया। इस पत्र के अनुसार भारत वर्ष से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त कर दिया गया। उसके स्थान पर ब्रिटिश सरकार का शासन प्रारम्भ कर दिया गया। इस शासन पर के अन्तर्गत देशी राजाओं के साथ कम्पनी सरकार द्वारा की गई सन्धियाँ बरकरार रखी जायेंगी। उनके गोद लेने के अधिकार को सुरक्षित किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं पहुंचायीगी। इस बीच बाँदा के नवाब अली बहादुर ने अंग्रेजों के सामने राजपुरा में आत्मसमर्पण कर दिया। उन्हें इन्दौर में बसा दिया गया। जो क्रान्तिकारी पकड़े गये उनमें से कुछ को कैद की सजा दी गई और उनकी सम्पत्ति सरकार द्वारा जब्त कर ली गई। ब्रिटिश सरकार ने नवाब के साथ उदारता का व्यवहार किया उन्हें 36 हजार रूपया वार्षिक पेंशन मंजूर की गई। नरायण राव पेशवा ने कुछ दिन कर्वी में स्वतंत्र रूप से शासन किया था। उसे जीवन भर के लिए जिले से स्थानान्तरित कर दिया गया तथा हजारी बाग में बसा दिया गया। उसके लिए 700 रू0 माहवारी पेंशन निर्धारित की गई। इसी प्रकार माधवराव को उसकी युवा अवस्था देखकर क्षमा कर दिया गया। उसके दो पुत्रों की शिक्षा अंग्रेज सरकार की और से बरेली में कराई गई। उसकी वार्षिक पेंशन 25 हजार रूपएँ स्वीकार की गई। 1858 के पश्चात जब पूर्ण शान्ति हो गई उस समय धीरे-धीरे इस परिक्षेत्र का व्यवसाय बढ़ने लगा। ब्रिटिश सरकार ने इस क्षेत्र में रेलमार्ग बनवाने का निश्चय किया ताकि आवागमन के साधनों का विकास हो सके। अंग्रेजी शिक्षा का विकास किया गया यहां के नागरिकों को पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली से परिचित कराया इसका यह नतीजा हुआ कि अनेक व्यक्ति अंग्रेजी बोलना सीखे और पश्चिमी विचार धाराओं को समझने लगे। इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव सन् 1885 के लगभग हुआ, उन्होंने आगे चलकर आर्य समाज नामक संस्था खोली और आर्यो की विचार धारा को विकसति किया। बाँदा जनपद में भी उनके प्रभाव से आर्य समाज और अनाथालयों की स्थापना की गई। परेक्ष रूप से असफल क्रान्ति को

पूर्ण जागृति करने के पुनः प्रयत्न होने लगे। इस समय हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान का नारा देकर आजादी की ओर पुनः युवकों को प्रेरित किया जाने लगा।

क्रान्ति को हुए काफी समय व्यतीत हो गया। था। इस समय का युवक पुनः अंग्रेजों से असंतुष्ट होता जा रहा था। और वह चाह रहा था। कि कोई न कोई ऐसी योजना बने जिनसे अंग्रेजों का बहिष्कार किया जा सके। सन् 1905 में अंग्रेजी वस्तुओं का बहिष्कार करने के लिए बाँदा जनपद में एक अन्दोलन मीटिंग की गई, हड़तालों का आयोजन किया गया जिसमें इस बात के लिए लोगों को सावधान यिा गया। कि वे विदेशी शासन के शोषण से अपने आप को बचायें यह भी घोषणा की गई कि यहां के निवासी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करे और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करें। यह आन्दोलन बाँदा जनपद में काफी उग्र रहा। सन् 1908 में लाला लाजपत राय का बाँदा आगमन हुआ। कुछ समय पश्चात प्रथम विश्वयुद्ध 1914 में प्रारम्भ हुआ। यहां के अनेक युवकों को ब्रिटिश सेना में भर्ती किया गया। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात अमृतसर में 1919 ई0 में जलियावाल बाग हत्याकाण्ड की घटना घटी इसमें हजारों की संख्या में लोग मरे। यहीं से स्वराज का नारा गूंजा जिसका प्रभाव राजनीतिक जीवन में एवं बाँदा जनपद में भी पड़ा। सन् 1920 में अगस्त माह में असहयोग आन्दोलन पुनः प्रारम्भ हुआ। यह भी 1905 के स्वदेशी आन्दोलन जैसा था। इस समय लोगों को यह सलाह दी गई कि वह विदेशी वस्त्रों का परित्याग करके खादी का प्रयोग करें।। इस समय युवकों ने सरकारी नौकरियों का बहिष्कार किया, वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार किया, बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में जानेसे मना किया गया और राष्ट्रीय भावना वाले स्कूलों को खोलने की सलाह दी गई। इसी समय खादी भण्डारों की स्थापना हुई सन् 1920 ई0 में थोड़ेक समय के लिए राष्ट्रीय विद्यालय बाँदा में खोला गया। इसी समय के लिए सत्याग्रही अखबार का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया जिसका उद्देश्य व्यक्तियों में राष्ट्रीय भावना जागृत करना था। इस समय प्रशासन ने खादी पर प्रतिबन्ध लगाया जिसके परिणाम स्वरूप आन्दोलन कालिरयों ने रामलीला मैदान में विदेशी वस्त्रों की होली जलाना प्रारम्भ कर दी। इसी प्रकार विदेशी कपड़ों की होली महेश्वरी देवी चौक बाजार एवं कोतवाली के सामने भी जलाई गई। इसी समय पुरूषौत्तम दास टण्डन एवं पं0 जवाहरलाल नेहरू का बाँदा आगमन हुआ। उन्होंने भी इस आन्दोलन में भाग लिया। अनेक स्थानों पर उनके लिए सभायें आयोजित की गई। इस समय सम्पूर्ण जनपद के प्रत्येक स्थलों में अनेक प्रकार की मीटिंग में आयोजित की जा रहीं थी। सन् 1922 के फरवरी महीने में चौरी-चौरी काण्ड गोरखपुर में गठित हुआ जिसमें व्यापक हिंसा हुई। महात्मा गाँधी ने इस आन्दोलन को हिंसात्मक रूप देने से मना किया। इसके पश्चात 1928 तक इस क्षेत्र में कोई हलचल नहीं रही। सन् 1929 में महात्मा गाँधी सरोजनी नायडू तथा आचार्य जे0वी0 कृपलानी ने पूरे उत्तरी भारत का दौरा किया। वे नवम्बर 1929 में बाँदा आये। उन्होंने बाँदा, चिल्ला कर्वी, मटौध में प्रार्थना सभाऐं की और स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने का अनुरोध किया। उनहोंने सामान्य नागरिकों सरकारी सेवकों से अनुरोध किया कि आजादी के आन्दोलन में

भाग लें। 1930 ई0 में असहयोग आन्दोलन में भाग लें। 1930 ई0 में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। देश के अन्य स्थानों की भांति बाँदा के अनेक स्थानों में यह आन्दोलन फैला इसी समय नमक कानून का बहिष्कार किया गया। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं ने धुस मैदान में कर्वी में नमक बनाया फिर पूरे जनपद में नमक आन्दोलन फैला।

नमक आन्दोलन के पश्चात असहयोग आन्दोलन पूरे जनपद में फैला। इस आन्दोलन में 65 व्यक्तियों को जले भेजा गया। यह घटना 1930 की है। धीरे-धीरे यह आन्दोलन सम्पूर्ण क्षेत्र में फैल इसमें अंग्रेजों का विरोध किया गया। अनेक किसानों औरतों ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों ने भाग लिया। सरकार विरूद्ध आचरण करने के विरोध में 100 से अधिक व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया या तो उन्हें जेल की सजा दी गई या जुर्बाना किया गया। बहुतों को दोनों प्रकार की सजाऐं दी गई। इस समय चन्द्रशेखर आजाद बाँदा जनपद में थे। उन्होंने हिन्दुस्तान रिपब्लिक आर्मी का गठन किया था। उसके संयोजक के रूप में वह बाँदा आये और यहां के नेताओं से सम्पर्क किया। इनके सम्पर्कियों में सेठ रामगोपाल गुप्ता विशारद प्रमुख थे। इन्होंने सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए अपने सम्पक्रियों को हथियार बांटे।

1935 कि पश्चात प्रान्तीय सरकारों का गठन हुआ। सन् 1937 में सरकार के लिए चुनाव हुए इसी के पश्चात द्वितीय विश्वयुद्ध 1947 में प्ररम्भ हुआ। इस समय कांग्रेस के हजारों कार्यकर्त्ता बुन्देलखण्ड में स्वतंत्रता आन्दोलन में लगे हुए थे। जिनमें से 59 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। 8 अगस्त 1942 को कांग्रेस कार्य समिति में यह प्रस्ताव पास हुआ कि ब्रिटिश सरकार को यहाँ से जल्दी हटाया जाये। इसके तहत पूरे भारत में भारत छोड़ो आन्दोलन चला। बाँदा जनपद के लोग भी इस आन्दोलन में बड़ी सक्रियता से भाग लेते रहे। इस आन्दोलन ने अनेक स्थानों पर हिंसात्मक रूप धारण कर लिया, जिसके परिणाम स्वरूप तार और टेलीफोन धारण कर लिया, जिसके परिणाम स्वरूप तार और टेलीफोन के खम्भे उखाड़े गये। सड़क में जलने वाली रोशनी को नष्ट किया गया। क्षेत्र के 84 नेताओं को गिरफ्तार किया गया। भारत छोड़ों आन्दोलन देश की आजादी प्राप्त होने के पहले तक चलता रहा।

कालिंजर परिक्षेत्र भी जनपद के अन्य क्षेत्रों की भांति प्रभावित हुआ किन्तु इस क्षेत्र में क्रान्ति सन! 1941 के बाद ही प्रारम्भ हुई। मुख्य रूप से राजाराम रूपैलिहा यहां से प्रमुख क्रान्तिकारी थे। इनके अतिरिक्त श्री गोपीकृष्ण आजाद ने भी क्रान्तिकारी थे। इनके अतिरिक्त श्री गोपी कृष्ण आजाद ने भी क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लिया। इन्हें सन् 1941-42 में कारावास की सजा हुई इसके अतिरिक्त श्री गया प्रसाद पाण्डे आत्मज श्री बल्देव प्रसाद पाण्डे आजादी के संघर्ष में एक प्रमुख कार्यकर्त्ता बने। इन्हें बबेरू के कैप्टन बद्री प्रसाद ने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रभावित कियाथा। श्री गया प्रसाद पाण्डे 1936 से लेकर अपने जीवन के अन्तिम समय तक कांगेस के भक्त रहे। उनका स्वर्गवास अक्टूबर सन् 1979 में हो गया। पाण्डे जी के अलावा राजराम द्विवेदी मुतयारी निवासी भी कांग्रेस के अच्छे कार्यकर्त्ता थे। इन्हें 1921

के आन्दोलन में 6 माह की सजा हुई और 500 रूपये जुर्बाना देना पड़ा सेठ महावीर दास बाबा भी अच्छे कार्यकर्त्ता थे। ये भी राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय योगदान करते रहे। इन्हें सन् 1941 में 14 माह की सजा मिल जमुरेही निवासी श्री गया प्रसाद तिवारी भी कांग्रेस के कार्यकर्त्ता थे। इन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया। जून 1942 में आन्दोलन करने के अपराध में इनकों एक वर्ष की कैद की सजा हुई श्री प्रसाद खरे बिलगॉव निवासी भी एक सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। वे 1941-44 तक आन्दोलन करते रहे। श्री आजाद जी के पुत्र श्री ईश्वर जी भी इस क्षेत्र के कार्यकर्त्ता थे।इनके अतिरिक्त चुनुबाद प्रसाद खुरहड, ठाकुर दिलीपसिंह महुटा श्री द्वारिका प्रसार जी तरखरी दुर्गा प्रसाद नरौली श्री बद्री प्रसाद गुप्त सुपुत्र री दुर्गा प्रसाद नरौली श्री मन्नी लाल जी श्री महादेव प्रसाद नरैनी श्री रघुनन्द प्रसाद नरैनी श्री रामाधार उर्फ कल्लू प्रसाद नरैनी श्री रामदयाल पंसारी नरैनी श्री राजदेव नरैनी श्री रामलाल सिंह खुरहंड श्री रामशरण गर्ग निवारी एंचवारा श्री रामनन्द करवरिया श्री लखनलाल खुरहंड श्री शिवनन्दन सिंह श्री सूबेदार सिंह श्री रामप्रसाद जी श्री राजधर प्रसाद जी खुरहंड श्री रामशरण शिवहरे स्योढ़ा निवासी ये लोग राष्ट्रीय आन्दोलनों के बीच कालिंजर परिक्षेत्र के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे। कई बार इन्होंने सजा भी भोगी। संचेतना की कमी के कारण कालिंजर परिक्षेत्र में दोनों संचेतना की कमी के कारण कालिंजर परिक्षेत्र में दोनों राष्ट्रीय आन्दोलनों के बीच कालिंजर परिक्षेत्र निवासी ये लोग राष्ट्रीय आन्दोलनों के बीच कालिंजर परिक्षेत्र से सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे। कई बार इन्होंने सजा भी भोगी। संचेतना की कमी के कारण कालिंजर परिक्षेत्र में दोनों राष्ट्रीय आन्दोलन विशेष उग्ररूप धारण नहीं कर सके। जबकि बाँदा जनपद के अन्य क्षेत्रों में ये आन्दोलन बहुत उग्र थे। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्वर्गीय सुखनन्दन प्रसाद महा ब्राह्मण कालिंजर क्षेत्रों में काफी सक्रिय थे। इन्हें सन् 1941 में आन्दोलन में भाग लेने के कारण एक वर्ष की सजा हुई थी। इसी प्रकार कल्लू प्रसाद उर्फ रामआधार कौम बढ़ई ग्राम सौंता कालिंजर परिक्षेत्र में इन्हें भी 1941 में आन्दोलन में भाग लेने के कारण एक वर्ष की सजा हुई थी। इसी प्रकार कल्लू प्रसाद उर्फ राम आधार कौम बढई ग्रम सौंता कालिंजर परिक्षेत्र में इन्हें भी 1941 के आन्दोलन में भाग लेने के कारण एक वर्ष की सजा हुई थी। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कालिंजर परिक्षेत्र व बाँदा क्रान्तिवीरों से अछूता रहा किन्तु इनकी संख्या यहां बहुत कम थी।

1947 से लेकर आज तक कालिंजर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-

15 अगस्त सन् 947 को भारतवर्ष अंग्रेजी शासन से मुक्त हुआ किन्तु दुर्भाग्य यह रहा कि भारतवर्ष दो भागों में विभक्त हो गया, जो अब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के नाम से जाने जाते हैं। विभाजन के समय मुस्लिम लीग एवं हिन्दू संगठनों के बीच साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिसमें हजारों की संख्या में हिन्दू, मुसलमान दोनों ही शहीद हुए। महात्मा गाँधी साम्प्रदायिकता के आधार पर देश का विभाजन नहीं चाहते थे। किन्तु पं0 जवाहर लाल नेहरू और मुहम्मद अली जिन्ना साम्प्रदायिकता के आधार पर विभाजन चाहते थे। जिस समय भारत का विभाजन हुआ, उस समय भारत के वायसराय लार्ड माउण्ट बेटेन थे। इन्होंने

भारतीय नेताओं के हांथ में सत्ता सौंपी। संविधान बनने तक चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य को भारत का वायसराय नियुक्त किया गया। इस दौरान पाकिस्तान के अनेक भागों से करोड़ों की संख्या में हिन्दू शरणार्थी भारत आये। इनमें से करीब 50 हजार शरणार्थी बाँदा जनपद व कालिंजर परिक्षेत्र में भी आये।

सन् 1947 के पश्चात संविधान निर्मात्री सभा का निर्माण हुआ। डॉ0 अम्बेडकर के नेतृत्व में भारत का संविधान निर्मित हुआ। जिन लोगों ने संविधान बनाया उसने कांग्रेस मुस्लिम लीग और यूनियस्टि पार्टी शामिल थी। संविधान सभा की नियुक्ति जुलाई 1946 में हुई। 13 दिसम्बर 1946 को पं0 जवाहर लाल नेहरू ने संविधान की आधार शिला रखी तथा 22 जनवरी 1947 को उसके मुख्य-मुख्य विषय सभा पटल के सम्मु ख रखे गये। यह संविधान 26 जनवरी 1950 से लागू किया गया। यह संविधान पूर्ण रूपेण मौलिक तो नहीं है किन्तु इस संविधान का निर्माण भारतीय सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखकर किया गया है। इसमें इंग्लैण्ड की भांति लोकसभा एवं राज्यसभा का निर्माण किया गया है। तथा अमेरिका के संविधान की भांति विशेष परिस्थित में राष्ट्रपति सर्वोच्च सत्ता का मालिक बन जाता है। इस संविधान के अनुसार संघीय शासन व्यवस्था स्थापित की गई है। कालिंजर परिक्षेत्र भारत राष्ट्र का उत्तर प्रदेश संघ के बाँदा जनपद का एक अंग है।

सन् 1952 ई0 में इस परिक्षेत्र में पहली बार स्वतंत्र भारत के आम चुनाव हुए। संसद सदस्य के रूप में दीनदयाल उपाध्याय चुने गये। कालिंजर परिक्षेत्र के विधायक के पद में श्री श्यामाचरण बाजपेयी निर्वाचित हुए। सन् 1952 में ही सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में विकास खण्डो, जिला पंचायतों का पुर्नगठन हुआ। इसके अन्तर्गत कालिंजर परिक्षेत्र नरैनी विकासखण्ड का अंग बना तभी से पंचवर्षीय योजनायें जनपद के उत्थान हेतु लागू की गई। जब विन्ध्य प्रदेश का गठन हुआ, उस समय वहां के राज्यपाल के0 संथानम, उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री के0एम0 मुन्शी ने कालिंजर परिक्षेत्र को विकसित करने की योजना बनाई। परिणामस्वरूप सतना बाँदा मार्ग का निर्माण हुआ। सन् 1957 में इस परिक्षेत्र से सांसद के रूप में राजा दिनेश सिंह निर्वाचित हुए, विधायक श्री गोपी कृष्ण आजाद निर्वाचित हुए । इन दोनों के अथक प्रयासों से कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक विकास परियोजनाऐं लागू की गईं। शिक्षण संस्थों का विकास हुआ। 1952 में ही इस परिक्षेत्र से उत्तर प्रदेश के अन्य भागों की तरह जमीदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया था। भूमि में सीलिंग लगा दी गई थी। जिसके कारण अतिरिक्त भूमि को भूमिहीन कृषकों में बांटा गया। सन् 1962 में श्रीमती सावित्री निगम इस परिक्षेत्र से सांसद चुनी गई तथा ठा0 मतोला सिंह विधायक निर्वाचित हुए। ठा0 मतोला सिंहन ने कालिंजर परिक्षेत्र को विकसित करने के लिए अथक प्रयास किया। इन्होंने राठौर महल के पास एक संग्रहालय का निर्माण कराया। इधर-उधर पड़ी मूर्तियों को एकत्रित किया गया तथा कुछ का नवीनीकरण भी कराया गया। दुर्ग के ऊपर की ऐतिहासिक इमारतों का रख-रखाव भी उनके समय में प्रारम्भ हो गया था, दुर्ग के नीचे की इमारतों की ओर भी उनका ध्यान था। सन् 1967 के पश्चात इस परिक्षेत्र के

सांसद श्री जागेश्वर यादव हुए, विधायक हरवंश पाण्डे हुए। इन लोगों ने कालिंजर की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अतर्रा डिग्री कालेज के प्रधानाचार्य श्री जगपत सिंह ने कालिंजर विकास के लिए प्रयत्न किये। इन्हीं से प्रेरणा लेकर हिन्दू इण्टर कालेज के प्रवक्ता श्री हरिप्रसाद शर्मा और श्री वासुदेव त्रिपाठी ने भी कालिंजर पर पुस्तक लिखकर इस क्षेत्र को विकसित करने का प्रयत्न किया। इसके बादी श्री अम्बिका प्रसाद पाण्डे सांसद एवं चन्द्रभान सिंह आजाद नौहाई वाले विधायक चुने गये। चन्द्रभान सिंह आजाद ने कालिंजर के ऐतिहासिक स्थलों को बचाने का प्रयास किया। उन्होंने अधिकारियों का ध्यान कालिंजर के अतिरिक्त कौहारी, बृहस्पति कुण्ड, सांरग, लखन सिंहा, किशन सेहा, रसिन, मड़फा, पाथर , कद्दार, फतेहगंज की ओर आकर्षित कराया किन्तु कोई विकास की गति दिखलाई नहीं दी।

कुछ समय पश्चात रामनाथ दुबे सांसद बने, उन्होंने रसिन के विकास के लिए विशेष कार्य किया। रतननाथ नाम से एक इण्टर कालेज की स्थापना की। फिर रामरतन शर्मा सांसद हुए इसी समय देश में आपात काल लगा और यह कारागर की सजा भोगते रहे। इस मुसीबत के दौरान विकास कार्य ठप्प हुए। जनता का घोर उत्पीड़न हुआ। इसके पश्चात श्री भीष्मदेव दुबे सांसद एवं विधायक सुरेन्द्रपाल वर्मा निर्वाचित हुए। सौभाग्य से सुरेन्द्रपाल वर्मा परिवहन विभाग के मंत्री बने। इनके मंत्रित्व काल के दौरान बाँदा-सतना, बाँदा-बधेलावारी, बाँदा-फतेहगंज के लिए बस सेवायें उपलब्ध होनी लगीं। इसी बीच उत्तर प्रदेश शासन की मंत्री प्रमिला बधवार का कालिंजर आगमन हुआ। कालिंजर को विकसित करने के लिए इस अवसर पर प्रसिद्ध पत्रकार श्री भगवान दास गुप्ता, इतिहासकार री राधाकृष्ण बुन्देली, श्री श्याम बिहारी वैद्य छिरौलिहा, श्री अनन्त बिहारी अरजरिया मौजूद थे। श्रीमती बधवार ने कालिंजर को विकसित करने का प्रण किया और इसी दौरान कालिंजर दुर्ग के नीचे राठौर महल के बगल से रैन बसेरा का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इसी बीच पुरातत्व विभाग के अधिकारियों का कालिंजर आगमन हुआ। जन प्रतिनिधियों के दबाव के कारण पुरातत्व विभाग के कर्मचारी यहां रहने लगे और उन्होंने कालिंजर को अपने सरंक्षण में ले लिया।

सन् 1989 के लगभग कालिंजर विकास का वास्तविक कार्य प्रारम्भ हुआ। बाँदा जनपद के उत्साही बैठक 6मई 1990 को अपने यहां बुलाई। इस बैठक में इतिहासकार श्री राधाकृष्ण बुन्देली उपस्थित हुए। भगवान दास गुप्ता ने भी अपने सुझाव प्रस्तुत किए। इनके पश्चात कालिंजर में राजा अमान सिंह के महल में एक मीटिंग (15 नवम्बर 1990) का आयोजन किया गया। इस मीटिंग में पुरातत्व विभाग, ग्रामीण अभियन्त्रण विभाग, सार्वजनिक निर्माण विभाग, परिवहन विभाग तथा अन्य विभाग के अधिकारियों ने भाग लिया। जिसमें सर्व सम्मति से यह निर्णय लिया गया कि कालिंजर दुर्ग के ऊपर तक सड़क का निर्माण किया जाये और कालिंजर दुर्ग के ऊपर के सभी स्थानों के नाम के बोर्ड लगायें जायें, जिसमें संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख भी हो। कालिंजर दुर्ग के क्षति ग्रस्त स्थानों की मरम्मत कराई जाये। यात्रियों के आवास की व्यवस्था की उचित व्यवस्था हो। उपरोक्त प्रस्ताव के अनुसार बड़ी तेजी के कार्य हुआ। सन्

1990-91 तक दुर्ग के ऊपर का मार्ग निर्मित हो गया किन्तु यह मार्ग तकनीकी ढंग से निर्मित न होने के कारण प्रतिवर्ष बरसात के मौसम में गिर जाता है, जिसकी मरम्मत हर वर्ष कराई जाती हैं कालिंजर को विकसित करने के लिए श्री राधाकृष्ण बुन्देली ने फिल्म कालिंजर दर्शन का निर्माण किया। यह सन् 1989 में प्रारम्भ हुई और सन् 1992 में बनकर पूरी हो गई। इसी बची कालिंजर में कालिंजर उत्सव का आयोजन हुआ। यह आयोजन कार्तिकपूर्णिमा के दिन किया गया। यह 1992 में जिलाधिकारी श्री शंकरदत्त ओझा के नेतृत्व में आयोजित हुई। इसमें जनपद के सभी विभागों ने सहभागिता दिखाई। तथा लोकसंस्कृति का प्रदर्शन भी हुआ। इस समय उपस्थित सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने श्री श्याम बिहारी छिरौलिहा के यहां उपलब्ध साहित्य का अवलोकन किया। इसके अतिरिक्त यह सुझाव दिया गया कि जो मूर्ति सम्पदा इधर-उधर बिखरी पड़ी है, उसे एकत्रित करके कालिंजर दुर्ग के आस-पास एक संग्राहलय का निर्माण का निर्माण किया जाये, और उसमें रखी जायें। इस क्षेत्र में केवल यह प्रगति हुई कि मूर्तियों का संग्रह राजा अमानसिंह के महल में किया गया है। यहां लगभग दो हजार मूर्तियां विभिन्न देवी-देवताओं की है। इसी बीच खजुराहों से कालिंजर को जोड़ी जाने वाली सड़क का निर्माण हुआ उससे खजुराहों- कालिंजर की दूरी बहुत कम हो गई है। महोबा भी सन्निकट हो गया है। जब श्री कृष्ण कुमार भारतीय जिलापरिषद अध्यक्ष थे, तब पुनः कालिंजर महोत्सव का आयोजन किया गया है। इसमें भाग लेने के लिए बाँदा के भूतपूर्व विधायक श्री चन्द्रप्रकाश शर्मा के प्रयास से यहां कुछ विदेशी पर्यटक लाये गये थे। इस अवसर पर श्री राधाकृष्ण बुन्देली की फिल्म कालिंजर दर्शन का प्रदर्शक किया गया था। इससे कुछ दिन पूर्व पं0 जवाहर लाल नेहरू डिग्री कालेज बाँदा के इतिहास विभागाध्यक्ष श्री बी0एन0 राय ने कालिंजर क्षेत्र को विकसित करने के लिए सन् 1992 में कालिंजर ए हिसटारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल नाम की एक महत्वपूर्ण पत्रिका भी प्रकाशित की। यह पुस्तक हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में है। इसपत्रिका को पढ़कर यह आसानी से समझा जा सकता है कि (प्रो0) बी0एन0राय जिन्होंने इस पत्रिका का सम्पादन कियाकालिंजर के विकास के लिए पूर्णरूपेण समर्पित थे। वे अपने छात्रों को हिस्टारिकल टूर के दौरान प्रतिवर्ष कालिंजर ले जाते थे। कालिंजर का विकास कालिंजर वासियों से नहीं अपितु उन बुद्धिजीवियों से सम्भावित हो पाया है जो विकास की विभिन्न योजनाओं को कालिंजर परिक्षेत्र में लाये। कालिंजर को विकसित करने की दृष्टि से पुनः 13,14,15, नवम्बर 1997 को कालिंजर महोत्सव का आयोजन किया गया। इसमें आयुक्त चित्रकूट मण्डल, जनपदीय अधिकारी एवं दूरदशग्न कलाकारों ने भाग लिया। इसके विकास के लिए पुलिस डी0ई0जी0 एवं श्री ए0के0 सिंह ने भी प्रयत्न किये। बाँदा में जितने भी आयुक्त आये, उन्होंने कालिंजर को विश्व ऐतिहासिक धरोहर के रूप में विकसित करने की योजनायें बनाई। इन प्रयासों के लिए कालिंजर के श्री श्याम बिहारी वैद्य छिरौलिहा, श्री अनन्त बिहारी अरजरिया की भी प्रशंसा की जा सकती है।

कालिंजर को वर्तमान समय में देखने से ऐसा लगता है कि कितना ही प्रयत्न किया जाये अब क्षेत्र

अब प्राचीन काल के गौरव को प्राप्त नहीं कर सकता। कालिंजर दुर्ग के नीचे मिश्रों के महल प्राप्त नहीं कर सकता। कालिंजर दुर्ग के नीचे मिश्रों के महल प्राप्त होते हैं। किन्तु इस वंश का कोई भी व्यक्ति नहीं है। इसी परिक्षेत्र में रहने वाले सेठ गोपालदास परिवार के लोग नागपुर, करतल तथा बाँदा में बस गये। अब उनके स्मृति चिन्ह के रूप में केवल गोपाल ताल शेष है। इसी प्रकार बडेरिया परिवार यहां से पलायन कर गया तथा सतना में रहने लगा। कहते है कि किसी जमाने में कालिंजर दुर्ग के ऊपर और दुर्ग के नीचे जुझौतिया ब्राह्मणों की अच्छी आबादी भी किन्तु आज जुझौतियां ब्राह्मणों में श्री अनन्त बिहारी अरजरिया का परिवार ही यहां दिखाई देता है। इस समय कालिंजर परिक्षेत्र में मुसलमानों की आबादी भी काफी मात्रा में है। इनमें से कुछ ऐसे है जो महमूद गजनवी के समय मुसलमान बने थे। कुछ ने कुतुबुद्दीन ऐबक के समय में इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। तथा कुछ ने सम्राट अकबर तथा औरंगजेब के समय में इस्लाम धर्म ग्रहण किया। यहां के निवासी तुफैल अपना सम्बन्ध अकबर और शेहरशाह सूरी के समय के जागीदारों से बताते है। इनके पास कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी उपलब्ध है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर का वर्तमान इतिहास विकास का वाट जोहता अंधकार युग का इतिहास है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. बाजपेयी, के0 डी0, युगों-युगों में उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1995, पृ0 42 ।
2. ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, बाँदा ए गजेटियर (यूनाइटेड प्राविंसेज ऑफ आगरा एण्ड अवध गजेटियर), जिन्द 21, इलाहाबाद 1929, पृ0 159 ।
3. त्रिवेदी, एस0 डी0, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, प्रथम संस्करण, झाँसी, 1984, पृ0 9 ।
4. पन्त, पी0 सी0, प्री हिस्टारिकल उत्तर प्रदेश, दिल्ली, 1982, पृ0 122, 127 ।
5. गुप्त, जगदीश, प्रागैतिहासिक चित्रकला, दिल्ली, 1967, पृ0 86, 87 ।
6. पन्त, पी0 सी0, इण्डियन आर्क्योलॉजी ए रिब्यू, 1955-1956, पृ0 4 ।
7. वही, 1961-1962, पृ0 80 ।
8. निगम, एम0 एल0, कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड, दिल्ली, 1983, पृ0 6 ।
9. लोगेन, ए0 सी0, ओल्ड चिब्ड स्टोन्स ऑफ इण्डिया, पृ0 30 ।
10. जोशी, आर0 वी0, स्टोन ऐज इन्डस्ट्रीज ऑफ दमोह एरिया, जिल्द 17, 1961, पृ0 24 ।
11. थियोवाल्ड, डब्ल्यू0, सेल्ट्स फाउण्ड इन बुन्देलखण्ड प्रोसीडिंग्स ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1862, पृ0 22 1
12. नोट्स ऑन दि स्टोन ऐज इम्प्लीमेन्ट्स फ्रॉस खासी हिल्स एण्ड दि बाँदा एण्ड नेल्लोर डिस्ट्रिक्ट्स, जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग 2, 1879, पृ0 133-143 ।
13. कार्नाक रिवेट, एच0, स्टोन इम्प्लीमेन्ट्स फाउण्ड इन बाँदा डिस्टिक, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1882, पृ0 6-8 ।
14. स्मिथ, वी0 ए0, पिग्मी फ्लिन्ट्स दि इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, जिल्द 35, 1906, पृ0 185-195 ।
15. शर्मा, वी0 आर0, भारतीय सप्लीमेन्ट, भाग 2, 1964, : पन्त, पी0 सी0, इण्डियन आर्क्योलाजी ए रिब्यू, 1955, 1956, समलिथिक टूल इन्डस्ट्रीज ऑफ बाँदा ।
16. जोशी, आर0 वी0, पूर्वो0, पृ0 5, 36 ।
17. पन्त, पी0 सी0, इण्डियन आर्क्योलॉजी ए रिब्यू, 1955-1956, पृ0 122 ।
18. पाल, जे0 एन0 आर्क्योलॉजी ऑफ सदर्न उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1986 ।
19. सिंह, दीवान प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, बनारस, 14 फरवरी सन् 1929ई0, पृ0 336, 337।
20. वही, पृ0 12 ।
21. वही, पृ0 377, 378 ।
22. रॉय चौधरी, एच0 सी0, प्वालिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्श्येन्ट इण्डिया, भाग 2, कलकत्ता, 1953,

पृ0 141 ।

23. बाल्मीकि, रामायण, बालकाण्ड, 5, 6 ।

24. वही, उत्तरकाण्ड, 108, 5 ।

25. महाजन, वी0 डी0, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, दिल्ली, 1960, पृ0 121 ।

26. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1983, पृ0 57 ।

27. 'जय' नामेतिहासोऽयम् ।

28. वेदव्यास, महाभारत ।

29. वही, वनपर्व, अध्याय 85, 56,: देवी भागवत, 26, 34,: त्रिवेदी, एस0 डी0, पूर्वो0, पृ0 1 ।

30. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 3, पृ0 36, भाग 2, पृ0 222 ।

31. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, भाग 2, बम्बई, 1960, 1966, पृ0 32-33 ।

32. वही, पृ0 149 ।

33. वही, पृ0, 141, 157 तक, राय चौधरी, एच.सी. पूर्वो., पृ0 478 ।

34. एटकिन्सन, पृ0 2 ।

35. श्रीवास्तव, ए0 के0, फाइण्ड स्पाट ऑफ कुषाण काइन्स इन यू0 पी0, पृ0 39 ।

36. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, पूर्वो0, पृ0 168, 169 ।

37. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड अल्टेकर, ए0 एस0, दि वाकटक गुप्ता ऐज, दिल्ली, 1960, पृ0 39 ।

38. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, पूर्वो0, पृ0 170 ।

39. वही, पृ0 169, 171 ।

40. फ्यूहरर, ए0, दि मानूमेन्टल ऐण्टीकुटीज एण्ड इन्सकृप्सन्स दि नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज एण्ड अवध, बनारस, 1969, पृ0 151,: ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, पूर्वो, पृ0 160 ।

41. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, वाल्यूम 3, पूर्वो0, पृ0 35, 37 ।

42. वाटर्स, टी0, ऑन ह्वेनसाँग ट्रविल्स इन इण्डिया, वाल्यूम 2, पृ0 251 ।

43. कनिंघम, ए0, दि एन्श्येन्ट जागृफी ऑफ इण्डिया, बनारस, 1963, पृ0 405, 406,: मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, वाल्यूम 3, पूर्वो0, पृ0 112,: त्रिपाठी, आर0 एस0 हिस्ट्री ऑफ कन्नौज टू दि मुस्लिम कानकेस्ट, बनारस, 1937, पृ0 113, 118,: बोस, एन0 एस0, हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज ऑफ जैजाकभुक्ति, कलकत्ता, 1956, पृ0 13, 14 ।

44. मिरासी, वा0 वि0, कलचुरि नरेश और उनका काल, अनुवादक-वासुदेव विष्णु, भोपाल, 1965,: स्टडीज इन इण्डोलॉजी, नागपुर, 1960,: कार्पस इन्सकृप्सनम् इण्डिकेरम्, जिल्द 4, भूमिका, 1955,

पृ0 30 ।

45. कर्ण का बनारस अभिलेख, कार्पस, जिल्द 4, श्लोक 2, पृ0 241,: कार्पस जिल्द 4, श्लोक 8, पृ0 378 ।
46. रॉय, एच0 सी0, दि डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, वाल्यूम 2, कलकत्ता, 1936, पृ0 739।
47. वही, पृ0 740, 741 ।
48. फ्यूहरर, ए0, पूर्वो0, पृ0 150 ।
49. श्रीवास्तव, रमेशचन्द्र बाँदा वैभव, बाँदा, 1994, पृ0 89-90।
50. फ्यूहरर, ए0, पूर्वो0, पृ0 150,: राय चौधरी, एच0 सी0 पूर्वो0, पृ0 740 ।
51. बम्बई गजेटियर, जिल्द 1, भाग 1, पृ0 156 ।
52. फ्यूहरर, ए0, पूर्वो0, पृष्ठ 150,: ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, पूर्वो0, पृ0 160 ।
53. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, वाल्यूम 3, पूर्वो0, पृ0 128, 131, त्रिपाठी, आर0 एस0, पूर्वो0, पृ0 201 ।
54. त्रिपाठी, आर0 एस0, पूर्वो0, पृ0 203, 204 ।
55. एनुवल रिपोर्ट ऑफ दि आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1903, 1904, पृ0 280, 283,: एपीग्राफिया इण्डिया, जिल्द 18, पृ0 107, 110 ।
56. विद्धशालभंजिका, प्रथम, श्लोक 6,: बालभारत, प्रथम, श्लोक 11 ।
57. बालभारत, प्रथम, श्लोक 7 ।
58. वैद्य, चिन्तामणि विनायक, हिस्ट्री ऑफ मेडुवल हिन्दू इण्डिया, भाग 2, 1924, पृ0 7-17, 31-32।
59. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, राजस्थान का इतिहास, जिल्द 1, पृ0 115 और आगे ।
60. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, जिल्द 10, पृ0 337 और आगे ।
61. वही, पृ0 582 और आगे, वही, जिल्द 13, पृ0 137 और आगे,: पूना ओरियेन्टलिस्ट, जिल्द 2, पृ0 49, 57,: शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, जिल्द 1, अजमेर, 1966, पृ0 472-483,: शर्मा, दशरथ, लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर, दिल्ली, 1970, पृ0 5 ।
62. मुंशी, कन्हैयालाल माणिकलाल, द ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश, भाग 1, विद्या भवन 1920, पृ0 173-181 ।
63. मजूमदार, आर0सी0, जर्नल ऑफ द डिपार्टमेंट ऑफ लेटस, कलकत्ता विश्वविद्यालय, जिल्द 10, पृ0 3 पर उद्धृत ।
64. पुरी, बैजनाथ, द हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहार, बाम्बे, 1957, पृ0 3-9 ।
65. भारती, सं0 6, भाग 2, 1962-1963, पृ0 39-41 ।

66. पुरी, बैजनाथ, पूर्वो0, पृ0 35, 42,: मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0 वाल्यूम 4, पूर्वो0, पृ0 23 ।
67. वही, पृ0 7, 14, 25, 26, 27 ।
68. वही, पृ0 27 ।
69. वही, पृ0 28 ।
70. पुरी, बैजनाथ, पूर्वो0, पृ0 51, त्रिपाठी, आर0 एस0, पूर्वो0, पृ0 238 ।
71. पुरी, बैजनाथ, पूर्वो0, पृ0 55 ।
72. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, वाल्यूम 4, पूर्वो0, पृ0 29 ।
73. त्रिपाठी, आर0 एस0, पूर्वो0, पृ0 246,: पुरी, बैजनाथ, पूर्वो0, पृ0 65,: इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्डबाई ईट्स ऑन हिस्टोरियन्स, वाल्यूम 1, इलाहाबाद, पृ0 4 ।
74. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0 वाल्यूम 4, पूर्वो0, पृ0 33 ।
75. त्रिपाठी, आर0 एस0 पूर्वो0, पृ0 253,: पुरी, बैजनाथ, पूर्वो0, पृ0 72 ।
76. बोस, एन0 एस0, पूर्वो0, पृष्ठ 25,: पुरी, बैजनाथ, पूर्वो0, पृ0 81, त्रिपाठी, आर0 एस0 पूर्वो0, पृ0 256,: मित्रा, एस0 के0, अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, कलकत्ता, 1958, पृ0 34 ।
77. मित्रा, एस0 के0, पूर्वो0, पृ0 34, 35 ।
78. बोस, एन0 एस0, पूर्वो0, पृ0 27,: मित्रा, एस0 के0, पूर्वो0, पृ0 35 ।
79. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0 वाल्यूम 4, पूर्वो0, पृ0 37,: बोस0 एन0 एस0, पूर्वो0, पृ0 31, 32,: राय चौधरी, एच0 सी0, वाल्यूम 2, पूर्वो0, पृ0 589 ।
80. बोस, एन0 एस0, पूर्वो0, पृ0 32,: मित्रा, एस0 के0 पूर्वो0, पृ0 37, 38 ।
81. कनिंघम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 2, पृ0 445 ।
82. वही, भाग 21, पृ 70, 71 ।
83. बुन्देली, राधाकृष्ण, बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, बाँदा, 1989, पृ0 52 ।
84. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ0 127,: कनिंघम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 2, पृ0 441
85. वही, भाग 1, पृ0 137 ।
86. इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग 37, 1908, पृ0 136, 137 ।
87. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण, प्रयाग, 1968, पृष्ठ 12 ।
88. इण्डियन एन्टीक्वेरी, फरवरी, 1873, पृष्ठ 33,: कनिंघम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 2, पृ0 445-446 ।

89. पाठक, विशुद्धानन्द, उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास, लखनऊ, 1990, पृ0 372 ।

90. इण्डियन एन्टीक्वेरी, जिल्द 18, पृ0 336-337 ।

91. एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 1, पृ0 137-147 ।

92. इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग 18, पृ0 236-238 ।

93. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, श्लोक 10, पृ0 125 ।

94. वही, श्लोक 14, 15, पृ0 141 ।

95. वही, जिल्द 1, श्लोक 12, 13, पृ0 125-126 ।

96. वही, भाग 1, श्लोक 15, पृ0 126 ।

97. वही, श्लोक 20, पृ0 141-142 ।

98. जगनिक, परमालरासो, 88 वां पद, नागरी प्रचारणी सभा, 1983, पृ0 26-27 ।

99. एनुवल रिपोर्ट ऑफ दि आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, जिल्द 7, पृ0 226,: जिल्द 21, पृ0 15-17 ।

100. "पुनर्येन श्री क्षितिपालदेवः नृपतिसिंहासने स्थापितः।" एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पंक्ति 10, पृ0 122,: राय, हेमचन्द्र, डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, भाग 1, कलकत्ता, 1931, पृ0 881-882 ।

101. इण्डियन एन्टीक्वेरी, जिल्द 16, पृ0 202 ।

102. वही, भाग 17, पृ0 202 ।

103. वही, भाग 16, पंक्ति 2, 3, पृ0 203 ।

104. एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 1, श्लोक 30, पृ0 127 ।

105. राय, हेमचन्द्र, पूर्वो0, भाग 2, 1936, पृ0 674 ।

106. वैद्य, चिन्तामणि विनायक, पूर्वो0, पृ0 126 ।

107. कनिंघम, क्वायन्स ऑफ मेडुवल इण्डिया, पृ0 67-68 ।

108. राय हेमचन्द्र, पूर्वो0, भाग 2, पृ0 674 ।

109. एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 1, पृ0 129-134 ।

110. इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग 16, पंक्ति 7, पृ0 203 ।

111. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, श्लोक 19, पृ0 219, 221, 222 ।

112. गर्दिजी, अबू सैयद, किताब-जैमुल-अकबर, सम्पादक-एम0 नाजिम, पृ0 76,: अतहर इब्न-उल, अल-तारीख-उल-कामिल, भाग 9, पृ0 218 ।

113. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 2, पृ0 237 ।

114. निमामुद्दीन, अहमद ख्वाजा, तबकात-ए-अकबरी, वाल्यूम 1, कलकत्ता, 1939, (इंगलिश ट्रांशलेशन, बाई, बी0 डी0), पृष्ठ 12 ।
115. ता0 का0 आ0, पृ0 216 ।
116. वही ।
117. निजामुद्दीन, अहमद ख्वाजा, पूर्वो0, पृष्ठ 12,: इसी प्रकार का वर्णन गर्दिजी, अबू सैयद, किताब-जैमुल-अकबर, पूर्वो0, पृ0 76 में भी पाया जाता है ।
118. गर्दिजी, अबू सैयद, पूर्वो0, पृ0 8 ने इसे लुगत-ए-हिन्दवी बतलाया है ।
119. ब्राउनी, लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ परशिया, 1918, पृ0 170 ।
120. बुलक, अल-तारीख-उल् कामिल ऑफ इब्न-उल-अथीर 1874, जिल्द 9, पृष्ठ 115-116 ।
121. एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 2, पृ0 237 ।
122. वही, जिल्द 1, श्लोक 22, पृ0 20 ।
123. स्मिथ, जर्नल ऑफ दि र्वायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन, लन्दन, 1909, पृ0 279-280
124. एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 16, पृ0 205 ।
125. राय, हेमचन्द्र, पूर्वो0, भाग 1, पृ0 605 ।
126. निजामुद्दीन, अहमद ख्वाजा, पूर्वो0, पृ0 12, निजामुद्दीन द्वारा यमुना का उल्लेख गलत है,: इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, जिल्द 21, पृ0 175 ।
127. स्मिथ, जर्नल ऑफ दि र्वायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन, लन्दन, 1909, पृ0 379-380, फरिश्ता, तारीखे-फरिश्ता, अनुवाद-ब्रिग्स, जिल्द 1, पृ0 63 ।
128. अतहर, इब्न-उल, पूर्वो0, पृ0 116 और आगे ।
129. एन्श्येन्ट इण्डिया, राय चौधरी, मजूमदार, पृ0 351, राय, हेमचन्द्र, पूर्वो0, जिल्द 2, पृ0 62, पृ0 692-693 ।
130. बोस, एन0 एस0, पूर्वो0, पृ0 62,: राय चौधरी, एच0 सी0 पूर्वो0, पृ0 693 ।
131. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ0 203 ।
132. इण्डियन एन्टीक्वेरी हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, भाग 2, पृ0 685 ।
133. नन्यौरा अभिलेख, इण्डियन एन्टीक्वेरी, जिल्द 13, पृ0 205-207 ।
134. चरखारी अभिलेख, एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 20, पृ0 125-128 ।
135. राय, हेमचन्द्र, पूर्वो0, भाग 2, पृ0 685 ।
136. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, श्लोक 7, पृ0 198 ।

137. तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रयाग, संवत् 1990, पृ0 47 ।
138. वही, पृ 47-49 ।
139. वीरवर्मा का अजयगढ़ प्रस्तर अभिलेख, एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 1, श्लोक 3, पृ0 327-329,: महोबा अभिलेख, एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 1, श्लोक 26, पृ0 219-222 ।
140. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृष्ठ 327, 389, इसकी तुलना कालंजर के चन्देल अभिलेख 8, 9 पंक्तियों में की जा सकती है।: जर्नल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग 17, पृ0 317 ।
141. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 49-50 ।
142. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, श्लोक 9, पृ0 333-336 ।
143. राय, हेमचन्द, पूर्वो, भाग 2, पृ0 701 ।
144. क्वायन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया, सं0 14, 16, प्लेट 8, पृ0 79,: कनिंघम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 2, पृ0 458-459 ।
145. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ0 203 ।
146. तिवारी, गोरे लाल, पूर्वो0, पृ0 50 ।
147. बोस, एन0 एस0, पूर्वो0, पृ0 83 ।
148. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, श्लोक 12, पृ0 198-203 ।
149. स्मिथ, दे0, इण्डियन एन्टीक्वेरी, जिल्द 38, पृ0 144 ।
150. इण्डियन एन्टीक्वेरी, जिल्द 37, 1908, पृ0 132 ।
151. बोस, एन0 एस0, पूर्वो0, पृ0 86 ।
152. जर्नल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग 17, 18, पंक्ति 14, 1848, प0 318 ।
153. बंगाल गजेटियर, भाग 1, जिल्द 1, पृ0 178-179 ।
154. इण्डियन एन्टीक्वेरी, पूर्वो., पृ0 144 ।
155. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, श्लोक 42, पृ0 206 ।
156. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 51-52 ।
157. बोस, एन0 एस0, पूर्वो0, पृ0 91-92 ।
158. मित्रा, एस0 के0, पूर्वो0, पृ0 229-233 ।
159. बोस, एन0 एस0, पूर्वो0, पृ0 93 ।
160. चन्दवरदाई, पृथ्वीराजरासो, सम्पादक, पाण्ड्या, मोहन लाल विष्णुलाल और दास, श्याम सुन्दर, बनारस, 1913, पृ0 2507-2615 ।
161. बोस, एन0 एस0, पूर्वो0, पृ0 94-95, (जैजाक भुक्ति की विजय तो पृथ्वीराज तृतीय द्वारा उपलब्ध

की गई। उसके सन्दर्भ में यह शिलालेख एक ऐतिहासिक प्रमाण हैं। इस शिलालेख की भाषा सुप्रसिद्ध भाट कवि सारंगधर द्वारा रची गई, जिसका उल्लेख 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक ग्रंथ में भी किया गया है ।)

162. निजामी, हसन, ताजुल-मा-अतहर, अनु. इलियट, भाग 2, पृ0 231-321 ।
163. हबीबुल्ला, ए0 बी0 एम0, द फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, इलाहाबाद, 1961, पृ0 106 ।
164. राय, हेमचन्द्र, पूर्वो0, भाग 2, पृ0 226 ।
165. बंगाल गजेटियर, भाग 1, 2, पृ0 469 ।
166. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 60 ।
167. मिश्र, केशव चन्द्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी, विक्रमी सम्वत् 2011, पृ0 133 ।
168. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 76 ।
169. हबीबुल्ला, ए0 बी0 एम0, पूर्वो0, पृ0 150 ।
170. ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, पूर्वो0, पृ0 162 ।
171. फरिश्ता, पूर्वो0, अनुवाद- ब्रिग्स, भाग 1, पृ0 937 ।
172. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 93 ।
173. वही, पृ0 94-95 ।
174. ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, पूर्वो0, पृष्ठ 163, लाल, के0 एस0 टु लाइट ऑफ दि सुल्तान, बाम्बे, 1963, पृ0 9 ।
175. लाल, के0 एस0, पूर्वो0, पृ0 45 ।
176. वही, पृष्ठ 170 ।
177. लाल, के0 एस0, पूर्वो0, पृष्ठ 170, ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, पूर्वो0, पृ0 163 ।
178. निजामुद्दीन, अहमद ख्वाजा, पूर्वो0, वाल्यूम 1, पृ0 396-397 ।
179. हलीम (हमीद), अब्दुल, हिस्ट्री ऑफ दि लोदी सुल्तान ऑफ दिल्ली एण्ड आगरा, दिल्ली, 1974, पृ0 139-140 ।
180. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, मुगलकालीन भारत, आगरा, 1981, पृ0 49 ।
181. त्रिपाठी, आर0 एस0, राइज एण्ड फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर, इलाहाबाद, 1960, पृ0 54 ।
182. निजामुद्दीन, अहमद ख्वाजा, पूर्वो0, वाल्यूम, 1, 2, पृ0 68-69 ।
183. कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम भाग, छतरपुर, 1974, पृ0 94 ।
184. त्रिपाठी, आर0 पी0, पूर्वो0, पृ0 126-127 ।

185. निजामुद्दीन, अहमद ख्वाजा, पूर्वो0, भाग 2, पृष्ठ 173-174,: त्रिपाठी, आर0 पी0, पूर्वो0, पृ0 127।
186. निजामुद्दीन, अहमद ख्वाजा, पूर्वो0, वाल्यूम 2, पृ0 176 ।
187. वही, पृ0 142 ।
188. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, पूर्वो0, पृ0 101-102 ।
189. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 89-90 ।
190. ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, पूर्वो0, पृ0 164 ।
191. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 94 ।
192. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 139 ।
193. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 94 ।
194. स्मिथ, बी0 ए0 अकबर द ग्रेट मुगल, दिल्ली, 1958, पृ0 237 ।
195. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, पूर्वो0, पृष्ठ 155 ।
196. ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, पूर्वो0, पृ0 155 ।
197. त्रिपाठी, आर0 पी0, पूर्वो0, पृ0 432 ।
198. ड्रेक-ब्रॉक मैन, डी0 एल0, पूर्वो., पृ0 168 ।
199. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 64 ।
200. कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का इतिहास (वीर चरितामृत),ओरछा खण्ड, तीसरा भाग, छतरपुर, 1974, पृ0 33 ।
201. वही, पृ0 116 ।
202. वही, पृ0 137-138,: कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड के कवि, छतरपुर 1974, पृ0 65 ।
203. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, पूर्वो0, पृ0 357 ।
204. सिंह, महेन्द्र प्रताप, ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल, पृ0 116,: कालिंजर का प्रसिद्ध दुर्ग औरंगजेब के हांथों से छत्रसाल ने छीन लिया था ।
205. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 192-193 ।
206. वही, पृ0 193-194 ।
207. छत्रप्रकाश की टिप्पणी, पृ0 169-171 ।
208. 'फिरत देश में मुगल गदेले ।
सिंहन की सुथरी गज खेलैं ।।' -लाल कवि, छत्रप्रकाश।
209. इम्पीरियल गजेटियर, भाग 9, पृ0 366 ।
210. मिश्र, लक्ष्मीप्रसाद, बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास, भाग 1, 1990, पृ0 152 ।

211. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 232 ।

212. वही, पृ0 233-236,: कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पन्ना खण्ड, दूसरा भाग, पृ0 160-168।

213. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 277-279, गुप्ता, भगवानदास, मस्तानी-बाजीराव और उसके वंशज बाँदा के नवाब, ग्वालियर, 1983, पृ0 62-64 ।

214. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 299-302,: त्रिपाठी, वासुदेव, वीरों का गढ़ कालिंजर, दतिया, प्रथम संस्करण 1956, द्वितीय संस्करण, 1996, पृ0 89-97,: मिश्र, लक्ष्मीप्रसाद, पूर्वो0, पृ0 152 ।

215. बुन्देलखण्ड गजेटियर, पृ0 123 ।

216. बाँदा गजेटियर, पुराना, लखनऊ, 1977, पृ0 63,: बाँदा गजेटियर, नया, पृ0 172,: बुन्देलखण्ड गजेटियर, पृ0 123 ।

217. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 63 ।

218. बुन्देलखण्ड गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 124 ।

219. दत्त, आर0 पी0, इण्डिया टुडे, पृ0 78 ।

220. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 49 ।

221. वही, पृ0 52, 189 ।

222. मजूमदार, आर0 सी0, दि सिपाँय म्यूटिनी एण्ड दि रिवोल्ड ऑफ एट्टीन फिफ्टी सेवेन, कलकत्ता, 1957, पृ0 172 ।

223. वही, पृष्ठ 43-44,: सेन, एस0 एन0, एट्टीन फिफ्टी सेवन (1857), कलकत्ता, 1957, पृ0 41-44 ।

224. मजूमदार, आर0 सी0 पूर्वो0, पृ0 44-47,: सेन, एस0 एन0 पूर्वो0, पृ0 49-50 ।

225. नरैटिव0, पृ0 520 ।

226. सेण्ट्रल इण्डिया गजेटियर, पृ0 372, 376, 399,: चरखारी गजेटियर, पृ0 209-210,: ईस्टर्न बुन्देलखण्ड गजेटियर, अजयगढ़ स्टेट, पृ0 249,: तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 292-294, 305।

227. नरैटिव0, पृ0 521 ।

228. वही, पृ0 522 ।

229. वही, पृ0 522 ।

230. वही, पृ0 523 ।

231. वही, पृ0 524 ।

232. वही, पृ0 525 ।

233. वही ।

234. वही, पृ0 526 ।

235. इलियास, सैयद मुहम्मद, तारीख-ए-बुन्देलखण्ड, पृ0 135 ।

236. नरैटिव0, पृष्ठ 527-529 ।

237. वही, पृ0 530,: जालौन गजेटियर, पृ0 134 ।

238. वही, पृ0 528, 530 ।

239. वही, पृष्ठ 529-530,: फॉरेन कन्सल्टेशन, 28 मई 1858, भाग 1, नं0 234 ।

240. फॉरेन कन्सल्टेशन, 28 मई, 1858, भाग 1, नं0 234 ।

241. नरैटिव., पृ0 532 ।

242. फॉरेन कन्सल्टेशन, 28 मई 1858, नं0 234, नरैटिव0, पृ0 541, 542, 544 ।

243. नरैटिव0, पृ0 533,: स्मिथ, रिबेलियस रानी, पृ0 106 ।

244. नरैटिव0, पृ0 534-536,: भार्गव मोतीलाल, नाना साहब, पृ0 51-52,: बाँदा गजेटियर, पूर्वो., पृ0 190,: सावरकर विनायक दामोदर, 1857 का भारतीय स्वतन्त्रता समर, आगरा, 1957, पृ0 424-425 ।

245. उत्सर्ग, सम्पादक- दशरथ जैन, प्रथम संस्करण, छतरपुर, अप्रैल 1978, पृ0 132 ।

246. राष्ट्रीय अभिलेखागार कन्सल्टेशन, 252/6, दिनाँक 17-6-1859 ।

247. श्रीवास्तव, भगवानदास, बाँदा का बागी नवाब अलीबहादुर द्वितीय, बाँदा, 1998, पृ0 73, 83 ।

248. सावरकर, विनायक दामोदर, पूर्वो0, पृ0 457 ।

249. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 61 ।

250. कामद-क्रान्ति, सम्पादक- चन्द्रधर द्विवेदी, बाँदा, 1972, पृ0 124-125 ।

251. वही, पृ0 135 ।

252. वही, पृ0 155 ।

253. वही, पृ0 138-141 ।

254. बुन्देली, राधाकृष्ण, बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, भाग 3, (अप्रकाशित), पृ0 457 ।

चौबुर्जी दरवाजा (तीसरा द्वार)

कालिंजर

चतुर्थ
अध्याय
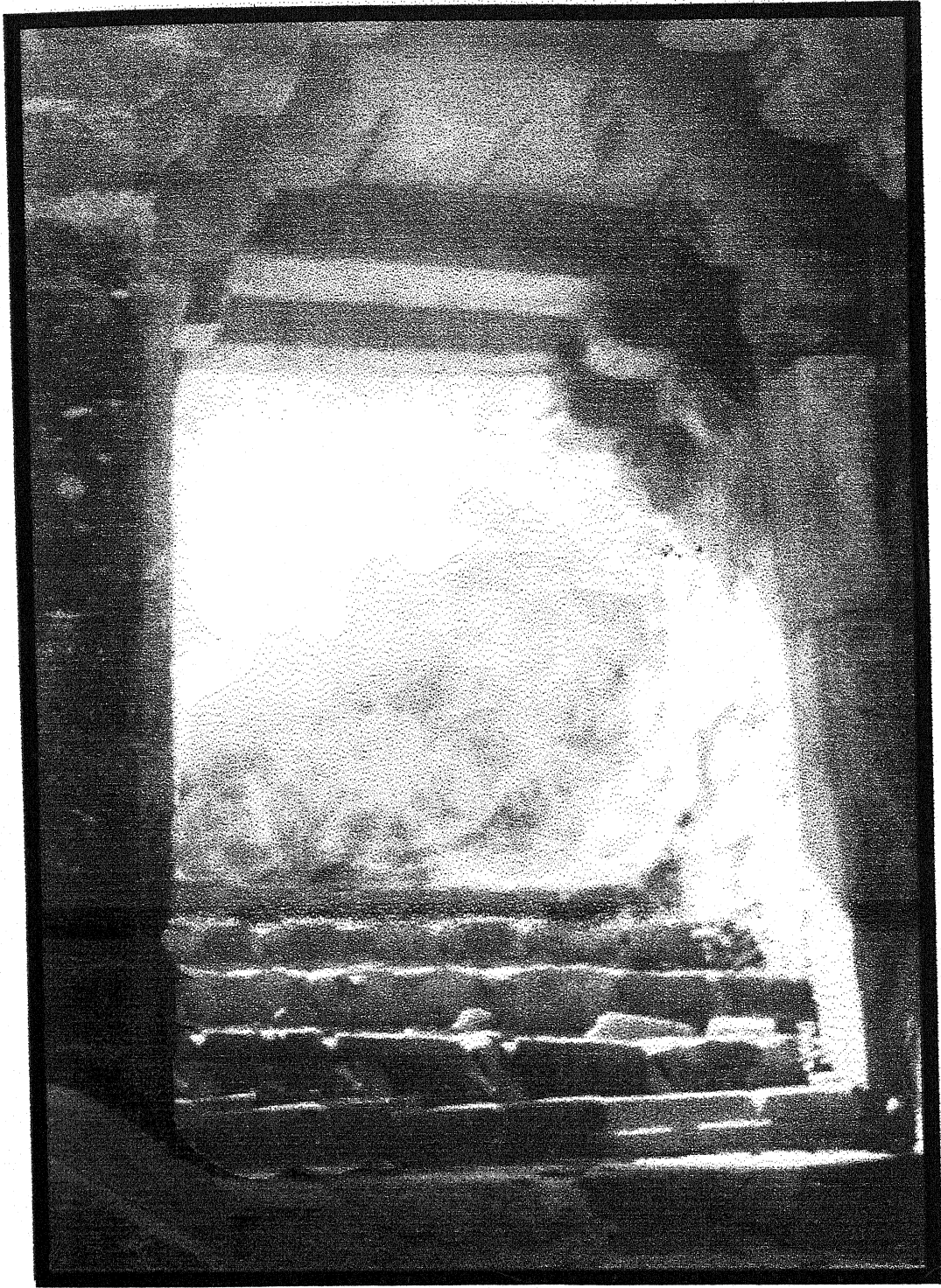
कालिंजर परिक्षेत्र में उपलब्ध ऐतिहासिक स्थल-

काालिंजर परिक्षेत्र अनेक ऐतिहासिक स्थलों से युक्त है। ये ऐतिहासिक स्थल अनेक क्षेत्रों में फैले हुए हैं। इनका सम्बन्ध पुराऐतिहासिक काल से लेकर महाकाव्यकाल, बौद्ध युग, गुप्त युग, चन्देल काल, हर्षवर्धन युग, सुल्तान युग, मुगल काल से लेकर अंग्रेजों तक और उसके बाद तक के हैं। ये स्थल धर्म, वास्तुशिल्प, संस्कृति तथा विशिष्ट रीति-रिवाजों से युक्त है। यहां की सभ्यता, संस्कृति अन्य ऐतिहासिक क्षेत्रों से भिन्न हैं, जिन्हें देखकर व्यक्ति अपने आप प्रभावित होता है। यहां के गौरवमई अतीत से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। यह स्थल निम्नलिखित हैं-

1.मड़फा

मड़फा ऐतिहासिक दृष्टि से कालिंजर परिक्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थल है। मड़फा दुर्ग एक समतल मैदानी पहाड़ी पर $25^{0}7$ अक्षांश उत्तर में और $80^{0}45$ देशान्तर पूर्व में स्थित है। इस दुर्ग की स्थिति कालिंजर जैसी है। यह चारों तरफ पवर्त श्रेणियों से घिरा हुआ है। इसका एक हिस्सा ढ़ालदार है। सम्पूर्ण पर्वत में बलुए पत्थर पर्याप्त मात्रा में हैं। चन्देल शासनकाल में मड़फा उन 8 दुर्गों में से एक था जिन्हें चन्देलों के मुख्य दुर्गों की मान्यता प्राप्त थी। यहां आज भी चन्देल कालीन अनेक ऐतिहासिक स्थल उपलब्ध होते हैं। यहां पर इस बात के पुरावशेष भी मिलते हैं कि यहां कभी प्राचीन और सृदढ़ दुर्ग था। यहां की पहाड़ी के ऊपर जो दुर्ग के अवशेष उपलब्ध होते हैं वह निर्माण की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति ने भी इस दुर्ग को चारों ओर से सुरक्षा प्रदान की थी। आज़ भी यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त सराहनीय है। मड़फा दुर्ग, कालिंजर दुर्ग से 25-26 किलोमीटर दूर उत्तर पूर्व में है। यह दुर्ग कालिंजर दुर्ग के बघेलावारी मार्ग से जुड़ा हुआ है। दुर्ग के ऊपर पहुंचने के लिए कोई पक्का रास्ता नहीं है।दुर्ग में पहुंचने के लिए तीन रास्ते हैं- प्रथम रास्ता-मानपुर गांव से है। यह गांव पूर्वोत्तर में है, यहीं से दुर्ग के ऊपर चढ़ा जा सकता है। दूसरा रास्ता- खमरियां गाँव से है। यह गांव दक्षिण पूर्व में हैं। तीसरा रास्ता- कुरहम गांव से है, जो दक्षिण पश्चिम में है। दुर्ग के ऊपर जो द्वार उपलब्ध होता है वह हांथी दरवाजा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अगल-बगल की दीवारें नष्ट हो गई है। यहां पर चंदेलकालीन इमारतों के कुछ अवशेष उपलब्ध होते हैं। दरवाजें से थोड़ी दूरी पर एक झोपड़ी मिलती है जिसमें खपरैल छाया है। इसके नजदीक एक कुंआ है, आगे दक्षिण पूर्व की ओर बढ़ने पर खमरिया के सन्निकट दो छोटे-छोटे चंदेलकालीन मंदिर है। ये मंदिर एक चौकोर चबूतरे पर निर्मित हैं ऐसा लगता है कि ये चौकोर मंदिर का कुछ भाग जमीन के अन्दर धस गया हैं। इनका निर्माण लाल पत्थरों से हुआ है। बीच-बीच में मंदिरों की दीवारों को साधनें के लिए स्तम्भों का निर्माण हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां मंदिरों में बजाने के लिए घण्टे टांगे जाते थे, जिन्हें जंजीरों के सहारे बजाया जाता था। यहां पर अनेक चंदेलों की इमारतों के अवशेष हैं। ऊपर की जलापूर्ति के लिए एक जलाशय बना हुआ है जिसे चट्टान काटकर बनाया गया है । मुख्यतः ऐसा लगता है कि यह जलाशय यहां की जलापूर्ति का साधन

था। इसका पानी कभी सूखता नहीं था। मड़फा दुर्ग की ऊँचाई समुद्र तल से 378 मीटर है। इसके पश्चिम में एक दूसरा सरोवर है यह भी चट्टान काटकर बनाया गया है। यहीं पर चन्देलकालीन मंदिर निर्मित हैं, मंदिरों के निकट एक कुरहम दरवाजा है। कहते है कि जब बरसात नहीं होती थी अथवा बरसात कम होती थी, उस समय इन सरोवरों से जलापूर्ति होती रहती थी। इस दुर्ग की सम्पूर्ण पर्वत श्रेणी पर विविध प्रकार की वनस्पतियाँ उपलब्ध होती हैं। इसके निचले हिस्से में चारो तरफ जंगल है। बीच-बीच आवासीय बस्तियों के अवशेष भी प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम इस क्षेत्र का दौरा 18 वीं शताब्दी ई0 में टीफेन्थेलर नामक व्यक्ति ने किया था। इसी ने मड़फा के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डाला था। टीफेन्थेलर के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि उस समय यहाँ का नाम मन्ड़ेफा था। उस समय यह क्षेत्र किसी बघेल राजा के अधिकार में था। औरंगजेब के समय में यह क्षेत्र पन्ना राज्य में शामिल था तथा पन्ना महाराज हरवंश राय के समय तक यह क्षेत्र पन्ना में ही रहा। जब छछरिहा का युद्ध हुआ उस युद्ध में यह दुर्ग ध्वस्त हो गया और सन् 1780 ई0 में यह बाँदा के अधिकार में आ गया तथा इसका पतन प्रारम्भ हो गया। सन् 1804 ई0 में इस दुर्ग पर अंग्रेजी सेनाओं ने रात्रि में आक्रमण किया और अपने अधिकार में ले लिया। अंग्रेजों के वर्णनानुसार उस समय यह क्षेत्र घने जंगल से घिरा हुआ था। जहां खुंखार जंगली जानवर भी रहते थे। एक जनश्रुति के अनुसार कालिंजर और मड़फा दुर्ग का निर्माण एक ही साथ एवं एक ही रात्रि में प्रारम्भ हुआ था। कालिंजर का दुर्ग पहले निर्मित हो जाने के कारण मड़फा का दुर्ग अधूरा ही रह गया।[1] सम्भवतः यह बात सत्य है क्योंकि मड़फा का दुर्ग अर्धनिर्मित प्रतीत होता है। मड़फा किले का वर्णन किसी भी मुस्लिम इतिहासकार ने नहीं किया। इसके अनुसार कनिंघम का अनुमान है कि कालिंजर के पतन के पश्चात ही इसकी ख्याति हुई। अब मड़फा दुर्ग निर्जन एवं जंगल से युक्त है।[2]

पर्यटन की दृष्टि से मड़फा एक दर्शनीय स्थल है तथा इसका भी उतना ही महत्व है जितना कालिंजर का। महाभारत आदि पुराणों में इस स्थल के संदर्भ में अनेक कथायें उपलब्ध होती हैं। कहते है कि सुप्रसिद्ध ऋषि च्यवन का यहीं निवास स्थान था। उन्होंनें सुकन्या से शादी करने के लिए पुनः वृद्धावस्था से युवावस्था धारण की थी। इनके अतिरिक्त सुप्रसिद्ध वैद्य एवं ऋषि चरक का यहीं आश्रम था, जिन्होंने आयुर्वेद पर अनेक पुस्तकों की रचना की। इसी स्थल में महर्षि वेदव्यास की ससुराल भी थी। कहते हैं कि जब वेदव्यास अपनी माता सत्यवती से मिलनें के लिए हस्तिनापुर जा रहे थे उस समय सरस्वती नदी(बागे नदी) को पार करते समय कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने महर्षि व्यास की पिटाई कर दी, जिससे महर्षि व्यास बेहोश हो गये तब उन्हें महाअर्थवर्ण के शिष्यों ने मड़फा पर्वत के ऊपर उनके आश्रम में पहुंचा दिया । महाअर्थवर्ण की पुत्री का नाम वाटिका था। वह बड़े स्नेहभाव से व्यास ऋषि की सेवा करती रही। बाद में महर्षि अर्थवर्ण की पुत्री वाटिका ने महर्षि व्यास से विवाह कर लिया। उनसे व्यास पुत्र सुखदेव उत्पन्न हुए।[3] महर्षि अर्थवर्ण को अथर्वा भी कहते हैं। इन्हीं के नाम पर चार वेदों में से एक वेद का नाम पड़ा जो अथर्ववेद है।

पुराणों में इस स्थान को माण्डव ऋषि की तपस्थली कहा गया है। यह महान तपस्वी थे। पहाड़ी पर स्थित जर्जर दुर्ग चन्देल कालीन कालिंजर दुर्ग के समान है। चन्देलों के बाद बघेलों और बुन्देलों ने भी यहां राज्य किया। मड़फा मण्डप का ही विकसित रूप प्रतीत होता है। शैलमालाओं से आवृत्त इस स्थान की आकृति मण्डप के समान है। यहां पर शिव का प्रसिद्ध देवालय, अनेक मूर्तियां तथा कुछ अभिलेख मिले हैं।[4] माण्डव ऋषि के आश्रम में कण्व आदि ऋषि रहते थे। इसी स्थान पर महर्षि विश्वामित्र से मेनका का मिलाप हुआ था, जिससे शकुन्तला नाम की पुत्री उत्पन्न हुई थी और वह इसी आश्रम में पली। शकुन्तला का पुत्र भरत भी यहीं उत्पन्न हुआ, जो दुष्यन्त के राज्य का उत्तराधिकारी बना। इस मड़फा परिक्षेत्र में भारत एवं भरत नाम के अनेक गांव उपलब्ध होते हैं, जिससे इसकी पुष्टि होती है। अतर्रा के निकट हस्तम गांव है जहां कई प्राचीन स्थल है। ऐसा प्रतीत होता है कि यही प्राचीन हस्तिनापुर था। चूंकि बाँदा जनपद के आस-पास कुरू वंशीय क्षत्रियों का बाहुल्य था, इसलिए इसे नकारा नहीं जा सकता है। राधाकृष्ण बुन्देली की यह धारणा है कि वास्तविक कुरू राज्य चिल्ला से लेकर इलाहाबाद की सीमा तक था, जो बाद में दो भागों में विभाजित हुआ। बागे नदी के उस पार का भाग कौरवों के हांथ में आ गया, जिसकी राजधानी खण्डेहा अथवा खाण्डवप्रस्त चित्रकूट जनपद के मऊ तहसील में थी। बागे नदी के इस तरफ का भाग पाण्डवों के अधिकार में आ गया, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर बनी रही। मड़फा के पास प्राचीन ग्राम बदौसा महर्षि वेदव्यास के नाम का ही अपभ्रंश है। भरतकूप के पास व्यासकुण्ड नामक कुण्ड भी उपलब्ध होता है जिससे मड़फा स्थल को महाभारत और रामायण काल से जोड़ा जा सकता है।

कहते हैं कि बघेल राजा व्याघ्रदेव विक्रमी संवत् 1290 में कालिंजर के पास मड़फा में आया। इसने मुकुंददेव चन्द्रावत की कन्या सिन्धुमती से विवाह किया तथा इस प्रकार से उसने मड़फा का स्वंतत्र राज्य स्थापित किया। इसके पश्चात वीरसिंह देव, वीरभान देव और राचन्द्र बघेल ने मड़फा दुर्ग पर अकबर के सयम तक शासन किया। उसके पश्चात बघेल अपनी राजधानी रींवा ले गये।[5] मड़फा दुर्ग के समीप बघेलिन, बघेलावारी तथा फतेहगंज के आस-पास बघेल राजाओं के बनवाये हुए अनेक स्मारक प्राप्त होते हैं।

मड़फा के दर्शनीय स्थल-

मड़फा दुर्ग में अनेक दर्शनीय स्थल हैं जो पुरातात्विक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । वास्तुशिल्प की दृष्टि से उनका वास्तुशिल्प अत्यन्त उच्चकोटि का है। यह वास्तुशिल्प गुप्त युग से चंदेल युग तक का है। यहां पर कुछ ऐसे स्थल भी प्राप्त हुए है, जहां वास्तुकारों ने वास्तुविद्या का परिचय भी दिया है। यह स्थल निम्नलिखित हैं।-

1. हांथी दरवाजा-

जैसे ही हम दुर्ग के ऊपर चढ़ते है तो सर्वप्रथम हमें एक द्वार के दर्शन होते हैं। यह द्वार हांथी दरवाजा के नाम से प्रसिद्ध है। इसका निर्माण बलुये पत्थर से हुआ है। इसके विषय में यह कहा जाता है। कि चन्देल

शासक अपने युद्ध के दौरान हांथियों को वाहन के रूप में प्रयोग करते थे और इसी द्वार से उनका आना-जाना था। इसलिए इस द्वार का नाम हांथी दरवाजा पड़ा। यह चन्देलयुगीन वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट नमूना है। इसकी तुलना कालिंजर दुर्ग के ऊपर नीलकण्ठ जाने वाले रास्ते में द्वार है, इसी प्रकार का एक द्वार जौहरा के सन्निकट है, की गई है। इन द्वार स्तम्भों में उच्चकोटि की नक्काशी है तथा अन्दर अनेक स्तम्भ है।

2. शिव मन्दिर-

हांथी दरवाजे से थोड़ी दूर पर एक विशालकाय शिव मंदिर है। इस मंदिर की यह विशेषता है कि इसमें शिवलिंग नहीं है अपितु शिव की विशालकाय मूर्ति है, जिसकी तुलना नीलकण्ठ मंदिर के समीप सरग्वाह से लगे हुए निचले कुण्ड में प्राप्त कालभैरव की मूर्ति से की जा सकती है। शिव की इस प्रतिमा में लगभग 18 भुजाऐं हैं जो अनेक अस्त्र-शस्त्रों से युक्त हैं तथा शिव के कण्ठ में नरमुण्डों की माला है। पैरों के नीचे किसी दैत्य का शरीर है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ताण्डव नृत्य की मुद्रा है। यह मंदिर चंदेलकालीन है किन्तु इसके भग्न होने के कारण यहां के निवायिों ने इसका पुनः जोर्णोद्धार कराया।

3. सरोवर एवं मंदिर अवशेष-

कुछ दूर चलनें पर एक सरोवर उपलब्ध होता है जो जमीन के अंदर है। यह कालिंजर में नीलकण्ठ के समीप सरग्वाह नामक जलाशय जैसा प्रतीत होता है। इस सरोवर से लगा हुआ एक मंदिर भी है, जिसमें अब किसी प्रकार की कोई मूर्ति नहीं है परन्तु फिर भी यहां अनेक साधू संत अपना डेरा जमायें हुए हैं। ऐसा लगता है कि चंदेल युग में इस स्थल पर कोई शिवमंदिर रहा होगा क्योंकि इसकी निर्माणशैली चन्देलयुगीन है। इसके बाहर का भाग चन्देलयुगीन वास्तुशिल्प से सुसज्जित है। अनेक प्रकार की मूर्तियां अलंकरण की दृष्टि से इस स्थल की शोभा में वृद्धि करती है।

4. जैन मंदिर-

इस स्थल से थोड़ी दूर पर दो जैन मंदिरों के अवशेष उपलब्ध होते हैं। ये जैन मंदिर वास्तुशिल्प की दृष्टि से पंचायतन नागरीय शैली के है। इनमें से एक मंदिर के ऊपर का शिखर ध्वस्त हो चुका है तथा दूसरा सुरक्षित है किन्तु इन मंदिरों में किसी प्रकार की मूर्ति अब गर्भगृह में नहीं है।

5. मूर्ति अवशेष-

इन्हीं मन्दिरों से थोड़ी दूरी पर अनेक मूर्तियां वृक्षों के नीचे रखी हुई है। इनमें से कुछ मूर्तियां पूरी तरह सुरक्षित हैं और कुछ मूर्तियां लापरवाही के कारण खण्डित हो गई है। ऐसा लगता है कि मूर्ति चोरों ने यहां की बेस कीमती मूर्तियां समय-समय पर चुराकर बेंच डाली हैं। ये मूर्तियां ज्यादातर जैन धर्म से सम्बन्धित हैं तथा जैन तीर्थाकारों की भी हैं।

6. बारादरी-

यहां से कुछ दूर आगे बढ़ने पर जैन धर्म से सम्बन्धित बारह छोटे-छोटे मंदिर उपलब्ध होते है,इन मंदिरों में ज्यादातर खण्डित मूर्तियां हैं। यहां के ग्रामीण वासियों ने धन के प्रलोभन में प्रत्येक मंदिर के गर्भगृह को गहराई से खोदकर स्थल को नष्ट करने का प्रयास किया है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह मूर्तियां और मंदिर दोनों ही उच्चकोटि के प्रतीत होते हैं।

इन मंदिरों के संदर्भ में एक कहावत प्रचलित है कि एक जैन व्यापारी यहां से किसी स्थल की ओर जा रहा था, उसे मार्ग में अचानक असंख्य धन प्राप्त हुआ । इसलिए उसने यह सोचा कि वह मड़फा पर्वत के ऊपर चैत्यालय का निर्माण करायेगा। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उसने मड़फा दुर्ग पर अनेक मंदिरों का निर्माण कराया। यह घटना चंदेलयुग की है।

7. सरोवर-

जैन मंदिरों के निकट ही एक अति सुन्दर सरोवर भी मिलता है। जिसके चारों ओर पक्की दीवारें तथा जल तक पहुंचनें के लिए सोपान बनें हुए है। इस सरोवर में वर्षा ऋतु में जल उपलब्ध रहता है, शेष समय में जल नहीं रहता । अनुमान है कि मड़फा में कभी यह सरोवर जलापूर्ति का प्रमुख साधन रहा होगा।

8. गौरी शंकर गुफा-

जैन बारादरी के आगे जहां पर्वत की सीमा समाप्त होती है वहां नीचे उतरने के लिए एक सकरा सा रास्ता है और कुछ दूर पर पक्की सीढ़ियाँ बनीं हुई हैं। सीढ़ियों से नीचे उतरने पर गौरी शंकर गुफा मिलती है।इस स्थल में एक प्राकृतिक गुफा है जहां पर किसी तपस्वी ने बड़े ही कलात्मक ढंग से पूरी गुफा में राम-राम लिखा है । इसी के बाहर शिव-पार्वती की अनेक मूर्तियां प्राप्त होती है। कुछ चट्टानों में मूर्ति शिल्पकारों ने किसी विशेष रंग से पत्थरों में रेखाकृति बनाई हुई है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्ति निर्माण से पहले मूर्ति शिल्पकार एक रेखाकृति प्रस्तर में बनाते थे और उसके पश्चात मूर्ति का निर्माण करते थे। इससे तद्युगीन वास्तु एवं मूर्तिशिल्प का बोध होता है।

9. शैलचित्र-

गौरी शंकर गुफा से ही और नीचे उतरने पर जब हम पर्वत के सहारे चित्रकूट एवं गुप्तगोदावरी की ओर बढ़ते हैं इसी पर्वत के निचले स्थल में अनेक शैलों पर विभिन्न प्रकार के चित्र बनें हुए हैं। ये चित्र पुरापाषाण और उत्तरपाषाण युग के हैं। इन्हें लाल रंग से रंजित किया गया है।

1. आवागमन के साधन-

मड़फा जैसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग में पहुंचनें के लिए अभी तक कोई नियमित साधन उपलब्ध नहीं है। यहां पहुंचनें के लिए केवल एक ही मार्ग उपलब्ध है। यह मार्ग भरतकूप रेलवे स्टेशन से भरतकूप तीर्थ स्थल होता हुआ मड़फा तक जाता है। इस क्षेत्र में पहुंचने के लिए कालिंजर से भी मार्ग उपलबध है। यह

मार्ग बघेलावारी होता हुआ मड़फा तक जाता है। मड़फा पहुंचने का एक अन्य मार्ग चित्रकूट से गुप्तगोदावरी-बानगंगा होता हुआ फतेहगंज से होकर मड़फा-भरतकूप तक जाता है। केवल रेल या बस मार्ग से भरतकूप रेलवे स्टेशन तक ही पहुंचा जा सकता है और यहां यात्री अपने निजी साधन से 8 किलोमीटर की यात्रा करनें के पश्चात पहुंच सकता है।

2. आवासीय व्यवस्था-

यदि कोई व्यक्ति इस महत्व पूर्ण ऐतिहासिक स्थल पर रूकना चाहे तो उसके लिए इस क्षेत्र में रूकने की कोई व्यवस्था नहीं है। यहां आने वाले व्यक्ति चित्रकूट के पर्यटक निवास, धर्मशालाओं एवं होटलों में ही ठहर सकते हैं। अन्य कोई आवासीय व्यवस्था एवं संसाधन की व्यवस्था अभी तक नहीं हो सकी।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

जो भी बाहरी व्यक्ति इस स्थल में आना चाहता है। वह पूरी तरह से यहां सुरक्षित नहीं है। दुर्ग के ऊपर और दुर्ग के नीचे न तो पुलिस थाना है और न ही पुलिस चौकी। केवल भरतकूप तथा चित्रकूट से ही उसे सुरक्षा मिल सकती है। इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के डकैत स्वंतत्र रूप से विचरण करते रहते हैं, इसलिए इस क्षेत्र में जाने वाले व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जाती है कि इस स्थल में वे तभी जायें जब कि उनके पास निजी व्यवस्था हो। अपने साथ कोई भी कीमती सामान व अधिक धन लेकर न जाये।

यात्रा के उद्देश्य-

जो भी व्यक्ति इस क्षेत्र का भ्रमण करना चाहता है। वह यहां निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही आता है।-

1. पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक उद्देश्य-

मड़फा एक ऐसा स्थल है जिसका वास्तुशिल्प पुरातात्विक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में पुरापाषाण युग से लेकर चंदेलयुगीन पुरासम्पदा उपलब्ध होती है, जो अन्य स्थानों से अलग है एवं बहुत ही सुन्दर है जिसको देखकर इस क्षेत्र के पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक प्राचीनता का बोध होता है।

2. संस्कृति एवं समाज का अध्ययन-

यहां व्यक्ति के आने का दूसरा उद्देश्य यहां के निवासियों की सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करना भी हो सकता है क्योंकि इस क्षेत्र की लोक संस्कृति पूर्णरूपेण आदिवासियों की लोक संस्कृति है। मुख्य रूप से कोल, भील, बैगा, गौंड़ आदि यहां निवास करते है, इनकी सामाजिक व्यवस्था आर्यों की सामाजिक व्यवस्था से कुछ भिन्न है और लोक-संस्कृति भी भिन्न है।

3. धार्मिक उद्देश्य -

हिन्दू धर्मावलम्बी मुख्य रूप से जो शिव उपासक हैं वे यहां अपनी विशिष्ट मनोरथ की कामना या उद्देश्य से शिवरात्रि एवं मकर संक्रान्ति के अवसर पर आते हैं साथ ही परम सुख को प्राप्त करते हैं। इसके

अतिरिक्त जैन धर्मावलम्बी इसे पवित्र चैत्यालय मानतें हैं। समय-समय पर अपने धर्म से सम्बन्धित तीर्थांकारों मुख्य रूप से महावीर स्वामी के चरणों में श्रृद्धा अर्पित करने यहां आते हैं।

4. आर्थिक उद्देश्य-

यह स्थल विविध प्रकार की वन सम्पदा से युक्त है। इस क्षेत्र में नाना प्रकार की औषधियाँ, इमारती पत्थर, अनेक धातुऐं तथा कीमती रत्न प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त यहां के जंगलों में अनेक प्रकार के दुर्लभ पशु उपलब्ध होते हैं। जिनकी चर्म एवं अस्थियों से धन अर्जित किया जा सकता है। आर्थिक उद्देश्य को ध्यान में रखकर व्यक्ति मड़फा की यात्रा करते हैं किन्तु वर्तमान समय में पशुओं को मारना कानूनन जुर्म है परन्तु फिर भी व्यक्ति चोरी से यह कार्य करता है।

दुर्भाग्य यह है कि यदि कोई व्यक्ति मड़फा परिक्षेत्र का विशिष्ट अध्ययन करना चाहता है तो इसका उल्लेख कुछ पुराणों के अतिरिक्त किसी भी प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होता ।यहां के साहित्य की प्राप्ति न होने के कारण इस क्षेत्र में यात्रा करने वाले यात्रियों को केवल दंत कथाओं पर ही विश्वास करना पड़ता है और परम्पराओं के अध्ययन से ही संतुष्ट होना पड़ता है।

2. रौली गोंडा-

यह स्थल एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल है। यह बाँदा जनपद के पश्चिमोत्तर में स्थित है। यह $25^{0}12$ अक्षांश तथा $80^{0}47$ देशान्तर में पूर्वोत्तर में स्थित है। यह क्षेत्र बाँदा से 51 किलोमीटर दूर है तथा पुरातात्विक महत्व का यह चंदेलकालीन स्थल दो पहाडियों के बीच में है। यहां जो पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं, उनमें से एक सरोवर जो जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है प्राप्त होता है। यहां के ग्रामवासी इसे फूटा ताल के नाम से पुकारते हैं। इसकी निर्माण शैली चंदेलकालीन है, यहीं पर एक चंदेलकालीन मंदिर भी है जो लाल रंग के बलुए पत्थर से निर्मित है। यहां जो गांव पहाड़ी के नीचे स्थित है, उसकी आबादी 1501 है। गाँव का क्षेत्रफल 1140 हेक्टेयर है।[6]

यह क्षेत्र ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व का है। जब से यह क्षेत्र कल्चुरियों के हांथ से निकलकर यशोवर्मन देव के समय में चंदेलों के हांथ में आया, उस समय से यहां का धार्मिक और सांस्कृतिक विकास प्रारम्भ हुआ। श्री पाण्डये के अनुसार पुरातात्विक दृष्टि से यह क्षेत्र महत्वपूर्ण है। यहाँ चंदेलकालीन अनेक मंदिर है। किवदंतियों के अनुसार इन मंदिरों का निर्माण चंदेलवंश के अन्तिम यशस्वी राजा परमाल ने कराया था। वर्तमान समय में जो मंदिर प्राप्त होता है उनमें सबसे बड़े मन्दिर का अर्धमण्डप तथा गर्भगृह शेष रह गया है। इसका मुख्य द्वार पूर्व की ओर है, इसलिए इसे ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार विष्णु मंदिर ही माना जा सकता है। और इसी के सन्निकट एक छोटा मंदिर है। सम्भवतः यह मंदिर विष्णु की पत्नी लक्ष्मी का होगा। विष्णु मंदिर का शिखर अब भी सुरक्षित है। इस मंदिर के केवल कलश मात्र शेष रह गया है। यहां पर चंदेलकालीन मंदिर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जो विष्णु की उपासना से सम्बन्धित है क्योंकि यहां

विष्णु की मूर्ति के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। शेषशायी विष्णु के अतिरिक्त यहां महिषमर्दिनी एवं सूर्य की प्रतिमाओं का भी अंकन मिलता है।[7]

रौली गोंड़ा के दर्शनीय स्थल-

यहां पर उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री को दर्शनीय स्थल के रूप में निम्न प्रकार से प्रदर्शित करते हैं-

1. विष्णु मंदिर-

पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार यहां पर कभी विष्णु मंदिर था। अब मात्र इसके भग्नावशेष ही शेष रह गये हैं। इसका मुख्य द्वार पूर्व की ओर है। इसके गर्भगृह में भगवान विष्णु की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह मंदिर पंचायतन नागरीय शैली का है। यहां जो चंदेलकालीन मूर्तियों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। वे मूर्तिकला की दृष्टि से खजुराहो जैसे ही है किन्तु इस मंदिर में कहीं भी मिथुन मूर्तियां उपलब्ध नहीं है। यह मंदिर 55 फुट लम्बा तथा 48 फुट 9 इंच चौड़ा और 40 फुट उँचा है।[8]

2. भगवती लक्ष्मी मंदिर-

यह मंदिर विष्णु मंदिर के ही सन्निकट है परन्तु यह अब पूरी तरह ध्वस्त हो चुका है। जो मूर्तियां इसकी दीवारों में बनीं हुई हैं, उनको देखनें से यह स्पष्ट होता है कि यहां कभी विष्णु की पत्नी भगवती लक्ष्मी का मंदिर रहा होगा। यह मंदिर कलात्मक दृष्टि से चंदेलकालीन नहीं है। इसका निर्माण भी 11वीं शताब्दी में हुआ। पुरातात्विक दृष्टि से इस मंदिर का विशेष महत्व है।

3. देवी मंदिर-

यहां पर एक अन्य देवी मंदिर पहाड़ी पर प्राप्त होता है। इस मंदिर को महिषासुर मर्दिनाी के नाम से पुकारा जाता है। कालिंजर परिक्षेत्र से जुड़े होने के कारण यह क्षेत्र भी कभी देवी उपासना का केन्द्र रहा है। इस मंदिर की बाहरी दीवारों में सूर्य की विभिन्न प्रतिमाओं का अंकन मिलता है। इस मंदिर को देखने से चंदेल युग की धार्मिक भावनाओं का पता स्पष्ट रूप से लग जाता है। ऐसा मालूम होता है कि इस युग के लोग विष्णु उपासक , शिव उपासक तथा शक्ति उपासक थे। यह मंदिर चंदेल कालीन वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट नमूना है।[9]

4. फूटा ताल-

विष्णु मंदिर के निकट एक सरोवर उपलब्ध होता है, जो वास्तुशिल्प के आधार पर चंदेल कालीन मालूम होता है। इसका विशेष ध्यान न दिये जाने के कारण अब यह सरोवर सूख चुका है। इसकी भूमि पर अब लोग खेती करते हैं। किसी समय में यह सरोवर इस क्षेत्र की जलापूर्ति का प्रमुख साधन था।

1. आवागमन के साधन-

गोंड़ा तक पहुंचने के लिए कोई भी पर्यटक बदौसा तक रेल मार्ग से आ सकता है, उसके पश्चात उसे इस स्थान में पहुंचनें के लिए सड़क मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा। बदौसा के आगे रसिन सम्पर्क मार्ग

से दो किलोमीटर के बाद एक अन्य सम्पर्क मार्ग मिलता है। यहां से रौलीगोंड़ा चार किलों मीटर दूर है। यदि कोई पर्यटक बस द्वारा इस क्षेत्र में पहुंचता है तो उसे रौलीगोंड़ा सम्पर्क मार्ग में उतरना होगा, उसके बाद उसे निजी संसाधन से यहां तक पहुंचना होगा।

2. आवासीय व्यवस्था-

पर्यटकों को ऐतिहासिक महत्व के इस स्थल को देखनें के लिए यदि रूकना पड़े तो उसके लिए कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां वह ठहर सकता है। उसे रूकने के लिए चित्रकूट का पर्यटक निवास या फिर वहां के धर्मशाला ही उपलब्ध होंगे।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

पर्यटकों के लिए कोई सुरक्षा व्यवस्था यहां पर नहीं हैं। यदि कोई पर्यटक यहां की यात्रा करना चाहता है तो उसे बदौसा या चित्रकूट से ही सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध हो सकती है या फिर निजी सुरक्षा कर्मियों के साथ यहां आ सकता है। यह क्षेत्र निर्जन स्थान में है तथा नाना प्रकार के डकैतों का शरणालय भी है। अतः किसी भी पर्यटक को यहां अधिक रूपये व बहुमूल्य आभूषण से युक्त नहीं आना चाहिए।

यात्रा के उद्देश्य-

जो भी पर्यटक गोंड़ा की यात्रा करना चाहता है वह निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही यहां आ सकता है-

1. पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण-

इस क्षेत्र में कोई भी पर्यटक पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ही यात्रा कर सकता है। इस क्षेत्र में चंदेलकालीन वास्तुशिल्प और मूर्तिशिल्प का अनूठा नमूना प्राप्त होता है। उस युग के पुरातात्विक महत्व को दृष्टिगोचर करता है।

2. संस्कृति एवं समाज का अध्ययन-

इस क्षेत्र का समाज भारतीय सामाजिक व्यवस्था का एक मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करता है। यहां के लोगों को देखनें से ऐसा लगता है कि आर्य संस्कृति और अनार्य संस्कृति का यहां समन्वित स्वरूप है। वेशभूषा, भाषा एवं लोक संस्कारों की दृष्टि से यह अन्य क्षेत्रों से पृथक प्रतीत होता है। चित्रकूट के समीप होने के कारण यहां विष्णु उपासकों की संख्या अधिक प्रतीत होती है। यहां के अदिवासी प्रकृति उपासक है।

3. धार्मिक उद्देश्य-

यहां पर कोई भी पर्यटक धार्मिक दृष्टिकोण से भी आ सकता है। जब वह चित्रकूट के दर्शन करनें आता है, उस समय वह यह भी चाहता है कि वह चित्रकूट के आस-पास के सभी धार्मिक स्थलों का दर्शन करके पुण्य लाभ प्राप्त करें। विष्णु एवं शक्ति मंदिरों के अवशेषों को देखकर वह संतुष्ट होता है और उसे

अपने धर्म पर पूर्ण आस्था हो जाती है। वह यहां के धार्मिक तीज-त्योहारों तथा परम्पराओं का भी अध्ययन इसी बहाने कर लेता है। यहां की लोक संस्कृति से भी प्रभावित होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रौलीगोंड़ा में उपलब्ध ऐतिहासिक अवशेष हमें हमारी प्राचीन गौरव गाथा का बोध करातें हैं जहां चंदेलयुग ने विशिष्ट संघर्षों में सम्पूर्ण भारत में कीर्तिपताका फहराई वहीं धर्म को विकसित करने में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। यहां प्राप्त पुरावशेष उनकी धार्मिक भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा कलाप्रियता का बोध कराते हैं।

3. रसिन-

रसिन बाँदा जनपद का एक बड़ा गाँव है। यह $25^0 11$ अक्षांश उत्तर तथा $80^0 44$ देशानतर पूर्व में स्थित है। रसिन बाँदा जनपद से 48 किलोमीटर दूर है। यहाँ से कर्वी लगभग 30 किलोमीटर है। रसिन से एक मार्ग कालिंजर के लिए भी जाता है। जो रौली कल्याणपुर होता हुआ जाता है। यह एक पहाड़ी के नीचे बसा हुआ है तथा उत्तर पूर्वी सीमा में स्थित है। यहां पर नाना प्रकार के ऐतिहासिक भग्नावशेष उपलब्ध होते हैं। यहां अति सुन्दर सरोवर भी हैं। रसिन के विषय में कहा जाता है कि इसका पुराना नाम राजवंशी था। जो आगे चलकर रसिन के नाम से परिवर्तित एवं प्रसिद्ध हुआ। यह क्षेत्र भी चंदेलकालीन ही प्रतीत होता हैं। राजवंशों का शासन होनें के कारण इस स्थान का नाम रसिन पड़ा। इस क्षेत्र में प्रारम्भ में चंदेलों का शासन था, बाद में राजपूत लोगों ने इसमें शासन किया। यहां पर अधिकतर रघुवंशी राजपूत निवास करते थे। कहा जाता है कि कालांतर में रघुवंशी राजपूत यहां के शासक थे। इन राजपूतों का महत्व बुन्देला शासकों के समय में बहुत अधिक बढ़ गया था। यहां के सामंत होने के नाते उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी। यहां पर एक पर्वत में एक पुराना दुर्ग है, जिसका निर्माण मिट्टी और ईटों से हुआ था। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में भी इस स्थल का ऐतिहासिक महत्व था । यहां के उत्तर पश्चिम में चंदेलकालीन अनेक देवालय एवं देवालयों के भग्नावशेष उपलब्ध होते हैं। इसके पूर्वोत्तर में ही चंदेलों का एक पुराना कुंआ तथा बीहड़ उपलब्ध होत है। एक पर्वत के ऊपर जो यहां से लगभग एक किलो मीटर दूर है बलुए पत्थरों की मूर्तियाँ प्राप्त होती है। इस पर्वत के उत्तर-पश्चिम से चढ़ने के लिए मार्ग है, पहाड़ी के ऊपर पैदल ही पहुंचा जा सकता है। पर्वत पर आधी दूर चढ़ने के पश्चात यहां पर एक मुख्य द्वार प्राप्त होता है, जो बिल्कुल चौकोर है। जिसका निर्माण बलुऐ पत्थर से हुआ है। इस द्वार पर एक मूर्ति है जिसे यहां के लोग बैलन बाबा की मूर्ति के नाम से पुकारते हैं। यह मूर्ति लगभग सन् 1899 में खोदी गई। सर्वप्रथम अंग्रेज इतिहासकारों ने इसकी खोज की । तभी से इस क्षेत्र का महत्व धीरे-धीरे बढ़ता गया। इसी मार्ग से आगे बढ़ते हुए घाटी पर ही एक छोटा सा सरोवर भी है। इसी के पश्चिमी तट पर चंदेल दुर्ग की एक मीनार थी। यहीं से पर्वत की चोटी में चढ़नें का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। तथा यहीं से व्यक्ति पर्वत की चोटी तक पहुंच सकता है। यहीं पर एक दूसरे द्वार के चिन्ह भी उपलब्ध होते हैं। यहीं द्वार के पास लगभग 200 मीटर दूर पीछे की तरफ एक

प्राकृतिक सरोवर मिलता है जो चट्टान काटकर बनाया गया है। इसी के पास एक चंदेलकालीन मंदिर है जो चन्द्रामाहेश्वरी के नाम से विख्यात है। इसी मंदिर में दो शिलालेख उपलब्ध होते हैं जो विक्रमी संवत् 1466 के हैं। एक अभिलेख में चन्द्रामाहेश्वरी की वन्दना है। यह चंदेलकालीन है। इस मंदिर के चारो ओर बहुत बड़ा मैदान है। यह समतल है। मंदिर चौकोर बना हुआ है। इसके आगे ढ़लान है। सम्भवतः वह एक दूसरी पहाड़ी से जुड़ा हुआ है। यहां पर पत्थर से निर्मित अनेक सूखे कुऐं हैं और द्वारों के अनेक भग्नावशेष भी मिलते हैं।

छोटी वाली पहाड़ी के शिखर से एक छोटा सा गांव दिखाई देता है। यह पहाड़ी गांव से सटी हुई है। यहीं पर एक स्मृति चिन्ह है जो रतन अहीर का मंदिर है। इसके संदर्भ में यह कहा जाता है कि यादव वंश का यह रतन अहीर नित्यप्रति पर्वत की चोटी में चढ़कर यमुना नदी के दर्शन किया करता था। रघुवंशी राजाओं का किला इससे कुछ ऊंचा था। स्त्रियों के समूह ने उसे अभिशाप दिया था, जिसके कारण एक चट्टान उसके ऊपर गिर गई और वह मर गया तथा वहीं पर उसकी समाधि बनी है। वह चट्टान आज भी दिखाई पड़ती है। मुगलों के समय में रसिन परगना था। इस स्थल में पन्ना नरेशों और मुगलों से कई बार युद्ध हुआ। यहीं पर मुगलों और बुन्देलों का युद्ध भी हुआ। यहां से बुन्देलों की सेनाओं ने मुगलों को खदेड़ा । कहा जाता है कि उस समय इस क्षेत्र के अनेक महलों में आग लगा दी गई, जो जलकर नष्ट हो गये।वर्तमान समय में जो रसिन उपलब्ध है उसको बसाने वाले रघुवंशी राजपूत राम किशन थे, इसके पश्चात संवत् 1781 में यह क्षेत्र गुमान सिंह को दे दिया गया जो महाराज छत्रसाल का वंशज था। इस प्रकार रसिन को नया जीवन मिला। बुन्देला नरेश गुमान सिंह के समय में यह तहसील का मुख्यालय था, जो बाद में बदौसा के निकट भुसाई में स्थानान्तरित कर दिया गया। रसिन गाँव की जनसंख्या 4042 है। इसका क्षेत्र 3,123 हेक्टेयर है। यहां मुख्य रूप से गेहूं, ज्वार आदि अनाजों की खेती होती है। शिक्षा के लिए प्राथमिक पाठशाला , जूनियर हाई स्कूल और इण्टर कालेज हैं। वर्तमान समय में इस परिक्षेत्र का काफी विकास हुआ है।[10]

राधाकृष्ण बुन्देली का मानना है कि ऋषि अथवा रसिनः शब्द से रसिन शब्द का निर्माण हुआ होगा, जिसका ऐतिहासिक साक्ष्य यह है कि यह क्षेत्र चित्रकूट के सन्निकट होने के कारण ऋषियों की तपोभूमि रहा है, क्योंकि इसके चारों ओर अनेक पर्वत श्रेणियाँ हैं, प्राकृतिक दृष्टि से भी यह अत्यन्त सुधार है। इसलिए ऋषियों ने इसे अपनी तपोभूमि बनाया। चंदेल युग में यह क्षेत्र चंदेल नरेश राहिल के समय में सन् 890-910 के मध्य एक नगर के रूप में विकसित किया गया। कालिंजर जबकि सैन्य राजधानी थी उस समय रसिन को प्रशासनिक राजधानी के रूप में विकसित किया गया। यहां पर राजवंशों के निवास के लिए अनेक महलों का निर्माण भी किया गया। जिसके भग्नावशेष इस क्षेत्र में फैले पड़े हैं। चंदेलो की सेना में खंगार वंशिय क्षत्रियों को प्रमुख स्थान प्राप्त था। वह भी बहुत दिनों तक इस क्षेत्र में अनेक ग्रामों में सामंत

के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखे। बुन्देलखण्ड सहयोग परिषद के कार्यकर्त्ता श्री राम अवतार सिंह खंगार ने इस क्षेत्र के खंगारों के संदर्भ में व्यापक शोध प्रस्तुत किया है।

चंदेलों के पतन के पश्चात 12वीं शताब्दी के अन्त में यह क्षेत्र बघेलवंशिय राजाओं के हांथ में चला गया। केवल कुछ समय के लिए जब शेरशाह सूरी ने कालिंजर पर आक्रमण किया और अफगानों के प्रभाव में आ गया था किन्तु पुनः यह रामचन्द्र बघेल के अधिकार में आ गया। फिर यह क्षेत्र औरंगजेब के समय तक मुगलों के शासन में रहा। छत्रसाल ने मुगलों से जब यह क्षेत्र विजित किया, उस समय से बराबर यह बुन्देला शासकों के आधीन रहा। पहले यह क्षेत्र पन्ना राज्य में था परन्तु बाद में यह बाँदा के राजा गुमान सिंह के अधिकार में आ गया तथा प्रशासनिक दृष्टि से इसे बराबर परगना का दर्जा मिला रहा। सन् 1812 के पश्चात यह क्षेत्र अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। ऐतिहासिक दृष्टि से इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। पुरातात्विक दृष्टि से भी इस युग में चंदेल युग के भग्न स्मारक प्राप्त होते है।

रसिन कालिंजर से लगभग 20 मील दूर है। इतिहासकार श्री ए0 कोडेल ने रसिन का विस्तृत वर्णन किया है। उनका कथन है कि किसी समय में यह एक प्रसिद्ध स्थान था। जिस पहाड़ी पर यह नगर बसा हुआ था वह परकोटा युक्त थी और उसकी चोटी पर चंदेल मंदिर बना हुआ था। मंदिर अब भी अच्छी हालत में है। मंदिर के बाहरी द्वार पर एक शिलालेख है जो कुछ समय बाद का है। मंदिर के पूर्व की ओर एक बैठक है।" जनश्रुतियों के अनुसार रसिन का पुराना नाम रसकेन बतलाया जाता है जो उन दिनों संस्कृत विद्या का केन्द्र तथा अनेक मंदिरों एंव तालाबों से सुसज्जित था। महाकवि चन्द ने इस नगर की बहुत प्रशंसा की है तथा राहिल को ही इस नगर का संस्थापक माना है।[12]

आधुनिक खोजों के अनुसार जिस पहाड़ी पर चन्द्रामाहेश्वरी का मंदिर बना हुआ है, वही चंदेलों का वास्तविक उद्‌गम स्थल प्रतीत होता है। इसी क्षेत्र में द्विज (ब्राह्मण) कन्या हेमवती का चन्द्रमा से समागम हुआ, जिसके कारण यह गर्भवती हुई । यहीं पर चंदेलवंश के पूर्वज चन्द्रवर्मा का जन्म हुआ। इससे इस क्षेत्र का महत्व बढ़ जाता है और यह नगर ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होने लगता है डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार रसिन ग्राम बदौसा तथा मड़फा के बीच अत्यन्त रमणीय स्थान पर स्थित है। बाँदा मुख्यालय से इसकी दूरी 45 किलो मीटर है। विक्रमी संवत् 1466 के अभिलेख में इस ग्राम का नाम राजवासिनि बताया गया है। रसिन उसी का विकृत रूप है। यहां पर अनेक भग्न मंदिर, खण्डित मूर्तियां और अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये भी इस नगर का संस्थापक राहिल को ही मानते है।[13] प्रसिद्ध इतिहास विभाग के प्रवक्ता श्री लवकुश द्विवेदी के अनुसार इस क्षेत्र में देवी मंदिर के अतिरिक्त विष्णु मंदिर भी उपलब्ध थे। उन्होंने कनिंघम का ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए कहा है कि यहां गजलक्ष्मी, हरगौरी, सरस्वती अर्धनारीश्वर की प्रतिमाओं के प्रमाण उपलब्ध होते है।[14]

रसिन के दर्शनीय स्थल-

कुल मिलाकर रसिन एक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल है। इस स्थल में विविध प्रकार के दर्शनीय दृश्य एवं स्थान हैं जो इतिहास, धर्म, संस्कृत और पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ये निम्नलिखित हैं-

1. रसिन का दुर्ग-

रसिन की एक पहाड़ी पर दुर्ग के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। जब हम चन्द्रामाहेश्वरी मंदिर के लिए ऊपर की ओर चढ़ना प्रारम्भ करते है तो कुछ दूरी पर हमें दुर्ग के अवशेष प्राप्त होते हैं। यद्यपि यह दुर्ग वर्तमान समय में पूरी तरह ध्वस्त हो गया है और इसकी दीवारें जो कि प्रस्तर और ईटों से निर्मित थीं, वह ढ़ह गईं हैं। इन्हीं दीवारों से लगा हुआ दुर्ग का प्रथम द्वार मिलता है, थोड़ी दूर पर कुछ ऊंचाइ पर दुर्ग का एक दूसरा द्वार मिलता है। यह द्वार बल्लन बाबा द्वार के नाम से जाना जाता है यहीं पर बल्लन बाबा की समाधि है।

2. चन्द्रामाहेश्वरी का मंदिर-

यह मंदिर रसिन का प्रसिद्ध मंदिर है। निर्माण शैली की दृष्टि से यह चंदेलकालीन वास्तुशिल्प का अच्छा उदाहरण है। यह मंदिर चंदेलकाल में निर्मित अन्य मंदिरों जैसा है। यहां पर प्राप्त मूर्तियाँ मूर्तिशिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि की मालुम पड़ती हैं। इन मूर्तियों का केशविन्यास और वस्त्राभूषण अत्यन्त सुन्दर है। इन मूर्तियों को देखने से तद्युगीन सामाजिक व्यवस्था का अंदाजा लग जाता है। इस मंदिर का विस्तृत वर्णन द्वितीय अध्याान में किया जा चुका है।

3. चन्द्रामाहेश्वरी ताल-

चन्द्रामाहेश्वरी मंदिर के निकट पर्वत के ऊपर ही एक सरोवर भी प्राप्त होता है। यह सरोवर अत्यन्त सुन्दर है। इसमें नीचे उतरने के लिए सोपानों का निर्माण किया गया है। नीचे की ओर कुछ मूर्तियां भी उपलब्ध होती है। इस सरोवर का निर्माण चट्टान काट कर किया गया है। यह 80 फिट लम्बा और 50 फिट चौड़ा है। इस सरोवर में वर्षा ऋतु में जल भरा रहता है किन्तु गर्मी में यह सरोवर सूख जाता है। निर्माण शैली की दृष्टि से यह सरोवर चंदेल वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट नमूना है।

4. रसिन का काली मंदिर-

रसिन मार्ग में प्रवेश करते ही गाँव के नजदीक एक तालाब के किनारे काली का जीर्ण-शीर्ण मंदिर प्राप्त होता है। इसमें काली की प्रतिमा विद्यमान है। निर्माण शैली के अनुसार यह चंदेलकालीन है। इस मंदिर को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि रसिन परिक्षेत्र में देवी उपासना की लोकप्रियता जनता के मध्य प्रचलित थी। इसका विस्तृत वर्णन द्वितीय अध्याय में देखिये।

5. रसिन का ऐतिहासिक बीहड़-

रसिन के इस देवी मंदिर के समीप एक चंदेलकालीन बीहड़ मिलता है, जो किसी समय में जलापूर्ति का प्रमुख साधन था। इस समय यह जीर्ण-शीर्ण है। बीहड़ में अन्दर की ओर से एक पीपल का वृक्ष उग

आया है, वह आज भी बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है।

6. रसिन का अधिक ताल-

रसिन में ही काली देवी मंदिर के सन्निकट एक बड़ा सा तालाब मिलता है जिसे अधिक ताल के नाम से पुकारा जाता है। इस सरोवर के निर्माणकर्त्ता का नाम तो नहीं ज्ञात होता है किन्तु यह तय है कि इसका निर्माण चंदेलकाल में हुआ था। इसका भी विस्तार से वर्णन द्वितीय अध्याय में है।

7. गाँव भीतर का देवी मंदिर-

जब हम रसिन बस्ती में प्रवेश करते हैं। उस समय रतननाथ इण्टर कालेज की थोड़ी दूरी पर देवी दाई की एक मढ़िया है। यह मंदिर बाहर से देखनें में सुन्दर नहीं है, किन्तु इस मंदिर के अन्दर की देवी मूर्ति चंदेलकालीन है। ऐसा लगता है कि यह देवी मूर्ति किसी टूटे हुए मंदिर से लाकर यहां स्थापित की गई थी। इस मंदिर में नवरात्रि के अवसर पर बहुत अधिक चहल-पहल रहती है।

8. रतननाथ मंदिर-

रसिन बस्ती के समीप एक पर्वत की चोटी पर रतननाथ अहीर का मंदिर बना हुआ है। कहते है कि यह रतननाथ नित्यप्रति पहाड़ी में चढ़कर यमुना नदी के दर्शन किया करता था। हमेशा उसके दर्शन में रसिन दुर्ग की दीवार जो दूसरे पर्वत पर थी आड़े आया करती थी । वह दीवार अपने आप ही ध्वस्त हो गई तथा रतननाथ भी जिस स्थान से यमुना के दर्शन किया करता था उसी स्थान में विलुप्त हो गया। उसी की स्मृति में रसिन वासियों ने पर्वत चोटी पर ही रतननाथ के मंदिर का निर्माण किया। यह मंदिर लगभग 200 वर्ष पुराना प्रतीत होता है।

9. परमर्दिदेव का शाही निवास-

उस पर्वत श्रेणी में जहां रसिन का दुर्ग निर्मित था, किसी स्थान विशेष में राजा परमर्दिदेव का शाही निवास निर्मित था किन्तु अब इस शाही निवास के कोई भी स्मृति चिन्ह विशेष रूप से नहीं प्राप्त होते केवल भग्नावशेषों को ही देखकर यह परिकल्पना की जा सकती है कि रसिन में ही कहीं परमदिदेव का शाही निवास था।[15]

10. सत्ती-सत्ता की मूर्ति-

इस क्षेत्र में एक विशेष प्रकार की मूर्ति उपलब्ध होती है। ग्रामवासियों के अनुसार सत्ती-सत्ता की है। इस मूर्ति में एक स्त्री और एक पुरूष तथा ऊपर सूर्य, चन्द्रमा तथा हांथ के पंजा का निशान है। इसका मतलब है कि युगों-युगों तक तुम्हारा सुहाग चिर स्थाई रहे और जब तक चाँद और सूरज का अस्तित्व रहे, तब तक तुम यशस्वी रहो। यह हमारा आशिर्वाद है।

1. आवागमन के साधन-

जो भी पर्यटक रसिन की यात्रा करना चाहता है, उसके लिए बदौसा तक रेल मार्ग उपलब्ध है। यदि

वह बस द्वारा इस क्षेत्र की यात्रा करना चाहता है तो उसे बागे नदी का पुल पार कर रसिन सम्पर्क मार्ग मे उतरना होगा। फिर उसे यहां से निजी संसाधन से रसिन पहुंचना होगा। कभी-कभी बदौसा से फतेहगंज तक प्राइवेट बसे भी उपलब्ध हो जाती है, जो पर्यटक को रसिन मार्ग पर उतार देती हैं। यहां से उसे अपने स्थल तक पद यात्राा करनी होगी। बदौसा सम्पर्क मार्ग से रसिन की दूरी लगभग 5 किलो मीटर है।

2. आवासीय व्यवस्था-

पर्यटक के लिए इस क्षेत्र में कोई भी आवासीय व्यवस्था उपलब्ध नहीं है और न ही उसके लिए यहां भोजन के लिए होटल आदि हैं। उसे यदि रूकना है तो संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य अथवा रतननाथ इण्टर कालेज के प्राचार्य श्री रमाकांत पाठक से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। पाठक जी को इस क्षेत्र के ऐतिहासिक स्थलों की पूरी जानकारी है। वे किसी भी पर्यटक को इस क्षेत्र के दर्शन करानें में सक्षम हैं। यद्यपि अभी तक रसिन से सम्बन्धित कोई भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है, जिससे यहां के ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी उपलब्ध हो सके। यहां की जानकारी सिर्फ उपलब्ध ऐतिहासिक स्थलों से ही होती है, और ग्रामवासियों की जनश्रुतियों पर विश्वास करना पड़ता है।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

किसी भी पर्यटक के लिए यहां पर कोई सुरक्षा व्यवस्था नहीं है और अगर कोई पर्यटक सुरक्षा व्यवस्था प्राप्त करना चाहता है तो उसे यह व्यवस्था बदौसा पुलिस स्टेशन से प्राप्त हो सकती है। इस क्षेत्र में डकैतों का काफी आतंक है, इसलिए कोई भी पर्यटक इस क्षेत्र में जाने से पहले कीमती सामान व अधिक रूपये लेकर न जाये और न ही बिना किसी समुचित सुरक्षा व्यवस्था के जाये तथा अपरिचित व्यक्ति पर विश्वास न करें।

यात्रा का उद्देश्य-

यहां पर व्यक्ति निम्न उद्देश्यों से यात्रा कर सकता है-

1. पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक महत्व-

यहां पर चंदेलकालीन एवं उसके पूर्व के ऐतिहासिक स्थल मौजूद हैं। उन्हें देखनें के ही उद्देश्य से पर्यटक यहां की यात्रा कर सकते हैं। ज्यादातर स्थल दुर्ग अवशेष, धार्मिक स्थल व जलाश्य आदि हैं। इन स्थलों को देखनें के पश्चात् पर्यटक यहां की सांस्कृतिक विरासत से परिचित हो सकता है तथा उसे यहां की वास्तुशिल्प का बोध हो जाता है। इसके साथ ही साथ वह यहां की सांस्कृतिक और धार्मिक परम्परा से परिचित हो जाता है।

2. सांस्कृतिक एवं सामाजिक अध्ययन-

इस क्षेत्र की सामाजिक व्यवस्था अन्य क्षेत्रों से कुछ अलग है। यहां की अधिकांश जनसंख्या सनातन धर्मावलम्बी है और चार वर्णों में विभाजित है। ये लोग परम्परागत वस्त्र एवं आभूषण धारण करते हैं तथा

शिव शक्ति और विष्णु के उपासक हैं। इनके तीज त्योहार नवरात्रि, दशहरा, दीपावली, मकर संक्रान्ति आदि हैं। तीज त्योहारों में यह लोग लोक संस्कृति का प्रदर्शन भी करते हैं तथा इनकी भाषा बनाफरी, कुल्हाई है।

3. शैक्षिक दृष्टिकोण-

इस ग्राम में एक संस्कृत महाविद्यालय है जिसकी स्थापना चंदेल काल में चंदेल शासक राहिल के समय हुई थी। वह विद्यालय आज भी परम्परा तरीके से संस्कृत और उससे सम्बन्धित विषयों का अध्ययन छात्रों को कराता है। यहां संस्कृत पढ़नें के लिए पर्यटक आ सकते हैं। यह विद्यालय स्नातकोत्तर स्तर का है।

रसिन राहिल के शासनकाल से लेकर परमर्दिदेव के शासनकाल तक काफी विकसित हुआ। इसके पश्चात बघेलकाल से इसकी उपेक्षा होने लगी किन्तु सल्तनतकाल और मुगलकाल में इसे परगना अथवा तहसील बनाये जाने के कारण यह विकसित रहा तथा अपने अस्तित्व को बनाये रहा, किन्तु जब से अथवा 1812 के पश्चात अंग्रेजों के शासन के अन्तर्गत आया, उस समय से इसका पतन प्रारम्भ हो गया और यह धीरे-धीरे एक गाँव के रूप में पर्णित हो गया। इसके ऐतिहासिक स्थल भी प्रशासन की उपेक्षा के कारण धीरे-धीरे ध्वस्त हो गये। मूर्ति चोरों ने यहां की पुरा-सम्पदा को व्यापक नुकसान पहुंचाया है।

4- बिलहरिया मठ-

धरवां मानपुर एक बड़ा गाँव है। यह 25^06 अक्षांश तथा 80^043 देशान्तर उत्तर पूर्व में स्थित है। यहां पहुंचने के लिए बदौसा से मार्ग है। यहां मुख्य रूप से फतेहगंज होकर पहुंचा जा सकता है। इसके समीप के गाँव का नाम गोधरमपुर है इसी को धरवां मानपुर भी कहते हैं । इस गाँव की आबादी 2,368 है और इसका क्षेत्रफल 1,894 हेक्टेयर है। यहां की मुख्य उपज गेंहूं, चना है।

गोधरमपुर गाँव विन्ध्य पर्वत श्रेणियों की ढालपर बसा है। इसके चारो ओर जंगल ही जंगल है। इसी के समीप करहली नामक प्रपात भी प्रवाहित होता है। यह प्रपात सकरो प्रपात के नाम से प्रसिद्ध है, यह गाँव के पूर्वी भाग में प्रवाहित होता है। इसका जल बहुत ऊँचाई से चट्टानों के ऊपर से गिरता है। इसी के नजदीक गोधरमपुर गाँव है। इसके एक स्थान को मुलाव के नाम से पुकारा जाता है। यहां पर कुछ प्राचीन चट्टानें हैं, इसी के समीप एक चंदेलकालीन मंदिर बना हुआ है। इस मंदिर को बिलहरिया नाथ (मठ) के नाम से जाना जाता है। यह मंदिर लगभग 22 मीटर ऊँचा है। इसमें चंदेलकालीन वास्तुशिल्प मूर्ति अलंकरण के साथ विद्यमान है। कुल मिलाकर यह बाहरी क्षेत्र में 3.43 मीटर ऊँचा है तथा इसकी ऊँचाई अन्दर की ओर 2.6 मीटर है। वाहर से इसकी ऊँचाई 23.9 मीटर है इसके पास ही 2 अन्य मंदिरों के अवशेष भी है। ऐसा कहा जाता है कि इसका निर्माण किसी समय में कालिंजर के भरवंशिय राजाओं ने कराया था। जिसका पुर्न निर्माण चंदेलों ने कराया। इसी से कुछ दूरी पर फतेहगंज के मार्ग में एक चंदेलकालीन छोटा सा मंदिर भी

मिलता है। चंदेल युग के पश्चात कुछ समय तक यह बघेलों के राज्य में रहा। तत्पश्चात यह बुन्देलों के अधिकार में आ गया। बुन्देलों के राज्य में फतेहगंज और गोधरमपुर एक परगना के रूप में भी विकसित हुआ था।[16]

बिलहरिया मंदिर वास्तुशिल्प और मूर्तिशिल्प की दृष्टि से बड़ा ही उच्चकोटि का है। यह चंदेलकालीन विष्णु मंदिर प्रतीत होता है। मंदिर का अलंकरण अत्यन्त सुन्दर है। इसमें गर्भगृह और उसके सामने 9 वर्ग फुट का बरामदा है। मंदिर का शिखर नष्ट हो गया है।[17] डॉ0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय के अनुसार यह एक छोटा मंदिर है किन्तु इसका अलंकरण बहुत सुन्दर है। मंदिर की उत्तम स्थिति ने इसे बड़ा ही आकर्षक बना दिया है। मंदिर का शिखर अभी भी मौजूद है किन्तु उसके ऊपर का भाग नष्ट हो गया है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह विष्णु मंदिर ही है। मंदिर के मुख्य द्वार में विष्णु की मूर्ति है और दाहिनें तथा बाईं ओर ब्रह्मा और शिव की मूर्तियां हैं।

बिलहरिया मठ के दर्शनीय स्थल-

बिलहरिया मठ में भी निम्नलिखित दर्शनीय स्थल हैं-

1. वीरगढ़ दुर्ग-

बिलहरिया मठ के सन्निकट फतेहगंज से कुछ दूरी पर एक ऊंची पर्वत श्रेणी पर वीरगढ़ का दुर्ग है। यह दुर्ग बघेल नरेश वीरवर्मन देव का बनवाया है। दुर्ग की दीवारें अभी भी कहीं-कहीं पर सुरक्षित हैं। इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिए कई द्वार थे। दुर्ग की पहाड़ी पर नरेशों के अनेक भग्नावशेष उपलब्ध होते हैं। इसके प्रवेश द्वार आदि वर्तमान समय में नष्ट हो चुके हैं। यह दुर्ग शिल्प की दृष्टि से वनीय दुर्ग एवं पर्वतीय दुर्ग श्रेणी में आता है। इस दुर्ग से यह बोध होता है कि कभी यह दुर्ग राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान लगता था तथा बघेल नरेश अपनी सेना को इसी दुर्ग में रखते थे।

2. वीरगढ़ का देवी मंदिर-

वीरगढ़ दुर्ग के ऊपर ही एक देवी मंदिर है। इस मंदिर में पहुंचने के लिए दुर्ग के प्रवेश द्वार से जाना पड़ता है। इस मंदिर में देवी की प्राचीन मूर्ति है जो वास्तुशिल्प एवं मूर्तिशिल्प से चंदेलकालीन प्रतीत होती है। इस देवी मंदिर में नवरात्रि के अवसर पर भक्तों की भीड़ रहती है। इस मंदिर से यह भी ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र के निवासी विष्णु तथा शिव के अतिरिक्त शक्ति के उपासक भी थे।

3. मगरमुहा के शैलचित्र-

वीरगढ़ दुर्ग से थोड़ी दूरी पर एक पहाड़ी की कुछ ऊंचाई पर एक शैलाश्रय प्राप्त होता है। यह शैलाश्रय मगरमुहा के नाम से जाना जाता है। इस शैलाश्रय के समीप एक छोटा सा जल प्रपात है। इसी की चट्टानों पर गेरूऐं रंग से दीवारों पर कुछ चित्र बने हुए हैं, ये चित्र कलात्मक दृष्टि से बड़े सुन्दर हैं जिन्हें देखनें से ऐसा लगता है कि ये उत्तर पाषाण युग के हैं। इन शैलचित्रों पर बॉदा जनपद के पूर्व पुलिस अधीक्षक श्री

विजय कुमार ने शोध कार्य किया था।

4. फतेहगंज की मूर्ति सम्पदा-

फतेहगंज बस्ती में एक वृक्ष के नीचे चंदेलकालीन मूर्तियों को चबूतरा बनाकर चारों ओर रख दिया गया है। यह मूर्तियाँ मूर्तिकला की दृष्टि से बहुत ही सुन्दर हैं किन्तु दुख इस बात का है कि यहां के स्थानीय लोग इस मूर्ति सम्पदा के महत्व को नहीं समझते। वे इसके आस-पास अपने पालतू जानवरों को बांधते हैं जिससे यह उपेक्षित तथा लुप्त हो रहीं हैं। इसी प्रकार बिलहरिया मठ के पहले फतेहगंज, भरतकूप मार्ग पर कुछ मूर्तियाँ फैली पड़ीं हैं, इनमें अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं, एक मूर्ति हनुमान की भी है। इन मूर्तियों से तद्‌युगीन गरिमामयी ऐतिहासिक परम्परा का बोध होता है।

1. आवागमन के साधन-

बिलहरिया मठ के सन्निकट पहुंचने के लिए आवागमन के नियमित साधन नहीं हैं। कुछ सम्पर्क मार्गों का निर्माण किया गया है। यहां पर जो पर्यटक जाना चाहते हैं, उन्हें बदौसा तक रेल मार्ग उपलब्ध है। उसके बाद वह निजी साधन से फतेहगंज तक सम्पर्क मार्ग से आ सकते हैं। यहां पर फैली चारो तरफ पुरासम्पदा का दर्शन कर सकते हैं। इस क्षेत्र में सतना-पाथरकद्दार मार्ग से भी पहुंचा जा सकता है। यहां पहुंचने के लिए एक मार्ग कालिंजर से सढ़ा, नरदहा, बघेलावारी होते हुए फतेहगंज तक आता है। एक अन्य मार्ग चित्रकूट, गुप्तगोदावरी होता हुआ बानगंगा पार कर फतेहगंज तक आता है। अन्य कोई मार्ग सुलभ नहीं है।

2. आवासीय व्यवस्था-

फतेहगंज और बिलहरिया क्षेत्र में पर्यटकों के लिए कोई आवासीय व्यवस्था नहीं है। यहां के पर्यटक रूकने के लिए स्थानीय विद्यालय के प्रधानाचार्य से सम्पर्क कर सकते हैं तथा यहां के थाना अध्यक्ष से सलाह लेकर किसी परिचित व्यक्ति के घर में रह सकते हैं। यहां पर आने वाले ज्यादातर पर्यटक चित्रकूट पर्यटक निवास, होटलों अथवा धर्मशालाओं में ही ठहरते हैं और निजी संसाधन से यहां आते हैं।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

यह क्षेत्र सुरक्षा की दृष्टि से पहले सही नहीं था किन्तु डकैतों की चहल कदमी की वजह से अब यहां पुलिस थाना स्थापित कर दिया गया है। यद्यपि पर्यटक चाहें तो यहां के पुलिस थानें से सुरक्षा व्यवस्था प्राप्त कर सकता है। यहां के सभी स्थल एकान्त स्थानों में हैं। डकैतों के कई गैंग ग्रामों के पास सदैव सक्रिय रहते हैं। इसलिए समुचित व्यवस्था के साथ ही यहां के ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण किया जा सकता है। यहां व्यक्ति अधिक धन लेकर न आयें।

यात्रा के उद्देश्य-

जो पर्यटक इस क्षेत्र की यात्रा करना चाहते हैं । वह यहां निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आ

सकते हैं-

1. पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण-

यह क्षेत्र पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहां पर पूर्वऐतिहासिक काल के शैलचित्र मगरमुहा में प्राप्त होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र का ऐतिहासिक महत्व पाषाण युग से है। इसके पश्चात यहां महाकाव्य काल के ऐतिहासिक स्थल भी प्राप्त होते हैं। इस क्षेत्र के सकरों में दैत्यों के गुरू शुक्राचार्य का आश्रम रहा है। इसी के पास नरदहा में देवर्षि नारद का आश्रम रहा है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में चंदेलकालीन पुरा सम्पदा एवं बघेलकालीन पुरा सम्पदा चतुर्दिक फैली हुई है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यहां प्राप्त बिलहरिया मंदिर खजुराहो के मंदिरों से किसी भी स्थिति में कम नहीं है। इन्हें देखकर पर्यटक यह समझ लेता है कि यदि वह चंदेलयुगीन कलाकृतियों को देखने खजुराहो न भी जाये तो वह इन्हें देखकर सन्तुष्ट हो लेता है।

2. संस्कृति और समाज का अध्ययन-

यहां पर रहनें वाले निवासी ज्यादातर आदिवासी हैं। इन आदिवासियों में मुख्य रूप से खैरवार, कोल, गौड़, बैगा हैं। इनकी लोक संस्कृति, तीज-त्योहार आर्य कुल जातियों से भिन्न है। ये लोग प्रकृति के उपासक है। सूर्य, चन्द्र और वृक्षों की पूजा करते हैं, इनके भोज्य पदार्थ भी आर्यों के भोज्य पदार्थों से अलग है। खैरवार जाति के लोग कुठला जवारी में उपलब्ध लालरंग के कंकड़ों से स्वर्ण बनानें की क्रिया भी जानते हैं। यहां के लोगों की भाषा कुल्हाई है।

3. धार्मिक दृष्टिकोण-

जो भी पुरावशेष यहां उपलब्ध होता है। वह किसी न किसी धर्म से सम्बन्धित है इसलिए पर्यटक उन धार्मिक स्थलों को तीर्थ समझकर यहां की यात्रा करता है। मुख्य रूप से यहां विष्णु,शक्ति और हनुमान आदि की मूर्तियां उपलब्ध होती हैं। इन्हीं से इनकी धार्मिक भावनाओं का पता लगता है। इस क्षेत्र के तीज-त्योहार भी अन्य क्षेत्रों से भिन्न हैं जिन्हें देखने के लिए पर्यटक यहां आ सकते हैं। विशेषकर कुल्हाई नृत्य धार्मिक अवसरों पर यहां आयोजित होते है।

4. व्यवसायिक उद्देश्य-

पर्यटक यहां व्यवसाय के उद्देश्य से भी आ सकते हैं। इस क्षेत्र में वन सम्पदा का बाहुल्य है। इनमें इमारती लकड़ी, इमारती पत्थर का व्यवसाय करनें वाले व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं। इसके अलावा भी यहां शहद, लाख और बहुमूल्य औषधियां जिनका उपयोग जीवन रक्षा में प्रयोग किया जाता है, प्राप्त होती हैं। यह सम्पूर्ण क्षेत्र घने जंगल से घिरा है इसलिए जंगली पशुओं का शिकार भी किया जा सकता है। मगर वर्तमान समय में शिकार एक जुर्म माना जाता है और इस पर पूर्णरूपेण प्रतिबन्ध भी है।

बिलहरिया परिक्षेत्र तथा फतेहगंज का विशेष पुरातात्विक महत्व है । कालिंजर और मड़फा के पश्चात

यदि कोई ऐतिहासिक महत्व का स्थल है तो वह यही है। यद्यपि यहां मनोरंजन के साधनों का अभाव है। फिर भी वह यहां की प्राकृतिक छटा से अपना भरपूर मनोरंजन कर सकता है। यहां आकर उसे यहां की पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक सम्पदा का बोध होगा तथा वह यहां की संस्कृति से परिचित भी हो जायेगा।

5-कालिंजर-

पवित्र कालिंजर पवर्ततीय दुर्ग तरहटी ग्राम के समीप स्थित है। यह स्थल बाँदा-नागौद मार्ग पर बाँदा से 56 किलोमीटर दूर है। इस क्षेत्र का तरहटी नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यह ग्राम पर्वत के नीचे बसा हुआ है और इसके समीप जो पहाड़ी है, उसकी चोटी पर दुर्ग बना हुआ है। तरहटी ग्राम की आबादी 3,219 है तथा इसका क्षेत्रफल 452 हेक्टेयर है। इस क्षेत्र में गेंहू और चना की खेती होती है। कुओं से सिंचाई की जाती है।

जिस पहाड़ी पर दुर्ग निर्मित है वह दक्षिण पूर्व में है। यह बुन्देलखण्ड प्रान्त का एक भाग है। इसकी ऊँचाई समुद्रतल से 374.90 मीटर है और तरहटी से इसकी ऊँचाई 213.36 मीटर है। यह चारों ओर से विन्ध्य पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है। इसकी चौड़ाई 1.150 मीटर है। इसके पूर्वी भाग में कालिंजरी नामक एक छोटी सी पहाड़ी है जिसकी ऊंचाई उस पर्वत के बराबर है जिस पर दुर्ग बना हुआ है। ये चारो ओर मैदानी भाग से ऊंचा उठा हुआ दिखाई देता है। इनके चारो तरफ जो ढाल है उन्हीं से ऊपर जाने का मार्ग भी है। इस पर्वत की ऊंचाई से अति सुन्दर प्राकृतिक दृश्य दिखाई देते हैं, ये दृश्य व्यक्ति 50 मीटर से लेकर 60 मीटर की ऊंचाई से देख सकता है।

जिस पर्वत में दुर्ग बना हुआ है उसका ऊपरी भाग समतल है तथा उसका क्षेत्रफल 6 किलोमीटर चौड़ा तथा 8 किलो मीटर लम्बा है। इस लम्बाई-चौड़ाई के चारो ओर दुर्ग की पक्की दीवारें बनीं हुईं हैं। यह दीवारें बड़े-बड़े पत्थरों से निर्मित है। इसमें कहीं भी किसी भी प्रकार के मसाले का प्रयोग नहीं किया गया है। कहीं-कहीं पर तो समय के आघात के कारण दुर्ग की दीवारों का परिकोटा गिर गया है। यहां पर जो भग्नावशेष प्राप्त होते हैं उससे यह आभास होता है कि कालिंजर कभी अच्छा और बहुत अच्छा नगर था। इसकी चतुर्दिक ख्याति फैली हुई थी। जलापूर्ति के लिए यहां नाना प्रकार के जलाशय उपलब्ध थे। पर्वत में चढ़ने के लिए दक्षिण भाग से लेकर एक मार्ग बना हुआ है जो अत्यन्त सकरा है तथा कुछ स्थानों में बहुत ही खराब है। काफिर घाटी को पार करके दुर्ग के प्रथम द्वार तक पहुंचा जा सकता है। यहीं पर पत्थरों से निर्मित सीढ़ियाँ भी हैं जिनके सहारे ऊपर चढ़ा जा सकता है।

कालिंजर एक विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल है। इसके अस्तित्व के संदर्भ में वेदों में भी उल्लेख मिला है। बाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा वेदव्यास द्वारा रचित 18 पुराणों में इसे शिव के महान तीर्थ की संज्ञा मिली हुई है तथा दुर्ग के समीप ही अगस्त्य और सुतीक्ष्ण जैसे ऋषियों के आश्रम भी रहें हैं। इस क्षेत्र में अनेक भग्नावशेष मिलते हैं।

कालिंजर के दर्शनीय स्थल-

इस क्षेत्र में निम्न स्थल दर्शनीय हैं। लगभग सम्पूर्ण कालिंजर भी कहा जा सकता है-

कालिंजर दुर्ग-

कालिंजर दुर्ग विश्व के प्राचीनतम् दुर्गों में से एक है। इस दुर्ग के वास्तविक निर्माता का नाम अभी तक ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में उपलब्ध नहीं हो पाया किन्तु जनश्रुतियों के अनुसार चंदेलवंश के संस्थापक चन्द्रवर्मा ने इसका निर्माण कराया किन्तु कतिपय इतिहासकारों के अनुसार इस दुर्ग का निर्माण केदार वर्मन ने ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर 7वीं शताब्दी के मध्य कभी निर्मित कराया था।[18] पुरातात्विक दृष्टि से इस दुर्ग का विशेष महत्व है। दुर्ग में अनेक ऐसे स्थल हैं जो इसके पुरातन गौरव को जीवित रखे हुए हैं। पहले यह दुर्ग नीचे से ही प्राचीर वेष्टित था और कालिंजर में प्रवेश करने के लिए चार द्वार थे जिसमें अब तीन द्वार ही शेष रह गये हैं। इन द्वारों के नाम कामता द्वार, पन्ना द्वार, एवं रींवा द्वार है। इन द्वारों से ही प्रवेश करके कालिंजर में प्रवेश किया जा सकता है। इतिहासकारों के अनुसार इन द्वारों का निर्माण औरंगजेब के समय में हुआ।[19] इस नगर में बहुसंख्यक स्मारक हैं। इनमें से अधिकांश मुगलकालीन है, जिनका निर्माण अकबर के शासनकाल में हुआ था।[20]

कालिंजर दुर्ग में ऊपर जाने के लिए दो मार्ग उपलब्ध होते हैं। इसका प्रमुख मार्ग उत्तर-दक्षिण दिशा की ओर से है तथा दूसरा मार्ग दक्षिण-पश्चिम से है। दूसरे मार्ग का प्रमुख द्वार पन्ना दरवाजा कहलाता है। अब यह बन्द है इस दुर्ग में 7 महत्वपूर्ण द्वार है जो निम्नवत है-

1. आलम अथवा आलमगीर दरवाजा-

काफिर घाटी में लगभग 200 फीट की ऊंचाई पर यह दरवाजा बना हुआ है। इसे आलम दरवाजा कहते है। इसे मुगल सम्राट आलमगीर के नाम से निर्मित किया गया है।द्वार के ऊपर तीन पंक्तियों वाला एक लेख फारसी में प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख से यह ऐतिहासिक जानकारी मिलती है कि औरंगजेब के शासनकाल में मुराद द्वारा इस द्वार का निर्माण कराया गया। दुर्ग की दीवार को सिकन्दर की दीवार की भाँति दृढ़ किया गया था। इसमें हिजरी संवत् 1048 अंकित है। तदानुसान इसका निर्माण सन् 1673 में हुआ। निर्माण शैली की दृष्टि से यह मुस्लिम शैली का तद्युगीन नमूना था। यह बहुत ही सुदृढ़ है। हो सकता है कि किले के प्राचीन द्वार की मरम्मत ही औरंगजेब ने करवाई हो और उसका नाम परिवर्तित कर दिया हो-

अल्ला हो हुबुलगनो

शाह औरंगजेब दीन परवर, शदमरमत चूं कला कालंजर

चूं मुहम्मद मुराद अज हुकुमत सख्त दरहा मूहक मुखुस्तर

अज खुरद साल चुश्मतमश मींगुफत सद अजीं चूं सद असकन्दर

2. गणेश दरवाजा-

प्रथम द्वार से ऊपर जाने पर घेरानुमा सीढ़ियाँ प्राप्त होती हैं। उसके पश्चात यह दरवाजा मिलता है। इस दरवाजे तक पहुंचनें के लिए दुर्गम चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। इस दरवाजे को गणेश दरवाजा कहते हैं। यहां की चढ़ाई को काफिर घाटी के नाम से पुकारा जाता है।[21] यह नाम मुसलमानों द्वारा दिया गया था। इस दरवाजे के सन्निकट गणेश जी की प्रतिमा है। यह प्रतिमा 18 फिट लम्बी है। द्वार के दोनों ओर बुर्ज बनें हुए हैं यहां कोई अभिलेख नहीं मिलता है।

3. चण्डी और चौ-बुर्जी दरवाजा-

कालिंजर दुर्ग के तीसरे द्वार को चन्द्रिका द्वार अथवा चौ-बुर्जी दरवाजा के नाम से पुकारते हैं। यह द्वार द्वितीय द्वार से कुछ दूरी पर है। यहां पर दोहरा दरवाजा है परन्तु दोनों द्वारों को एक ही नाम से पुकारा जाता है। इस स्थल में विक्रमी संवत् 1199, 1572, 1580 और विक्रमी संवत् 1600 के अभिलेख प्राप्त होते है। यह सभी अभिलेख तीर्थ यात्रियों के है। विक्रमी संवत् 1600 का जो अभिलेख प्राप्त हुआ है उसमें शेरशाह सूरी द्वारा दुर्ग को अधिकृत करने का उल्लेख है। इसी के समीप एक पहाड़ी पर 15 पंक्तियों का परवर्ती गुप्तकालीन राजाओं का भी एक अभिलेख है जिसका विवरण किसी इतिहासकार ने नहीं दिया। यह अभिलेख महत्वपूर्ण है किन्तु अच्छी स्थिति में नहीं है।[22] इस अभिलेख में राजा का कोई नाम नहीं है। इसी के पास एक चट्टान पर चौकीदार की एक मूर्ति उपलब्ध होती है।[23]

4. बुधभद्र दरवाजा-

चतुर्थ द्वार को बुधभद्र अथवा बुध भद्रक द्वार के नाम से पुकारते हैं। यहां से किले की ढाल और दुस्तर हो जाती है। इस स्थल पर सन् 1531 का एक अभिलेख प्राप्त होता है। यह द्वार पूरी तरह नष्ट हो गया है, इसके समीप ही भैरव कुण्ड है।

5. हनुमान दरवाजा-

दुर्ग का पांचवा द्वार हनुमान द्वार के नाम से विख्यात है। इस द्वार का नाम हनुमान द्वार इसलिए पड़ा कि यहां की एक शिला पर हनुमान जी की प्रतिमा उत्कीर्ण है। उसी के समीप एक कुण्ड है जिसे हनुमान कुण्ड के नाम से पुकारा जाता है इस द्वार के समीप अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। अनेक मूर्तियाँ भग्न भी हो चुकी है। इनमें प्रमुख मूर्तियाँ काली, गणेश, नन्दी , चण्डिका, शिवलिंग, शिवपार्वती आदि की मूर्तियाँ हैं। इस स्थल पर 1560 से 1600 तक के अभिलेख भी मिलते है।

6. लाल दरवाजा-

कालिंजर दुर्ग का यह छठा द्वार है इसे लाल दरवाजा के नाम से जाना जाता है । इसका मुख्य कारण यह है कि इसका निर्माण लाल पत्थरों से हुआ है। इसके पश्चिमी भाग में खम्भौर ताल (कुण्ड) है। बहुत से लोग इसे भैरव कुण्ड के नाम से पुकारते हैं।

7. बड़ा दरवाजा-

कालिंजर दुर्ग का यह अंतिम एवं सातवां द्वार है । इसे बड़ा दरवाजा के नाम से पुकारा जाता है। इसलिए इसे बड़ा दरवाजा कहते हैं क्योंकि यह अन्य छै दरवाजों से बड़ा है। साथ ही सुदृढ़ एवं कलात्मक भी है। इसकी ऊँचाई भी अन्य दरवाजों से अधिक है। इसके मध्य भाग में शिखर है और दोनों ओर दो श्रृंग है। यह द्वार देखने में आधुनिक प्रतीत होता है। यहां एक अभिलेख विक्रमी संवत् 1691 अर्थात 1634 ई0 का प्राप्त हुआ है। इस द्वार के निकट अनेक मूर्तियाँ हैं। ये शिव-पार्वती, शिवलिंग, योगी आदि की हैं। इन्हीं के समीप चरण चिन्ह भी प्राप्त होते है। इसके बाद समतल मैदान प्रारम्भ हो जाता है। जहां, अनेक दर्शनीय स्थल हैं।

1. सीता सेज, 2. पाताल गंगा, 3. पाण्डव कुण्ड, 4. वृद्धक क्षेत्र अथवा बुड्ढा-बुड्ढी ताल, 5. सिद्ध की गुफा, भगवान सेज अथवा पानी का अमान, 6. भैरव की झिरिया अथवा भैरव कुण्ड, 7. मृगधारा, 8. कोटितीर्थ, 9. नीलकण्ठ, 10 बलखण्डेश्वर महादेव।

इन सभी स्थलों का पर्याप्त वर्णन द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है अतः द्वितीय अध्याय को देखिये।

11. ड्योढ़ी-

जब हम सातवें द्वार से किले के ऊपर प्रवेश करते हैं उस समय सैनिकों के ठहरनें के लिए बरामदे के रूप में ये स्थल यहां चारों ओर बनें हैं। किसी समय में इन बरामदों में दुर्ग रक्षक सैनिक रहा करते थे। इनमें से कुछ चंदेलकाल के हैं और शेष बाद के निर्मित प्रतीत होते हैं।

12. चौबे महल-

जब महाराज छत्रसाल ने यह दुर्ग औरंगजेब के सैनिकों से जीत लिया उस समय इस दुर्ग का किलेदार मानधाता चौबे को नियुक्त किया गया। उसी समय कुछ काल उपरान्त सातवें द्वार के निकट चौबे महल का निर्माण किया गया। यह महल बाहर तथा अंदर से बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है। यह बुन्देली वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है।

13. वेंकटेश्वर मंदिर अथवा रानी महल-

किले के थोड़ी दूर पर जैसे ही हम राजा अमान सिंह के महल की ओर बढ़ते है। हमें दो भग्नावशेष उपलब्ध होते हैं। यह बुन्देलों के शासन काल में निर्मित हुए प्रतीत होते है।

14. जुझौतिया बस्ती-

वेंकटेश्वर मंदिर एवं रानी महल के पास दुर्ग के ऊपर भवनों के अनेक खण्डहर प्राप्त होते हैं। इन खण्डहरों को यहां के निवासी जुझौतिया बस्ती के नाम से पुकारते हैं। जनश्रुति के अनुसार चंदेल शासन काल में जुझौतिया ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान था और वे राजाओं के लिए यज्ञ आदि कराया करते थे।

15. शाही मस्जिद-

वेंकटेश्वर मंदिर के पास ही एक शाही मस्जिद के अवशेष प्राप्त होते हैं। यह मस्जिद सल्तनत अथवा मुगलकाल की मालुम होती है। ऐसा लगता है कि जब इस क्षेत्र में मुसलमानों का शासन स्थापित हुआ उस समय इसका निर्माण हुआ।

16. राजा अमान सिंह का महल अथवा मूर्ति संग्रहालय-

हिन्दूपत के भाई राजा अमान सिंह कालिंजर दुर्ग में निवास किया करते थे। उन्होंने अपने निवास के लिए इस महल का निर्माण कराया था। महल के प्रवेश द्वार में महराबदार दरवाजा बना हुआ है। जिसके ऊपरी भाग में कारीगरों द्वारा विशिष्ट कारीगरी की गई। इसके पश्चात एक बड़ा सा बरामदा मिलता है, बरामदा के पश्चात एक आयताकार आंगन है, जिसके चारो ओर बरामदें है ये बरामदें महराबदार हैं। अन्दर देखने से यह पता लगता है कि यह महल दो मंजिल का था। यह बुन्देली वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस स्थल में पुरातत्व विभाग द्वारा एक संग्रहालय स्थापित किया गया है जिनमें गुप्तकाल से लेकर चंदेलकाल की विभिन्न मूर्तियों को संग्रहीत किया गया है। इन मूर्तियों में शिव, विष्णु, शक्ति के अतिरिक्त यक्ष- यक्षणियों, पशुओं एवं नागों की मूर्तियाँ भी हैं। इस संग्रहालय में पुरातत्व विभाग के अधिकारी व कर्मचारी रहते हैं जो पर्यटकों को संग्रहालय देखनें की सुविधा प्रदान करते हैं।

17 वाऊचोप का मकबरा-

सन् 1812 के पश्चात दुर्ग के ऊपर अंग्रेजों का अधिकार हो गया था। उसी समय के कुछ समय बाद वाऊचोप नाम का अंग्रेज प्रशासक यहां निवास करता था। जिसकी हत्या खैरवार जाति के किसी व्यक्ति ने इसलिए कर दी थी कि वह उसकी पत्नी से अनुचित सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था, वह व्यक्ति वाऊचोप का नौकर था।

18. रामकटोरा ताल-

दुर्ग के ऊपर जहां सरकारी डाक बंगला बना हुआ है, उसी के समीप रामकटोरा ताल है, जिसके चारों ओर सोपान बनें हुए हैं। इसकी आकृति कटोरे जैसी मालुम पड़ती है। इसके चारो तरफ कई भग्नावशेष भी हैं। इसके अलावा भी यहां शनिचरी तलइया व बिजली तलइया भी है।

19. जौहरा-

जैसे ही हम नीलकण्ठ मंदिर की ओर प्रवेश करना चाहते है। प्रवेश द्वार के बाहर ही जौहरा नामक एक स्मारक मिलता है। इस स्मारक के विषय में यह कहा जाता है कि जब कोई चंदेल नरेश किसी अन्य शासकों से परास्त हो जाता था, उस समय उसकी स्त्रियाँ इस स्थल पर आत्मदाह करके जौहरव्रत किया करती थीं। अब यह स्थान जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है, मगर उसके चारों ओर के बरामदे सुरक्षित हैं।

20. मजार ताल-

नीलकण्ठ मंदिर के किनारे-किनारे दुर्ग की दीवार के सहारे जब हम उल्टी दिशा से सातवें द्वार की ओर लौटते हैं, उस समय हमें एक मजार ताल उपलब्ध होता है। इस मजार के निचले भाग में किसी मुसलमान सैनिक अधिकारी की दो कब्रें हैं। उसी के सन्निकट चट्टान काटकर एक तालाब का निर्माण किया गया है। इस ताल के संदर्भ में यह कहते हैं कि अनेक सैनिकों ने युद्ध करते हुए यहां अपने प्राण गवायें थे और उनके अस्त्र-शस्त्र इसी तालाब में पड़े हुए हैं।

21. भरचाचर-

कालिंजर दुर्ग के ऊपर जैसे ही हम शासन द्वारा निर्मित नवीन मार्ग से दुर्ग के ऊपर आते हैं तथा दुर्ग की दीवार के सहारे सीता सेज और पाण्डव कुण्ड की ओर बढ़ते हैं। वहीं पर दुर्ग की दीवार में अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इस स्थल को यहां के लोग भरचाचर के नाम से पुकारते हैं। इस स्थल में दुर्ग की दीवार विशेष चौड़ी और सुदृढ़ है, जिसकी तुलना चीन की दीवार से की जाती है।

दुर्ग के नीचे के दर्शनीय स्थल-

कालिंजर पर्यटन की दृष्टि से दर्शनीय स्थलों के लिए यहां के अन्य क्षेत्रों से अधिक महत्वपूर्ण है। यहां पर तरहटी, बहादुरपुर, कटरा तथा उसके आस-पास अनेक दर्शनीय स्थल है। यह दर्शनीय स्थल चंदेलकाल से लेकर बघेलों व बुन्देलों के शासनकाल तक के हैं, इनमें निम्नलिखित प्रसिद्ध स्थल है।

1. राठौर महल-

दुर्ग के नीचे उतरने पर यह महल बना हुआ है। इस महल के नीचे थोड़ी दूर पर हनुमान जी की विशाल प्रतिमा है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह महल मुगल और बुन्देली वास्तुशिल्प का अनूठा नमूना है। इस महल के बाहर ड्योढ़ी फिर महराबदार कलात्मक द्वार के अन्दर प्रवेश करने पर बरामदा बरामदा के भीतर एक चौकोर आंगन और उसके चारो ओर महराबदार बरामदें एवं कमरे हैं। यहां की यह विशेषता है कि ग्रीष्म ऋतु में वायु जाने के लिए झरोखे का निर्माण अति विशिष्ट तरीके से हुआ है। इस महल के अन्दर का भाग ध्वस्त है। बाहर का द्वार पूरी तरह सुरक्षित है। इस महल के संदर्भ में यह जानकारी प्राप्त हुई है कि इसका निर्माण अकबर के जमाने में राष्ट्रकूट वंशीय क्षत्रियों ने कराया था जो अकबर से प्रभावित होकर दीन इलाही धर्म के अनुयायी हो गये थे और बाद में मुसलमान बन गये।

2. रनिवास-

राष्ट्रकूट महल के ठीक सामनें दो कब्रें उपलब्ध होती हैं और उसी से लगा हुआ महलों का एक भग्नावशेष प्राप्त होता है। इसका निर्माण भी राष्ट्रकूट शैली का है। इसके निर्माण में पत्थरों के अतिरिक्त पतली ईटों का प्रयोग किया गया है तथा मसाले के रूप में चूनें का प्रयोग हुआ है ये स्थल राष्ट्रकूटों की रानियों का निवास स्थान था, अब यह ध्वस्त हो चुका है।

3. ठाकुर मतोला सिंह संग्रहालय-

सन् 1964 में जब ठाकुर मतोला सिंह नरैनी क्षेत्र के विधायक थे, उस समय उन्होंने कालिंजर परिक्षेत्र की लावारिस मूर्तियों को विभिन्न क्षेत्रों से एकत्रित करके एक संग्रहालय का निर्माण कराया था तथा खण्डित मूर्तियों को आधुनिक रूप प्रदान किया था। इस संग्रहालय में जो मूर्तियाँ उपलब्ध है।उनमें अधिकाशं मूर्तियाँ दशावतार विष्णु की है तथा कुछ अन्य मूर्तियाँ भी हैं। यह संग्रहालय वर्तमान समय में उपेक्षा का शिकार है तथा धीरे-धीरे ध्वस्त हो रहा है।

4. बेलाताल-

बेलाताल सरोवर कालिंजर का सर्वोत्कृष्ट सरोवर प्रतीत होता है। यहां एक बड़ा सरोवर है। उसके चारो ओर महराबदार द्वार बनें हुए हैं। सरोवर में जल स्तर तक पहुंचनें के लिए सोपान हैं यदि इसका नवीनीकरण कर दिया जाये तो यह स्थल पर्यटकों के लिए अत्यन्त लाभकारी हो सकता है।

5. सगरा बाँध-

यह बाँध कालिंजर जलापूर्ति के लिए एक महत्वपूर्ण जल श्रोत था। इसी बाँध से कालिंजर दुर्ग के ऊपर पानी पहुंचता था किन्तु जब कालिंजर पर महमूद गजनवी ने आक्रमण किया उस समय उसनें सगरा बाँध को ध्वस्त कर दिया, जिससे दुर्ग के ऊपर की जलापूर्ति बंद हो गई। परिणामस्वरूप चंदेल नरेश को संधि करनीं पड़ी।

6. अगस्त्य आश्रम-

कालिंजर दुर्ग वाले पर्वत पर पीछे की ओर सुप्रसिद्ध आर्य ऋषि अगस्त्य का आश्रम रहा है। सुप्रसिद्ध कवि व संस्कृत आचार्य बाणभट्ट ने भी अपने ग्रंथ कादम्बरी में विन्ध्य आटवीं में अगस्त्य ऋषि के आश्रम को स्वीकार किया है। वर्तमान समय में इस आश्रम का मौलिक स्वरूप नष्ट हो गया है किन्तु उसके वास्तविक स्थल को आसानी से पहचाना जा सकता है।

7. मुड़िया देव का सिद्ध स्थल-

कालिंजर दुर्ग के पर्वत के पीछे मुड़िया देव नाम का एक ग्राम है। इस ग्राम में एक प्राकृतिक जल श्रोत है जिसका पानी कभी भी नहीं सूखता। इस ग्राम के निवासी खैरवार जनजाति के लोग इससे अपनी जलापूर्ति करते हैं। इसी के समीप सिद्धों का एक स्थल है, जिसकी यह विशेषता है कि यदि कोई व्यक्ति सिद्ध स्थल में गोली दागे तो स्थल में आग लग जाती है तथा गोली का जवाब गोली से मिलता है। यह एक आश्चर्य जनक ऐतिहासिक स्थल है जिसका धार्मिक महत्व भी है।

8. शेरशाह सूरी का मकबरा-

जैसे ही हम कालिंजर से बघेलावारी मार्ग पर आगे बढ़ते हैं थोड़ी दूर पर शेरशाह सूरी का मकबरा एक खेत के समीप ऊँचे चबूतरे पर बना मिलता है। यह मकबरा लाल पत्थर का है। वास्तुशिल्प की दृष्टि

से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

9. हुमायूँ की छावनी-

शेरशाह सूरी के मकबरे से कुछ दूर सड़क किनारे हुमायूँ की छावनी नामक स्थान मिलता है। कालिंजर परिक्षेत्र में दो हुमायूँ रहे। प्रथम हुमायूँ शेरवानी था, जो यहां का किलेदार भी रहा। दूसरा हुमायूँ बाबर का पुत्र था, जिसने यहां आक्रमण किया था किन्तु वह कालिंजर दुर्ग को बिना जीते ही वापस चला गया। यहां एक लघुगढ़ी है। इसमें महराबदार दरवाजे और उसके अन्दर बरामदें हैं। यह इमारत मुगलकालीन प्रतीत होती है।

10 मिश्रों के महल-

कालिंजर तरहटी में थोड़ी दूर पर मिश्रों के महल प्राप्त होते हैं। कहते हैं कि किसी युग में मिश्र बंधु इस क्षेत्र के सामन्त थे। उन्होंने अपने निवास के लिए दो महलों का निर्माण कराया था। उनके संदर्भ में यह भी कहा जाता था कि वे जिस क्षेत्र को खोदते थे वहीं उनको धन की प्राप्ति होती थी। उसी धन से इन्होंने महलो का निर्माण कालिंजर में कराया। इस महल का प्रवेश द्वार महराबदार है, उसके पश्चात चौकोर आंगन है और चारो ओर महराबदार दरवाजों से युक्त बरामदें एवं कमरें हैं। यह महल भी अब नष्ट हो चुका है।

11. नरदहा के ऐतिहासिक स्मारक-

हुमायूँ की छावनी से जैसे ही हम बघेलावारी मार्ग की ओर आगे बढ़ते हैं, हमें नरदहा नामक ग्राम प्राप्त होता है। इस ग्राम के संदर्भ में यह जनश्रुति है कि किसी युग में इस स्थल पर महर्षि नारद का आश्रम था। यहीं पर एक पहाड़ी है। इस पहाड़ी के ऊपर आल्हा-ऊदल के समय के पत्थर के दो कोल्हू उपलब्ध होते हैं। इन कोल्हूओं के संदर्भ में यह जनश्रुति है कि भीषण अपराध में व्यक्तियों को मृत्युदण्ड देने के लिए इनका प्रयोग होता था। इसी पहाड़ी पर कुछ तद्युगीन अभिलेख भी मिले है। पहाड़ी के निचले स्तर पर हायर सेकेन्डरी स्कूल के निकट एक वृक्ष के नीचे चंदेलकालीन मूर्तियाँ एकत्रित हैं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं।

12. कौहारी का हांथी खाना-

जैसे ही हम कालिंजर से सतना की ओर आगे बढ़ते हैं। हमें कौहारी नामक ग्राम बागे नदी के तट पर मिलता है। यह ग्राम कालिंजर दुर्ग पर्वत का पिछवाड़ा है। इस स्थल पर किसी जमानें में चंदेल सेना के हाथियों और घोड़ों के बाधने का स्थान था। काफी लम्बे क्षेत्र में पत्थर के खूंटे प्राप्त होते हैं। कुछ कलात्मक भग्नों के अवशेष भी मिलते हैं। ये सभी स्थल चंदेलकालीन हैं। इस क्षेत्र में कुछ धार्मिक स्थल भी हैं जो बुन्देलों के शासन काल के हैं।

1. आवागमन के साधन-

कालिंजर परिक्षेत्र तक पहुंचने के लिए जो मार्ग उपलब्ध होते हैं, वे सभी के सभी सड़क परिवहन से

जुड़े हुए हैं। इस परिक्षेत्र में बाँदा से सतना नियमित रूप से बस चलती है, जो यात्रियों को यहां तक ला सकती है। यदि व्यक्ति पन्ना- अजयगढ़ होकर यहां आना चाहता है, तो उसके लिए पन्ना- इलाहाबाद बस उपलब्ध है। यह यात्री को नरैनी में छोड़ देती है, उसे नरैनी से दूसरी बस से यहां आना पड़ता है। तीसरा मार्ग खजुराहो -पन्ना तथा पहाड़ी खेरा से होकर भी है किन्तु इस मार्ग में कोई नियमित बस सेवा नहीं है। इसी प्रकार एक अन्य मार्ग चित्रकूट -भरतकूप-बघेलावारी से भी यहां आता है। इस मार्ग में भी नियमित बस सेवा नहीं हैं। एक और मार्ग बदौसा-बघेलावारी होता हुआ यहां आता है। यहां से व्यक्ति निजी संसाधनों से आ सकता है। यहां पहुंचनें के लिए एक मार्ग और भी है। यह मार्ग सतना-पाथरकद्दार-फतेहगंज-बघेलावारी-सढ़ा और नरदहा होते हुए यहां आता है। इस क्षेत्र में कोई भी यात्री सड़क मार्ग से ही आ सकता है अन्य कोई सुविधा उपलब्ध नहीं है।

2. आवासीय व्यवस्था-

कालिंजर दुर्ग में पर्यटकों के लिए आवासीय व्यवस्था बहुत पहले से है। यहां पर कालिंजर प्रवेश मार्ग पर नीचे एक सरकारी डाक बंगला है। इस डाक बंगले में पर्यटक जिलाप्रशासन की अनुमति से ठहर सकता है। यहां पर पर्यटकों को रुकनें के लिए दुर्ग के ऊपर भी एक डाक बंगला है। यह डाक बंगला रामकटोरा ताल के पास है किन्तु इस डाक बंगले में संसाधनों का अभाव रहता है। पर्यटकों के रूकने के लिए एक तीसरा स्थान राठौर महल के सन्निकट नवनिर्मित रैन बसेरा भी है। यदि यात्री चाहे तो यहां रूक सकता है लेकिन यह पूरी तरह से व्यवस्थित नहीं हो पाया है। यात्रियों के रूकने के लिए कालिंजर में एक नये स्थान का निर्माण दुर्ग के ऊपर किया गया है। यह भवन मोटिल के नाम से प्रसिद्ध है तथा यह भी कालिंजर दुर्ग के ऊपर पर्यटक बंगला से लगा हुआ है। पर्यटकों की सुविधा के लिए दुर्ग के ऊपर तक एक नवीन मार्ग का निर्माण भी हो गया है। जिनसे पर्यटक अपने वाहनों सहित ठहरनें के लिए इन स्थलों पर आ सकता है। यहां पर भोजन की कोई व्यवस्था नहीं है केवल कुछ चाय की दुकानें और होटल बस स्टैण्ड के पास हैं। इसके अतिरिक्त पर्यटक चाहे तो श्यामबिहारी छिरौलिया व उनके पुत्र अरविन्द छिरौलिया एवं अनन्त बिहारी अरजरिया से सम्पर्क स्थापित करके अपने लिए भोजन की व्यवस्था करवा सकते हैं।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

कालिंजर परिक्षेत्र में पर्यटकों को अच्छी सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध हो सकती है। यहां पर पुलिस स्टेशन है। जहां 24 घण्टे पुलिस सुविधायें उपलब्ध हैं, यदि कोई पर्यटक किसी स्थल में जाने के लिए सुरक्षा प्राप्त करना चाहता है तो वह यहां के थानेदार से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। यह क्षेत्र भी अराजक तत्वों से युक्त है। इसलिए अपरिचित स्थल से आने वाले पर्यटकों को बिना सुरक्षा व्यवस्था के किसी भी स्थान में जाने का साहस अकेले नहीं करना चाहिए।

यात्रा का उद्देश्य-

इस क्षेत्र में आने वाला पर्यटक निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर यहां की यात्रा कर सकता है-

1. पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक महत्व-

कालिंजर का पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक महत्व ही सबसे अधिक है। इस परिक्षेत्र में पुरापाषाण युग से लेकर महाकाव्य युग, मौर्य युग, गुप्त युग, चन्देल युग तथा बुन्देलों के शासनकाल के अनेक ऐतिहासिक स्थल उपलब्ध होते हैं। जिनके संदर्भ में अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों में वर्णन प्राप्त है। जब पर्यटक इस परिक्षेत्र का वास्तुशिल्प एवं इतिहास की दृष्टि से पर्यटन करता है तो वह इसकी गरिमा से परिचित हो जाता है। यह स्थल विश्व के अन्य ऐतिहासिक स्थलों से भिन्न एवं प्राचीनतम है।

2. संस्कृति एवं सामाजिक अध्ययन-

पर्यटक यहां की सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति का अध्ययन करनें आ सकता है। इस क्षेत्र की सामाजिक व्यवस्था मिश्रित सामाजिक व्यवस्था है क्योंकि यहां अनेक स्थलों में अनार्य कुल की जन-जातियां प्राप्त होती हैं, जिनकी लोक संस्कृति आर्य कुल की लोक संस्कृति से भिन्न है। यहां के लोगों की वेश-भूषा भी अलग प्रतीत होती है। इस क्षेत्र में तंत्र उपासक, प्रकृति पूजक और मूर्ति उपासक सभी प्रकार के लोग हैं। यहां पर बनाफरी, कुडरी, कुल्हाई, जाड़, जूड़र आदि भाषायें बोली जाती हैं। इनका लोक संगीत भी अन्य क्षेत्रों से अलग है। इसे पर्यटक संस्कृति की विशाल उपलब्धि समझकर देख सकता है। इस क्षेत्र में आल्हा गाइकी की विशेष विधा भी है। दिवाली नृत्य भी अन्य क्षेत्रों से अलग है।

3. धार्मिक उद्देश्य-

यहां पर ज्यादातर भारतीय पर्यटक ही धार्मिक दृष्टि से आया करते थे। प्राचीन काल में यह एक महान शिव तीर्थ स्थल था। नौ ऊखलों में इसकी गिनती होती थी। व्यक्ति नीलकण्ठ महादेव पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करनें के लिए प्रत्येक कार्तिक पूर्णिमा में यहां आते थे और आज भी आते हैं। इसके अतिरिक्त भी पितृपक्ष में पर्यटक मृगधारा में पिण्डदान करते थे। कोटितीर्थ ताल में स्नान करते थे। यह भी जनश्रुति है कि जो भी व्यक्ति वृद्धक ताल में स्नान करता है। वह कुष्ट रोग से मुक्त हो जाता है। इस क्षेत्र की यात्रा करनें वाले को हजार गायों का दान करनें का पुण्य मिलता है।

4. आर्थिक उद्देश्य-

कालिंजर परिक्षेत्र आर्थिक दृष्टि से भी बहुत अधिक धनी है। इस क्षेत्र में अनेक ऐसी वस्तुऐं प्राप्त होती हैं, जिनका मानव जीवन से सीधा सम्पर्क है जो मनुष्य को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करती है। यदि व्यक्ति चाहे तो यहां प्राप्त वस्तुओं से आर्थिक लाभ भी प्राप्त हो सकता है। इस क्षेत्र में अनेक औषधियों की खोज प्रसिद्ध इतिहासकार राय चौधरी तथा पाल ने 1978 में की थी। इसके पश्चात 1979 में रथ ने इनकी खोज की। 1980 में इनकी खोज घोष- गुप्ता आदि ने की। 1982 में कुछ नवीन वस्तुओं की खोज शर्मा जी ने

की, 1985 में गोपाल और शाह ने की, इसी प्रकार 1986 में सिन्हा ने और नथावत एवं उन्याल ने कुछ वस्तुओं की खोज 1989-90 में की।

उनकी खोजों से यह स्पष्ट हो गया कि कालिंजर परिक्षेत्र एक ऐसा स्थल है कि यहां व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से भी यात्रा कर सकता है। इस क्षेत्र में सीताफल, घमाय, हर्र, गोरख इमली, मरोफली, बेल, घुनचू, किरवारो, किवांच, छुईमुई, सरफोंका, फलदू, कूटा, सुन्दरी, नरगुण्डी, दूधी, शिखा आदि औषधियाँ प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त लोहा, अभ्रक , ताँबा, जैसे पदार्थ उपलब्ध होते हैं। इसके अलावा भी कालिंजर के समीप हीरा भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। इन वस्तुओं के अतिरिक्त यहां इमारती लकड़ी व इमारती पत्थर भी पाया जाता है। इनसे अनेक वस्तुओं का निर्माण होता है, यदि व्यक्ति इनके व्यवसाय के लिए यात्रा करे तो सुखद होगा।[24]

इस प्रकार हम देखते है कि किसी भी पर्यटक के लिए कालिंजर की यात्रा लाभकारी सिद्ध हो सकती है। चाहे वह किसी भी उद्देश्य से की गई हों। यदि उसने भारत वर्ष में अनेक स्थलों का भ्रमण किया है और कालिंजर परिक्षेत्र का भ्रमण नहीं किया तो उसकी यात्रा अधूरी ही रहेगी ।

6. रिसौरा-

रिसौरा स्थल कालिंजर परिक्षेत्र में नरैनी के सन्निकट पनगरा के समीप स्थित है। यह स्थल अति प्राचीन तथा वेदयुगीन है। इसके सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि इस क्षेत्र में ऋषियों के अनेक आश्रम थे, जहां यज्ञ आदि सदैव होते रहते थे। देवासुर संग्राम के समय यहां देवताओं ने एक महान यज्ञ भी किया था। ऋषियों के रहने के कारण ही यह स्थल रिसौरा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[25]

इसी के समीप एक ऐसा स्थल है जहां जमीन से पानी सदैव रिसता रहता है। किवदंती के अनुसार यहां पर कभी बानगंगा थी, जिसका निर्माण अर्जुन ने जमीन में बाण के द्वारा किया था।चूंकि इस क्षेत्र में पानी बाण के आघात से निकला तभी से इसे बाणगंगा के नाम से पुकारा गया। वर्तमान समय में बानगंगा तो लुप्त हो गई है किन्तु यहां की जमीन में पानी का रिसाव सदैव होता रहता है। इसलिए इसे रिसौरा के नाम से पुकारा जाता है।

पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस क्षेत्र में चंदेलकालीन एवं उसके बाद के ऐतिहासिक स्थल मिलतें हैं। कतिपय इतिहासकारों का यह कथन है कि चंदेलकाल में यहां पर बाहरी व्यापारियों से कर वसूलने के लिए एक चौकी अथवा गढ़ी का निर्माण किया गया था। कालान्तर में यह क्षेत्र सुल्तानों और मुगलों के अधिकार में आ गया। उसके पश्चात यह क्षेत्र सन् 1691 में छत्रसाल के अधिकार में आ गया । इस क्षेत्र में अनेक ऐतिहासिक स्थल हैं जो पर्यटन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

रिसौरा के दर्शनीय स्थल

1. रिसौरा महल-

जैसे ही गांव के अंदर प्रवेश करते हैं, गांव की आबादी प्रारम्भ होनें से पहले रिसौरा महल के दर्शन होते हैं। इस महल के संदर्भ में यहां के लोगों का कथन है कि यह महल चंदेलकालीन है तथा इसमें चंदेल शासक की रानी अपने राजा से गुस्सा अथवा रिसाकर इस महल में रहने लगी थी। तभी से यह रिसौरा नाम से प्रसिद्ध हुआ और यहां का आबादी स्थल रिसौरा नाम से विख्यात हुआ। रिसौरा महल के विषय में यह भी मान्यता है कि यदि कोई पशु प्रसव के बाद दूध नहीं देता तो उसे इस महल का चक्कर लगवा दिया जाता है, जिससे वह पशु पुनः दूध देने लगता है। महल के संदर्भ में यह साक्ष्य प्राप्त होते हैं कि किसी समय में यह महल तीन खण्ड का था। अनेक इतिहासकारों के अनुसार इसमें कोई द्वार न होनें के कारण यह किसी सूबेदार का मकबरा माना जा रहा है। इस संदर्भ में यह कहा जाता है कि किसी मुगल सूबेदार की हिन्दू पत्नी की जब मृत्यु हो गई तो उसका मकबरा इसी महल में बना दिया गया। महल के दो गुम्बद मंदिरों के गुम्बदों के समान है। उनमें जो चाँद लगे हैं वे बाद के लगे मालुम पड़तें हैं।

2. बीहड़ (कुंआ)-

महल के समीप एक अति प्राचीन बीहड़ है जो किसी युग में इस स्थल की जलापूर्ति करता था। वर्तमान समय में यह दित्य कुंआ के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं कि इस कुंए के जल को पीने से नाना प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं।

3. प्राचीन मंदिर अवशेष-

बीहड़ से कुछ दूर रिसौरा महल के पीछे वाले भाग में एक प्राचीन मंदिर मिला है। यह मंदिर चंदेलकालीन है लेकिन मूर्ति चोरों ने यहां की मूर्तियाँ चुराकर बेच दी हैं। धन के लालच में मंदिर को खोद डाला है। इसकी निर्माण शैली वास्तुशिल्प की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होती है।

4. हांथी दरवाजा-

इसी स्थल से थोड़ी दूरी पर एक प्राचीन द्वार के अवशेष प्राप्त होते हैं। कहते हैं कि जब यहां चंदेल शासक के प्रतिनिधि और उसके पश्चात सुल्तानों एवं मुगलों के प्रतिनिधि निवास करते थे, उस समय इस दरवाजे से हांथियों का प्रवेश हुआ करता था। इसलिए इस द्वार को हांथी दरवाजा के नाम से जाना जाता था।

5. भूत महल-

हांथी दरवाजा के सन्निकट एक फूटे महल के अवशेष उपलब्ध होते हैं। यहां के ग्रामवासी इस क्षेत्र को भूत महल के नाम से पुकारते हैं। ग्रामवासियों का कथन है कि महल में अभी भी भूतों का वास है जिनकी आवाजें रात में सुनाई देती हैं।

6. करैला बाबा का स्मारक-

ग्रामवासियों का कथन है कि इसी महल के नजदीक एक बहुत ही सिद्ध महात्मा रहा करते थे जिनका नाम करैला बाबा था। कहते हैं कि करैला बाबा इसी स्थान में अदृश्य हो गये, इसलिए इसी स्थल पर उनका प्रेत स्वरूप दिखाई देता है। लोगों की अफवाह है कि करैला बाबा के आश्रम के पास कोषागार भी था, जिसको पानें के लोभ में लोग इसके आस-पास खुदाई करते रहते हैं।

1. आवागमन के साधन-

इस स्थल में जाने के लिए बाँदा शहर से सड़क परिवहन की सुविधायें उपलब्ध है। बाँदा से लगभग 30 किलो मीटर की दूरी पर पनगरा ग्राम के समीप सड़क परिवहन के माध्यम से पहुंचा जा सकता है। उसके पश्चात रिसौरा निजी साधन से पहुंचा जा सकता है।

2. आवासीय व्यवस्था-

यदि कोई पर्यटक इस क्षेत्र में रूकना चाहता है तो उसके रुकनें के लिए कोई आवासीय व्यवस्था नहीं है। वह नरैनी के डाक बंगले अथवा बाँदा में बनीं होटलों में ही रुक सकता है।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

यह क्षेत्र गिरवां थाना के अन्तर्गत आता है। कोई भी पर्यटक यदि सुरक्षा व्यवस्था की आशा करता है तो उसे गिरवां थाने से सुरक्षा व्यवस्था मिल सकती है। यदि वह चाते तो नरैनी से भी सुरक्षा व्यवस्था प्राप्त कर सकता है। यहां जाने वाले पर्यटक को भोजन की कोई व्यवस्था नहीं मिल सकती।

यात्रा के उद्देश्य-

यहां पर्यटक कुल मिलाकर एक ही उद्देश्य से जा सकता है।-

1. पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक उद्देश्य-

इस क्षेत्र की यात्रा पर्यटक पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक जानकारी के लिए ही कर सकता है। वह यहां के ऐतिहासिक स्थलों को देख कर इस स्थल की प्राचीनता का बोध कर सकता है। स्थलों के निर्माण में अपनाई गई शैलियों एवं शिल्पों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकता है।

रिसौरा के ऐतिहासिक स्थल पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण मालुम होते हैं किन्तु रिसौरा के विषय में किसी भी ऐतिहासिक ग्रंथ में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते। इसलिए यहां के महत्व को स्थलों के दर्शन और प्रचलित जनश्रुतियों के माध्यम से ही समझा जा सकता है।

7.शेरपुर स्योढ़ा

स्योढ़ा ग्राम बाँदा जनपद से 24 किलोमीटर दूर केन नदी के तट पर बसा हुआ है। यह $25^0$27 अक्षांश उत्तर तथा $80^0$24 देशान्तर पूर्व में स्थित है। यह एक छोटा गॉव है। इसी के नजदीक एक छोटी पहाड़ी है। इस पहाड़ी को खत्रीपहाड़ के नाम से जाना जाता है। पहाड़ी की ऊंचाई समुद्रतल से 259 मीटर है। इसके

ऊपरी भाग में एक छोटा देवी मंदिर बना हुआ है। इसे आंग्लेश्वरी देवी का मंदिर कहा जाता है। इस संदर्भ में यह किवदंति है कि देवकी के जब कन्या उत्पन्न हुई उस समय वह कंस के हांथ के छूटकर आकाश में उड़कर विलुप्त हो गई। वायु ने उसे सुसज्जित स्थान पर पहुंचाया। उसने इस पर्वत को अपने योग्य नहीं समझा और उसके बाद वह देवी मिर्जापुर के समीप विन्ध्याचल में चली गई। इस देवी के अंगुलियों के निशान इस पर्वत चोटी पर बने हैं। उसी की स्मृति में यहां आंग्लेश्वरी देवी के नाम से मंदिर का निर्माण किया गया। सन् 1881 तक स्योढ़ा बाँदा जनपद का महत्वपूर्ण परगना रहा है। यह तहसील का मुख्यालय भी रहा। प्रचलित परम्पराओं के अनुसार इस क्षेत्र के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि स्योढ़ा एक समय पूर्ण विकसति नगर था। इस नगर की स्थापना पिथौरा नरेश ने की थी। अकबर के शासन काल में यहां कालिंजर सरकार का एक परगना था तथा यह क्षेत्र इलाहाबाद सूबे से सम्बन्धित था। मुगलकाल में सेना का मुख्यालय कालिंजर में था और प्रशासनिक कार्यालय स्योढ़ा में था। कहते हैं कि यह नगर इतना विशाल था कि इस नगर में 700 मस्जिदें थीं और 900 कुऐं जलापूर्ति के लिए बने हुए थे किन्तु इस कथन में कोई सच्चाई नजर नहीं आती। यद्यपि इस पूरे परिक्षेत्र में अनेक ऐतिहासिक इमारतों के खण्डहर उपलब्ध हो जाते है, जिससे इस क्षेत्र के प्राचीन नगर होने के प्रमाण मिल जाते हैं। औरंगजेब के समय से स्योढ़ा का पतन प्रारम्भ हुआ। खॉन-जहान लोदी यहां किसी कार्यवाही के लिए आया था। उसने इस क्षेत्र में सन् 1622 में आक्रमण किया था। उसके बाद भी यह क्षेत्र मुगलों के प्रशासनिक केन्द्र के रूप में बना रहा तथा सन् 1727 में मुहम्मद खां बंगस ने पुनः आक्रमण करके इसे अपने अधिकार में ले लिया। जब यह क्षेत्र बुन्देलों के अधिकार में आया तो इसे छत्रसाल के द्वितीय पुत्र कीरत सिंह को जागीर के रूप में प्रदान किया गया। इसके पश्चात प्रशासनिक मुख्यालय बाँदा स्थानान्तरित कर दिया गया। इसकी एक दूसरी पहाड़ी पर शेरपुर नामक ग्राम में एक दुर्ग के अवशेष भी प्राप्त होते हैं। इस ग्राम की आबादी 1120 है तथा इसका कुल क्षेत्रफल 64 हेक्टेयर है। इस क्षेत्र में गेंहू, चावल की खेती मुख्य रूप से होती है।[26]

डॉ0 के 0 डी 0 बाजपेयी एवं राधाकृष्ण बुन्देली इस क्षेत्र में बाँदा के पुलिस उपाधीक्षक श्री तहसीलदार सिंह के साथ शेरपुर स्योढ़ा के ऐतिहासिक स्थलों को देखने के लिए गये थे। इस क्षेत्र को देखने के पश्चात डा0 के0डी0 बाजपेयी ने यह सिद्ध किया कि यह क्षेत्र उपरि चरि बसु द्वारा स्थापित नगरी सुक्तिमती ही है। इसका अस्तित्व महाभारत काल में बहुत अधिक था तथा यह राजा विराट की राजधानी भी रही। उपरि चरि बसु की पत्नी का नाम गिरिका था। जिसके नाम से गिरवां ग्राम बसा हुआ है। उनका कथन था कि पालि जातकों में सुक्तिमती से सम्बन्धित अनेक कथाएं उपलब्ध होती हैं। महात्मा बुद्ध स्वतः सुक्तिमती नगरी में आये और यहीं से दक्षिण की ओर गये। इसी परिक्षेत्र में पाण्डवों ने अपना अज्ञातवास बिताया था तथा नल की पत्नी दमयन्ती ने भी अपने दुर्दिन का कुछ समय यही व्यतीत किया था। इस परिक्षेत्र के समीप पुराऐतिहासिक काल से लेकर बुन्देलों के शासनकाल तक के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं।

शेरपुर स्योढ़ा के दर्शनीय स्थल-

कालिंजर परिक्षेत्र में शेरपुर स्योढ़ा एक सुप्रसिद्ध धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थल है। इस क्षेत्र में पुरापाषाण युग से लेकर बुन्देला शासनकाल तक के पुरावशेष प्राप्त होते हैं, जो वास्तुशिल्प, संस्कृति एवं इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है-

1. नगरीय अवशेष-

शेरपुर स्योढ़ा में महाभारत युग से लेकर सल्तनत युग तक और उसके बाद एक बहुत बड़ा नगर था। इस नगर में 700 मस्जिदें एवं 900 कुऐं के अवशेष मिलते हैं। कतिपय कारणो से यह नगर नष्ट हो गया। इस नगर को अपने अधिकार में लेने के लिए बाँदा के नवाब अलीबहादुर प्रथम से लक्ष्मन सिंह दऊवा के साथ एक भयंकर युद्ध सन् 1795 में यहां हुआ था। युद्ध के बाद यह क्षेत्र बाँदा नवाब अलीबहादुर के अधिकार में आ गया था। इसके पहले जब से बुन्देला शासक इस क्षेत्र के प्रशासन को बाँदा में स्थानान्तरित करके ले गये थे तभी से इस नगर का पतन हो गया था। अब इस नगर के अवशेष मात्र शेष रह गये हैं।

2. दुर्ग अवशेष-

शेरपुर में एक प्राचीन दुर्ग के अवशेष उपलब्ध होते हैं। इस दुर्ग का पूरा भाग स्योढ़ा के नीचे केन नदी के मवईघाट से देखा जा सकता है। निर्माण शैली की दृष्टि से यह दुर्ग चंदेलकालीन मालुम होता है क्योंकि इस परिक्षेत्र में चंदेलकालीन कई प्रतिमाऐं प्राप्त होती हैं, जो प्रसाद गोस्वामी के घर में सुरक्षित हैं। इस दुर्ग में कुछ निर्माण कार्य सल्तनत शासन काल और मुगल शासन काल में हुआ । इस दुर्ग की सबसे बड़ी यह विशेषता है कि इस दुर्ग में दुर्ग के ऊपर जल की आपूर्ति केन नदी से होती थी। दुर्ग के ऊपर उपलब्ध इमारतें वास्तुशिल्प की दृष्टि से मिश्रित वास्तुशिल्प के उत्तम नमूनें हैं।

3. आंग्लेश्वरी देवी का मंदिर-

यह मंदिर स्योढ़ा में एक पर्वत श्रेणी पर निर्मित है। ऊपर जाने के लिए इसमें सीढ़ियां बनीं हुई हैं। मंदिर बहुत पुराना प्रतीत होता है उसकी मूर्तियां भी अत्यन्त प्राचीन है। यहीं पर एक ऐसी चट्टान भी है जो चटककर दो टुकड़े में विभाजित हो गई है। उसकी दरार से झांकनें पर उसके अन्दर मूर्तियां झलकती है।

इस मंदिर के विषय में किवदंति है कि भगवान श्री कृष्ण की बहन का जब वध करनें का प्रयास कंस द्वारा किया गया तो वह कंस के हांथ से छूटकर आकाश में उड़ी और उसने खत्रीपहाड़ में शरण ली। खत्रीपहाड़ ने उसका भार सहन करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की, जिस पर उस देवी ने क्रोधित होकर उसे कुष्ट रोगी होनें का अभिशाप दिया। उसके पश्चात यह देवी मिर्जापुर में विन्ध्याचल नामक स्थान में विन्ध्यवासिनी देवी के नाम से प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित हुई। आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व इस मंदिर की पुनः प्राण प्रतिष्ठा हो चुकी है। नवरात्रि के अवसर पर देवी के दर्शन करनें प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति यहां आते हैं।

4. बीहड़ एवं जलाशय-

खत्रीपहाड़ के नीचे केन नदी के पथ पर थोड़ी दूर चलनें पर एक जलाशय प्राप्त होता है। यह एक प्राचीन बीहड़ है। इसमें नीचे उतरने के लिए जलस्तर तक सीढियाँ बनीं हैं। निर्माण शैली के आधार पर यह मुगलकालीन है।

5. पडुई के शैलाश्रय-

शेरपुर स्योढ़ा के सन्निकट पडुई ग्राम में किसी प्राचीन ऐतिहासिक स्थल के अवशेष उपलब्ध होते हैं। यहीं पर एक पहाड़ी भी है, इस पहाड़ी के ऊपर कई गुफाएं हैं जनश्रुतियों के अनुसार इन गुफाओं में साधू-संत तप करने के लिए रहा करते थे। इन्हीं गुफाओं के अन्दर बहुत प्राचीन शैलचित्र प्राप्त हुए हैं गेरूए रंग के हैं।

6. गन्छा का शिव मंदिर-

स्योढ़ा के नजदीक ही केन नदी के तट पर गन्छा नामक गांव में एक अति प्राचीन खोह प्राप्त हुई है। इस खोह में भगवान शिव की बहुत प्राचीन लिंग प्रतिमा है। जनश्रुतियों के अनुसार जब पाण्डव अज्ञातवास के लिए विराट नगरी में आये, उस समय उन्होंने इस स्थल में अपने अस्त्र-शस्त्र छिपाकर रखे थे। इसके बाद वे राजा विराट के यहां नौकरी करने लगे थे। अर्जुन ने गन्धर्व पुत्र का रूप धारण करके उनकी पुत्री उत्तरा को संगीत विद्या की शिक्षा दी थी।

7. पिथौरा के ऐतिहासिक स्थल-

शेरपुर स्योढ़ा के ही पास एक पर्वत के समीप पिथौरा नामक ग्राम बसा हुआ है। यहां किसी राजवंशीय राजाओं के महलों के अवशेष मिलते हैं। कहते हैं कि इस राजवंश के लोगों ने ही शेरपुर स्योढ़ा नगर की स्थापना की थी और दुर्ग का निर्माण भी कराया था।

8. जंजीराबाद के ऐतिहासिक स्थल-

बाँदा जनपद के अयोध्यावासी गुप्ता जंजीराबाद को ही अपना मूल निवास स्थान बताते हैं प्रति वर्ष यहां कुल देवता की पूजा करने के लिए आते हैं। यहां उनके पूर्वजों के स्मारक हैं। इसके अलावा बाँदा में रहनें वाले मेहरे (हिजड़े) भी इसी स्थल को अपना मूल स्थान मानते हैं।यहां उनके गुरूओं की समाधियाँ बनीं हुई हैं। उनका कथन है कि चंदेलकाल में भी ये गानें-बजानें का पेशा करते थे, इन्हें राजाश्रय भी प्राप्त था।

9. हरबोला के ऐतिहासिक स्थल-

शेरपुर स्योढ़ा के सन्निकट ही हरबोला ग्राम में एक प्राकृतिक जलाशय प्राप्त होता है। इस जलाशय में जमीन से अपने आप जल निकलता है। इसी के पास अति प्राचीन शिव मंदिर भी बना है, जो वास्तुशिल्प की दृष्टि से अधिक प्राचीन मालुम होता है। इस क्षेत्र में रहने वाले जोशी एवं भाट तथा नट जातियों के लोग हरबोला के शिव मंदिर में अपनी आस्था रखते है।

1. आवागमन के साधन-

शेरपुर स्योढ़ा जानें के लिए बाँदा मुख्यालय से सड़क परिवहन की सेवायें गेरवां ग्राम तक उपलब्ध हैं। उसके पश्चात इस क्षेत्र में निजी साधनों से पहुंचा जा सकता है।

2. आवासीय व्यवस्था-

यदि कोई पर्यटक शेरपुर स्योढ़ा की यात्रा करना चाहता है तो उसे बाँदा में ही रूकनें की व्यवस्था सुनिश्चित करनीं होगी। यद्यपि श्रृद्धालुओं ने यात्रियों के आवास के लिए धर्मशाला का निर्माण कराया है। इसके अलावा गेरवां के इण्टर कालेज में भी अनुमति प्राप्त करके रूका जा सकता है।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

पर्यटकों के लिए सुरक्षा व्यवस्था गेरवां थाने से मिल सकती है। गेरवां थाना शेरपुर स्योढ़ा के निकट है यदि कोई पर्यटक अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है तो वह इस थाने से सुरक्षा व्यवस्था प्राप्त कर सकता है।

यात्रा के उद्देश्य-

पर्यटक यहां निम्न उद्देश्यों से यात्रा कर सकता है-

1. पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक उद्देश्य-

यहां पर्यटक पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यात्रा कर सकता है। इस क्षेत्र में उसे पुरापाषाण युग से लेकर बुन्देला शासनकाल तक के भग्नावशेष प्राप्त होते हैं, जिन्हें देखकर वह यहां के इतिहास तथा संस्कृति से पूरी तरह परिचित हो सकता है।

2. संस्कृति एवं सामाजिक अध्ययन-

यह क्षेत्र संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था के उद्देश्य से भी पर्यटन के योग्य है। इस क्षेत्र की भाषा, वेश-भूषा एवं लोक संस्कृति अन्य क्षेत्रों से भिन्न मालुम होती है। इस क्षेत्र में रहनें वाले जोशियों, भाटों और नटों की एक अपनी अलग सभ्यता, संस्कृति है। इनकी सामाजिक व्यवस्था भी बिल्कुल अलग है। यदि पर्यटक चाहे तो वह इनकी लोक संस्कृति का अध्ययन करनें यहां आ सकता है।

3. धार्मिक दृष्टिकोण-

इस क्षेत्र का धार्मिक महत्व उतना ही है जितना कालिंजर और चित्रकूट का है। प्रत्येक व्यक्ति जो देवी पर आस्था रखता है, वह यहां अपने मनोरथ की पूर्णता के लिए नवरात्रि के अवसर पर आ सकता है। इसके अतिरिक्त यहां प्रत्येक सोमवार को भी आंग्लेश्वरी देवी के दर्शन के लिए दूर-दूर से यात्री आते हैं।

4. व्यवसायिक दृष्टिकोण -

इस क्षेत्र में पर्यटक पहले व्यवसायिक दृष्टिकोण से भी यात्रा किया करते थे। यह नगर औद्योगिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इस नगर में दस हजार जुलाहे कपड़ा बनानें का व्यवसाय करते थे। यहां

पर बनने वाला कपड़ा पूरे हिन्दुस्तान में विख्यात था तथा व्यापारी यहां से इस कपड़े को दूर तक बेचने ले जाते थे। यहां तथा इसके आस-पास अच्छी किस्म की रूई उत्पन्न होती थी। इसका निर्यात कलकत्ता बन्दरगाह से विदेशों में हुआ करता था किन्तु विलायती रूई आ जानें के कारण सन् 1850 के बाद रूई का व्यवसाय समाप्त हो गया। वर्तमान समय में यहां बहुत ही अच्छी किस्म का पान उपलब्ध होता है।इस पान की गुणवत्ता महोबे के पान जैसी है। अतः पान के व्यवसाय से जुड़े व्यक्ति भी इस क्षेत्र की यात्रा कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्योढ़ा ऐतिहासिक, पुरातात्विक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं व्यवसायिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थल है तथा किसी युग में इसकी प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी।

8. रनगढ़

रनगढ़ दुर्ग भी ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।यद्यपि किसी भी ऐतिहासिक ग्रंथ में इस दुर्ग के संदर्भ में यह उल्लेख प्राप्त नहीं होता है कि इस दुर्ग का निर्माता कौन था तथा किस शासन काल में इसका निर्माण हुआ। रनगढ़ का किला मऊ, रिसौरा गाँव की तहसील से काफी दूर चलकर केन नदी के मध्य एक ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है। इसके चारो ओर केन नदी की धाराऐं प्रवाहित होती है। इसलिए दुर्ग की स्थिति एक टापू जैसी है। यह दुर्ग उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश की सीमा भी तय करता है। इस दुर्ग में पहुंचने के लिए कोई निश्चित मार्ग नहीं है। यह बिल्कुल निर्जन स्थान में है। यहां चारो ओर घनघोर जंगल है। इस जंगल को पार करने के बाद केन नदी के इस पार उत्तर प्रदेश के गांव तथा उस पार मध्य प्रदेश के गांव है। किले का जो स्वरूप दूर से दिखाई देता है। वह अत्यन्त सुन्दर है तथा पर्यावरण की दृष्टि से अत्यन्त मोहक भी है। इसकी निर्माण शैली झाँसी दुर्ग जैसी है।[27]

रनगढ़ के दर्शनीय स्थल-

रनगढ़ दुर्ग में अति महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थल निम्नलिखित है-

1. दुर्ग अवशेष-

पहाड़ी पर प्राप्त यहां का दुर्ग चारो तरफ प्राचीरों से घिरा हुआ है और इसके नीचे प्रवाहित होने वाली केन नदी के कारण यह पूर्ण सुरक्षित प्रतीत होता है। इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिए दो मुख्य द्वार है। इसके अतिरिक्त दुश्मन से सुरक्षा के लिए चार गुप्त दरवाजे भी हैं। जब कोई सबल आक्रमणकारी आक्रमण करता था और दुर्ग की सेनाएं कमजोर पड़ जाती थीं, उस समय सैनिक चोर अथवा गुप्त दरवाजे से भाग कर अपने प्राणों की रक्षा करते थे।

2. सुरक्षा चौकी-

इसी दुर्ग के समीप एक सुरक्षा चौकी भी थी, यहां से सैनिक आने वाले शत्रुओं को दूर से देख लेते थे। उसकी सूचना किलेदार को दिया करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन युग में इस क्षेत्र में नावों

द्वारा व्यापार होता था नावों द्वारा ही कर वसूलनें का कार्य भी इस सुरक्षा चौकी के लोग किया करते थे।

3. बारादरी अथवा राजा की बैठक-

इस दुर्ग के समीप एक ऐसा स्थल है जिसमें 12 दरवाजें है। ऐसा मालुम होता है कि दुर्ग का शासक इस स्थल पर महत्वपूर्ण समस्याओं को हल करनें के लिए दुर्ग के अन्य अधिकारियों से विचार-विमर्श किया करता था। यहां समय-समय पर दरबार लगा करता था।

4. गौरइया दाई मंदिर-

रनगढ़ दुर्ग में ही एक विशालकाय देवी मंदिर प्राप्त होता है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह मंदिर अति प्राचीन मालुम होता है। इस मंदिर की मूर्ति को मूर्ति चोरों ने गायब कर दी है। यह भी सम्भावना है कि जब इस क्षेत्र में सुल्तानों एवं मुगलों का शासन स्थापित हुआ हो तब मंदिर की मूर्ति इन्हीं मुसलमान शासकों द्वारा खण्डित कर दी गई हो। इस दुर्ग में सन् 1727 में मुगल सूबेदार मुहम्मद बंगस ने अधिकार कर लिया था। सम्भव है कि यह मूर्ति शायद उसी के द्वारा गायब करा दी गई।

5. बीहड़-

इस क्षेत्र में गोलाकृति का एक विशालकाय कुंआ है जो जलापूर्ति का प्रमुख साधन था। यहां के ऐतिहासिक स्थलों के संदर्भ में अनेंक किवदंतियाँ प्रचलित हैं, जिनके कारण यहीं के लोग धन के लोभ में ऐतिहासिक स्थलों को नष्ट कर रहे हैं। दुर्ग के अन्दर उपलब्ध महलों को इन्हीं धन लोभियों ने खोदकर बर्बाद कर दिया है। इस विषय में एक किवदंती प्रचलित है कि सन् 1812 के लगभग जब यह दुर्ग अंग्रेजों के अधिकार में आया, उस समय अंग्रेजों ने दुर्ग के फाटक उखड़वाकर उन्हें गिरवां और पनगरा के थानों में लगवा दिया। इस क्षेत्र में प्राचीन बस्ती के अवशेष मिलते है।

1. आवागमन के साधन-

यहां पहुंचने के लिए आवागमन के कोई नियमित साधन नहीं हैं। यात्री व्यक्ति पनगरा से कुछ जानकार व्यक्तियों को लेकर इस क्षेत्र में पहुंच सकता हैं। जंगलों से घिरे होने के कारण इस क्षेत्र की यात्रा पैदल भी करनी पड़ सकती है। यहां किसी भी वाहन का जाना अत्यन्त कठिन है। नौका के सहारे केन नदी के तट से दुर्ग की पहाड़ी तक पहुंचा जा सकता है।

2. आवासीय व्यवस्था-

यदि कोई पर्यटक रनगढ़ की यात्रा करना चाहता है तो वह नरैनी के डाक बंगले में शासन की अनुमति पर रूक सकता है और यहीं से निजी वाहन और व्यक्तियों के साथ रनगढ़ जा सकता है।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

यह क्षेत्र चारो तरफ जंगलों से आवृत्त है। यहां डकैत एवं अराजक तत्व दुर्ग के ऊपर और जंगलों में स्वच्छन्द विचरण करते हैं। इसलिए कोई भी पर्यटक बिना किसी सुरक्षा व्यवस्था के यहां जाने का कष्ट

एवं साहस न करें। उसे यहां जाने के लिए सुरक्षा व्यवस्था नरैनी व गेरवां थाने से प्राप्त हो सकती है।

यात्रा के उद्देश्य-

यहां भी पर्यटक यात्रा के अनेक उद्देश्यों के साथ आ सकते हैं-

1. पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक उद्देश्य-

दुर्ग तथा दुर्ग के अवशेष ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं, जो पर्यटक यहां की यात्रा करेगा उन्हें यहां के पुरावशेषों को देखकर यह अनुमान लगानें का अवसर प्राप्त होगा कि वास्तुशिल्प की दृष्टि से ऐतिहासिक स्थलों की निर्माण शैली क्या है और इनका सम्बन्ध किस काल से हो सकता है। यह भी जनुश्रुति है कि मुगल सम्राट औरंगजेब ने इस ऐतिहासिक स्थल में मराठा नरेश शिवाजी को बन्दी बनाकर यहां रखा था।

यह स्थल पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहां का पर्यावरण स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।यहां व्यक्ति अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए यात्रा कर सकता है।

9. अजयगढ़

कालिंजर की भांति अजयगढ़ भी एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल है। यह स्थल पन्ना मुख्यालय से 35 किलोमीटर अथवा 21 मील दूर मध्य प्रदेश में ही है। अजयगढ़ महोबा के दक्षिण पूर्व में कालिंजर के दक्षिण पश्चिम में तथा खजुराहो के उत्तर पूर्व में स्थित है अर्थात यह चारो ओर से चतुर्भुजी आकृति से घिरा है।[28] किसी युग में यह राज्य शक्ति, धर्म एवं कला का केन्द्र था। इसके संदर्भ में पौराणिक साक्ष्य यह मिलता है कि सूर्य वंश के सुप्रसिद्ध राजा अज ने यह नगर बसाया था और तभी से इस स्थल का महत्व है। अजयगढ़ नगर केन नदी के किनारे एक पहाड़ी पर बसा है। यह दुर्ग कालिंजर दुर्ग के समान ही सुदृढ़ है। पर्वत के दक्षिणी भाग में हिन्दू, बौद्ध और जैन मंदिरों एवं मूर्तियों के अवशेष मिलते हैं। खजुराहो शैली के बनें हुए चार विहार तथा तीन सरोवर भी उल्लेखनीय है।[29]

अजयगढ़ दुर्ग विन्ध्यपर्वत श्रृंखला के समतल पर्वत पर स्थित है। इस पर्वत का प्राचीन नाम केदार है। अजयगढ़ दुर्ग समुद्रतल से 1744 फिट ऊँचा तथा धरातल से 860 फिट ऊँचाई पर है। यह दुर्ग अत्यन्त दुर्गम है और यह मुख्य पर्वत को लम्बवत आकार प्रदान करता है जिसके कारण दुर्ग प्राकृतिक रूप से अजेय एवं सुरक्षात्मक बन गया है। दुर्ग का विस्तार उत्तर-पश्चिम में एक मील का है। इसका विस्तार पश्चिम एवं पूर्व की ओर थोड़ा सा कम है, दुर्ग की आकृति त्रिभुजाकार है। इसका कुल घेरा तीन मील का है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार यहां के दुर्ग का निर्माण अज्ञात शासक अजयपाल ने कराया था। इस संदर्भ में किसी प्रकार का कोई अभिलेख नहीं मिलता, जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं, उसमें इसका नाम जयपुर दुर्ग एवं जयपुर है।[30] इसका वर्तमान नाम अजयगढ़ है।[31] एक अभिलेख के अनुसार इस क्षेत्र को बांदीपुर नाम से भी जाना जाता है।[32] कालिंजर से यह 16 मील दूर है।

अजयगढ़ के दर्शनीय स्थल-

इस क्षेत्र में निम्नलिखित दर्शनीय स्थल उपलब्ध होते हैं जो पुरातत्व, धार्मिक व इतिहास की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

1. अजयगढ़ दुर्ग अवशेष-

अजयगढ़ दुर्ग कालिंजर की ही भांति सुदृढ़ दुर्ग है। दुर्ग के ऊपर जाने के लिए दो मार्ग है। पहला मार्ग पूर्वी दिशा की ओर से है। दुर्ग पर पहुंचने के लिए पद यात्रा करनी पड़ती है। दूसरा मार्ग उत्तर दिशा की ओर है। इस मार्ग से भी पद यात्रा द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। प्रारम्भ में दुर्गारोहण कठिन नहीं है किन्तु बाद में दुर्गारोहण की कठिनाई बढ़ती जाती है। धीरे-धीरे दुर्ग में चढ़ा जा सकता है। यहां से आगे चलकर पर्वतीय सीढ़ियां उपलब्ध होती हैं। यह दुर्ग प्राकृतिक सुषमा से युक्त एवं सुरम्य है। इस दुर्ग में केवल दो प्रवेश द्वार है। प्रथम द्वार तरोहनी द्वार कहलाता है क्योंकि वहां से पहाड़ी के नीचे स्थित तरोहनी ग्राम को मार्ग जाता है। दूसरा द्वार केवल दरवाजा कहलाता है। सम्भवतः शिलालेखों में यह उल्लखित कालिंजर दरवाजा हो, क्योंकि वहां से कालिंजर दुर्ग को रास्ता जाता है। इस दुर्ग में भी पानी का उत्तम प्रबन्ध है।[33] द्वितीय द्वार के सन्निकट गंगा, यमुना नाम के दो जलकुण्ड प्राप्त होते हैं। ये कुण्ड पर्वतों को तरास कर बनाये गये हैं। इन कुण्डों के समीप अभिलेख भी है। इनका निर्माण चंदेल शासक वीरवर्मन देव की राजमहिषी (रानी) कल्याणी देवी के द्वारा बनवायें गये हैं। इस अभिलेख में दुर्ग का नाम नादीपुर लिखा है।[34] इसी के समीप अनेक मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। जिन्हें चट्टानों में उकेरा गया है। इन मूर्तियों में गणेश स्वामी कार्तिकेय, जैन तीर्थांकरों की आसन मूर्तियाँ, नंदीश्वर, दुग्ध पान कराती मां एवं शिशुओं की मूर्तियाँ हैं। इस क्षेत्र में गणेश की चतुर्भुजी, षष्टभुजी एवं अष्टभुजी मूर्तियाँ प्राप्त होती है। यहां से कुछ दूर चलने पर दुर्ग का मुख्य द्वार मिलता है, द्वार में बड़े-बड़े कपाट लगे हुए हैं। इसी के पास कई स्तम्भ लेख हैं। एक अभिलेख में तेजल के पुत्र रावत श्रीवीर के द्वारा अकाल के समय एक बावड़ी के निर्माण का उल्लेख है।[35] इस बावड़ी से थोड़ी दूर आगे हनुमान जी की एक प्रतिमा पाषाण के घेरे में उपलब्ध होती है।

2. अजयपाल तालाब एवं मंदिर-

हनुमान जी की प्रतिमा के कुछ आगे बढ़ने पर दुर्ग के मध्य में एक बृहद आकार का तालाब है जो अजयपाल तालाब के नाम से जाना जाता है। तालाब के किनारे एक जैन मंदिर है, यह मंदिर ध्वस्त अवस्था में हैं इस मंदिर का शिखर गिर गया है। केवल चारो ओर की दीवारें शेष है। इसमें तीन प्रमुख मूर्तियाँ है जो मूर्ति सबसे बड़ी है वह तीर्थांकर शान्तिनाथ की है। यह 12 फिट ऊंची है तथा दुर्ग की सबसे बड़ी मूर्ति है। इसी के पास कुछ अन्य जैन मूर्तियाँ है। इन मूर्तियों का निर्माण साधु सांडल द्वारा कराया गया था। यह जयपुर दुर्ग का निवासी था।[36] अजयपाल सरोवर के दूसरे किनारे पर अजयपाल का मंदिर है। यह मंदिर बहुत अधिक पुराना नहीं है। इस मंदिर में शिव, नंदी, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय एवं पंचानन शिव की मूर्तियाँ

हैं। अजयपाल की मूर्ति विष्णु की मूर्ति जैसी है।

3. अजयगढ़ के तड़ाग-

अजयगढ़ में वैसे तो कई तड़ाग हैं लेकिन इनमें सबसे बड़ा तालाब एक ठोस चट्टान काटकर बनाया गया है, वह टेढ़ा-मेढ़ा है। अनुमान यह है कि भवनों के निर्माण के लिए खोदकर पत्थर निकाले जाने से यह तालाब अपने आप बन गया था। यह तालाब कभी सूखता नहीं है और हमेशा 10 फिट से अधिक पानी रहता है। इसके तटों पर अनेक क्षत-विक्षत मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं।[37]

4. चार मंदिरों के अवशेष-

अजयगढ़ दुर्ग के दक्षिणी ओर चार मंदिर एक ही स्थल पर बने हुए हैं, जो वास्तुशिल्प की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है। ये मंदिर रंगमहल अथवा चंदेलों के नाम से जाने जाते हैं। वर्तमान समय में ये मंदिर भग्न अवस्था में हैं। इन मंदिरों का जो भी भाग शेष है, उससे इनकी स्थापत्य शैली का बोध होता है तथा इनकी वास्तुशिल्प खजुराहो के मंदिरों के वास्तुशिल्प जैसी है। ऐतिहासिक दृष्टि से ये मंदिर 12वीं सदी के हैं। इन मंदिरों में दो विष्णु मंदिर एक शिव मंदिर एवं चौथा परमार की बैठक के नाम से विख्यात है। यह मंदिर वृत्ताकार है। अलंकरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रत्येक मंदिर के प्रवेश द्वार में एक विशेष मूर्ति है, जिससे गर्भगृह की मूर्ति का आभाष होता है। मंदिर की भित्तियों में एकान्तर वाद्ययों के चित्र अत्यधिक सुसज्जित है। कुण्डलित फलकों में यहां-वहां मूर्तियाँ अंकित हैं। समग्र अलंकरण एक भव्यता एवं कलात्मक दीप्ति उत्पन्न करता है।

उपलब्ध चार मंदिरों में सबसे बड़ा मंदिर 60 फिट लम्ब और 40 फिट चौड़ा है। इसका प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर से है। इसका ऊपरी भाग गिर गया है। अवशिष्ट भाग में जो मूर्ति अंकन एवं अलंकरण है अद्वितीय है। इसका गर्भगृह द्वार अत्यधिक अलंकृत है। इसमें गंगा, यमुना की मूर्तियाँ एवं आराधकों की मूर्तियाँ एवं नृत्य, वाद्ययंत्रों को बजाते हुए स्त्री, पुरूषों के दृश्य महत्वपूर्ण है। इस मंदिर समूह का द्वितीय मंदिर प्रथम मंदिर के आकार का है। इसका प्रवेश द्वार भी पश्चिम दिशा की ओर से है। यह मंदिर भी अत्यधिक अलंकृत है। इसकी कई मूर्तियाँ मंदिर से अलग हो गई हैं। इनमें से प्रमुख मूर्ति के सम्मुख प्रवेश द्वार अलंकृत हैं। इनमें गायक एवं वाद्यकों के कई दृश्य है जिससे संगीत का बोध होता है।

इसी स्थल का तीसरा मंदिर परमाल ताल के सन्निकट है। यह आकार में उन मंदिरों से कुछ छोटा है। इस मंदिर की लम्बाई 54 फिट और चौड़ाई 36 फिट है। इसके निकट ही एक चौथा मंदिर है जो परमार की बैठकी कहलाता है। इन मंदिरों के समीप जो ताल है वो परमाल ताल के नाम से विख्यात हैं कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित एक शिलालेख में इन मंदिरों के नाम हरि एवं केशव मंदिर वर्णित है।[38]

5. तरोहनी दरवाजा के पुरावशेष-

अजयगढ़ दुर्ग के दक्षिण पूर्व में तरोहनी दरवाजा प्राप्त होता है। यहां से तरोहनी गांव के लिए रास्ता

है। इस द्वार के निकट पहाड़ी पर अष्ट शक्ति मूर्तियाँ एक पंक्ति में हैं। इनमें 7 मूर्तियाँ आशन मुद्रा में है तथा एक मूर्ति स्नानक मुद्रा में है। कलात्मक दृष्टि से यह मूर्तियाँ अधिक सुन्दर नहीं है। इन मूर्तियों के नीचे एक अभिलेख 6 फिट 10 इंच लम्बा तथा 2 फिट 3 इंच चौड़ा है। इस अभिलेख में मंदिर निर्माण का उद्देश्य अंकित है इसमें यह अंकित है कि भोजदेव वर्मन के "भाण्डारागारपति" सुभट के द्वारा किया गया था। इस अभिलेख में कायस्थ वंश का इतिहास उपलब्ध होता है जिससे सुभट सम्बन्धित था। इस वंश के कुछ लोग चंदेल शासक गण्ड, कीर्तिवर्मन, परमार्दिदेव, त्रैलोक्यवर्मन और भोजवर्मन के आधीन महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करते थे।[39] अष्ट शक्तियों के बगल में भी दो लेख मिलते हैं। बाई ओर के लेख में सुरभि शिव आदि की मूर्तियों का उल्लेख है। इन मूर्तियों का निर्माण सुहृददेव की पत्नी देवल देवी ने कराया था। दांयी ओर के अभिलेख में सुहृददेव द्वारा पार्वती, वृषभ, कृष्ण, चामुण्डा, कालिका तथा ईश्वर एवं पार्वती की मूर्तियों के उल्लेख है। ये मूर्तियाँ यहां पर उत्कीर्ण मिलती है।[40] यहीं पर आशन मुद्राओं में कई पंक्तियों में जैन तीर्थांकरों की मूर्तियाँ मिलती हैं। इनके पास एक देवी मूर्ति है जो चतुर्भुजी हैं जिनकी गोद में बच्चा है। इसके दाहिनी ओर 5 सुअर ऊपर नीचे हैं। इसके बांये पार्श्व में 8 सुअरों के जोड़े एक स्थान में है। यह मूर्ति सृष्टि की है।

6. भूतेश्वर-

दुर्ग के पश्चिमी कोने में भूतेश्वर नामक स्थान है। इस स्थान में जाने के लिए अजयपाल मंदिर से रास्ता जाता है। यह एक गुफा है और इस गुफा के अंदर शिवलिंग है। इस गुफा के ऊपर दो कुण्ड बने हुए हैं इसके निकट अनन्त शेषशायी विष्णु की मूर्ति है। यहां पर कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है।

अजयगढ़ दुर्ग को अत्यन्त प्राचीन बताया गया है। इसकी तुलना अन्य स्थलों से की गई है। चंदेलयुग में अजयगढ़ महोबा कालिंजर और खजुराहो प्रमुख केन्द्र थे।[41] कनिंघम ने अपने ऐतिहासिक सर्वेक्षण के दौरान अजयगढ़ के महत्व को स्वीकार नहीं किया। कतिपय इतिहासकारों ने अजयगढ़ और कालिंजर दुर्ग का निर्माण नवीं शताब्दी में स्वीकार किया।[42] अजयगढ़ दुर्ग में जो भी अभिलेख प्राप्त होते है, वे अधिकांशतः चंदेलयुगीन हैं। इन अभिलेखों में इस स्थल का नाम जयपुर दुर्ग एवं जयपुर दिया है।[43] महाराज लक्ष्मण के 158 तिथि (गुप्त संवत्) के दो ताम्रपत्र उपलब्ध होते है। ये ताम्रपत्र पाली[44] एवं सिंगरोली[45] से उपलब्ध हुए हैं। इनमें जयपुर का उल्लेख है। इसका सीधा सम्बन्ध अजयगढ़ से ही प्रतीत होता है।

7. देव पहाड़ी-

नरैनी से अजयगढ़ जाने वाले मार्ग में अजयगढ़ के सन्निकट एक छोटी सी पहाड़ी है। इस पहाड़ी के ऊपर कई प्राकृतिक जलकुण्ड एवं कन्दरायें है। इन कन्दरओं में कभी संत तपस्या किया करते थे। इसी पहाड़ी में चंदेलकालीन अनेक मूर्तियां उपलब्ध होती हैं तथा गुफाओं के अन्दर शैलचित्र है। आज से लगभग 30 वर्ष पहले यहां एक सिद्ध तपस्वनी निवास करती थी, जिसके दर्शन के लिए दूर-दूर से लोग यहां आते थे।

8. बुन्देला शासकों के ऐतिहासिक स्थल-

सन् 1731 में छत्रसाल का स्वर्गवास हो गया। उसके पश्चात जगतराय के पुत्र जैतपुर क्षेत्र के राजा हुए। इस क्षेत्र में जैतपुर, महोबा, चरखारी, बाँदा और अजयगढ़ क्षेत्र आते थे। इस प्रकार जगतराय के पुत्र कीर्तिसिंह उसके बाद गुमान सिंह आदि प्रारम्भिक राजा हुए। इन्होंने अजयगढ़ को प्रशासनिक मुख्यालय बनाया। सन् 1790 के लगभग राजा बखत सिंह को अलीबहादुर ने परास्त किया । उस समय अलीबहादुर की रियासत बखत सिंह के ही आधीन थी। बाद में नवाब अलीबहादुर ने बखत सिंह को 3000 हजार रूपये प्रतिमाह पेंशन दे दी किन्तु कुछ समय बाद पेंशन बंद कर दी गई। अजयगढ़ रियासत का कुछ भाग किलेदार लक्ष्मन सिंह दउवा दबा गया। अंग्रेजों से जब देशी राजाओं की संधियाँ हुईं, तब यह इकरार हुआ कि कम्पनी सरकार अजयगढ़ का दुर्ग बखत सिंह को वापिस करेगी और 4000 रूपये प्रतिवर्ष देगी। लक्ष्मन सिंह दउवा जो कम्पनी सरकार से 3000 रूपये प्रतिमाह पा रहा था। उसके उदण्ड स्वभाव के कारण यह पेंशन कम्पनी सरकार ने बन्द कर दी। लक्ष्मन सिंह दउवा का कर्नल मार्टिन से युद्ध हुआ। इस युद्ध में दउवा हार गया। इसके पश्चात अजयगढ़ की गद्दी में माधवसिंह उसके बाद उनके भाई महिपत सिंह उसके बाद रनजोरा सिंह फिर लोकपाल सिंह यहां के राजा हुए। इन सभी राजाओं के आवासीय महल तथा अन्य धार्मिक स्थल अजयगढ़ में उपलब्ध हैं।

1. आवागमन के साधन-

अजयगढ़ वर्तमान समय में पन्ना जनपद में है। यहां केवल सड़क मार्ग द्वारा पहुंचा जा सकता है। खजुराहो, पन्ना और बाँदा से यहां नियमित बस सेवा उपलब्ध है किन्तु दर्शनीय स्थलों में पहुंचने के लिए निजी साधन का प्रयोग करना पड़ता है।

2. आवासीय व्यवस्था-

पर्यटकों के लिए यहां आवासीय व्यवस्था उपलब्ध है। यह पन्ना जनपद का तहसील मुख्यालय है। इसलिए यहां सरकारी डाक बंगलें प्राप्त हैं। पर्यटक शासन की अनुमति से ठहरने के लिए इन बंगलों का उपयोग कर सकता है।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

अजयगढ़ में पर्यटकों को पूर्ण सुरक्षा व्यवस्था प्राप्त हो सकती है। तहसील का मुख्यालय होने के कारण यहां मध्य प्रदेश का पुलिस स्टेशन भी है, जहां से उसे सुरक्षा व्यवस्था हमेशा प्राप्त हो सकती है।

यात्रा के उद्देश्य-

पर्यटक यहां निम्नलिखित उद्देश्यों से यात्रा कर सकता है।-

1. पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक उद्देश्य-

जो पर्यटक अजयगढ़ की यात्रा करता है। उसे यहां के दर्शनीय स्थलों से इतिहास का पूर्ण बोध हो

जाता है। इस क्षेत्र में ज्यादातर स्थल चंदेलयुगीन है, जिनकों देखकर तद्युगीन वास्तुशिल्प, मूर्तिशिल्प एवं संस्कृति का पूरा-पूरा बोध हो जाता है। यहां का वास्तुशिल्प खजुराहो के वास्तुशिल्प से मिलता जुलता है।

2. धार्मिक उद्देश्य-

कालिंजर दुर्ग की भांति ही इस क्षेत्र का धार्मिक महत्व है। मकर संक्रान्ति के शुभ अवसर पर दुर्ग के ऊपर अजयपाल सरोवर में स्नान करना बहुत पवित्र माना जाता है। इसके अतिरिक्त यहां शिवरात्रि पर भी दर्शनार्थ यात्री आते हैं। यहीं की गुफा में विराजमान भगवान भूतेश्वर का दर्शन भी करते हैं। जैन तीर्थयात्री भी इस क्षेत्र में अपने तीर्थांकरों पर श्रृद्धा अर्पित करने यहां आते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अजयगढ़ जो चंदेल युग में अपना धार्मिक और राजनीतिक अस्तित्व रखता था। वह आज भी पर्यटन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह स्थल प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त है। चारों ओर पर्वतीय घाटियों के कारण पर्यटकों का हृदय यहां के मनोरम दृश्य से प्रसन्न हो जाता है।

10. अन्य ऐतिहासिक स्थल-

सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र ऐसे अनेक ज्ञात-अज्ञात ऐतिहासिक क्षेत्रों से परिपूर्ण है, जिनकों देखकर कोई भी यहां की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परम्परा को आसानी से समझ सकता है। ये स्थल यद्यपि किसी ऐतिहासिक ग्रंथ में अब तक उजागर नहीं हो पाये हैं और न ही इनके विषय में किसी को विशेष ज्ञान है। ये स्थल निम्नलिखित है-

1. कीट पहाड़ी-

यह स्थल कालिंजर के बिल्कुल सन्निकट है। इसके संदर्भ में यह जनश्रुति है कि चंदेल युग में इस पहाड़ी से खनिज, लोहा, निकाला जाता था। उस लोहे को शुद्ध किया जाता था, फिर उसके पश्चात लोहे को विभिन्न अस्त्र-शस्त्र के निर्माण में प्रयोग किया जाता था।[46]

2. चुम्बक पहाड़ी-

यह स्थल भी कालिंजर के ही निकट है। साथ ही घनघोर जंगल से घिरा हुआ है। कहते हैं कि यह पहाड़ी चुम्बक पत्थर से निर्मित है। इस पर्वत में खुंखार जंगली जानवर रहते हैं। यह मानना है कि सन् 1914 में चुम्बकीय पहाड़ी[47] के आकर्षण से यहां वायुयान दुर्घटनाग्रस्त हो गया था।

3. कठुला जवारी के जंगल-

यह क्षेत्र कालिंजर से फतेहगंज जाने पर प्राप्त होता है। यह क्षेत्र भी बियाबान जंगल से परिपूर्ण है तथा बीच जंगल में एक चंदेलकालीन मठ बना हुआ है। इसके नजदीक लालरंग के कंकड़ पाये जाते हैं। यहां के निवासियों का कथन है कि यह कंकड़ स्वर्ण युक्त है। राजा अमान सिंह ने इस स्थान पर इन कंकड़ों को खुदाने के लिए खदाने लगवाई थीं और इनसे वे स्वर्ण का निर्माण कराया करते थे। आज भी खैरवार जाति के लोग इन कंकड़ों से स्वर्ण का निर्माण करते हैं।[48]

4. चुडैल घाटी-

पहाड़ीखेरा से पन्ना जाने वाले मार्ग में यह घाटी मिलती है। इस घाटी में चट्टानों पर अनेक प्रकार के शैलचित्र बने हुए हैं। इसी स्थल पर कुछ ऐसे पत्थर भी हैं जो सजर से मिलते-जुलते हैं। इनमें व्यक्ति अपनी छाया देख सकता है। व्यक्ति के हट जाने के बाद भी करीब 15 मिनट तक व्यक्ति की छाया उसी प्रकार बनी रहती है।

5. दधीचि आश्रम-

महर्षि दधीचि एक ऐसे महान व्यक्ति थे जिन्होंने देवासुर संग्राम में अपने शरीर का बलिदान देवाताओं के हित के लिए किया था। उनकी अस्थियों से इन्द्र का अस्त्र "बज्र" का निर्माण हुआ था। उसके चूरे से हीरा नामक रत्न बना। कहते हैं कि पहाड़ीखेरा के पास महर्षि दधीचि का आश्रम था, यद्यपि इस आश्रम के कोई चिन्ह नहीं है। किन्तु अनुमान लगाया जाता है कि पहाड़ीखेरा में जहां हीरा की खदानें हैं, वहीं यह आश्रम था।

6. सढ़ा-नरदहा-

कालिंजर के समीप सढ़ा-नरदहा नामक ग्राम है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है। कहते हैं कि पौराणिक काल में इस स्थल पर महर्षि नारद का आश्रम था। इसके अतिरिक्त चंदेल युग में यह स्थल बहुत ही महत्वपूर्ण था। यहां पर चंदेलकालीन मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि चंदेल युग में यहां एक भव्य मंदिर था और यहां की पहाड़ी पर अनेक अभिलेखों के अतिरिक्त पत्थर के कोल्हू प्राप्त होते हैं। उस जमानें में घेरकर व्यक्तियों को दण्ड या मृत्युदण्ड दिया जाता था।

7. बघेलावारी-

कालिंजर से फतेहगंज जाने वाले मार्ग में यह स्थल मिलता है। कहते हैं कि बघेल वंश के संस्थापक राजा व्याघ्रराज ने सबसे पहले अपने राज्य की स्थापना यहीं पर की थी। इस गांव के सन्निकट बघेलिन नाम का एक दूसरा ग्राम भी है। यहां पर कई ऐतिहासिक स्थल प्राप्त होते हैं।

8. फतेहगंज -

फतेहगंज का बहुत ही ऐतिहासिक महत्व रहा है। इस बस्ती में चंदेलकालीन मूर्तियों के अवशेष प्राप्त होते हैं। इसी क्षेत्र के पास बिलहरिया मठ, मगरमुहा तथा वीरगढ़ की पहाड़ियाँ है। इसी के निकट गोधरमपुर आदि ग्राम भी हैं, जिनका ऐतिहासिक महत्व है। इन क्षेत्रों में चंदेल युग से लेकर बघेल युग तक के ऐतिहासिक स्थल मौजूद हैं।

9. रौली कल्याणपुर-

कर्वी के सन्निकट कल्याणपुर नामक एक ग्राम है। यहां की पर्वत श्रेणियों में पुरापाषाण युगीन अनेक शैलचित्र मिलते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्थल बहुत महत्वपूर्ण है। कहते हैं कि इस क्षेत्र में महाराजा

छत्रसाल से मुहम्मद बंगस का भी युद्ध हुआ था। इसके अतिरिक्त कुछ काल तक बघेल वंशी राजाओं का भी अधिकार यहां रहा। बाद में यह क्षेत्र पुनः बुन्देलों के हांथ में आ गया। इसके आस-पास कई ऐतिहासिक स्थल प्राप्त होते हैं।

10. धरमपुर-

यह स्थान अजयगढ़ के समीप है। इस क्षेत्र में चंदेलकालीन भग्नावशेष उपलब्ध होते हैं। इसके अलावा कुछ अवशेष बुन्देलों के समय के भी हैं। इस क्षेत्र में पहुंचने के लिए अजयगढ़ व कालिंजर से सीधा मार्ग लगा है।

11. रामनगर-

यह कालिंजर के बिल्कुल नजदीक है तथा कालिंजर -खजुराहो मार्ग में बागे नदी के तट पर है। यहां कई चंदेलकालीन मंदिरों के अवशेष प्राप्त होते हैं। यहीं पर एक छोटी सी गढ़ी भी थी। अधिकांशतः ऐतिहासिक स्थल ध्वस्त हो गये हैं।

12. गोले पुरवा-

यह स्थल भी कालिंजर के पास है, कहते हैं कि जब कालिंजर पर शेरशाह सूरी ने आक्रमण किया था, उस समय उसकी सेनाएं यहीं ठहरी थीं। उन्होंने अपनी तोपें कालिंजरी पहाड़ी पर चढ़ाकर ही कालिंजर दुर्ग को विजित किया था।

13. तेरापतौरा-

यह कालिंजर से थोड़ी दूर पर है। इसके संदर्भ में यह कहा जाता है कि बाँदा के नवाब अलीबहादुर प्रथम और हिम्मत बहादुर गोसाईं ने जब कालिंजर में सन् 1802 के लगभग यहां आक्रमण किया था। उस समय इन्होंने तेरापतौरा ग्राम में अपने निवास के लिए महलों का निर्माण कराया था।

14. पंचमपुर खोरा-

पंचमपुर खोरा भी कालिंजर से थोड़ी दुरी पर है। इस क्षेत्र में भी अनेक चंदेलकालीन भग्नावशेष प्राप्त होते हैं। इस क्षेत्र की यात्रा करने वालों को यहां अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं।

15. नरैनी-

नरैनी भी अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक स्थल है। यहां के रामचन्द्र पर्वत में पाषाण युगीन अस्त्र-शस्त्र बनाये जाते थे। इसका उल्लेख अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों में मिलता है। इसके अतिरिक्त यहां जागीरदारों का राज्य था। इनके महलों के अवशेष नरैनी में पहाड़ी के निकट ही उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर परिक्षेत्र ऐसे महत्वपूर्ण स्थलों से भरा हुआ है जो पुरापाषाण युग से लेकर बुन्देलों तक की शौर्यगाथा अपने आप मौन स्वर में दोहराता है, जो भी व्यक्ति इन क्षेत्रों में आता है। वह निश्चित ही यहां की सांस्कृतिक गरिमा से प्रभावित होता है।जहां एक ओर वह क्षेत्र के प्राचीन

गौरव से परिचित होता है, वहीं वह यहां की लोक संस्कृति से भी प्रभावित होता है। इस स्थल को धर्म, संस्कृति, राजनीति और इतिहास ने अपने-अपने ढंग से प्रभावित किया है। यह हर युगों में तब तक चिरस्मरणीय रहेगा जब तक उसके पुरावशेष यहां उपलब्ध रहेंगें।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. बाँदा गजेटियर, लखनऊ, 1977, पृ0 298-299 ।
2. कनिंघम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 21, पृ0 18-19 ।
3. मुंशी, कन्हैयालाल माणिकलाल, कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास, बम्बई, सन्दर्भ ग्रंथ ।
4. कनिंघम, पूर्वो0, पृ0 19-20 ।
5. तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रयाग, विक्रमी संवत् 1990, पृ0 93-94 ।
6. बाँदा गजेटियर, पूर्वो, पृ0 287 ।
7. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण, प्रयाग, 1968, पृ0 199,: अग्रवाल, कन्हैयालाल, विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सतना, 1987, पृ0 129,: रॉय, बी0 एन0, सम्पादक- कालिंजर ए हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल, इलाहाबाद, 1992, पृ0 42।
8. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, पूर्वो0, पृ0 199 ।
9. रॉय, बी0 एन0, पूर्वो0, पृ0 42 ।
10. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 301-302 ।
11. जर्नल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1881, पृ0 8-9 ।
12. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 7, पृ0 226 तथा भाग 21, पृ0 15-17 ।
13. अग्रवाल, कन्हैयालाल, पूर्वो0, पृ0 129,: कनिंघम, पूर्वो0, पृ0 19-20 ।
14. रॉय, बी0 एन0, पूर्वो0, पृ0 42, कनिंघम, एनुवल रिपोर्ट ऑव् आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑव् इण्डिया, 1911-1912, जिल्द 21 ।
15. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, पूर्वो0, पृ0 213 ।
16. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 286 ।
17. अग्रवाल, कन्हैयालाल, पूर्वो0, पृ0 129,: कनिंघम, पूर्वो0, भाग 21, पृ0 19-20 ।
18. वही, पृ0 21 ।
19. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (पुराना), भाग 7, पृ0 331-337 ।
20. फ्यूहरर, ए0, द मानूमेन्टल एण्टीक्वटीज एण्ड इन्सकृप्सन्स इन दि नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध, बनारस, 1969, पृ0 154 ।
21. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (पुराना), भाग 7, पृ0 7, 331-337 ।
22. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 21, पृ0 29 ।
23. वही ।
24. रॉय, बी0 एन0, पूर्वो0, पृ0 74-81 ।

25. अन्वेषित नवीन स्थल ।
26. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 303 ।
27. अन्वेषित नवीन स्थल ।
28. इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग 31, पृ0 135-136 ।
29. ऐतिहासिक स्थानावली, पृ0 16 ।
30. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ0 325, भाग 27, पृ0 99-107 ।
31. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग 5, पृ0 132-133 ।
32. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ0 325 ।
33. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 21, पृ0 46 ।
34. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ0 328 ।
35. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 21, पृ0 49-50 ।
36. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऐनुवल रिपोर्ट, 1935-1936, पृ0 91-93 ।
37. कनिंघम, पूर्वो0, भाग 7, पृ0 47-48 ।
38. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 27, पृ0 99-107 ।
39. वही, भाग 1, पृ0 330-338 ।
40. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया ऐनुवल रिपोर्ट, 1935-1936, पृ0 91-93 ।
41. इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग 37, पृ0 135-136 ।
42. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग 1, पृ0 112 ।
43. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ0 325, भाग 27, पृ0 99-107, भाग 30, पृ0 87 ।
44. वही, भाग 2, पृ0 364 ।
45. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऐनुवल रिपोर्ट, 1936-1937, पृ0 88 ।
46. बुन्देली, राधाकृष्ण, निर्देशक- कालिंजर दर्शन वीडियो फिल्म, कैसिट नं0 2 ।
47. वही ।
48. वही ।

हनुमान दरवाजा (पाँचवा द्वार)

कालिंजर

पंचम
अध्याय
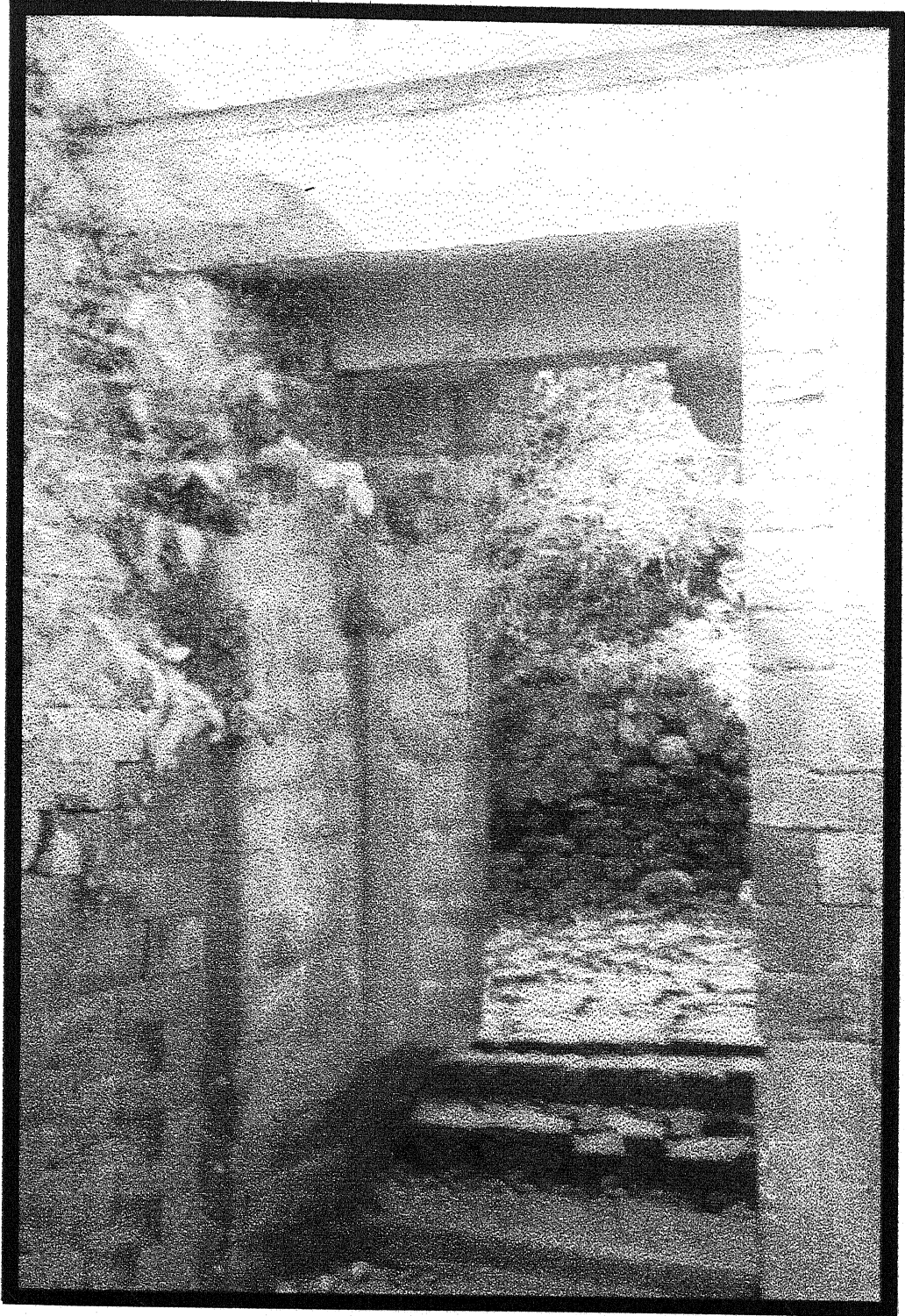
कालिंजर क्षेत्र के सुरम्य प्राकृतिक स्थल

कालिंजर उतना ही प्रसिद्ध था, जितना कि दुर्ग। यह केवल ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है अपितु यह प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।इस क्षेत्र के अनेक स्थलों में विन्ध्याचल की अनेक पर्वत श्रेणियां हैं, जो सदैव हरीतिमा से आच्छादित रहती हैं ।यहां नाना प्रकार के वृक्ष प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ाते हैं और अनेक रंग के पक्षी सदैव कलरव नाद करते रहते हैं। यहां पर प्रकृति विषम प्राकृतिक बनावट के कारण कहीं आकाश को स्पर्श करने का प्रयास करती है तो कहीं सागर की गहराई को देखनें का प्रयत्न करती है। इस नैसर्गिक सुरम्यता के साथ नीलाम्बर भी अपनी छटा बिखेर देता है। यहां का नीलाम्बर विविध समयों एवं विविध ऋतुओं से प्रभावित होता है। प्रातः काल सूर्य का अरूणोदय पूर्वान्चल में प्राकृतिक सुन्दरता की श्री वृद्धि करता है और जब व्यक्ति सुबह के इस सौन्दर्य को निहारता है तो उसे वृक्षों के शिखरों पर पक्षियों की मधुर आवाज संगीतमय स्वरों में सुनाई देती हैं ।धीरे-धीरे सूर्य की रश्मियाँ तरू शिखरों पर अपनी स्वर्णिम आभा बिखेरती हैं। इस क्षेत्र में जो सरोवर उपलब्ध होते हैं उनकी आभा भी अद्वितीय होती है। प्रातः काल सूर्य को देखकर खिले हुए कमल सूर्य का स्वागत करने के लिए अपने हृदय को खोल देते है तथा रंग-बिरंगी तितलियाँ वन में खिले हुए पुष्पों के ऊपर नृत्य करती प्रतीत होती हैं।

यहां के सभी मौसम प्रकृति को प्रभावित करते हैं। बसन्त ऋतु की बसन्ती पवन भवरों को खिली हुई कलियों के प्रति आकर्षित करती हैं। विविध भाँति के रंग-बिरंगे फूल खिले दिखाई देते हैं, जिनको देखकर अनायास ही मनुष्य भाव-विभोर हो उठता है। इसी मध्य जब कोयल अपने मुख से पंचमनाद करती है तब उस समय विरहणी के हृदय में अपने प्रियतम की याद आती है और वह मिलने के लिए तड़प उठती है। बसन्त ऋतु के पश्चात जब ग्रीष्म ऋतु का आमगन होता है उस समय वायु सूर्य के ताप से प्रभावित होकर व्यक्तियों को मजबूर कर देती है कि वे दोपहर के समय घरों का परित्याग न करें किन्तु पर्वत के सीने पर उगे हुए अनेक वृक्ष व्यक्तियों के मनोरंजन करने में कोई कसर नहीं छोड़ते । इसी समय वन में निवास करने वाले मृग एवं नाना प्रकार के जंगली पशु ग्रीष्म के भीषण आतप से बचने के लिए सुरक्षित स्थान की खोज करते हैं। इस अवसर पर प्रातः एवं सन्ध्या की सुरम्यता कालिंजर की प्रकृति को एक सुन्दर और सौम्य नारी की भांति प्रस्तुत करने में सक्षम रहती है।

कुछ दिनों पश्चात जब व्यक्ति ग्रीष्म के आतप से व्याकुल हो जाता है तब उसका श्वेतयुक्त शरीर शीतलता की आकांक्षा करने लग जाता है। आसाढ़ मास के आते ही यहां के मनुष्यों की पीड़ा भगवान शिव तथा राम की कृपा से दूर होती दिखाई देती है। प्रकृति जल बिन्दुओं से व्यक्तियों को शीतलता प्रदान करती है। और उनकी ग्रीष्म आतप की व्याकुलता समाप्त कर देती है। आकाश में काले एवं भूरे रंग के बादलों का सौन्दर्य बरबस दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। कभी-कभी यहां के आकश में इन्द्रधनष के भी

दर्शन हो जाते हैं। जहां एक तरफ व्याकुल व्यक्ति विरहणी के आसुओं की कल्पना करते हुए वर्षा का स्वागत करते हैं वहीं दूसरी तरफ अपने प्रेमी युगलों के पास निवास करने वाले सभी जन हृदय में संतोष धारण करते हैं। जब श्रावणमास आता है तब इस क्षेत्र के सरोवरों में कजली का त्योहार और रक्षा-बन्धन अपनी परम्परागत विशेषताओं के साथ सम्पन्न होता है। अपने विशिष्ट परिधानों में लिप्त सौन्दर्य से परिपूरित स्त्रियां युवक हृदयों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं । इस तरह से यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम और दैवी हो जाता है।

वर्षा ऋतु की समाप्ति के पश्चात आकाश बादलों को अपने हृदय पटल से हटा देता है और स्वच्छ चांदनी को अपने हृदय में स्थान देता है। इस स्थल की शरद पूर्णिमा अन्य स्थलों की शरद पूर्णिमा से श्रेष्ठ है। इस अवसर पर यहां के सभी सुरम्य स्थल धवल चाँदनी से स्नान किए हुए प्रतीत होते हैं जिन्हें देखकर सुकोमल भावना धारणा करने वाला व्यक्ति तो विशिष्ट रूप से आकर्षित होता है साथ ही कालिंजर का दुर्ग, पाथरकद्दार के सरोवर और वहां निर्मित वेश्या की मजार चाँदनी रात में व्यक्तियों को उतना ही अपनी ओर आकर्षित करती है जितना कि ताजमहल करता है। शरद ऋतु के पश्चात जब शीत ऋतु का मौसम प्रारम्भ होता है उस समय कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर भगवान शिव के ऊपर जलाभिषेक करने वालों का तांता लगा रहता है। कार्तिक पूर्णिमा की धवल चाँदनी इसके साथ कालिंजर दुर्ग का विशालकाय कलेवर एवं रात्रि के मौन को तोड़ती हुई घण्टा और मृदंग की ध्वनि के साथ भगवान शिव की जयजयकार इस परिक्षेत्र के सौन्दर्य को निश्चित ही बढ़ाती है। व्यक्ति रात्रि के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर उससे आकर्षित एवं आनन्दित होता है।

धीरे-धीरे शीत प्रगाढ़ता को प्राप्त होती है। पतझड़ का मौसम आता है, तेज ठण्डी हवाऐं चलती हैं। इसी अवसर पर मकर संक्रान्ति का पर्व आता है। इस पर्व में भीषण जन शैलाब कालिंजर, मड़फा, वीरगढ़, की पहाड़ी और अजयगढ़ में एकत्रित होता है। इस जन शैलाब के साथ-साथ जो लोक संगीत की प्रति ध्वनि व्यक्तियों के मुखारबिन्दों से सुनाई देती है, उससे भी यह क्षेत्र प्राकृतिक सौन्दर्य और मानवीय सौन्दर्य से समिश्रित होकर एक नवीन प्रेरणा प्रदान करता है। कोई भी दर्शक इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। कुछ दिनों उपरान्त बसन्त ऋतु में शिवरात्रि का त्योहार आता है, जिसमें पुनः कालिंजर परिक्षेत्र में लाखों की भीड़ एकत्रित होकर भगवान शिव के चरणों में श्रृद्धासुमन अर्पित करती है। फिर कुछ दिनों पश्चात होली का पावन त्योहार आता है, जिससे प्रभावित होकर प्रत्येक व्यक्ति अपनी मस्ती में डूब जाता है और चारों तरफ फागों की ध्वनि क्षेत्रीय भाषा में सुनाई देती है। यहां का जो भी सौन्दर्य है उसके सौन्दर्य का निर्माण प्रकृति और निवास करने वाले मानवों ने मिलकर किया है। यहां विचरने वाले जंगली पशुओं ने इसमें श्रीवृद्धि की है। इसके साथ-साथ यहां उपलब्ध खनिज सम्पदा, आयुर्वैदिक औषधियां भी व्यक्ति को आकर्षित करती हैं।[1] यहां की अनुकूल जलवायु भ्रमणार्थियों

के स्वास्थ में वृद्धि करती है।

(1) भरतकूप-

कालिंजर परिक्षेत्र में भरतकूप स्थल सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से सर्वाधिक प्रसिद्ध क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह क्षेत्र कम महत्वपूर्ण नहीं है। किसी जमाने में जो भी बाहरी पर्यटक आता था,वह सैर-सपाटे के अतिरिक्त शिकार के दृष्टिकोण से भी इस क्षेत्र का भ्रमण करता था। इस क्षेत्र में नीलगाय, बारहसिंहा, बाघ, चीता एवं अन्य जंगली पशु उपलब्ध होते थे किन्तु पिछले कुछ समय से इस क्षेत्र का शहरीकरण हो जाने की वजह से जंगली जानवर मानव बस्तियों का परित्याग कर सुरक्षित स्थानों को चले गये हैं।

किसी समय यह क्षेत्र पर्यावरण और स्वास्थ्यप्रद जलवायु के लिए प्रसिद्ध था। चारों ओर विन्ध्यपर्वत की श्रेणियॉं और उनका प्राकृतिक सौन्दर्य तथा स्वास्थ्य अनुकूल वायु सभी को लाभ पहुंचाती थी, किन्तु अब यह प्राकृतिक सौन्दर्य पहाड़ियों से ग्रेनाइट पत्थर तोड़े जाने के कारण नष्ट होता प्रतीत होता है। इससे प्राकृतिक वातावरण प्रभावित हुआ है और जलवायु में प्रतिकूल असर पड़ा है। चित्रकूट के सन्निकट होने के कारण अब केवल तीर्थ यात्री धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से ही यहां आते हैं।[2]

आवागमन के साधन-

भरतकूप क्षेत्र में पहुंचने के लिए रेलमार्ग एवं सड़कमार्ग दोनो ही सुलभ है। बाँदा-मानिकपुर मार्ग में भरतकूप एक प्रसिद्ध रेलवे स्टेशन है। यह बाँदा से लगभग 60 किलोमीटर की दूरी पर है। यहां पहुंचने के लिए बाँदा और इलाहाबाद से सड़क परिवहन की सुविधायें भी प्राप्त हैं जो यात्रियों को भरतकूप बस्ती तक छोड़ देती हैं। यहां से यात्री भरतकूप के प्राकृतिक सौन्दर्य के स्थलों को देखने के लिए अपने संसाधनों से पहुंच सकते हैं।

आवासीय व्यवस्था-

भरतकूप में यात्रियों के लिए कोई आवासीय व्यवस्था नहीं है। यहां आने वाला व्यक्ति चित्रकूट के आवास स्थलों पर निर्भर रहता है। चित्रकूट में अनेक धर्मशालायें, होटल, पर्यटक आवास गृह तथा डाक बंगले यात्रियों के लिए उपलब्ध है। यहां से वह निजी संसाधनों से भरतकूप पहुंच सकता है।

सुरक्षा व्यवस्था-

भरतकूप विकसित होने वाली नवीन बस्ती है, इसलिए यहां पर पुलिस चौकी भी है। इस पुलिस चौकी से यात्रियों को सुरक्षा व्यवस्था मिल सकती है। चूंकि यह ग्रेनाइट पत्थर की उद्योग नगरी है इसलिए सभी व्यापारी अपनी निजी सुरक्षा व्यवस्था भी रखते हैं। यात्रियों को यहां पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं है और न ही असुरक्षा का किसी प्रकार का भय है।

दर्शनीय स्थल

भरतकूप बस्ती से करीब दो किलोमीटर मड़फा मार्ग में चलने के पश्चात दर्शनीय स्थल उपलब्ध होते है। ये निम्नलिखित है।

1. भरतकूप मंदिर-

यह मंदिर अत्यन्त भव्य है। इस मंदिर में भगवान राम, सीता, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघन की मूर्तियॉ है। वास्तुशिल्प के आधार पर यह मंदिर अत्यन्त प्राचीन नहीं मालुम पड़ता । निर्माण शैली की दृष्टि से इसका निर्माण बुन्देला शासकों के समय में हुआ। इसके दरवाजें महराबदार हैं। मंदिर के चारो ओर परिक्रमा का रास्ता तथा गर्भगृह में भगवान की धातु प्रतिमाऐं उपलब्ध हैं। इस क्षेत्र में प्रत्येक अमावश्या के अवसर पर लाखों की संख्या में व्यक्ति आते हैं। दर्शन लाभ में सुख एवं आनन्द अनुभव करते हैं।

2. भरतकूप

इस मंदिर परिसर में एक कूप है इस कूप का धार्मिक महत्व है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में भरतकूप का विस्तृत वर्णन किया है। जब भगवान राम चौदह वर्ष का वनवास बिताने के उद्देश्य से चित्रकूट आये, उस समय भरत को कैकेयी के क्रियाकलाप पर काफी पश्चाताप हुआ। वे अयोध्या की जनता के साथ भगवान राम को मनानें चित्रकूट धाम आये। यहां पर अयोध्यावासियों ने भगवान राम को इस बात के लिए मनानें का प्रयास किया कि भगवान प्रण का परित्याग करके वापिस अयोध्या चले। वे राम का राज्याभिषेक करने के लिए समस्त तीर्थों का जल और राज्याभिषेक की समस्त सामग्री चित्रकूट लाये थे। भगवान राम दृढ़ प्रतिज्ञ थे, उन्होंने चौदह वर्ष तक वन में रहने का ही निश्चय किया। इससे भरत जी को बड़ी निराशा हुई। सभी तीर्थों का जल तथा राज्याभिषेक की जो भी सामग्री वे अयोध्या से लाये थे, वे सबकी सब उन्होंने इसी कूप में छोड़ दी, तभी से इस कूप का धार्मिक महत्व बढ़ गया।अन्त में भरत को भगवान राम की खडाऊँ ही प्राप्त हुईं, इसी से उन्हें संतोष करना पड़ा।

भगवान राम यहां से अन्यत्र चले गये। उसके पश्चात वैष्णव धर्मावलम्बियों को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि जो भी वैष्णव भक्त तथा तीर्थयात्री इस कूप में स्नान करेगा उसके शरीर के असाध्य रोग तो दूर होंगे ही साथ ही वह भगवान राम के श्री चरणों के प्रताप से मृत्यु के पश्चात स्वर्गगामी होगा और मोक्ष प्राप्त करेगा। जो भी व्यक्ति भगवान राम की पावन वनवास भूमि में आता है, वह इस दर्शनीय स्थल में आकर पुण्य की प्राप्ति करता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी रामायण "रामचरित मानस" में इस कूप का बहुत ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया है-

अत्रि कहेउ तब भरतसन्, शैल समीप सुकूप।
राखिय तीरथतोय तहँ, पावन अमल अनूप।।
भरत अत्रि अनुशासन पाई, जल भाजन सब दिये चलाई।
सानुज आपु अत्रि मुनिसाधू, सहित गये जहँ कूप अगाधू।।
पावन पाथ पुण्य थल राखा, प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा।
तात अनादि सिद्ध थल एहू, लोपेउ काल विदित नहिं केहू।।
तब सेवकन्ह सरस थल देखा, कीन्ह सुजल हित कूप विसेखा।
विधिवश भयउ विश्व उपकारू, सुगम अमग अति धर्म विचारू।।
भरतकूप अब कहिंहहिं लोगा, अतिपावन तीरथ जल योगा।
प्रेम सनेम निमज्जत प्राणी, होइहहिं विमल कर्म मन वाणी।।
कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुवरहिं, तीरथ पुण्य प्रभाउ।।[3]

3. अन्य प्राकृतिक स्थल

यह क्षेत्र प्राकृतिक सौन्दर्य से घिरा है। इसके चारो ओर विन्ध्याचल की लुभावनी पर्वत श्रेणियॉ हैं जिनका दृश्य सूर्योदय और सूर्यास्त के समय अत्यन्त मनमोहक प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में रहनें वाले पशु-पक्षी भी यात्रियों का ह्रदय अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वास्तव में यह क्षेत्र साहित्यकारो के लिए प्रेरणाप्रद और प्राकृतिक सौन्दर्य प्रेमियों के लिए स्वास्थ्य वर्धक है। महाकवि कालीदास ने रघुवंश और मेघदूत में विन्ध्यआटवीं के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया है। प्रसिद्ध संस्कृताचार्य बाणभट्ट ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ कादम्बरी में विन्ध्यआटवीं के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन बहुत सुन्दर किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी चित्रकूट और कालिंजर क्षेत्र के प्राकृतिक सौन्दर्य को प्रस्तुत किया है।

यात्रा के उद्देश्य-

इस क्षेत्र में यात्रा करने वाले पर्यटक के निम्न उद्देश्य होंगे-

1. धार्मिक एवं सांस्कृतिक उद्देश्य-

चूंकि यह क्षेत्र पूरी तरह वैष्णव धर्म से सम्बन्धित है इसलिए जो भी भक्तगण भगवान राम पर आस्था रखते हैं, वे इस क्षेत्र का भ्रमण धार्मिक उद्देश्य से ही करेंगे। जो भी यात्री इस क्षेत्र में आता है, उसका उद्देश्य मुख्य रूप से धार्मिक एवं सांस्कृतिक होता है। इस क्षेत्र में आने के कारण वह यहां के धार्मिक एवं सांस्कृतिक रीति-रिवाज तथा तीज-त्योहारों से पूर्ण परिचित होता है तथा उसके ह्रदय में धर्म के प्रति एक विशेष आस्था का उदय होता है।

2. स्वास्थ्य लाभ-

यह क्षेत्र प्रकृति सौन्दर्य से युक्त है। जो व्यक्ति प्राकृतिक सौन्दर्य,वनीय वातावरण तथा जंगली पशु-पक्षियों को देखने में अभिरूचि रखते हैं तथा जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से यहां आते हैं, उन्हें भी इसका लाभ प्राप्त होता है। यहां के जल एवं वातावरण में वह शक्ति है जो औषधियों में नहीं है।यहां पर इसका आश्चर्यकारी लाभ पर्यटकों को मिलता है।

3. व्यवसायिक उद्देश्य-

इस क्षेत्र में व्यक्ति व्यवसायिक उद्देश्य से भी यात्रा कर सकता है। यहां पर सर्वोत्तम किस्म का ग्रेनाइट पत्थर उलब्ध होता है। इस पत्थर का उपयोग भवन एवं सड़क निर्माण में होता है। गिट्टी तोड़ने एवं पत्थर तोड़नें की अनेक मशीनें यहां लगी हुई हैं। यहां का पत्थर ट्रकों के माध्यम से बहुत दूर-दूर तक जाता है। इसके अलावा भी यहां अनेक प्रकार की खनिज सम्पदा प्राप्त होती है जिसमें इमारती लकड़ी, इमारती पत्थर तथा अन्य प्राकृतिक वनस्पतियॉ शामिल है। यह सब व्यवसायिक दृष्टि से बड़ी ही उपयोगी हैं, जो व्यक्ति इन उद्योगों से सम्बन्धित है वह इस क्षेत्र की यात्रा कर सकता है।

4. लोक संस्कृति के अध्ययन का उद्देश्य-

भरतकूप परिक्षेत्र नवविकसित अवश्य है किन्तु यहां का भौगोलिक और सामाजिक वातावरण अन्य क्षेत्रों से भिन्न हैं। इस क्षेत्र में सुदूर अनेक ऐसे ग्राम हैं जिनमें आदिवासी जाति के लोग निवास करते हैं, ये लोग कोल, गौण, बैगा तथा अन्य जन, जातियों के हैं। इनकी सामाजिक व्यवस्था और रीति-रिवाज अन्य वर्गों से पूरी तरह भिन्न है। इनके संस्कारिक महोत्सव भी अन्य व्यक्तियों से भिन्न होते हैं, इसलिए जो व्यक्ति इनकी लोक संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, लोक संगीत एवं अन्य परम्पराओं का अध्ययन करना चाहते है, वे भरतकूप के समीप ग्रामीण अंचलों में जाकर इनके लोकोत्सवों में शामिल होकर भरपूर मनोरंजन का लाभ उठा सकते हैं साथ ही इनके लोक जीवन का अध्ययन भी कर सकते हैं।

यदि पर्यटक उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखकर भरतकूप की यात्रा करता है, तो निश्चित ही उसका इस क्षेत्र में आना-सार्थक होगा तथा वह ऐसी स्मृतियॉ लेकर इस क्षेत्र से जायेगा, जिसे वह जीवन में कभी नहीं भुला पायेगा।

(2) व्यास कुण्ड-

व्यास कुण्ड महाभारत के रचयिता कृष्ण द्वैपायन व्यास इस परिक्षेत्र में बरसों रहे। इनका विवाह मड़फा निवासी ऋषि महाअर्थवर्ण की पुत्री वाटिका से हुआ। स्वाभाविक है कि व्यास इस स्थल में आध्यात्मिक चिंतन के उद्देश्य से रहे होगें । यह क्षेत्र बड़ा ही मनोहारी और बड़ा ही आकर्षक प्रतीत होता है। प्राकृतिक सौन्दर्य ने इसकी शोभा और भी बढ़ा दी है। इस स्थल में जो पर्वत श्रेणियाँ हैं। उन्हींने इस स्थल के सौन्दर्य में वृद्धि की है। चारो तरफ की हरीतिमा उच्च पर्वत श्रेणियाँ तथा विचरण करने वाले पशुओं

का मनोरम दृश्य पर्यटकों को इस ओर आकर्षित करता है। यह स्थल पूर्णरूपेण जंगलों से घिरा हुआ है तथा इस परिक्षेत्र में कई किलोमीटर तक मानव बस्तियाँ दिखाई नहीं देती। उसके पश्चात आदिवासियों के निवास स्थल इस परिक्षेत्र में है। यहाँ पहुंचकर एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक शान्ति मिलती है तथा नेत्रों के सामनें प्रकृति के मनोरम एवं आश्चर्यकारी दृश्य दिखाई देते हैं। यहां सदैव शीतल वायु मन्दगति से प्रवाहित होती रहती है।

आवागमन के साधन-

इस स्थल में पहुंचने के लिए सर्वप्रथम हमें भरतकूप तक रेलमार्ग उपलब्ध होता है। दूसरा मार्ग सड़क परिवहन का है। यहां से व्यास कुण्ड तक जाने के लिए कोई नियमित बस सेवा नहीं है और न ही किसी प्रकार का वाहन इस स्थल तक पहुंच सकता है। केवल निजी जीप, अश्व अथवा पैदल चलकर यहां पहुंचा जा सकता है।

आवासीय व्यवस्था-

जो पर्यटक यहां के मनोहर दृश्य का अवलोकन करना चाहते हैं, उन्हें यह जान लेना चाहिए कि इस परिक्षेत्र में किसी भी प्रकार की आवासीय व्यवस्था सुलभ नहीं होगी। अपनी आवासीय व्यवस्था चित्रकूट के धर्मशालाओं एवं पर्यटन यात्री गृहों में करें। उसके बाद ही यहाँ निजी संसाधन से आयें। यहां उनके भोजन एवं जलपान की व्यवस्था नहीं हो सकती, वनीय क्षेत्र होने के कारण यहां कुछ भी नहीं उपलब्ध हो सकता है।

सुरक्षा व्यवस्था-

यह एक निर्जन क्षेत्र है यहां डकैतों एवं अराजक तत्वों की चहल कदमी सदैव बनीं रहती है। इसलिए बिना सुरक्षा व्यवस्था के कोई भी यात्री यहां जाने का प्रयास न करें। यदि व्यक्ति इस क्षेत्र में जायें तो वह प्रातः काल पहुंचकर पांच बजे सायं काल तक निश्चित वापस आ जायें। उसे सुरक्षा व्यवस्था चित्रकूट, भरतकूप और बदौसा थानों से प्राप्त हो सकती है।

दर्शनीय स्थल-

1. पर्वत श्रेणियाँ-

यहां पर पर्वत श्रेणियाँ काफी ऊँची हैं तथा इनमें विविध प्रकार के वृक्ष लगे हैं जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते। जंगली जानवर बाघ, मृग,नीलगाय,जंगली सुअर आदि यहां स्वच्छन्दता से घूमते रहते हैं। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र का सूर्योदय और सूर्यास्त दोनों ही अत्यन्त मनोरम एवं दर्शनीय हैं। गगन की लालिमा और उस लालिमा में पक्षियों का विहार पर्यटकों के लिए आकर्षक है।

2. व्यास कुण्ड-

यह कुण्ड मानवकृत नहीं है, यह एक प्राकृतिक गड्ढा जैसा है, जिसमें उच्च पर्वत श्रेणियों से जल

प्रवाहित होकर एकत्र होता रहता है। कुछ जल अपने आप भी प्राकृतिक झरनें की भांति इस कुण्ड में भूमि से बाहर आता रहता है। कहते हैं कि इस कुण्ड में स्नान करनें से अनेक प्रकार के चर्मरोग दूर हो जाते है। जो व्यक्ति मानसिक रोगी है वह अगर इस कुण्ड का जल पीता है तो उसकी मानसिक स्थिति सामान्य हो जाती है तथा उसका पागलपन व विस्मृति रोग ठीक हो जातें हैं। इसी उद्देश्य से व्यक्ति इन कुण्ड़ों में स्नान करता है।[4]

यात्रा के उद्देश्य-

इस क्षेत्र में यात्रा के लिए यात्री विविध उद्देश्यों से आता है-

1 स्वास्थ्य लाभ-

जलवायु की दृष्टि से कालिंजर परिक्षेत्र का यह स्थल अत्यन्त लाभप्रद है। यहां पर मन्द गति से प्रवाहित होने वाली शीतल वायु से व्यत्त्यिों का स्वास्थ लाभ होता है तथा वह खुली हवा और सुकोमल प्रकृति से स्वास्थ लाभ करता है। निश्चित ही यदि इस क्षेत्र में पर्यटक कुछ समय के लिए आवास करें तो वह स्वास्थ लाभ कर सकता है। इसके साथ ही साथ यहां का जल भूमि के विशिष्ट गुणो से प्रभावित है। प्रवाह के दौरान पर्वतों में लगे औषधियों के पौधों की जड़ें एवं पत्तियाँ इत्यादि इस जल को प्रभावित करते हैं जो निरोगता के लिए बहुत आवश्यक है, क्योंकि यह प्रदूषण रहित निर्मल और शुद्ध है।

2. धार्मिक भावना-

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि चित्रकूट बहुत ही पवित्र तीर्थ स्थल है, जो व्यक्ति भगवान राम पर श्रृद्धा एवं विश्वास रखते हैं, उनका आगमन यहां पर होता ही रहता है। भगवान कृष्ण को भी राम का ही अवतार माना जाता है तथा इन्हें प्रचारित-प्रसारित करने में कृष्ण द्वैपायन व्यास की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने महाभारत के अतिरिक्त 18 पुराणों की रचना करके यहां के देवी-देवताओं को जो प्रतिष्ठा दिलाई है,उसी से हिन्दू धर्म का प्रभाव इस परिक्षेत्र में बढ़ा है। इसीलिए वेदव्यास पर श्रृद्धा रखने वाले सभी श्रृद्धालु भक्ति इस क्षेत्र का भ्रमण धार्मिक भावना से ही करते है तथा इस कुण्ड में स्नान करके पुण्य प्राप्त करते है। उनका मानना है कि व्यास कुण्ड में स्नान करने से व्यक्ति दीर्घायु और निरोग हो जाता है तथा मृत्यु के पश्चात उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी उद्देश्य को लेकर व्यास कुण्ड का बहुत महत्व है।

सम्पूर्ण भारत वर्ष की जनता धर्म पर विश्वास करती है। धर्म के अनुकूल आचरण करके वह अपने जीवन को आदर्श बनाने का प्रयत्न करती है। भगवान राम के आदर्शों की भांति भगवान श्री कृष्ण के आदर्श भी अनुकरणीय है, जिनके संदर्भ में वेदव्यास ने अनेक ग्रंथों में प्रकाश डाला है। इसलिए यह परिक्षेत्र वैष्णव धर्म की दो शाखाओं को आपस में मिलाने का प्रसास करता है। यह भाव स्पष्ट करता है कि "जो राम है वही कृष्ण है, जो कृष्ण है वही राम है।" एक ही ब्रह्म को अलग-अलग नजरिये से देखने मात्र का अन्तर है। यह व्यास कुण्ड स्वाभाविक रूप से पर्यटकों में आध्यात्मिक भाव भर देता है।

(3) बानगंगा-

सम्पूर्ण भारत वर्ष में बानगंगा नाम के अनेक स्थल उपलब्ध होते हैं। बाँदा जनपद और कालिंजर परिक्षेत्र में ही बानगंगा नामक कई स्थल हैं। एक बानगंगा पैलानी के पास है,दूसरी बानगंगा नरैनी के पास रिसौरा के समीप है तथा तीसरी बानगंगा बबेरू परिक्षेत्र में है। इन सभी बानगंगाओं के साथ ज्यादातर रामायण और महाभारत की कहानी इनकी उत्पत्ति के संदर्भ में प्रचलित है। कुछ का विचार है कि ये बानगंगा अर्जुन के बाण मारने से प्राकृतिक जल स्रोत के रूप में निकली लघु सरिता है, जो प्रवाहित होकर किसी न किसी नदी में मिल जाती हैं। दूसरी कथा बानगंगा के संदर्भ में बाल्मीकिकृत रामायण और तुलसीकृत रामायण में उपलब्ध होती है। इस कथा के अनुसार महारानी सीता को जब निर्जन वन में प्यास का अनुभव हुआ, तब उस समय भगवान श्री राम ने पृथ्वी में बाण मारकर इस जल स्रोत को निकाला यह स्थल जो कालिंजर परिक्षेत्र में शामिल है, उसका सीधा सम्बन्ध भगवान श्री राम द्वारा निर्मित बानगंगा से है। यह फतेहगंज और पथरा पालदेव के सन्निकट है। यहां यह एक प्राकृतिक कुण्ड के रूप में दिखलाई देती है और आगे चलकर यह सरिता का रूप धारण कर लेती है। बाद में बागेश्वरी नदी में बदौसा के सन्निकट मिल जाती है। उद्गम स्थान में इसकी स्थिति अमर कंटक से निकलनें वाली नर्मदा नदी जैसी है। निर्जन स्थान में होनें के कारण यह स्थल बहुत अधिक चर्चित नहीं हो पाया किन्तु कालिंजर परिक्षेत्र में प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ और आश्चर्यकारी है।[5]

आवागमन के साधन-

यह स्थल निर्जन वन में स्थित है, इसलिए इस स्थल में पहुंचनें के लिए किसी प्रकार की नियमित बस सेवा उपलब्ध नहीं है। इस परिक्षेत्र में पहुंचनें के लिए हमें निम्न मार्ग उपलब्ध होते हैं-

1. **प्रथम मार्ग-** चित्रकूट, गुप्तगोदावरी और पथरा पालदेव से होकर यहां तक आता है।
2. **द्वितीय मार्ग-** नरैनी, कालिंजर, सढ़ा, नरदहा, फतेहगंज होता हुआ बानगंगा तक जाता है। इस मार्ग के मध्य में नदी को पार करना पड़ता है।
3. **त्रतीय मार्ग-** सतना, पाथरकछार, फतेहगंज और बानगंगा मार्ग है।
4. **चतुर्थ मार्ग-** बदौसा, फतेहगंज, बिलहरियामठ, बानगंगा मार्ग हैं।

इन मार्गों के माध्यम से ही व्यक्ति निजी संसाधनों से यहां पहुंच सकता है

आवासीय व्यवस्था-

यहां पर यात्रियों के लिए व्यक्तिगत रूप से कोई आवासीय व्यवस्था नहीं है किन्तु यदि यात्री यहां रूकना चाहे तो मध्य प्रदेश सरकार की ओर से वन विभाग के कुछ डाक बंगले यहां बने हुए हैं तथा कुछ वन विभाग के कर्मचारी व फारिस्ट गार्ड आदि यहां निवास करते हैं। इनके सहयोग से यात्री यहां ठहर सकता है।

सुरक्षा व्यवस्था-

इस परिक्षेत्र में कोई पुलिस सुरक्षा व्यवस्था नहीं है, फिर भी यहां वन विभाग की ओर से पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था रहती है। यदि वन विभाग के सुरक्षा कर्मियों से अनुरोध किया जाये तो वे अपने विभाग के वन रक्षकों को यात्रियों की सुविधा के लिए उनके साथ भेज देते है।

दर्शनीय स्थल-

इस परिक्षेत्र में यात्रियों के लिए अनेक दर्शनीय स्थल विद्यमान हैं-

1. बानगंगा कुण्ड-

यह एक विचित्र कुण्ड है। इस कुण्ड में दो प्रकार से पानी एकत्र होता है। पहला-जल का एकत्रीकरण जमीन के अन्दर से निकलने वाले जल से होता है और दूसरा-जल का एकत्रीकरण कुण्ड के समीप वाले पर्वत से प्रवाहित होने वाले जल से भी होता है। इस कुण्ड को वर्तमान समय में श्रृद्धालुओं द्वारा पक्का बनवा दिया गया है। इस कुण्ड की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस कुण्ड के अन्दर एक विचित्र प्रकार का वृक्ष है, जो सदैव जल में डूबा रहता है किन्तु अभी तक यह पता नहीं लग सका कि वनस्पति विज्ञान के अनुसार यह वृक्ष किस कोटि का है। इस वृक्ष की वजह से कुण्ड का पानी सदैव स्वच्छ रहता है तथा जल का स्वाद अत्यन्त मीठा एवं स्वादिष्ट है। यही कुण्ड बानगंगा नदी का उद्गम स्थल भी है।

2. विचित्र वृक्ष-

कुण्ड से थोड़ी दूर एक विचित्र वृक्ष देखनें को मिलता है। इस वृक्ष का तना काफी मोटा है। वृक्ष के किनारे एक पक्का मंदिर बना हुआ था। वृक्ष की बढ़ती हुई शाखाओं और तनों ने मंदिर को अपने आगोश में समेट लिया है, जिससे यह मंदिर ध्वस्त हो गया है किन्तु उसकी मूर्तियाँ इत्यादि वृक्ष के आगोश में दिखाई देती है। यह वृक्ष एक आश्चर्यकारी वृक्ष पर्यटकों को दिखाई देगा।

3. द्वितीय आश्चर्यकारी वृक्ष-

इसी प्रकार का एक आश्चर्यकारी वृक्ष बानगंगा परिक्षेत्र में और प्राप्त होता है। इस वृक्ष ने एक दूसरे वृक्ष को अपने आगोश में ले लिया है, जिससे संयुक्त वृक्षों के तनें एक दूसरे से मिल गये हैं और शाखाओं में दोनों वृक्षों की पत्तियाँ एक साथ पल्लवित दिखाई देती है। इसमें दो प्रकार के फूल और फल होते हैं यह वृक्ष भी यात्रियों के लिए आश्चर्यजनक है।

4. धार्मिक स्थल-

इसी कुण्ड के नजदीक छोटे-छोटे दो मंदिर मिलते है, जिनमें पवनसुत हनुमान की मूर्तियाँ है और इसी के समीप शिवलिंग भी है। इन्हीं मंदिरों के पास कुछ मूर्तियाँ भग्न स्थिति में पड़ी हुई हैं, जो वास्तुशिल्प की दृष्टि से चंदेलकालीन प्रतीत होती हैं। इस स्थल में मंदिरों की देख-रेख के लिए पुजारी एवं कुछ साधू संत भी रहते हैं।

5. सुरम्य प्राकृतिक स्थल-

यह एक ऐसा स्थल है जिसके चारों ओर पर्वत है। बीच में जहां दो पर्वतों की सीमाएं समाप्त होती है। वहीं से व्यक्ति इस स्थल में आ सकता है। इन पर्वतों से यहां के प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते हैं। मुख्यरूप से प्रातः कालीन और संध्याकालीन दृश्य अति सुहाने लगते हैं। यहां पर मृग शावक एवं अन्य जंगली पशु-पक्षी भी पर्याप्त मात्रा में दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त यहां कई रंगों के सर्प दिखाई देते हैं।

यात्रा के उद्देश्य-

1. धार्मिक उद्देश्य-

जो व्यक्ति भगवान श्री राम और माता सीता पर श्रृद्धाभाव रखते हैं, वह धर्म से उत्प्रेरित होकर इस क्षेत्र में बानगंगा के दर्शन करने निश्चित आते हैं। वह यह देखकर द्रवीभूत हो जाते हैं कि भगवान राम अपनी धर्म पत्नी सीता से कितना अनुराग करते थे कि श्री राम ने सीता की पिपासा दूर करने के लिए अपने बाण से पृथ्वी में छुपे हुए जल को निकाला, जिससे भगवती सीता की पिपासा दूर हुई। दर्शकों के मनमें यह उत्कण्ठा जागी की भगवान राम इसी प्रकार हमारे दुखों का निवारण करेंगे। यदि हमारी वास्तविक श्रृद्धा भगवान पर इसी प्रकार रही तो निश्चित ही वह हमारे दुखों का अन्त अवश्य करते रहेंगे यहां पर प्राप्त हनुमान मंदिरों का दर्शन करके यात्रियों को यह प्रेरणा मिलती है कि जिस प्रकार श्री हनुमान जी भगवान श्री राम की चरण सेवा करते थे उसी प्रकार हमें भी उनकी चरण सेवा करनी चाहिए।

2.स्वास्थ लाभ-

यदि व्यक्ति नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित है और उसे शहरी क्षेत्र में रहने के कारण शुद्ध जलवायु उपलब्ध नहीं हो पाती तो वह इस क्षेत्र की यात्रा करके स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकता है। इस परिक्षेत्र में उपलब्ध प्रकृति के आश्चर्चकारी दृश्यों को देखकर वह आनन्द लाभ कर सकता है। यहां स्वास्थ्य के साथ-साथ उसका पूरा-पूरा मनोरंजन भी होगा।

3. आदिवासियों की लोक संस्कृति का अध्ययन-

इस परिक्षेत्र में खैरवार, गौण, बैगा, कोल आदि जन-जातियाँ रहती है। इनकी लोक संस्कृति अन्य जातियों से पृथक है, जो व्यक्ति इनकी संस्कृति तथा लोक संगीत का अध्ययन करना चाहते हों, वह भी इस क्षेत्र की यात्रा कर सकते हैं। यहां के निवासियों के लोक जीवन, उनकी संस्कृति और परम्पराओं का अध्ययन भी यहां कर सकते हैं।

कालिंजर परिक्षेत्र प्राकृतिक सौन्दर्य , प्राकृतिक वैचित्रता से परिपूर्ण है। बानगंगा उसका स्पष्ट उदाहरण है। यहाँ के प्रकृति सौन्दर्य से प्रभावित होकर भगवान श्री राम ने 12 वर्षों से अधिक का समय इस परिक्षेत्र में गुजारा था और यहां भगवान श्री राम के पद चिन्ह यहां की शैल चट्टानों में अंकित यदा-

कदा दिखाई देते हैं, जो प्राचीन युग की स्मृतियों को ताजा कर देते है।

(4) पाथरकछार-

प्राकृतिक सौन्दर्य और इतिहास से जुड़ा हुआ पाथरकछार क्षेत्र वास्तव में बड़ा ही मनमोहक तथा पर्यटकों को लुभाने वाला है, जिन व्यक्तियों ने इस स्थल का दर्शन नहीं किया वे तो इसकी कल्पना नहीं कर सकते किन्तु जिन्होनें कभी भी नैनीताल का भ्रमण किया है, यदि वे उसके पश्चात कभी पाथरकछार गये होगें तो निश्चित ही उन्हें ऐसा लगा होगा कि कालिंजर क्षेत्र में भी एक ऐसा स्थल है जो किसी भी स्तर में नैनीताल से कम नहीं है। उसी तरह का प्राकृतिक सौन्दर्य चारो ओर विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियाँ और पर्वत श्रेणियों के नीचे बनीं हुई दो प्राकृतिक झीलें नौका विहार की दृष्टि से उतनी ही सुन्दर मालुम होती है जितनी सुन्दर नैनीातल की प्राकृतिक झील, अन्तर सिर्फ इतना है कि रजवाड़ों की समाप्ति के पश्चात इन स्थलों की देख-रेख पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यदि प्रशासन इन स्थलों को पर्यटन की दृष्टि से विकसित करता तो निश्चित ही यहां के प्राकृतिक दृश्य और ऐतिहासिक स्थल दर्शनार्थियों को अपनी तरफ आकर्षित करते।

इस स्थल का इतिहास अत्यन्त पुराना मालुम पड़ता है। जब इस क्षेत्र में चंदेलों का शासन था, उस समय यह परमार्दिदेव के शासन काल तक चंदेलों के अधिकार में रहा। चंदेलों के पतन के पश्चात यह क्षेत्र सल्तनत काल में सुल्तानों के पास रहा तथा इसकी शासन व्यवस्था कालिंजर में निवास करने वाले सूबेदार देखते रहे। जब बघेलों का विकास हुआ और उन्होंने अपनी राजसत्ता का विस्तार किया, तब उसके बाद यह क्षेत्र बघेल शासकों के अन्तर्गत आ गया तथा राजा रामचन्द्र बघेल के समय तक यह उन्हीं के शासन में रहा। अकबर के समय में यह क्षेत्र मुगलों के आधीन हो गया। फिर औरंगजेब के शासन काल में यह क्षेत्र पन्ना नरेश छत्रसाल के अधिकार में आया। हिन्दूपत के समय में इसका शासनाधिकार रामकृष्ण चौबे के वंशजों को दे दिया गया और आज तक उन्हीं के वंशज बरौंधा और पथरा पालदेव दोनों के जागीरदार बनें रहें। सन् 1952 के पश्चात यह क्षेत्र विन्ध्य प्रदेश शासन के अन्तर्गत रहा। वर्तमान समय में यह मध्य प्रदेश में हैं, जो सतना जनपद के अन्तर्गत आता है। कहते है कि महाराज छत्रसाल का यह ननिहाल था। छत्रसाल ने अपना बचपन इसी क्षेत्र में गुजारा था। यह क्षेत्र ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[6]

आवागमन के साधन-

इस क्षेत्र में पहुंचनें के लिए कई मार्ग उपलब्ध है-

1. सतना जनपद से सीधी बस सेवायें सुलभ है।
2. नरैनी, कालिंजर, सढ़ा, नरदहा, फतेहगंज होते हुये भी पाथरकछार तक पहुंचा जा सकता है।
3. बाँदा से पाथरकछार जाने के लिए व्यक्ति बदौसा, फतेहगंज होते हुए निजी संसाधन से पाथरकछार तक जा सकता है।

4. एक अन्य मार्ग चित्रकूट से भी है। अगर वह यहां से जाना चाहता है, तो वहां से भरतकूप, मड़फा, बघेलावारी, फतेहगंज मार्ग से होता हुआ पाथर कछार पहुंच सकता है इन मार्गों से कोई बस सेवा उपलब्ध नहीं है।

आवासीय व्यवस्था-

पाथरकछार में आवासीय व्यवस्था सुलभ हो सकती है। यहाँ मध्य प्रदेश सरकार की ओर से डाक बंगले उपलब्ध है, यदि प्रशासनिक अधिकारियों से सम्पर्क किया जाये तो उन्हें यहां ठहरने की सुविधा मिल सकती है। इसके अतिरिक्त सन्निकट ही बरौंधा में चौबे वंश के जागीदार वहां अभी भी मौजूद है, यदि इन लोगों से सम्पर्क किया जाये तो ये लोग भी आवासीय व्यवस्था सुलभ करा सकते हैं। इसके अलावा भी यहां पर अनेक विशालकाय सुव्यवस्थित मंदिर है। जिनमें महंत रहते हैं, यदि इन महन्तों से सम्पर्क किया जाये तो शायद वे भी यात्रियों को आवासीय व्यवस्था सुलभ करा सकते हैं।

सुरक्षा व्यवस्था-

पाथरकछार में यात्रियों को पूर्ण सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध हो सकती है। यहां पर पुलिस थाना है, जहां पर्याप्त मात्रा में पुलिस निवास करती है, यदि यात्री सुरक्षा व्यवस्था चाहता है तो वह यहाँ के पुलिस थाने से सम्पर्क कर सकता है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में वन विभाग के वन रक्षकों से भी सहयोग लिया जा सकता है। कोई भी यात्री बिना किसी शंका या भय के आ जा सकता है।

दर्शनीय स्थल-

पाथरकछार परिक्षेत्र में निम्नलिखित दर्शनीय स्थल उपलब्ध हैं जो ऐतिहासिक, धार्मिक महत्वपूर्ण एवं प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है-

1. पथरीगढ़ दुर्ग-

इस परिक्षेत्र की एक पहाड़ी पर पथरीगढ़ दुर्ग के अवशेष उपलब्ध होते हैं। यह दुर्ग चंदेलों के समय में अत्यन्त महत्वपूर्ण था उसके पश्चात इसकी महत्ता कम होती गई और वह लगातार ध्वस्त होता गया। वर्तमान समय में इसके भग्नावशेष ही उपलब्ध होते हैं। सैन्य सुरक्षा और वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह दुर्ग महत्वपूर्ण एवं दर्शनीय है।

2. राजप्रासाद (महल)-

दुर्ग के थोड़ी ही दूर पर दो महलों के अवशेष प्राप्त होते हैं। यह राजप्रासाद लगभग तीन सौ वर्ष पुराना प्रतीत होता है। इस महल का बाहरी प्रवेश द्वार महराबदार तथा उसके ऊपरी भाग में अत्यन्त उच्चकोटि के रंगीन चित्र बने हुए है। महल के अन्दर प्रवेश करने पर बरामदा मिलता है। उसके अन्दर एक बहुत बड़ा प्रांगण है, प्रांगण के मध्य में प्राचीन तुलसी चौरा है जिसके अगल-बगल पत्थर की कुछ मूर्तियाँ रखी हुई हैं। प्रांगण के चारो तरफ बरामदें बने हुए है और अनेक कमरे भी है। इस ओर पुरातत्व विभाग का ध्यान नहीं गया,

इसलिए यह महल धीरे-धीरे ध्वस्त होता जा रहा है।

3. रक्तदंतिका मंदिर

4. विष्णु मंदिर

5. द्वितीय विष्णु मंदिर

6. वैश्या की मजार- इनका वर्णन पिछले अध्यायों में हो चुका है।

7. प्रथम प्राकृतिक झील-

यह झील रक्तदंतिका मंदिर के नजदीक है। इसके जल स्तर तक पहुंचने के लिए इसमें पक्के सोपान निर्मित है। झील के ऊपर राजवंश से सम्बन्धित व्यक्तियों के मृत्यु स्मारक बने हुए हैं। किसी-किसी मृत्यु स्मारक में शिवलिंग भी है। झील के एक ओर विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी है और प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से यह झील नैनीताल की झील के समान प्रतीत होती है, किन्तु यहां नौकायान की कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं है।

8. द्वितीस प्राकृतिक झील-

इसी प्रकार की एक दूसरी झील पहली झील से लगभग दो किलोमीटर दूरी पर है। यह झील भी प्राकृतिक सौन्दर्य का अनूठा नमूना है जो अत्यधिक मनोरम प्रतीत होती है। इस झील का पानी पहली वाली झील से अधिक निर्मल व शुद्ध है। यहाँ भी नौकाओं की व्यवस्था नहीं है। इस झील में नाना प्रकार के पक्षी सदैव बिहार एवं कलरव करते हुए देखे जा सकते हैं।

9. बीहण-

रक्तदंतिका मंदिर के बाहरी भाग में मंदिर से कुछ दूरी पर जब हम राजमहल के लिए प्रस्थान करते है, उस समय बीहण मिलता है। किसी युग में इस बीहण के जल स्तर तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां बनीं हुई थी, जो अब पूरी तरह ध्वस्त हो गई हैं तथा बीहण का जल पूरी तरह प्रदूषित हो गया है। इसके अंदर कुछ वृक्ष भी उग आये हैं किन्तु वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह स्थल आज भी अत्यन्त दर्शनीय मालुम होता है।

यात्रा के उद्देश्य-

इस क्षेत्र में यात्रा करने से पर्यटक के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं-

1. धार्मिक उद्देश्य-

यहां उपलबध रक्तदंतिका देवी मंदिर अति प्राचीन है तथा धार्मिक दृष्टि से इसे महत्वपूर्ण शक्तिपीठ की संज्ञा दी जाती है। देवी भागवत में इस विषय में कहा जाता है कि शक्ति बीज नामक दैत्य को नष्ट करने के लिए शक्ति ने अत्यन्त भयंकर स्वरूप धारण किया था तथा दैत्य की यह विशेषता थी कि यदि उसका रक्त जिस जगह जितनी बूंद गिरता था उस दैत्य के उतने ही स्वरूप बन जाते थे। इसलिए देवी ने लम्बी

जीभ धारण करते हुए यह विधा अपनाई कि उसके शरीर का रक्त किसी भी प्रकार जमीन में न गिरे, वह उसके रक्त को अपनी लम्बी जिह्वा से चाटती हुई रक्तबीज नामक दैत्य का संहार कर दिया। उसके पश्चात इस क्षेत्र को शक्तिपीठ के नाम से जाना गया। इस मंदिर के संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि इसने पन्ना नरेश छत्रसाल को एक शक्तिशाली नरेश होने का वरदान दिया था और कुसमय में उनके प्राणों की रखा की थी। इस देवी मंदिर में प्रतिवर्ष नवरात्रि के अवसर पर दर्शनार्थियों की भीड़ एकत्रित होती है।

शक्तिमत के अतिरिक्त इस परिक्षेत्र में वैष्णवमत का भी प्रचार-प्रसार हुआ। रियासती युग में इन विशाल मंदिरों का निर्माण हुआ और यहां धातु प्रतिमाएँ उपासनार्थ स्थापित की गई थी। अब प्रतिवर्ष विष्णु धर्म से सम्बन्धित तीज-त्योहारों में यहां दर्शनार्थियों की भीड़ रहती है।

2. ऐतिहासिक उद्देश्य-

जो पर्यटक इतिहास एवं पुरातत्व से स्नेह करता है वह भी इस परिक्षेत्र में ऐतिहासिक स्थलों के दर्शनार्थ यहां यात्रा कर सकते है। यहां के वास्तुशिल्प को देखकर वे अत्यधिक प्रभावित होंगे। इस क्षेत्र में चंदेल युग से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक के स्मारक मिलते हैं।

3. स्वास्थ्य सम्बन्धी उद्देश्य-

यह स्थल विचित्र प्राकृतिक दृश्यों से सम्पन्न है। यहां पर अनेक सुन्दर पर्वत है, जिनमें नाना प्रकार के वृक्ष सदैव हरीतिमा धारण किये रहते हैं। यहां पर उपलब्ध सरोवर और झील प्राकृतिक सौन्दर्य में सदैव वृद्धि करती रहती है। इस झील के किनारे सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य अत्यधिक मनोहारी दृश्य उत्पन्न करते हैं। यहां सदैव शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा प्रवाहित होती रहती है। यह क्षेत्र प्रदूषण रहित है। यात्री इस विशुद्ध पर्यावरण से लाभ उठा सकते हैं। और स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यहां नाना प्रकार के पशु-पक्षी विचरण करते हैं, जिनमें यात्रियों का मनोरंजन हो सकता है।

पाथरकछार को यदि हम कालिंजर परिक्षेत्र के स्वर्ण की उपमा दें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार से काई भी सहृदय कवि कश्मीर की सुषमा को देखकर द्रवित होता है और वह उस छटा से नवीन रचनाओं को जन्म देता है। उसी प्रकार पाथरकछार का यह भू-भाग भी कवियों एवं मनीषियों को अपनी तरफ आकृष्ट करने की क्षमता रखता है। जो भी यहां इतिहास और प्रकृति के समिश्रण को देखता है तत्काल उसकी स्मृतियाँ सजीव हो जाती है।

(5) बृहस्पति कुण्ड-

कालिंजर परिक्षेत्र में कालिंजर से सतना जाने वाले मार्ग में यहां से लगभग 15 किलोमीटर दूर पहाड़ी खेरा से पन्ना जाने वाले मार्ग में सूर्य कुण्ड नामक एक स्थल पड़ता है। इसी स्थल से बृहस्पति कुण्ड जाने का मार्ग है,बृहस्पति कुण्ड प्राकृतिक वैचित्रता से भरा हुआ स्थल है। यह स्थल बागेश्वरी नदी का उद्गम स्थल भी है। यहां पर विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी के निचले स्तर पर बृहस्पति कुण्ड स्थित है तथा इसकी कुछ दूरी

पर एक ऐसा स्थल भी है, जहां दो पर्वत श्रेणियां आपस में मिलती हैं। यह मिलान प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से बहुत ही श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त भी यह क्षेत्र नाना प्रकार की खनिज सम्पदा से भरा हुआ है। जहां एक ओर यह नदी का उद्गम स्थल है वहीं दूसरी ओर यह स्थल हीरे की खदानों से युक्त है। इसका धार्मिक महत्व भी किसी प्रकार से कम नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह स्थल पुरापाषाण युग से लेकर चंदेल युग तक की स्मृतियाँ उपलब्ध पुरावशेषों के रूप में समेटे हुए हैं।[7]

आवागमन के साधन-

इस स्थल में पहुंचने के लिए निम्न मार्ग उपलब्ध हैं-

1. बाँदा-कालिंजर-सतना-पन्ना-मार्ग।
2. खजुराहों-पन्ना-कालिंजर-नरदहा मार्ग।
3. मैहर -पहाड़ीखेरा-पन्ना मार्ग।
4. सतना-पहाड़ीखेरा-पन्ना मार्ग।
5. कालिंजर-कौहारी-पन्ना मार्ग।

इस स्थल तक पहुचने के लिए पन्ना से नियमित बस सेवायें पहाड़ीखेरा तक पहुंचने के लिए उपलब्ध हैं। अन्य क्षेत्रों से भी बस सेवायें पहाड़ीखेरा तक ही उपलब्ध होती हैं। इसके पश्चात यात्री यहां से निजी संसाधनों से बृहस्पति कुण्ड पहुंच सकता है। इस क्षेत्र में पहुंचनें के लिए कालिंजर -कौहारी मार्ग तथा यहां से बृहस्पति कुण्ड जाने के लिए जो मार्ग है वह सबसे कम दूरी का है किन्तु कौहारी से बृहस्पति कुण्ड पहुंचने के लिए एक पगडण्डी वाला रास्ता है। जहां से यात्री पैदल चलकर पहुंच सकता है।

आवासीय व्यवस्था-

इस क्षेत्र में कोई भी आवासीय व्यवस्था नहीं हैं, उसे आवास के लिए कालिंजर के डाक बंगलों और यहां नवनिर्मित रैन बसेरा का सहारा अथवा पन्ना में प्राप्त डाक बंगलों की आवासीय व्यवस्था से लाभ उठाये। यह स्थल निर्जन स्थान में है, केवल कुछ साधु-संत यहां कच्चा मकान बनाकर निवास करते है। यहां किसी प्रकार के जलपान व भोजन की व्यवस्था नहीं है। पर्यटक सभी प्रकार संसाधन स्वतः जुटाकर यहां पहुंचे।

सुरक्षा व्यवस्था-

इस परिक्षेत्र में किसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था शासन की ओर से सुलभ नहीं है। उसे सुरक्षा व्यवस्था पहाड़ी खेरा थाने से उपलब्ध हो सकती है। इसके अतिरिक्त वह पन्ना से भी पुलिस व्यवस्थ सुरक्षा के लिए प्राप्त कर सकता है।

दर्शनीय स्थल-

इस क्षेत्र में अनेक दर्शनीय स्थल है जो निम्नलिखित हैं-

1. पुतरिया घाटी-

बृहस्पति कुण्ड के नजदीक जो पर्वतीय घाटी है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसकी चट्टानों में पाषाण युगीन शैलचित्र उपलब्ध हैं। इन शैलचित्रों को देखकर ऐसा मालुम होता है कि सभ्यता के प्रथम चरण में यहां पर पर्याप्त मानव बस्तियां थी। इन चित्रों को देखकर मानव के प्रारम्भिक जीवन का अध्ययन भलीभांति हो जाता है। यहां पशुओं एवं मानवों के चित्र है।

2. अति प्राचीन मंदिरों के अवशेष-

जब हम पर्वतीय रास्ते को पार करके बृहस्पति कुण्ड पहुंचते हैं तब इसके ऊपरी स्थल पर एक वृक्ष के नीचे अधिक प्राचीन धार्मिक स्थल उपलबध होता है। यहीं देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियां मिली हैं। इनका वास्तुशिल्प गुप्तयुग से लेकर चन्देल युग तक का है। कुछ धार्मिक श्रृद्धालुओं ने यहां के धार्मिक स्थलों का जीर्णोद्धार कराया। इस क्षेत्र के संदर्भ में पुराणों में यह कथा उपलब्ध होती है कि जब देवताओं और दैत्यों में सागर मंथन को लेकर देवासुर संग्राम हुआ उस समय किसी बात को लेकर देवताओं के गुरू बृहस्पति इन्द्र से रूष्ट हो गये और वे गुप्त रूप से इस स्थल पर निवास करने लगे बाद में इन्द्र सभी देवताओं सहित ऋषि बृहस्पति को मनाने के लिए इस आश्रम में आये तथा इन्हीं के अनुरोध पर कुछ दूरी पर निवास करने वाले दधीचि मुनि ने अपने शरीर की अस्थियाँ बज्र बनाने के लिए इन्द्र को प्रदान कर दी।

3. विशाल गुफा-

जब हम बृहस्पति कुण्ड पहुंचने के लिए ऊपर से नीचे की ओर उतरते हैं तब थोड़ी दूर उतरने पर एक विशाल प्राकृतिक गुफा के दर्शन होते है। यह गुफा इतनी बड़ी है कि इसमें हजारों व्यक्ति बैठ सकते हैं यह प्रकृति का ही करिश्मा है किन्तु इसकी यह विशेषता है कि यह गुफा एक तरफ से खुली है जिसमें सूर्य का प्रकाश पहुंचता रहता है।

4. शिव स्थल-

इसी गुफा में एक ओर एक दूसरी छोटी सी गुफा है। जिसके बाहरी भाग में अन्य देवी-देवताओं की प्रतिमायें हैं अन्दर की ओर एक विशाल शिवलिंग है। जिसकी तुलना बामदेवेश्वर, भूतेश्वर , गुप्तेश्वर और नीलकण्ठ महादेव से की जा सकती है। यह शिवलिंग चंदेल युग से पूर्व का प्रतीत होता है।

5. बृहस्पति कुण्ड-

जब हमसी रास्ते से बिल्कुल नीचे की ओर उतर जाते है तब हमको एक विशाल जल कुण्ड मिलता हैं यह ऊपर से देखने में काफी गहरा मालुम होता है किन्तु नीचे से जल स्तर तक पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होती। इस कुण्ड का जल अत्यन्त शीतल एवं शुद्ध है तथा इसमें शैलोदक के गुण है। यदि कोई इस कुण्ड में स्नान करता है तो वह नाना प्रकार के चर्म रोगों से मुक्त हो जाता है कहते है, यदि कुष्ट रोगी इस कुण्ड में स्नान करें तो उसका कुष्ट रोग दूर हो जाता है।

6. हीरे की खदानें-

बृहस्पति कुण्ड के समीप उत्तम कोटि का हीरा प्राप्त होता है। यह हीरा खदान लगाने वालों को एक विशेष प्रकार के पत्थरों को तोड़नें से मिलता है। यह हीरा पन्ना में प्राप्त हीरे की कोटि से बहुत अच्छा है। यहां पर कई हीरे के व्यवसायी खदान लगाते देखे जा सकते हैं।

7. सूर्य कुण्ड-

जब हम बृहस्पति कुण्ड से निचले रास्ते में थोड़ी दूर आगे की ओर बढ़ते हैं तब यहां एक प्राकृतिक जल कुण्ड उपलब्ध होता है। इस कुण्ड को सूर्य कुण्ड के नाम से पुकारा जाता है। इसका जल भी अत्यन्त लाभकारी है। व्यक्ति इस कुण्ड में हीरे की चालन धोने का काम करते हैं।

8. बागेश्वरी नदी का उद्‌गम स्थल-

सूर्य कुण्ड के पास से ही बागेश्वरी नदी निकलती है।यदि पौराणिक गाथाओं पर विश्वास किया जाये तो यह वर्णन उपलब्ध होता है कि सरस्वती नदी का निर्गमन बृहस्पति कुण्ड के ही होता हैं। प्राचीन काल में बागेश्वरी का ही दूसरा नाम सरस्वती था। इसी नदी को बाँदा जनपद के निवासी बागे नदी के नाम से पुकारते हैं। यह नदी बदौसा आदि क्षेत्रों से होते हुए कमासिन में यमुना नदी से मिल जाती है। कहते हैं कि किसी देवता कें अभिशाप के कारण यह नदी सूख गई थी और इसका अस्तित्व कम हो गया था। प्रयाग राज में गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम को ही त्रिवेणी कहते हैं। वहां के धार्मिक व्यक्ति सरस्वती को भूमिगत होना बताते हैं । यह नदी कमासिन के पास ही यमुना में अपने आपको विलीन कर देती है। वेदव्यास भी इस बात की पुष्टि करते है कि कुरू साम्राज्य का विस्तार सरस्वती नदी के दोनों ओर था। इससे इस बात की भी पुष्टि होती है कि कुरूक्षेत्र भी यहीं कहीं रहा होगा।

9. बेधक-

बृहस्पति कुण्ड से लगभग चार किलोमीटर दूर बेधक नामक स्थल है। यहां पर दो पर्वत श्रेणियां एक दूसरे से मिलती है, जिससे जल प्रवाह बाधित हो जाता है। इसीलिए इस क्षेत्र को बेधक के नाम से पुकारा जाता है। जब हम इस क्षेत्र से नीचे उतरते हैं तब एक विशाल जलाशय प्राप्त होता है। यह जलाशय प्रवाहित जल को यहां रोक कर एक प्रपात के रूप में पर्णित कर देता है। जिसे धार-धार के नाम से पुकारा जाता है। आगे चलकर यही धार-धार जल प्रपात बागे नदी के रूप में पर्णित हो जाता है। इस जल प्रपात का दृश्य जाड़े की ऋतु में अत्यन्त सुहावना प्रतीत होता है तथा पर्यटक इस स्थल में आकर जबलपुर के भेड़ाघाट और धुंआधार जैसा आनन्द ले सकता है।

10 पत्थर का वृक्ष-

बेधक में ही एक ऐसा वृक्ष है जो शैलोदक के प्रभाव से पूर्णरूपेण पत्थर में पर्णित हो गया किन्तु उसकी यह विशेषता है कि आज भी उसकी अनेक शाखायें पल्लवित एवं पुष्पित हैं। यह वृक्ष आश्चर्यकारी है। सम्पूर्ण

विश्व में इस तरह का वृक्ष कहीं उपलब्ध नहीं हो पाता, जिन लोगों ने बृहस्पति कुण्ड परिक्षेत्र की यात्रायें की हैं। उन्होंने इस वृक्ष को नजदीक से देखा है। वे इसकी कुछ शाखायें जो पत्थर में पर्णित हो गई थी। अपने साथ ले आये थे।

यात्रा के उद्देश्य-

इस क्षेत्र में यात्री निम्नलिखित उद्देश्यों से यात्रा कर सकता है-

1. धार्मिक उद्देश्य-

जो भी व्यक्ति कृष्ण द्वैपायन व्यास पर आस्था रखता है तथा उनके द्वारा रचित 18 पुराणों का अध्ययन धार्मिक भावना के साथ करता है वह निश्चित ही धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर इस स्थल की यात्रा करता है। यह स्थल देवताओं के गुरू बृहस्पति का स्थल है तथा सरस्वती जैसी पावन नदी का उद्‌गम स्थल भी है। इसलिए यहां आकर वह धार्मिक भावनाओं से तल्लीन हो जाता है और पुण्य लाभ प्राप्त करता है।

2. ऐतिहासिक उद्देश्य-

ऐतिहासिक दृष्टि से यह परिक्षेत्र अति प्राचीन है। जब व्यक्ति जंगली अवस्था में निवास करता था, उस समय में भी उसने यहाँ अपने स्मृति चिन्ह छोड़ें । ये स्मृति चिन्ह शैलचित्रों के रूप में विभिन्न जगह प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त यहां गुप्तकालीन और चंदेलों के समय के भी पुरावशेष उपलब्ध हो जाते हैं। यहाँ पर्यटक ऐतिहासिक उद्देश्य से भी यात्रा कर सकते हैं।

3. व्यवसायिक उद्देश्य-

हीरा विश्व का सबसे कीमती रत्न माना जाता है। सम्पूर्ण भारत वर्ष में केवल पन्ना और कालिंजर परिक्षेत्र में ही हीरे की खदानें उपलबध होती हैं। इस बात का उल्लेख मुगल कालीन प्रसिद्ध विद्वान "अबुलफजल" ने भी " आइने अकबरी" में किया है, जो व्यक्ति हीरे के व्यवसाय से जुड़ा हुआ है। वह यहां हीरे की खदान लगाने के उद्देश्य से यात्रा कर सकता है। यहां कच्चे हीरे पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं।

बृहस्पति कुण्ड कालिंजर परिक्षेत्र का प्राचीनतम् स्थल है। इसका महत्व पौराणिक काल में बहुत अधिक था। यह केवल देवताओं का निवास स्थल ही नहीं अपितु हमारी समन्वित धार्मिक भावनाओं का केन्द्र भी है। इस परिक्षेत्र में ऋषि दधीचि का परित्याग, बृहस्पति की ज्ञान दृष्टि तथा शिव के काल शमन की क्षमता का एक साथ बोध होता है। इसके साथ-साथ यह क्षेत्र हमारी प्राचीन ऐतिहासिक अस्मिता को भी उजागर करने वाला है। निश्चित ही यह क्षेत्र गौरवशाली ऐतिहासिक परम्परा का द्वेतक है।

(6) लखन सेहा-

कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक आश्चर्यकारी धार्मिक स्थल ऐसे भी है जो पर्यटकों को अपनी ओर किसी विशेष गुण से आकर्षित करते हैं ये विशेष गुण पर्यटकों के हृदय में परमात्मा के प्रति अनुराग पैदा करते हैं तथा इन प्राकृतिक आश्चर्यों को देखकर व्यक्ति को यह अनुमान हो जाता है कि परमात्मा वास्तव में संसार का एक विचित्र स्वामी है। जो स्वतः तो दिखाई नहीं देता किन्तु उसकी सृष्टि रचना और उसमें निहित विचित्रता से उसकी शक्ति का बोध हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में ईश्वर की विचित्रता का उल्लेख कुछ इस प्रकार किया है-

केशव कहि न जात का कहिये।

देखत तौ रचना विचित्र, समझे मनहिमन रहिये।।

परम भित्त पर चित्त मनोहर, तनु बिनु रचा चितेरे।।

यहां के देवालयों में एक विचित्र प्रकार की पत्थर की चौखट जड़ी है, जिसमें मानव की छाया प्रतिबिम्बित होती है। वह छाया मानव के वहां से हट जाने के बाद भी लगभग 15-20 मिनट तक बनी रहती है। उसके बाद धीरे-धीरे उसका लोप होता है। इस परिक्षेत्र में चंदेलकालीन अनेक धार्मिक स्थल उपलब्ध हैं। इसके साथ ही साथ यहां का प्रकृति सौन्दर्य भी अद्वितीय है।[8]

आवागमन के साधन-

इस स्थल में पहुंचने के लिए सतना और बाँदा से पहाड़ीखेरा तक मार्ग उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग यहां पहुंचने के लिए नहीं है। पहाड़ीखेरा पहुंचने के पश्चात लगभग चौदह किलोमीटर पद यात्रा करनी पड़ती है। यह रास्ता इतना ऊबड़-खाबड़ है कि कोई भी व्यक्ति वाहन का सहारा लेकर इस क्षेत्र तक नहीं पहुंच सकता। पहाड़ीखेरा के निवासियों को लेकर ही यहां पहुंचा जा सकता है।

आवासीय व्यवस्था-

यह क्षेत्र पूरी तरह सघन वनों से आवृत्त है तथा इन वनों में सदैव खुंखार जंगली जानवर घूमते रहते हैं। यहां किसी प्रकार की कोई आवासीय व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। यहां आने वाले व्यक्तियों को आवासीय व्यवस्था की दृष्टि से कालिंजर, सतना और पन्ना के डाक बंगलों पर आश्रित रहना पड़ता है। वहां से वह निजी संसाधन से यहां आ सकते है।

सुरक्षा व्यवस्था-

यहां पर किसी प्रकार की कोई सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। यदि वह किसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था चाहता है तो उसे पहाड़ीखेरा थाने से सुरक्षा व्यवस्था उपलबध हो सकती है। यात्रियों को चाहिए कि वे विशिष्ट सुरक्षा व्यवस्था के साथ ही यहां जायें।

दर्शनीय स्थल-

1. धार्मिक स्थल-

इस क्षेत्र में चंदेल कालीन अनेक धार्मिक स्थल है। क्षेत्रीय निवासियों के मतानुसार ये धार्मिक स्थल शैव धर्म और शक्ति धर्म से सम्बन्धित है। इनका वास्तुशिल्प चंदेल कालीन है तथा ये मंदिर बहुत ही सुन्दर है। घोर जंगलों में होने के कारण इनका विध्वंश पूरी तरह नहीं हो पाया । ये काफी सुरक्षित है किन्तु इन मंदिरों की मूर्तियां मूर्ति चोरों से नहीं बच पाई। कलात्मक कोटि की मूर्तियां इन मंदिरों से गायब कर दी गई। इस परिक्षेत्र में जानवर चरानें वाले चरवाहों का डेरा रहता है।

2. विचित्र द्वार-

यहां के एक मंदिर में एक बाहरी द्वार बहुत ही विचित्र है। यहां के लोग इस द्वार को सजर द्वार के नाम से पुकारते हैं जबकि अन्य जंगली व्यक्ति इसे भूत अथवा चुडैल दरवाजा कहते हैं। इस दरवाजे की यह विशेषता हैं कि जो भी व्यक्ति इस दरवाजे के समीप पहुंचता है उसका चित्र दरवाजे पर अंकित हो जाता है । व्यक्ति के हट जाने के बाद भी बहुत देर तक उसका चित्र उसी तरह बना रहता है। इस द्वार में यही विचित्रता है। इसका विश्लेषण वैज्ञानिक आधार पर आज तक नहीं हो सका। यह स्थल बहुत ही दर्शनीय है।

यात्रा के उद्देश्य-

इस क्षेत्र में पर्यटक निम्न उद्देश्यों से यात्रा कर सकता है-

1. ऐतिहासिक दृष्टिकोण-

ऐसा प्रतीत होता है कि चंदेल युग अत्यन्त समृद्धशाली युग था। इस युग के नरेशों, सामन्तों और धनिकों ने जिस वास्तुशिल्प को जन्म दिया, वह वास्तुशिल्प की दृष्टि से सदैव के लिए अजर-अमर हो गया। इतिहास में रूचि रखने वाला व्यक्ति जब इस परिक्षेत्र में यात्रा करता है तो उसे लगता है कि इन मंदिरों की निर्माण शैली, प्रवेश द्वार, गर्भगृह तथा मूर्ति सम्पदा किसी भी प्रकार से खजुराहों में प्राप्त मंदिरों की वास्तुशिल्प सेकम नहीं है।। इन मंदिरों को देखने के पश्चात इस क्षेत्र में प्रचलित जनता के धार्मिक दृष्टिकोणों का भी पता लगता है।

2. प्राकृतिक छटा एवं विचित्रता के दर्शन का दृष्टिकोण-

यह क्षेत्र घनघोर जंगलों से आवृत्त होने के कारण प्रकृति सम्पदा से भरा है । यहां पर विविध प्रकार के वन पशु बिना किसी भय के विचरण करते है। अनेक प्रकार के जल और आकाशीय प्राणी भी सदैव दृष्टिगोचर होते रहते है। इन सभी दृश्यों का अवलोकन करने के पश्चात व्यक्ति अत्यधिक प्रफुल्लित होता है।

निश्चित ही लखन सेहा कालिंजर परिक्षेत्र में प्रकृति का एक सुन्दर वरदान है जिससे इस क्षेत्र का

महत्व बढ़ जाता है। अभी तक यह स्थल पर्यटकों के लिए प्रचारित -प्रसारित नहीं हो सका, इसलिए यहां बहुत ही कम लोग पहुंच पाते है। यहां की प्राकृतिक विचित्रता देखने योग्य है। इसलिए इसे आवागमन के साधनों से जोड़ा जाये।

(7) किशन सेहा-

किशन सेहा भी लखन सेहा की भांति चंदेल कालीन पुरातात्विक सम्पदा से भरा हुआ स्थल है।[9] इस परिक्षेत्र में जहां घनघोर जंगल है वहीं यहां के नजदीक आदिवासी ग्रामों में विचित्र प्रकार के लाल पत्थर प्राप्त होते हैं। कहते है कि इन लाल कंकड़ों से यहां के नरेश राजा अमान सिंह स्वर्ण निर्मित करवाते थे। ये कंकड़ किशन सेहा के समीप कुठला जवारी के जंगलों में उपलब्ध होते है। पर्यटन की दृष्टि से यह स्थल बहुत महत्वपूर्ण है।

1. आवागमन के साधन-

इस स्थल तक पहुंचने के केवल दो मार्ग हैं-

1. बाँदा - कालिंजर-सतना मार्ग। इस मार्ग से व्यक्ति कौहारी तक आता है। इसके पश्चात यहां से लगभग 20 किलोमीटर पैदल चलकर किशन सेहा पहुंच सकता है। यहां वाहन जाने का कोई मार्ग नहीं है।

2. कालिंजर-बघेलावारी मार्ग है- इस मार्ग सेव्यक्ति फतेहगंज के सन्निकट पहुंचता है यहां से वह जंगली रास्ते से किशन सेहा पहुंच सकता है यह मार्ग भी अत्यन्त जटिल है। किसी भी प्रकार के वाहन से यहां नहीं पहुंचा जा सकता।

2. आवासीय व्यवस्था-

यह क्षेत्र आवासीय व्यवस्था के लिए कोई सुविधा प्रदान नहीं करता, जो व्यक्ति इस स्थल को देखना चाहता है वह अपनी आवासीय व्यवस्था कालिंजर में उपलब्ध आवासीय व्यवस्था से कर सकता है। यहां से वह अपने निजी साधन से इस क्षेत्र तक पहुंच सकता है।

3. सुरक्षा व्यवस्था-

जो यात्री यहां की यात्रा करना चाहता है। उसे अपनी सुरक्षा पहले ही सुनिश्चित करना चाहिए। उसका मूल कारण यह है कि यह सम्पूर्ण क्षेत्र अराजक तत्वों और डकैतों से उत्पीड़ित है। इसलिए व्यक्ति को सुरक्षा व्यवस्था कालिंजर थाने अथवा फतेहगंज थाने से प्राप्त कर लेनी चाहिए और साथ में कोई भी कीमती सामान लेकर इन स्थलों की यात्रा न करें। यहां की यात्रा समूह में ही करनी चाहिए।

दर्शनीय स्थल-

1. धार्मिक स्थल-

यहां पर केवल एक ही मंदिर है। मंदिर के समीप किसी प्रकार की कोई आवासीय बस्ती नहीं है। मंदिर के गर्भगृह में वर्तमान समय में कोई मूर्ति नहीं है किन्तु बाहरी क्षेत्र और मंदिर के प्रवेश द्वार को देखकर

इस बात का अनुमान हो जाता है कि यह शिव मंदिर था। मंदिर के बाहरी भाग में निम्न प्रकार की मूर्तियां है, जो विभिन्न दिग्पालों तथा अन्य देवी-देवताओं की हैं कुछ मूर्तियाँ पशु-पक्षियों, सर्पों आदि की भी हैं। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह मंदिर उत्तमकोटि का प्रतीत होता है।

2. स्वर्ण खदानें-

राजा अमान सिंह जिन स्थलों में स्वर्ण कंकड़ निकलवाकर सोना बनवाते थे। वह स्थल आज भी यहां पुरावशेष के रूप में शेष है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र में निवास करने वाले खैरवार जाति के लोग आज भी इन कंकड़ों से अपने मतलब का सोना निकाल लेते हैं किन्तु इनकी विशेषता यह है कि ये अपनी स्वर्ण बनाने की क्रिया किसी व्यक्ति विशेष या जाति विशेष से नहीं बताते।

यात्रा के उद्देश्य-

यहां पर यात्री निम्न उद्देश्यों से यात्रा कर सकता हैं-

1. ऐतिहासिक उद्देश्य-

जो व्यक्ति इतिहास से स्नेह रखते हैं और प्राप्त पुरासम्पदा का वास्तुशिल्प की दृष्टि से अध्ययन करना चाहते हैं, वे इस क्षेत्र की यात्रा कर सकते हैं। यहां का वास्तुशिल्प बहुत उच्चकोटि का है, यदि व्यक्ति कठिनाइयों को झेलता हुआ इस स्थल तक पहुंच जाता है तो उसे यह बोध होनें लगता है कि निश्चित ही किसी युग में यह स्थल अत्यन्त विकसित नगर रहा होगा। इसके साथ ही साथ जब वह यहां की प्राकृतिक सुरम्यता के दर्शन करता है तो उसे यह महसूस होता है कि चंदेल नरेशों का उद्देश्य प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ मानवीय कृत सौन्दर्य को जोड़ना भी था।

2. व्यवसायिक उद्देश्य-

जो व्यक्ति कालिंजर परिक्षेत्र में उपलब्ध खनिज सम्पदा के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं वे भी इस क्षेत्र की यात्रा कर सकते हैं, यदि व्यक्ति लाल कंकड़ों से स्वर्ण बनानें की क्रिया जान जाये तो वह करोंड़ों की सम्पत्ति अर्जित कर सकता है और आर्थिक लाभ उठा सकता है। इसके साथ इस क्षेत्र में नाना प्रकार की औषधियाँ तथा खनिज सम्पदा व वन सम्पदा प्राप्त होती है, उनसे भी वह आर्थिक लाभ उठा सकता है।

3. लोक संस्कृति के अध्ययन का उद्देश्य-

इस परिक्षेत्र के अनेक ग्रामों में आदिवासी खैरवार जाति के लोग निवास करते हैं। प्राचीन काल में इनका मुख्य व्यवसाय खैर की लकड़ी तोड़कर उससे देशी कत्था बनाना था, किन्तु वर्तमान समय में अब यह व्यवसाय उनके पास नहीं रहा और न ही पहले की भाँति ये लोग लाल कंकड़ों से स्वर्ण ही बनाते हैं किन्तु इनकी लोक संस्कृति अन्य जन-जातियों से पूरी तरह भिन्न है, जो व्यक्ति इस जाति की लोक संस्कृति, वेश-भूषा, गायन, नृत्य आदि का अध्ययन करना चाहते है या रूचि रखते हैं तो वह भी इस क्षेत्र

की यात्रा कर सकते हैं।

किशन सेहा पर्यटन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल सिद्ध हो सकता है। इस क्षेत्र का समुचित विकास लोक संस्कृति और व्यवसायिक आधार को ध्यान में रखकर किया जाये। यह क्षेत्र लोकप्रियता की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है इसे कोई भी नहीं जानता।

(8) सारंग-

कालिंजर परिक्षेत्र एक ऐसी तपोभूमि थी जिसने तपस्वियों को अपनी ओर आकर्षित किया, उससे आकर्षित होकर अनेक साधक तपस्वी इस क्षेत्र में परमात्मा की उपासना हेतु स्थायी रूप से रहने लगे। ऐसे ही एक ऋषि सारंग थे। कहते हैं कि सारंग ऋषि इस क्षेत्र में सदैव अपने रूप को परिवर्तित करते रहते थे। कभी-कभी इन्हें हिरन के रूप में भी देखा जाता था। कहते हैं कि जब भगवान राम चित्रकूट में बारह वर्ष बिता चुके थे। उस समय वे अगस्त्य ऋषि के बताये हुए मार्ग में दक्षिण दिशा की ओर बढ़ रहे थे। उसी समय सारंग ऋषि से भगवान श्री राम की मुलाकात जनक नन्दनी सीता और अनुज लक्ष्मण सहित हुई। जिस समय भगवान राम इस परिक्षेत्र में घूम रहे थे, उस समय सारंग ऋषि हिरन योनि में थे। जैसे ही उन्होने भगवान राम को देखो तो हिरन योनि का परित्याग करके ऋषि का रूप धारण किया और उन्होंने कहा कि वे साक्षात परमात्मा के दर्शन से अत्यन्त सौभाग्यशाली व्यक्ति बन गये। उन्होंने भगवान राम को आशीर्वाद दिया कि वे राक्षसों का वध करके आर्य संस्कृति का विस्तार करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भगवान श्री राम को सारंग नामक एक धनुष भी प्रदान किया। भगवान राम ने इस धनुष को शृद्धा पूर्वक ग्रहण किया। धनुष के विषय में यह जनुश्रुति है कि भगवान श्री राम ने इसी धनुष से रावण का वध किया था। भगवान राम के जाने के बाद यह स्थल अति पावन समझा जाने लगा।[10]

आवागमन के साधन-

इस परिक्षेत्र में सड़क मार्ग द्वारा पहुंचने के आवागमन के साधन सुलभ है। यहां पहुंचने के लिए केवल एक ही मार्ग उपलब्ध होता है। यह मार्ग कालिंजर-पहाड़ी खेरा-पन्ना मार्ग है। यहीं से सारंग आश्रम तक पहुंचा जा सकता है।

आवासीय व्यवस्था-

यह स्थल बिल्कुल निर्जन स्थान में है। इसके चारों ओर विन्ध्याचल की पर्वत श्रेणियाँ है। वर्तमान समय में यहां कुछ मूर्तियां ही उपलब्ध होती हैं जिसके आधार पर यहां के निवासी इसे सारंग आश्रम के नाम से पुकारते हैं। यहां किसी प्रकार की आवासीय व्यवस्था नही है, जो यात्री यहां आना चाहता है उसे आवासीय व्यवस्था के लिए पन्ना की आवासीय व्यवस्था से सहयोग लेना पड़ सकता है।

सुरक्षा व्यवस्था-

यह स्थल घोर जंगल में स्थित है, इसलिए यहां भी अराजक तत्वों और डकैतों की चहल कदमी बनी

रहती है। इसलिए कोई भी यात्री यहां समुचित सुरक्षा व्यवस्था के बिना जाने का प्रयास न करें। उसे सुरक्षा व्यवस्था पहाड़ीखेरा और पन्ना के पुलिस थानों से उपलब्ध हो सकती है।

दर्शनीय स्थल-

1. सारंग आश्रम-

यह स्थल एक पवित्र धार्मिक स्थल है। यहां पर कुछ ही वृक्ष शेष हैं। जिन वृक्षों को यहां के निवासी हजारों वर्ष पुराना मानते हैं, उनकी मान्यता है कि इन्हीं वृक्षों के नीचे सारंग आश्रम की कुटिया थी। वृक्षों के नीचे कुछ मूर्तियां रखी हैं जो वास्तुशिल्प के आधार पर चंदेलयुगीन है।

2. दधीचि आश्रम-

इसी से थोड़ी दूर पर लगभग तीन-चार किलोमीटर दूर दधीचि आश्रम के अवशेष भी प्राप्त होते हैं। कहते हैं कि ऋषि दधीचि इसी आश्रम में तपस्या किया करते थे। जब देवासुर संग्राम हुआ उस समय देवताओं ने दधीचि से अनुरोध किया कि यदि आपकी अस्थियाँ बज्र नामक हथियार बनाने के लिए मिल जायें तो दैत्यों को परास्त किया जा सकता है। इसी स्थान में दधीचि ने अपने शरीर का परित्याग किया और अस्थियाँ देवताओं को प्रदान कर दीं। इनकी अस्थियों से जो हथियार बना वह बज्र कहलाया। अस्थियों का चूर्ण जिस स्थान पर गिरा उस स्थान पर हीरे की खदानें बन गईं। हीरे का एक नाम बज्र भी है। लोगों का कथन है कि ये हीरे दधीचि की अस्थियों के ही चूर्ण हैं। इन्हीं के नाम पर बुन्देलखण्ड को अति प्राचीन काल में बज्र देश के नाम से ही पुकारा गया। वर्तमान समय में इस आश्रम के कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। यहां पर कुछ वृक्ष और प्राचीन ऐतिहासिक स्थल के अवशेष प्राप्त होते हैं, इसी आधार पर यहां के निवासी इसे दधीचि आश्रम के नाम से पुकारते हैं।

यात्रा के उद्देश्य-

कई उद्देश्यों से यात्री यहां का भ्रमण कर सकता है-

1. धार्मिक उद्देश्य-

हिन्दू धर्म पर पूर्ण आस्था रखने वाले तथा भारतीय धर्म से जुड़े हुए, देवी देवताओं और ऋषि मुनियों पर विश्वास करने वाले व्यक्ति इस स्थल पर बड़े श्रृद्धा भाव से आ सकते हैं, तथा इस स्थल में उपलब्ध त्रेतायुग के स्मृति चिन्हों को देखकर पुण्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

2. स्वास्थ्य लाभ-

सारंग आश्रम तथा दधीचि आश्रम प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है। यहां विन्ध्याचल की विविध पर्वत मालाऐं है, जिनमें मनोहर वृक्ष सदैव पल्लवित होते रहते हैं। इन्हीं पर्वतीय वनों में नाना प्रकार के पशु-पक्षियों की विविध कोटियाँ देखनें को मिलती है। मुख्य रूप से नील गाय, हिरन, बारहसिंहा, साम्भर आदि यहाँ स्वच्छन्द गति से विचरण करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त यहां पर सदैव शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु

प्रवाहित होती रहती है। उच्च पर्वत श्रेणियों को देखकर यहां आने वाले व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ करके रोग मुक्त हो सकते हैं।

कालिंजर परिक्षेत्र को 32 कोटि के देवी-देवताओं ने प्रभावित किया था। उन्होंने सतयुग से लेकर त्रेतायुग तक त्रेता से द्वापर तक और द्वापर से लेकर कलियुग तक इस क्षेत्र को प्रभावित किया। भगवान शिव और भगवान श्री राम ने यहां लम्बी अवधि तक निवास करके इस क्षेत्र को धार्मिक दृष्टि से लोकप्रिय बनाया। उन्हीं के पावन चरण चिन्हों को देखने के लिए श्रृद्धालु भक्तगण इस पावन परिक्षेत्र की यात्रा यदा-कदा करते ही रहते हैं।

(9) सकरो एवं मगरमुहा-

प्रकृति की गोद में पलने वाला यह परिक्षेत्र विविध प्राकृतिक अलंकरणों से युक्त है। यहां की विचित्रता देखकर प्रकृति के स्वामी के प्रति अपार श्रृद्धा के भाव अपने आप उमड़नें लगते हैं। इन दोनों स्थलों का सम्बन्ध अति प्राचीन काल से जोड़ा जा सकता है। एक ओर यह स्थल पौराणिक युग की स्मृतियों को मानव मस्तिष्क में जागृत करता है तो दूसरी ओर पुरापाषाण युगीन शैलचित्रों को साक्षात रूप में प्रस्तुत करके इसके ऐतिहासिक व पुरातात्विक महत्व में वृद्धि करता है। प्रकृति वैचित्रता की दृष्टि से यह स्थल एक ऐसा स्थल है जहां तक गुप्त जल प्रपात इस तरह से पानी की बूंदों की वर्षा करता है जैसे इस परिक्षेत्र में चौबीस घण्टें और बारहों महीनें जल वर्षा होती सी प्रतीत होती है। प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से यह स्थल बृहस्पति कुण्ड से किसी भी स्तर में कम सुन्दर नहीं है। इसका सम्बन्ध दैत्यों के गुरू शुक्राचार्य से है।[11]

आवागमन से साधन-

यह स्थल बाँदा जनपद के नरैनी तहसील के अन्तर्गत फतेहगंज के समीप है। इस स्थल तक पहुंचने के लिए कई मार्ग हैं-

1. बाँदा-बदौसा-फतेहगंज मार्ग।
2. चित्रकूट-भरतकूप-मड़फा-बघेलावारी-फतेहगंज मार्ग।
3. चित्रकूट-गुप्तगोदावरी-बानगंगा-फतेहगंज मार्ग।
4. कालिंजर-बघेलावारी-फतेहगंज मार्ग।

आवासीय व्यवस्था-

यह स्थल बिल्कुल वीरान जंगल में है। यहां किसी प्रकार की आवासीय व्यवस्था सुलभ नहीं है। जो व्यक्ति इन स्थलों की यात्रा करना चाहता है, उसे आवासीय व्यवस्था के लिए चित्रकूट की आवासीय व्यवस्था पर निर्भर रहना होगा। चित्रकूट में पर्यटकों के आवास के लिए पर्याप्त व्यवस्था है।

सुरक्षा व्यवस्था-

यहां आने वाले पर्यटकों को सुरक्षा फतेहगंज थाना क्षेत्र से मिल सकती है। यहां पर यात्रियों की

सुरक्षा के लिए काफी संख्या में पुलिस रहती है, जो यात्रियों को इस स्थल तक ले जा सकते हैं। कोई भी यात्री इन स्थलों में बिना सुरक्षा व्यवस्था के यात्रा न करे। इन स्थलों में अराजक तत्व एवं डकैत सक्रिय रहते है। कोई भी यात्री व्यक्ति विशेष कीमती सामान न लेकर जायें।

दर्शनीय स्थल-

यहां पर भी निम्न दर्शनीय स्थल है।

1. सकरों-

यह स्थल दैत्यों के गुरू शुक्राचार्य का आश्रम स्थल था। यहीं रहकर उन्होंने दैत्यों का मार्गदर्शन किया था। देवासुर संग्राम में दैत्यों को उचित निर्देशन एवं परामर्श दिया । यद्यपि देवासुर संग्राम में दैत्यों की पराजय हुई फिर भी शुक्राचार्य ने अपनी स्मृतियाँ सदैव के लिए अमर बना लीं। कहते है कि शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का सम्बन्ध राजा ययाति से तय हो गया था किन्तु देवयानी का बृहस्पति ऋषि के पुत्र से सम्बन्ध हो जाने के कारण इस कार्य में बाधा पड़ी। सम्भवतः इसी कार्य से शुक्राचार्य बृहस्पति से क्षुब्ध हो गये और देवासुर संग्राम के माध्यम से सबक भी सिखाना चाहते थे। यह स्थल पौराणिक गाथाओं की समृतियों को ताजा कर देता है। प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से यह अत्यन्त सुन्दर स्थल है। इसके ऊपर बहुत ही ऊंची पर्वत श्रेणी है। उस पर्वत श्रेणी से जल इस प्रकार गिरता है जैसे यहां पानी बरस रहा हो । पर्वत के निचले हिस्से में दो जलकुण्ड मिलते है जो बहुत ही सुन्दर है। यहीं पर एक ओर चंदेलकालीन कुछ मूर्तियां भी उपलब्ध होती है। इसी परिक्षेत्र में पर्वत के ऊपर शैलचित्र भी मिलते है किन्तु इन शैलचित्रों तक पहुंच पाना अत्यन्त दुर्लभ व कठिन है।

2. मगरमुहा-

मगरमुहा यहां से लगभग दस किलोमीटर दूर है। यह उस पहाड़ी के निचले स्तर में विद्यमान है जहां वीरगढ़ का दुर्ग बना है। इसी दुर्ग के समीप पहाड़ी के मध्य भाग में एक छोटा सा जलाशय मिलता है। इस जलाशय से कुछ दूरी पर एक गुफा मिलती है। यह गुफा पूरी तरह बंद है, एक ओर से खुली होने के कारण इसमें सूर्य का प्रकाश पहुंचता रहता है। इसी की एक दीवार पर पुरापाषाण युगीन शैलचित्र प्राप्त होते है। इनमें बारह सिंहा अन्य जंगली पशु तथा मानव आकृतियाँ लाल रंग से अंकित है। पुरातात्विक दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है तथा इस बात को सिद्ध करता है कि पाषाणयुगीन मानवों ने भी अपनी बस्तियाँ उन्हीं स्थलों में बनाई, जहां उसे पर्याप्त मात्रा में जल प्राप्त था। यह स्थल प्राकृतिक सौन्दर्य से भी महत्वपूर्ण है।

यात्रा के उद्देश्य-

यात्रा के मुख्य दो उद्देश्य है-

1. ऐतिहासिक दृष्टि से-

जो व्यक्ति पुरातत्व और प्राचीन इतिहास में रूचि रखता है। वह पाषाण युगीन मानवों के संदर्भ में

विस्तृत अध्ययन करना चाहता है। वह इन क्षेत्रों की यात्रा कर सकता है। इसके अतिरिक्त यह क्षेत्र पौराणिक युग से भी जुड़ा है। सतयुग से लेकर त्रेतायुग तक की अनेक गाथायें इस परिक्षेत्र से जुड़ी है। यदि वे ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाकर इस क्षेत्र की यात्रा करना चाहता है तो वह यहां ऐतिहासिक साक्ष्यों को प्रत्यक्ष रूप से देख सकता है।

2. लोक संस्कृति के अध्ययन का उद्देश्य-

जो व्यक्ति यहां रहने वाली आदिवासी जन-जातियों का अध्ययन करना चाहत है तथा उनकी संस्कृति और लोक व्यवहार से परिचत होना चाहता है तो वह भी इस परिक्षेत्र की यात्रा कर सकता है। इस परिक्षेत्र में कोलुहामाफी के जंगलों में गौण, बैगा, कोल, खैरवार जाति के आदिवासी निवास करते है, जिनकी लोक संस्कृति एवं लोक संगीत अन्य जातियों से भिन्न है। इनके लोक वाद्य भी अलग किस्म के हैं, जो भी व्यक्ति इनकी लोक संस्कृति में दिलचस्पी रखता है।वह यहां की यात्रा कर सकता है।

यदि व्यक्ति ऐतिहासिक स्थल और लोक संस्कृति को समन्वित करके एक नया दृष्टिकोण अपनाता है तो निश्चित ही उन ऐतिहासिक स्थलों का महत्व बढ़ जाता है। सकरो और मगरमुहा जहां एक ओर प्राकृतिक सौन्दर्य को लोक संस्कृति से जोड़ते है वहीं दूसरी ओर में इसे परिकल्पित रज्जू से ऐतिहासिक पुरातात्विक स्तम्भों में जकड़ देते हैं, जिसके कारण ये स्थल चिरस्मरणीय हो जाते हैं। व्यक्ति बार-बार इन्हें देखनें की आकांक्षा व्यक्त करता है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. रॉय, बी0 एन0, सम्पादक, कालिंजर ए हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल, इलाहाबाद, 1992, पृ0 69-73 ।

2. बाल्मीकि, रामायण, प्रथम खण्ड, पृ0 474 ।

3. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, बम्बई, 1929, पृ0 662 ।

4. इस स्थल का वर्णन किसी भी धर्म ग्रंथ व ऐतिहासिक ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। अतः यह स्थानीय परम्पराओं के कारण ही महत्वपूर्ण है। यह अन्वेषित नवीन स्थल है ।

5. बाल्मीकि, रामायण, प्रथम खण्ड, पृ0 338-341 ।

6. तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रयाग, विक्रमी सम्वत् 1990, पृष्ठ 306-307।

7. इसका उल्लेख किसी भी ऐतिहासिक पुस्तक में नहीं है। अतः यह खोजा गया नवीन स्थल है ।

8. यह अन्वेषित नवीन स्थल है ।

9. अभी तक इसको लेखनीबद्ध नहीं किया गया। यह भी खोजा गया नया स्थल है ।

10. जनश्रुतियों के आधार पर वर्णित नवीन स्थल ।

11. खोजा गया नवीन स्थल ।

लाल दरवाजा (छठवाँ द्वार)

कालिंजर

षष्ठम
अध्याय
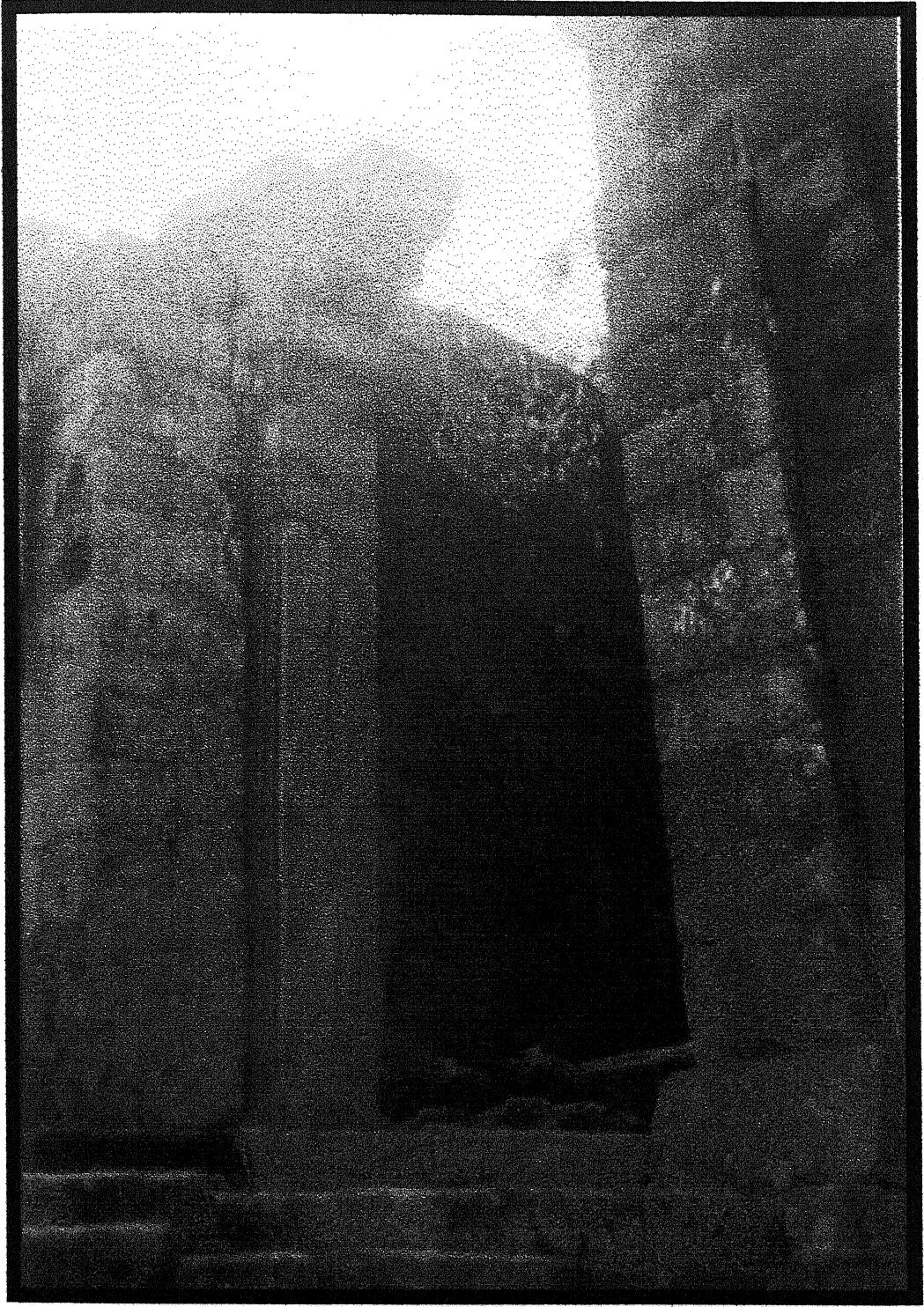
पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथों में वर्णित कालिंजर

सुप्रसिद्ध दर्शनीय स्थल कालिंजर केवल धर्म एवं इतिहास की दृष्टि से ही दर्शनीय स्थल नहीं है अपितु उसकी गरिमामयी गाथा भी है, जिसका गुणगान युगों-युगों से होता रहा है। यह गुणगान पुरातन धर्म शास्त्रियों और ग्रंथ रचनाकारों ने अपने ग्रंथों के माध्यम से किया है। जहाँ भी यह ग्रंथ श्रृद्धा और भक्ति के साथ पढ़े अथवा सुने गये, वहां के व्यक्ति कालिंजर महात्म्य से अत्यन्त प्रभावित हुए तथा उनके हृदय में शिव के पावन स्थल को देखनें की उत्कण्ठा जागृत हुई। इसके पश्चात नाना कष्ट सहते हुए दुर्गम पहाड़ियों को पार कर तीर्थ-यात्री कालिंजर में भगवान नीलकण्ठ के दर्शन करके पुण्य लाभ प्राप्त करने लगे।

कालिंजर की प्राचीनता इस बात से सिद्ध होती है कि उसका महात्म्य सतयुग, त्रेता एवं द्वापर युग में उतना ही रहा जितना इसका महात्म्य कलयुग में है। व्यक्ति अपने देवी-देवताओं के प्रति अपार श्रृद्धा रखता है तथा उनके लिए वह सारे कष्ट सहन करने के लिए तैयार हो जाता है। इसलिए वह ऐसे देवताओं के प्रति अपनी श्रृद्धा -भक्ति अर्पित करने का सुअवसर खोजता ही रहता है। चाहे वह राम का युग हो। चाहे वह कृष्ण का युग हो और चाहे वर्तमान युग हो, निश्चित ही यह क्षेत्र चिरकाल से आज तक पावन ही बना हुआ है। इस क्षेत्र का वर्णन वेदों और पुराणों में एक महान तीर्थ के रूप में मिलता है।

पूर्व मध्य युग में यह पावन स्थल धार्मिक स्थल के साथ-साथ महत्वपूर्ण राजनीतिक स्थल भी बन गया। महात्मा बुद्ध के समय में यह स्थल चेदि वंशीय शासकों के हांथ में रहा। उसके पश्चात मौर्यकाल में शक्तिशाली मौर्य सम्राट यहां के आधिपति रहे। मौर्य शासन के पश्चात यह क्षेत्र शुंग वंशीय शासकों के हांथ में रहा, फिर कुछ वर्षों तक यहां पाण्डुवंशीय और नागवंशीय क्षत्रियों का शासन रहा। तत्पश्चात यह क्षेत्र गुप्तों के शासन में चला गया। समुद्रगुप्त के प्रयागप्रशस्ति लेख में इस क्षेत्र को विन्ध्य आटवीं के नाम से पुकारा गया। उसके बाद जब वर्धन साम्राज्य का अभ्युदय हुआ तब यह परिक्षेत्र उसमें शामिल हो गया। गुर्जर प्रतिहारों के शासन काल में यहां की सत्ता गुर्जर प्रतिहार शासकों के हांथ में आ गई और नागभट्ट द्वितीय के युग तक यह उन्हीं के अधिकार में रहा। इस समय चन्देल शासक गुर्जर प्रतिहारों के माण्डलिक थे। इस समय तक जो भी ग्रंथ या अभिलेख लिखे गये, उन सभी में कालिंजर के पावन स्थल का वर्णन किसी न किसी रूप में मिल जाता है।

गुर्जर प्रतिहारों के पश्चात चन्देल कालिंजर परिक्षेत्र के स्वतंत्र शासक बन गये। नन्नुक देव से परमार्दिदेव तक इस शासन का विस्तार और विकास हुआ। इस युग के नरेशों के यहां अनेक विद्वान निवास करते थे। अनेक विद्वानों ने चंदेलकालीन शासन व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया है तथा उनकी कलाप्रियता को सार्वजनिक रूप से उजागर किया। मुख्य रूप से 'प्रबोधचन्द्रोदय', 'रूपकषटकम', 'आल्हखण्ड' आदि रचनाओं से इस क्षेत्र की प्रशस्ति सार्वजनिक रूप से प्रचारित और प्रसारित हुई। इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज के आश्रित कवि चन्दवरदाई ने भी पृथ्वीराजरासो के आल्हखण्ड में कालिंजर की प्रशंसा की है। इससे चन्देल

युग और उनके राजाओं की प्रशंसा चतुर्दिक फैली।

मध्य युग में यह क्षेत्र सुल्तानों के हांथों में चला गया था। ग्यारहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक यह क्षेत्र सदैव सुल्तानों से प्रभावित होता रहा। यहां के शासक अपनी स्वतंत्रता के लिए निरन्तर प्रयास करते रहें। जो भी पुस्तकें सल्तनत काल में लिखी गईं। उनमें भी कहीं न कहीं कालिंजर की चर्चा देखने को मिल जाती है। इसके बाद सन्, 1526 में भारत वर्ष में मुगलों की सत्ता स्थापित हुई। इसी समय कुछ काल के लिए शेरशाह सूरी का भी शासन रहा। शेरशाह सूरी एवं अधिकांश शासकों ने कालिंजर को प्रभावित करने का प्रयत्न बार-बार किया। इस युग में लिखे गये **'बाबर नामा', 'आइने अकबरी'** आदि ग्रंथों में विस्तार से वर्णन मिल जाता है। मुगलों के शासन के पतन के पश्चात इस क्षेत्र में कुछ समय तक बुन्देला शासकों का अधिकार रहा। लाल कवि द्वारा लिखित **छत्रप्रकाश** में भी कालिंजर परिक्षेत्र का वर्णन मिल जाता है। उसके बाद अंग्रेजों ने जिन ग्रंथों की रचना करवाई उनमें पाग्सन द्वारा लिखित " **हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज," एन0 डब्ल्यू0 पी0 गजेटियर, इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया** आदि ग्रंथों में भी कालिंजर का वर्णन उपलब्ध हो जाता है।

आधुनिक युग में लिखे गये विभिन्न लेखकों के इतिहास की कृतियों में कालिंजर की चर्चा बहुत विस्तार से की गई है। मुख्य रूप से मुंशी श्यामलाल कृत तवारीख बुन्देलखण्ड पं0 गोरेलाल तिवारी कृत बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, दीवान प्रतिपाल सिंह कृत बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग), मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' कृत बुन्देलखण्ड दर्शन, डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे कृत अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाऐं, केशव चन्द्र मिश्र कृत चन्देल और उनका राजत्व काल, डॉ0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय कृत चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, राधा कृष्ण बुन्देली कृत बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, डॉ0 रमेशचन्द्र श्रीवास्तव कृत बाँदा वैभव में भी कालिंजर का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त पं0 गोवर्धनदास त्रिपाठी और पं0 हरिप्रसाद शर्मा ने भी कालिंजर पर अलग से पुस्तकें लिखी थीं, जो यहां के महत्व को बढ़ाने के लिए बहुत अच्छी थीं।

1. वेदों एवं पुराणों में कालिंजर-

कालिंजर ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन क्षेत्र प्रतीत होता है। इस क्षेत्र के विषय में ऋग्वेद में वर्णन उपलब्ध होता है। अतः दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि कालिंजर परिक्षेत्र उतना ही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद।

यथा चिच्चेय शतमुष्टानां ददत्सहस्त्र दशगोनम् ।।37।।

अधस्पदा उच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्यम्ना अमितोजना।।38।।

मा किरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदयः।।39।।[1]

वेदों के अनुसार इस क्षेत्र को चेदिदेश का अंग माना गया था। जब हम पुराणों पर विंहगम दृष्टि डालते

हैं तो हमें अनेक पुराणों में कालिंजर के संदर्भ में पर्याप्त उदाहरण मिल जाते है।

विष्णु पुराण-

विष्णु पुराण में इसका वर्णन इस प्रकार से किया गया है-

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।।

विन्ध्यश्चं परियात्रश्च सप्तात्रकुल पर्वता।।[2]

विष्णु पुराण के अनुसार कालिंजर परिक्षेत्र का अस्तित्व विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों के अन्तर्गत माना गया है।

गरुड़ पुराण-

गरुड़ पुराण में भी कालिंजर महात्म्य को स्वीकारा गया है-

गौवर्ण परमं तीर्थ , तीर्थ माहिष्मती पुरी।

कालंजर महातीर्थ, शुक्रतीर्थ मनुत्तमम् ।।

गरुड़ पुराण में कालिंजर को महातीर्थ एवं परमतीर्थ के रूप में स्वीकार किया गया है।

कृते शोचे मुक्तिदश्च शांर्गधारीतन्दिके।

विरजं सर्वदं तीर्थ स्वर्णाक्षंतीर्थमुतमम् ।।[3]

गरुड़ पुराण में कालिंजर को सम्पूर्ण प्रकार के पापों से मुक्त कर मोक्ष दिलानें वाला स्थल बताया गया है।

वायु पुराण-

वायु पुराण में कालिंजर का वर्णन इस तरह से मिलता है-

तत्र कालं जरिष्यामि तथा गिरिवरोत्तमे।

तेन कालंजरो नाम भविष्यति स पर्वतः।।[4]

इस श्लोक से यह बात स्पष्ट होती है कि जहर पान करने के पश्चात भगवान शिव का कण्ठ नीला पड़ गया और काल को भष्म करने के कारण इस स्थल का नाम कालंजर या कालिंजर पड़ गया। वायु पुराण में ही एक अन्य वर्णन इस प्रकार है-

कालंजरे दशार्णायं नेमिषै कुरूजांगले।

वाराणस्या नगर्या तुदेयं तु यन्ततः।।[5]

वायु पुराण में यह बतलाया गया है कि जो व्यक्ति कालिंजर में श्राद्ध करता है, उसे पुण्य लाभ होता है।

कूर्मपुराण-

कूर्मपुराण में भी इसी बात की पुष्टि की गई है-

काले महेश निहते लोकनाथः पितामहः।

अयाचत वरं रूद्रं सजीवो यं भवत्विति।।

इत्थेतत्परम् तीर्थ कालंजर मितिश्रृतम् ।

गत्वाम्याच्य्र्य महादेवं गाणपत्यं स विन्दति।।[6]

कूर्मपुराण में इस बात का उल्लेख है कि शिवजी ने यहां पर काल को जीर्ण किया, इसलिये भविष्य में इसका नाम कालंजर होगा। इस तरह इसका नाम कालंजर या कालंजरगिरि पड़ गया।

वामन पुराण-

वामन पुराण में कालिंजर के संदर्भ में इस प्रकार का विवरण मिलता है-

कालंजरे नीलकण्ठं सरश्चामनुत्तम् ।

हंसयुक्तं महाकोश्यां सर्वपाप प्रणाशनम् ।।[7]

वामन पुराण में भी कालिंजर को नीलकण्ठ का निवास स्थल माना गया है।

बाल्मीकि रामायण-

बाल्मीकि रामायण में भी कालिंजर का वर्णन निम्न रूप में प्राप्त होता है।

कालंजरे महाराज। कौलपत्य प्रदीयताम् ।

एतच्छुत्वा तुरामेण। कालेपत्यं भिषेचितः।।[8]

बाल्मीकि रामायण के अनुसार श्री रामचन्द्र जी ने कुत्ते के कहने पर ब्राह्मण को कालिंजर के कुलपति के पद पर अभिशिक्त किया था। इससे यह सिद्ध होता है कि रामायण युग में भी कालिंजर एक प्रतिष्ठित स्थल था।

महाभारत-

वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत के अनेक स्थलों में कालिंजर के संदर्भ में बहुत अच्छा वर्णन मिलता है।

सन्ति रम्याजनपदा वहवन्नाः पारितः कुरून।

पांचालश्च-चेदि-मत्स्याश्च सूरसेनाः पटच्चरा।।11।।

दर्शाणाः नवराष्ट्रश्च मल्लः सात्वा, युगन्धराः।

कुन्ति राष्ट्र सुविस्तीर्ण सुराष्ट्रावन्त्यस्तथा।।12।।[9]

महाभारत में इस क्षेत्र को वेदों की तरह ही चेदिवंश का अंश माना है। उन्होंने यह कहा है कि इस क्षेत्र की सीमायें कुरू, पांचाल, मत्स्य, दर्शाण आदि से जुड़ी हुई थी। महाभारत में ही अन्य स्थलों का वर्णन इस प्रकार से है-

पवित्र मृषिभिर्जुष्टं पुण्यं पावनश्रुतमम् ।

गंगायमुनर्योवीर संगम् लोक विश्रूतम् ।।13।।

यत्रायजत भूतात्मा पूर्वमेव पितामहः।।

प्रयागमिति विख्यातं तस्मादमरतसत्तम् ।।14।।

अगस्त्यस्य च राजेन्द्र तत्रात्रमवरो महान् ।

हिरण्यबिन्दु कथितौ गिरौ कालंजरे नृप।।15।।[10]

महाभारत में इस स्थल को एक पवित्र तीर्थ माना गया है तथा यह उल्लेख किया गया है कि इस स्थल में जो स्नान करता है, उसे एक हजार गाय दान करने का पुण्य मिलता है।

भागवत पुराण-

भागवत पुराण में भी कालिंजर परिक्षेत्र का वर्णन प्राप्त होता है, वह इस प्रकार है-

मनसेवासृजत्पूर्व प्रजापतिरमाः प्रजाः।

देवासुरमनुष्यादीन्नमः स्थलजलोकस।

तपबृंहित मालोक्य प्रजार्सा प्रजापतिः।

विन्ध्यपादानुब्रज्य सौडचरदं दुष्करंतपः।।

तंत्राधमर्षण नाम तीर्थ पापहरं परम् ।

उपस्पृश्यानुसवंन तपसातोषयद्धरिम् ।।

अस्तोषीर्द्धस गुह्येन भगवन्तमधोक्षजम् ।

तुभ्यं तदमिधास्यामिक स्यातुष्यद यतोहरिः।।[11]

भगवत पुराण में कालिंजर को सृष्टि सृजन के साथ जोड़ा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि मानव सृष्टि का शुभारम्भ इसी क्षेत्र से हुआ। भागवत पुराण में ही कालिंजर स्थल के संदर्भ में यह वर्णन मिलता है।

इत्येव निगूढ़ निर्विदौ दौ विसृज्य मृगी मातरं पुनभर्गवत्क्षेत्रमुपशीलमुनि।

गणेदयति शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालंजरात्पत्याजगाम।।[12]

नेपाल के निकटवर्ती गण्डक नदी के समीप पुन्नहाश्रम था।यहां पर शालिग्राम शिलायें बहुतायत में पायी जाती थी। इस कारण से यह स्थान "शालिग्रम तीर्थ" के नाम से प्रसिद्ध था। एक बार -राजा जड़भरत यहां पर आये। इसी समय एक गर्भिणी मृगी भी पानी पीने आयी। उसी समय दूसरे तट पर एक सिंह भी पानी पी रहा था। मृगी को देखकर सिंह ने गर्जना की। भयभीत हिरणी ने भय के कारण छलांग लगाई, योनीस्खलन के कारण मृगशावक गिर पड़ा। राजा जड़भरत उस मृगशावक को देखकर द्रवित हो उठे। उन्होंने तप, ज्ञान तथा धर्म को त्यागकर अपना सारा ध्यान उस मृगशावक पर केन्द्रित कर दिया। इस कारण से

मृत्यु के बाद उनका जन्म मृगयोनि में कालंजर गिरि पर हुआ। जब राजा जड़भरत को अपनी दुर्बलता का ज्ञान हुआ, तब उन्होंने 'शालिग्राम तीर्थ' पुलहाश्रम में जाकर समाधि ग्रहण की। यह कथा कालिंजर स्थित मृगधारा नामक स्थान से सम्बन्धित बतलाई जाती है। यह कथा भागवतपुराण में उल्लखित है।

एक अन्य कथा इस प्रकार है। इसका सम्बन्ध भी कालिंजर दुर्ग में स्थित मृगधारा नामक स्थान से बतलाया जाता है। 'सतयुग में सात ऋषियों ने अपने आचार्य को अप्रसन्न किया था, इस कारण से आचार्य ने उन्हें शाप दे दिया था, जिसके कारण इन ऋषियों ने विभिन्न योनियां ग्रहण की, जिनका सम्बन्ध विभिन्न स्थानों से है। मेंसी के मतानुसार इस कथा के पीछे गृहपूजा की छाया है। इन ऋषियों के नाम काश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि एवं भारद्वाज थे। ज्योतिष के अनुसार विभिन्न नक्षत्रों के ये गृहपति हैं।[13]

पद्मपुराण-

कालिंजर का वर्णन पद्मपुराण में विस्तार से मिल जाता है।

सामर्थ्य नास्ति तीर्थानां महापातक नाशने।

विदुराद्यास्ततस्ते तुगताः कालंजरम् गिरिम् ।।

कालंजरं समासाद्या निवसन्ति सुदुः खिता।

महापापोस्तु संदग्धा हाकाभूता विचेतना।।

कालंजरो ब्रह्मक्षेत्रं मथुरो नाम वाहकः।

माया कांची तथा न्धानि दिव्यानि विविधानि च।।[14]

पद्मपुराण में ही कालिंजर का वर्णन कुछ इस तरह से है-

केदार तीर्थमुग्राख्यं कालंजरमनुत्तमम् ।

सारस्वत प्रभासं च रूद्रवर्ण हृधंशुभम् ।।

तत्र कालंजर गत्वा गौसहस्त्रफलम् लभेत।

आत्मन् साध्ये तत्र गिरौ कालंजरे नृप।।

स्वर्गलोक महीयते नरौ नास्त्यत्र संशयः।[15]

तदपि संस्थाप्यानिवे त्वयैव हित्काम्यया।।

नैमिषेयानि तीर्थानि याति कालंजरे गिरो।

सरस्वती तटेयानि स्थापयाम्य हमत्रवै।।

शरयूर्यमुना चैव द्वारकाऽमरावती।

सारस्वती सिन्धु कावेरी गंगासागर संगमः।।

कान्ची त्रैयम्बकं चैवसप्त गोदावरीटम् ।

कालंजरः प्रभासश्च तथा बदरिकाश्रमः।।[16]

धूमं मित्रमदं तद्ध द्वेजनाथ द्रुषद्वरम् ।

शिप्रा नदी महाकाल तथा कालंजरो गिरिः।।[17]

पद्मपुराण में इस स्थल को उत्तम तीर्थ के नाम से जाना गया है।

स्कन्दपुराण-

व्यास द्वारा रचित स्कन्द पुराण महत्वपूर्ण पुराण है। उसमें भी कालिंजर का विवरण मिलता है-

कालंजरं प्रभासश्च्रं तथा बदरिकाश्रमः।

महालयस्तयोंड्कार क्षेत्र वै पौरूषत्तमम् ।।[18]

स्कन्द पुराण में इस क्षेत्र को पुरूषोत्तम क्षेत्र के नाम से सम्बोधित किया गया है।

ब्रह्मपुराण-

ब्रह्मपुराण में भी कालिंजर का विवरण है-

यायातम परं तीर्थ यत्र कालंजरः शिवः।

सर्व पाप प्रशमनं तद्धत्तमुच्यते मया।।[19]

प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान पुराणों के आधार पर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यह स्थल शिव का महान तीर्थ था।

रेणुका, सूकर, काशी, काली, काल, वटेश्वरा।

कालंजर महाकाला वूसलानव कीर्तितः।।[20]

अग्निपुराण-

अग्निपुराण में भी कालिंजर का उल्लेख यथावत मिलता है-

कालंजरं मुन्जवटं सूर्परकं परम् ।

मन्दाकिनी चित्रकूट श्रृंगवेर पुरम् परम् ।।[21]

अग्निपुराण में इस स्थल को परमतीर्थ की संज्ञा दी गई है। इसी रूप में स्वीकारा भी गया है।

मत्स्य पुराण-

मत्स्य पुराण में भी इसका वर्णन भली प्रकार से मिल जाता है-

पूर्ण मित्रमदन्द्वदेवनाथं महाफलम् ।

क्षिप्रानदी महाकालस्तथा कालंजरं शुभम् ।।

कालंजर मुंजवटं तीर्थे सूपरिकं परम् ।

मन्दाकिनी चित्रकूट श्रृंगवेरपुरम् ।

अमरं च महाकालं तथा कायावरोह्णम् ।।

कालांजरवनं चैव शंड्कुकर्ण स्थलेश्वरम् ।

एतानि च पवित्राणि सांन्निध्याद्विमम्पिये।।

रूद्राकोट्यां तु रूद्राणी काली कालंजरे गिरौ।।[22]

मत्स्य पुराण में कालिंजर को शुभ एवं परमतीर्थ स्थल माना गया है।

हरिवंश पुराण-

कालिंजर के संदर्भ में हरिवंश पुराण में भी वर्णन मिलता है।

शुभेन कर्मणा तेन जाता जातिस्मरामृगा।

त्रासादुत्यापद्म संविग्नः रम्ये कालंजरे गिरौ।।

ते सर्वे शुभकर्मणः साधमोणो वने चराः।

योगधर्ममतुप्राप्ता विहरन्तिस्म तत्रह।।

जहुः प्राणान्मरूं साध्य लघ्वाहारास्तपस्वितः।

तेषां मरूं साधयतां पद स्थानानि भारत।

तथैवाद्यापि दृश्यन्ते गिरौ कालंजरे नृप।।[23]

हरिवंश पुराण में कालिंजर को शुभ कर्म प्रदान करने वाला कहा गया है। इसमें भी जड़भरत की कहानी को दोहराया गया है।" शुभ कर्म के कारण वे पूर्व जन्म का स्मरण रखने वाले मृग उत्पन्न हुए (पहले हिंसा के द्वारा) दूसरों को त्रास देने के कारण वे रमणीक कालंजर पर्वत पर सदा उदिग्न रहते थे। इन मृगों के नाम उन्मुख, नित्य, वित्ररत, स्तब्धवर्ण, विलोचन पण्डित, घस्मर और नादी थे। वे समान रूप से धर्म का पालन करते और शुभकर्मों में तत्पर रहते एवं योगधर्म का आश्रय लेकर वन में यत्र-तत्र घूमते रहते थे। भारत। इन मृगों ने हल्का आहार तथा मरू की साधना करके तपस्या में तत्पर हो, वहां अपने प्राण त्याग दिये। राजन् जल तक न पीने की साधना करने वाले इन मृगों के पद चिन्ह कालंजर पर्वत पर अब भी विद्यमान है।

सप्तव्याधा दशारण्ये मृगा कालजरे गिरौ।

चक्रवाकाः शंरद्वीपे हंसा सरिसमानसे।।

ते पिजाताः कुरूक्षेत्रे ब्राह्मणाः वेदपारगाः।

प्रस्थितादीर्घमध्वानं यूयं किमव सीदथ।।[24]

हरिवंश पुराण में इनके सात जन्मों का उल्लेख मिलता है।

मार्कण्डेय पुराण-

मार्कण्डेय पुराण में भी कालिंजर का वर्णन है।

वराह शैले तु जया कमला कमलालये।

रूद्राणी रूद्रकोट्यां तु काली कालंजरे तथा।

एतानि च पवित्राणि सांन्निध्याद्विमम्पिये।।

रूद्राकोट्यां तु रूद्राणी काली कालंजरे गिरौ।।[22]

मत्स्य पुराण में कालिंजर को शुभ एवं परमतीर्थ स्थल माना गया है।

हरिवंश पुराण-

कालिंजर के संदर्भ में हरिवंश पुराण में भी वर्णन मिलता है।

शुभेन कर्मणा तेन जाता जातिस्मरामृगा।

त्रासादुत्यापद्म संविग्नः रम्ये कालंजरे गिरौ।।

ते सर्वे शुभकर्मणः साधमोणो वने चराः।

योगधर्ममतुप्राप्ता विहरन्तिस्म तत्रह।।

जहुः प्राणान्मरूं साध्य लघ्वाहारास्तपस्वितः।

तेषां मरूं साधयतां पद स्थानानि भारत।

तथैवाद्यापि दृश्यन्ते गिरौ कालंजरे नृप।।[23]

हरिवंश पुराण में कालिंजर को शुभ कर्म प्रदान करने वाला कहा गया है। इसमें भी जड़भरत की कहानी को दोहराया गया है।'' शुभ कर्म के कारण वे पूर्व जन्म का स्मरण रखने वाले मृग उत्पन्न हुए (पहले हिंसा के द्वारा) दूसरों को त्रास देने के कारण वे रमणीक कालंजर पर्वत पर सदा उदिग्न रहते थे। इन मृगों के नाम उन्मुख, नित्य, वित्ररत, स्तब्धवर्ण, विलोचन पण्डित, घस्मर और नादी थे। वे समान रूप से धर्म का पालन करते और शुभकर्मों में तत्पर रहते एवं योगधर्म का आश्रय लेकर वन में यत्र-तत्र घूमते रहते थे। भारत। इन मृगों ने हल्का आहार तथा मरू की साधना करके तपस्या में तत्पर हो, वहां अपने प्राण त्याग दिये। राजन् जल तक न पीने की साधना करने वाले इन मृगों के पद चिन्ह कालंजर पर्वत पर अब भी विद्यमान है।

सप्तव्याधा दशारण्ये मृगा कालजरे गिरौ।

चक्रवाकाः शंरद्वीपे हंसा सरिसमानसे।।

ते पिजाताः कुरूक्षेत्रे ब्राह्मणाः वेदपारगाः।

प्रस्थितादीर्घमध्वानं यूयं किमव सीदथ।।[24]

हरिवंश पुराण में इनके सात जन्मों का उल्लेख मिलता है।

मार्कण्डेय पुराण-

मार्कण्डेय पुराण में भी कालिंजर का वर्णन है।

वराह शैले तु जया कमला कमलालये।

रूद्राणी रूद्रकोट्यां तु काली कालंजरे तथा।

कुरण्डले त्रिसन्ध्या स्यान्मा कोटे मुकटेश्वरी।

मण्डलेशे शाण्ड की स्यात् कालंजरे पुनः।।[25]

देवी भागवत अथवा मार्कण्डेय पुराण के अनुसार कालिंजर को महाकाली का सिद्ध स्थल माना गया है। तदानुसार इस क्षेत्र में काली का अधिवास है। भारत के सात शक्तिपीठों में एक शक्तिपीठ है- कालिंजर।

कालिंजर महात्म्य-

कालिंजर महात्म्य नामक ग्रंथ में भी कालिंजर का उल्लेख वर्णित है। इसमें कालिंजर महात्म्य का विस्तार से वर्णन है।

गंगायाः दक्षिणे भागे कालंजर इतिस्मृतः।

सर्वतीर्थफलं तत्रपुण्यंचैव सनन्तकम् ।।

अर्थयोजन विस्तीर्ण तत क्षेत्रं मम् मन्दिरम् ।

कालंजरेति विख्यात मुक्तिदं शिवसन्निधौ।।[26]

कालिंजर महात्म्य में कालिंजर के संदर्भ में विस्तार से प्रकाश डाला गया है तथा यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि यह स्थल सनातन धर्म के अन्य तीर्थो से श्रेष्ठ है यदि व्यक्ति पुण्य लाभ करने के उद्देश्य से इसकी यात्रा करता है, तो निश्चित ही उसे पुण्य लाभ होता है।

पुराणों के रचनाकार कृष्णद्वैयापन व्यास इस पावन क्षेत्र में उत्पन्न हुए।[27] उनकी कर्म स्थली भी यहीं रही। इसलिए यह स्वाभाविक है कि उन्होंने अपने रचे पुराणों में अपनी मात्र-भूमि के गौरव को बढ़ाने का यत्न किया, इसलिए कालिंजर परिक्षेत्र को उन्होंने महिमा मण्डित किया और पुराणों में उसकी कथाओं का उल्लेख किया।कालिंजर अति प्राचीन है। इस बात की पुष्टि वेदों एवं पुराणों में वर्णित कथाओं से यथावत हो जाती है।

(2) साहित्यिक ग्रंथों में कालिंजर-

कालिंजर एक ऐसा लोकप्रिय स्थल है, जिसने तपस्वियों, भक्तों, शिव उपासकों और शैलानियों के अतिरिक्त बुद्धिजीवियों का भी प्रभावित किया है। जब कोई भी साहित्यिक व्यक्ति इस परिक्षेत्र का दर्शन करता है तो वह यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं विचित्र दृश्यों को देखकर मंत्र मुग्ध हो जाता है और वह प्रकृति को अपने साहित्य की प्रेरणा समझ बैठता है। इसी पावन स्थली में बैठकर अनेक ऋषियों ने वेद की ऋचाओं का सृजन किया था। यहीं की प्रकृति की गोद में बैठकर नारद संहिता, बृहस्पति सूत्र आदि ग्रंथों की रचना हुई। आदि कवि बाल्मीकि इसी परिक्षेत्र की छत्रछाया में पल्लवित हुए जिन्होंने बाल्मीकि रामायण जैसे पावन ग्रंथ का सृजन किया। यहीं महाकवि व्यास ने अपने 18 पुराणों की रचना भी की है। इसी परिक्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास जैसे महाकवि हुए जिन्होंने विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ "रामचरितमानस" का सृजन किया। यहां जगनिक ने आल्हखण्ड नामक ग्रंथ का सृजन किया, जिसमें आल्हा--ऊदल जैसे महानवीरों की गौरव

गाथा है। इसी क्षेत्र में गण्ड जैसे चंदेल नरेश के हृदय में काव्यात्मक भावों का उदय हुआ, जिनकी हृदयग्राही पंक्तियों ने महमूद गजनवी जैसे शत्रु को मित्र के रूप में परिवर्तित कर दिया। इसी क्षेत्र में पद्माकर जैसे महान कवि ने अपने विविध छन्दों की रचना की जिससे हिन्दी साहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय हुए। इसी क्षेत्र में 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रचयिता ने शरण पाई और यहीं रहकर संस्कृत के महान ग्रंथ की रचना की। कालीदास और बाणभट्ट जैसे साहित्यकार भी विन्ध्य आटवीं से प्रभावित होकर यहां के सुरम्य दृश्यों की प्रशंसा अपने साहित्य के माध्यम से करते रहे, इसलिए यह भूमि साहित्य के क्षेत्र में भी सदैव स्मरणीय रहेगी।

जहां एक ओर पुरातत्व, इतिहास और लोकसंस्कृति इस क्षेत्र को अपनी गतिविधियों से गौरवान्वित करती है, वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र को महान साहित्यकार अपनी कृतियों के माध्यम से भी सुशोभित करते रहें हैं। इस क्षेत्र में जो कवि विशेष हुए हैं, उनके संदर्भ में विस्तृत जानकारी हिन्दी साहित्य के इतिहास में उपलब्ध होती है। प्रसिद्ध कवि घासीराम व्यास हिन्दी साहित्य के एक ऐसे कवि थे, जिन्होंने बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों की प्रशंसा इस प्रकार की है।

चित्रकूट, ओरछा, कालिंजर, उन्नाव तीर्थ।

पन्ना खजुराहो जित कीर्ति झुक झूमी है।।
यमुन, पहूज, सिंध, वेतवा, धसान, केन
नर्मदा, पहूज, टौंस प्रेम पाय घूमीं है।।
पंचम बृसिंह राव चम्परा छत्रसाल, लाला
हरदौल भम्भ भाव चाव चूमीं है।।
अमर अनन्दनीय असुर निकन्दनीय।
वन्दनीय विश्व में बुन्देलखण्ड भूमि है।।[28]

-(घासीराम व्यास, मऊ)

प्रसिद्ध कति श्री कृष्णदास ने अपनी सुप्रसिद्ध कविता में इस परिक्षेत्र का वर्णन निम्न रूप में किया है-

अरु कालिंजर तलक भाग यह परम सुहावन।
त्रितिय श्रेणिका फेर सुनहु सज्जन मन भावन।।
बाँदा जिला निहार तरोंहा चित्रकूट तक।
युक्त प्रांत लगगयव श्रृंग सुन्दर बरगढ़ तक।।[29]

यहां की सुन्दर बागे नदी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है-

पन्ना सों दस मील, बधिन सरिता अति नीकी।

इटवां बृजपुर गिरिन, निकस बहती सुचिणीकी।।

कालिंजर के निकट रूंझमहँ जाय समानी।

लछमीपुर ते रूंझ वही, सरिता मनमानी।।

परना जयगढ़ राज्य बीच विच होत सुखारी।

धरमपुर सब ओर, कालिंजर नाघत सारी।।

अपर बदौसा धरा, सींच यमुना मधजाई।

मिलत रूंझ सचुपाय, आपनों वरन छिपाई।[30]

बुन्देलखण्ड के कवियों के विषय में कृष्ण कवि ने निम्न विचार प्रकट किये हैं। इनमें से अधिकाश कवि इसी परिक्षेत्र के थे-

श्री हरि रामबियास देवनरहरि सुखदायक।

भगवत रसिक सुजान ललितमोहन मुद भायक।।

राम बल्लभा शरण सुगुरू परमानन्द स्वामी।

सन्त मैथिलीशरण युगल प्रभु के अनुगामी।।

त्यों शरीर महाराज जू, सिद्ध सप्त कवि भनिये।

बुन्देलखण्ड के कृष्ण कवि, महापुरूष यह जानियें।।[31]

कृष्ण कवि के अनुसार इस क्षेत्र में जो कवि हुए उनमें से बाल्मीकि, तुलसीदास, श्री भगवत रसिक, सुकवि सम्राट पण्डित चतुर्भुज, महाकवि अनन्य, बखत बली-कवि बखत बली ने छत्रसाल के एक युद्ध का वर्णन बहुत ही मनोरम ढंग से किया है।

घमक-घमक बरछिन के घमाके उठें,

कटक कटक कि खांन सूल सटके।

फबक फबक रून्डम्हैलन पैं धाय गिरें,

बैरिन की कारी कारी घटा घूम घटकें।

भान भनें धन्य धन्य चम्पत के छत्रसाल,

वीरन के मुण्ड गिरे कोटि कोटि कटकें।

कटर कटर नादि जम्बुक पिशाच करें,

घटर घटर काली रूधिर को गटके ।।[32]

इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में महाकवि गुलाब सिंह तथा पं0 रघुराज कविराज अच्छे कवि हुए हैं।

महाराज छत्रसाल ने भी उत्तमकोटि की कविताऐं लिखीं। इसके अलावा इस क्षेत्र के सुप्रसिद्ध रचनाकार लाल कवि हुए हैं। जिन्होंने यहां के नरेशों ओर क्षेत्र के सम्बन्ध में अपनी उत्कृष्ट रचनायें प्रस्तुत की हैं। जो युद्ध हृदयशाह एवं मुहम्मद बंगस खां के साथ इस क्षेत्र में हुआ था, उसका वर्णन लाल कवि ने बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है-

महम्मदखांन हृदयशाह सों मिलाप होत,
ठिल्यों दल सागर त्यों रस के रसौदा में।
''लाल'' मुख्य वीर रूप दरस्यो दिमान इतै,
हुमसाहुमस मची मन के मसौदा में।
शाँगैं उल्छारें एकैं ढालें हतुवा सेहत,
झारत पलीता एकें गोवें देत रौदा में।
हूँक दै के हांथी सौं हुमक हनुमान ऐसों,
दाव के नवाब के हृदेश बैठो हौदा में।।[33]

महाकवि भूषण ने भी अपनी कविता में इस क्षेत्र को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है क्योंकि सोलंकी वंश के तद्‌युगीन चित्रकूट नरेश ने उन्हें भूषण की पद्‌वी से विभूषित किया था।

दुज कन्नौज कुल कश्यपी, रतनाकर सुतधीर।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा, तरनि तनूजा तीर।।
वीर बीरबर से जहाँ, उपजे कवि अरू भूप।
देव बिहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वर तद्रूप।
कुलसुलंक चितकूट पति, साहस शील समुद्र।
कवि भूषण पद्‌वी दई, हृदयराम सुत रुद्र।।[34]

कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक महाकवि हुए है, जिन्होंने अपनी साहित्य साधना से इस भूमि को गौरवमयी बनाया है। आज के परिवेश में उनकी रचनायें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये कवि निम्नलिखित हैं-

कवि का नाम व स्थान,	संवत्,	रचनायें,	आश्रय दाता का नाम
1. राजनंद (भंड) चंदेल, कालिंजर	1075	छन्द	ये चंदेल वंश का सम्राट
2. (हित) रामकृष्ण चौबे ब्राम्हण, चित्रकूट तथा कालिंजर	1810 1850	स्फुट 16 ग्रंथ सतसई पद्य टीका, कृष्णचन्द्रिका, विनयपचीसी	पन्ना नरेश हृदयशाह
3. शिव प्रसाद, कायस्थ कालिंजर, पालदेव	1855	स्फुट	चौबे नाथूराम, जागीरदार, पालदेव बुन्देलखण्ड
4. परमेश्वरी दास कायस्थ, कालिंजर, पालदेव	1890	स्फुट	चौबे नाथूराम, पालदेव के जागीरदार
5. नंददास ब्राम्हण गोस्वामी तुलसीदास जी के भाई, राजापुर (बाँदा)	1623	अनेकार्थ आदि	बिट्ठलदास के शिष्य
6. गोस्वामी तुलसीदास, राजापुर (बाँदा)	1989 1680	जन्म मृत्यु	रामचरितमानस आदि
7. गंगादत्त ब्राम्हण, राजापुर (बाँदा)	1917	विष्णोद विशदस्तोत्र	
8. श्री पति भट्ट, बाँदा	1731	हिम्मत प्रकाश	बाँदा के नवाब हिम्मत खां
9. मोहन भट्ट, ब्राम्हण, बाँदा	1760	स्फुट	प्रसिद्ध कवि पद्माकर के पिता
10. जुलफिकार खाँ मुसलमान, बाँदा	1782		अलीबहादुर के पुत्र
11. हिम्मत बहादुर गुसाँई, बाँदा	1803	स्फुट	बड़े बहादुर और कवियों के आश्रय दाता
12. हरिदास, ब्राम्हण, बाँदा	1811		अरिमर्दन सिंह
13. बाजेस, बाँदा	1831		गुसांई अनूप गिर
14. सदाराम, चित्रकूट, बाँदा			
15. मनराखनदास, हरी नरायण दास के पुत्र	1861	छंदोनिधि पिंगल	

कायस्थ, बाँदा			
16. पद्माकर भट्ट, मोहनलाल के पुत्र, तैलंग, ब्राम्हण, बाँदा	1876	जगद्विनोद	बड़ा ही उत्तम
	1889	मंगालहरी	कवि हुआ है।
	1838	हिम्मत बहादुर विरुदावली	
		प्रबोध-पचासा	
		आलीजा प्रकाश	
		बाल्मीकीय प्रकाश	
		रामरसायन, पद्माभरन	

इनके अलावा भी इस परिक्षेत्र में निम्न कवि हुए हैं- खेमराज, गणेश प्रसाद, लक्ष्मण प्रसाद, सुन्दर व्यास (रसिक) ,बल्देव प्रसाद, गयादीन, मानसिंह अवस्थी, हरिदास बंदीजन, असकंदगिरि गुसाँई, राजकुमार, नोने बंदीजन, साधोराम, परमेश्वरीदास, गुरदयाल,द्वारका प्रसाद, रघुनाथ प्रसाद, लालमणि, शीतलप्रसाद, द्वारका प्रसाद, सुन्दरलाल (श्याम), द्विजश्याम द्विवेदी, ब्राह्मण, बल्देवदास कायस्थ, गुलजारी लाल अवस्थी, वृंदावन, शिवनन्दन प्रसाद त्रिपाठी, कृपाराम, हनुमानदीन ब्राह्मण (मिश्र), मंगलदीन उपाध्याय,रामसिंह, गंगाप्रसाद, वेदपाठी आदि कवि हैं।[35]

वर्तमान समय में भी कवियों के हृदय में इस परिक्षेत्र के प्रति आज भी प्रेम है। सुप्रसिद्ध कवि साहित्यकार मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' ने अपने काव्य में इस क्षेत्र को व्यापक सम्मान दिया है।

बुन्देलखण्ड भूमि पर चंदलों ने अपना वैभव बिखराया।
नृप धंग, गंड, परमाल वीर ने अपना झण्डा फहराया।
जेजाक भुक्ति बुन्देलखण्ड को बुन्देलों ने अपनाया।
अनगिन दुर्गों को निर्मित कर चहुं ओर कीर्ति को छिटकाया।
चंदेलों की उज्जवल गाथा स्वर्णिम युग का अनमोल रतन।
बुन्देलों का बलिदान हुआ पावन वसुधा है रण-आंगन।।

★ ★ ★ ★ ★

विन्ध्याचल की पर्वतमाला में तीर्थों के वरदान छिपे।
खजुराहो के मधु मंदिर में जीवन के बिखरे गान छिपे।
सोनागिरि के शुभ आंगन में साधक ऋषियों के प्राण छिपे।
कालिंजर गिरि की आभा में देवों के चिर सम्मान दिये।
पावन धरती पर तीर्थों का होता है अनुपम सम्मेलन।
स्वर्गिक मधुमय उद्गारों का होता रहता नव अन्वेषण।।

बाँदा जनपद के चित्रकूट पर्वत में पावन राम रमें।

सीता लक्ष्मण विचरण करते वनवासी वैभव राम जमें।

पग पग पर पावन राम चले मधुमय मग मग पर पैर थमें।

आदर्शों की उन्मत्त धरा पर ज्ञानी मुनि कितने जन्में

पर्वत के सुन्दर आंगन में था राम भरत का मधुर मिलन।

धरती रजकण कानन उपवन युग युग से हैं पुनीत पावन।।[36]

प्रसिद्ध कवि और मैथलीशरण गुप्त के गुरू मुंशी अजमेरी ने इस क्षेत्र का वर्णन सुन्दर शब्दों में किया है-

चंदेलों का राज्य रहा चिरकाल यहाँ पर।

हुए वीर नृप गण्ड मदन परमाल जहाँ पर।।

बड़ा विपुल बल विभव बने गढ़ दुर्गम दुर्जय।

मन्दिर महल मनोज मनोहर अनुपम अक्षय।।

यही शौर्य सम्पत्ति मयी कमनीय भूमि है।

यह भारत का हृदय रूचिर रमणीय भूमि है।[37]

वर्तमान समय में इस परिक्षेत्र में उत्पन्न अनेक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपनी काव्य रचना से इस परिक्षेत्र के महत्व को गरिमामयी स्वरूप प्रदान किया है। श्री जवाहर लाल जलज इस क्षेत्र के ख्याति प्राप्त गीतकार है। उन्होंने कालिंजर दर्शन फिल्म के लिए जिन गीतों की रचना की है, वे गीत आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में कालिंजर की तपोभूमि को प्रचारित एवं प्रसारित करते रहते है। गीतों की पंक्तियां इस प्रकार है-

यही देख लो कालिंजर है, बुझती मन की प्यास है।

जिसकी गौरव गाथा गायें, युग-युग का इतिहास है।।

कहे कालिंजर सबसे, निज नैनों में भर नीर।

भूल न जाना आना फिर-फिर हरना मेरी पीर।।[38]

कवियों के अतिरिक्त उपन्यासकारों ने भी कालिंजर परिक्षेत्र को अपने उपन्यास की कथावस्तु में शामिल किया है। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ0 वृन्दावनलाल वर्मा ने रानी दुर्गावती नामक उपन्यास में यह स्वीकार किया है कि रानी दुर्गावती कालिंजर नरेश कीर्ति सिंह चंदेल की पुत्री थी, जिन्होंने दलपत शाह से प्रेम विवाह किया था। रानी दुर्गावती ने मुगल सम्राट अकबर की सेना से संघर्ष करते हुए अपने प्राणों की आहुति दी।[39]

बाँदा जनपद में उत्पन्न हुए श्री गोवर्धनदास त्रिपाठी ने भी कालिंजर को महिमामण्डित करने के लिए 'कालिंजर दर्शन' नामक पुस्तक का सृजन किया। वर्तमान समय में यह पुस्तक सुलभ नहीं है। इसी प्रकार

हिन्दू इण्टर कालेज के प्रवक्ता पं0 हरिप्रसाद शर्मा ने कालिंजर पर पृथक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ भी साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि का है। इसी प्रकार वासुदेव त्रिपाटी ने भी "वीरों का गढ़ कालिंजर" नामक पुस्तक की रचना की, जो भाषा और साहित्य की दृष्टि से अति उत्तम प्रतीत होती है। डॉ0 रमेशचन्द्र श्रीवास्तव ने भी अपने ग्रंथ "बाँदा वैभव" में कालिंजर को अलग से स्थान देने का प्रयत्न किया है।[40]

इस प्रकार हम देखते है कि कालिंजर परिक्षेत्र को साहित्यकारों ने केवल इसलिए महिमामण्डित नहीं किया कि यह एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल था, अपितु इसलिए भी महिमामण्डित किया क्योंकि यहां के प्राकृतिक दृश्यों ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया, जिससे वे मजबूर हो गये कि वे इस परिक्षेत्र के लिए उच्चकोटि के साहित्य का सृजन करें, ऐसा उन्होंने वास्तव में किया भी।

(3) ऐतिहासिक ग्रंथों में कालिंजर-

प्राचीन काल में इतिहास लिखने की वह परम्परा नहीं थी, जिसका शुभारम्भ यहाँ 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। प्राचीन काल में यहां इतिहास लिखने की परम्परा पुराण तथा आख्यान के रूप में प्रचलित थी। इसमें कथाकार व वार्ताकार ऐतिहासिक साक्ष्यों की उपेक्षा करके घटना क्रम को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहने का आदी था। वह काल के संदर्भ में किसी भी प्रकार से सर्तक नहीं था। वह घटना को विचित्र ढंग से प्रस्तुत करता था और अपने आश्रयदाता को देवत्व प्रदान कर देता था। यही कारण है कि सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलयुग का काल निर्धारण आज तक ऐतिहासिक दृष्टि से सहीं नहीं उतर पाया तथा यह भी नहीं पता लग पाता कि कालक्रम मापन के लिए उस समय कौन सी विधि अपनाई जाती थी। इसलिए तद्युगीन ऐतिहासिक घटनाओं को वर्तमान युग में साक्ष्य के अभाव में ऐतिहासिक घटनायें नहीं माना जाता था। उन्हें पौराणिक गाथाओं के रूप में ही मान्यता मिल पाती है।

सन् 1804 के पश्चात अंग्रेजों का प्रभाव सम्पूर्ण भारतवर्ष में हो गया। सन् 1860 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन सम्पूर्ण भारत से समाप्त हो गया और उसके स्थान पर इंग्लैण्ड की सरकार का शासन प्रारम्भ हुआ। इस समय तक इंग्लैण्ड और यूरोपियन देशों में इतिहास लेखन की वैज्ञानिक पद्धति का आविष्कार हो चुका था जिसका प्रभाव भारतवर्ष के इतिहास लेखन में भी पड़ा। कुछ अंग्रेज विद्वान जिसमें वी0 ए0 स्मिथ, डॉ0 ग्रीयर्सन, कनिंघम, बेवर एवं मैक्समूलर भारत आये। इन्होंने ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण किया और उनके विषय में निम्न प्रकार के शोध कार्य किये। उनके द्वारा किये गये शोध कार्यों में कालिंजर पर भी किये गये शोध कार्य शामिल थे। इसलिए तद्युगीन लिखे गये ग्रंथों को ही ऐतिहासिक आधार मानकर प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रारम्भिक ऐतिहासिक ग्रंथों में कालिंजर

कालिंजर का प्रारम्भिक परिचय सर्वप्रथम हमको प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ **'इण्डियन ऐन्टीक्वेरी'** में उपलब्ध होता है। इसमें कालिंजर का प्रारम्भिक परिचय तथा उसकी भौगोलिक संरचना का वर्णन है।[41]

'जर्नल ऑफ ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' में भी कालिंजर का वर्णन प्राप्त होता है। सुप्रसिद्ध विद्वान **पाजिटर** ने यहां की भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त अन्य स्थलों से इसकी दूरी सुनिश्चित की है। प्रसिद्ध विद्वान **कनिघम** ने भी कालिंजर के संदर्भ में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इन्होंने इस क्षेत्र की पहचान चीनी यात्री **ह्वेनसांग** के वर्णन के आधार पर की है और इस क्षेत्र को चित्रकूट से सम्बन्धित किया है। प्रसिद्ध विद्वान **वार्टस** ने भी अपनी ऐतिहासिक कृति में कनिंघम की बात की पुष्टि की है।[44] सुप्रसिद्ध विद्वान **एच0सी0 रे** का कथन कुछ इससे भिन्न है किन्तु वे भी कालिंजर के संदर्भ में अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं जो अन्य से भिन्न है। **'एपिग्राफिया इण्डिका'** में भी इस क्षेत्र के संदर्भ में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।[46] **प्रो0 संकालिया** ने भी इस क्षेत्र का वर्णन प्रस्तुत किया है जो कनिघंम के मत से नहीं मिलता।[47] सिगरौली में प्राप्त ताम्रपत्रों के आधार पर कालिंजर परिक्षेत्र की पहचान एक विशिष्ट दृष्टिकोण रखकर की गई है।[48] **अब्रिहा** नामक ग्रंथ में जैजाकभुक्ति का उल्लेख उपलब्ध होता है। प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान **रोनाल्ड** ने इसका वर्णन सविस्तार किया है। इस समय कालिंजर जैजाकभुक्ति का एक भाग था।[49] प्रसिद्ध अरब विद्वान **अलबरूनी** ने अपने यात्रा वर्णन में कालिंजर व ग्वालियर का सविस्तार वर्णन किया है।[50] **इब्नबतूता** नामक यात्री भी इस स्थल पर आया था।[51] उन्होंने इन स्थलों की बहुत अधिक तारीफ की है। प्रसिद्ध विद्वान **विलसन** ने इस बात से सहमति प्रकट की है कि इस क्षेत्र में कालिंजर नामक एक पहाड़ी है जिसमें साधक लोग एकत्रित होते थे तथा वहां भक्तिपूर्ण साधनायें सम्पन्न होती थी।[52] अंग्रेज विद्वान पागसन ने विलसन के विचार से सहमति प्रकट नहीं की है। उसने **टालमी** द्वारा वर्णित तमसिस का तादात्म कालिंजर गिरि से स्थापित किया है।[53] सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान **फ्यूहरर** (फूरहर) ने भी इस स्थल के विषय में विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किये है।[54] यहाँ उपलब्ध वास्तुशिल्प के संदर्भ में अनेक कार्य किये गये और इतिहासकारों ने यहाँ उपलब्ध मूर्ति शिल्प को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया है।[55] कालिंजर परिक्षेत्र में जैनों और बौद्धों से सम्बन्धित जो स्थल प्राप्त हुए हैं उनका वर्णन भी ऐतिहासिक ग्रंथों में उपलब्ध होता है।[56] कालिंजर में प्राप्त स्वायंभुव शिवलिंग के संदर्भ में अनेक ऐतिहासिक वर्णन प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा किये गये हैं। उनके अनुसार ये लिंग अपने आप उत्पन्न होते हैं। **'जीर्णोद्धारदशकम'** के भाष्य में निगमाजन देव के द्वारा दी गई हैं, जो वामदेव शिवाचार्य के पुत्र थे। इस सूची में कालिंजर के नीलकण्ठ का उल्लेख है।[57] प्रसिद्ध जैन विद्वानों ने कालिंजर को भी जैन तीर्थ माना है तथा उसको **''कल्याण-कटक''** के नाम से सम्बोधित किया है।[58] बौद्ध ग्रंथों में भी कालिंजर का वर्णन स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है लेकिन इस स्थल को कंचन पर्वत, कारगीक पर्वत, कालगिरि एवं चित्रकूट के नाम से सम्बोधित किया गया है।[59]

मुगलकालीन एवं बिट्रिशकालीन ऐतिहासिक ग्रंथों में कालिंजर-

मुगलकालीन ऐतिहासिक ग्रंथों में भी कालिंजर का वर्णन बहुत अधिक विस्तार से मिल जाता है। कालिंजर में अधिक संख्या में स्मारक मिले है जिनमें से अधिकतर मुगलकालीन ही है। इनमें से एक

मुगलकालीन मस्जिद का उल्लेख आया है। इस मस्जिद को शेखबली मस्जिद के नाम से पुरा जाता था। शेखबली की मस्जिद मुगलकाल की प्रमुख मस्जिद है। यह अकबर की समकालीन थी।[60] **अबुलफजल** द्वारा रचित ग्रंथ में भैरव की लम्बी मूर्ति के विषय में विवरण मिलता है। भैरव मूर्ति के बगल में काली की कंकाल मूर्ति है। यह मूर्ति 4 फुट ऊँची है। उसने कालिंजर की भैरव मूर्ति को 18 हांथ ऊँचा बतलाया है। यह भारतवर्ष की दीर्घाकार भैरव मूर्ति कहीं जा सकती है।[61] **''हिस्ट्री ऑफ दी चन्देलाज''** नामक ग्रंथ में कालिंजर और अजयगढ़ के विषय में पर्याप्त विवरण मिलता है। इस ग्रंथ के अनुसार चन्देलों का सम्पूर्ण इतिहास कालिंजर दुर्ग एवं कम अंशों में अजयगढ़ के ऐतिहासिक दुर्गों के चारो ओर केन्द्रित था। दुर्गों के असाधारण महत्व का कारण इनकी भौगोलिक स्थिति एवं तत्कालीन युद्ध पद्धति थी। यहाँ की भौगोलिक परिस्थिति से इन्हें अपने युद्धों में विजय एवं लाभ होता था।[62]

कुछ अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों में कालिंजर को प्राथमिकता दी गई है। मध्य प्रदेश द्वारा प्रकाशित एक पत्रिका में यहां के प्राचीन निवासियों के सम्बन्ध में विवरण मिलता है, जो कालिंजर के आस-पास निवास करते थे। यहां गुफा-चित्र भी अनेक पर्वतीय स्थलों में मिले है।[63] इस क्षेत्र की जो जातियाँ आर्यों से सम्बन्धित थी, उनमें मुख्य रूप से चेदि देश के वे लोग शामिल थे जो यमुना और विन्ध्य के मध्य में बस गये थे।[64] वेदों में कालिंजर का 'तपस्या-स्थान' के रूप में उल्लेख मानना असंगत नहीं है।'तपस्या-स्थान' के रूप में कालिंजर का तादात्म्य उचित मालुम होता है। इस प्रकार से कालिंजर की प्राचीनता वैदिक कालीन कहीं जा सकती है।[65] अंग्रेज विद्वानों ने भी अपनी पुस्तकों में कालिंजर के महत्व को स्वीकार किया है। इनके अनुसार इस स्थल में राजवंशो का परिवर्तन होता रहा। यहीं कारण है कि जनपद का नाम परिवर्तन नहीं हुआ, इसलिए यह स्थल चेदि राज्य का अंग बना रहा । कालान्तर में यह चेदि राज्य बुन्देलखण्ड के नाम से जाना गया।[66] **टालमी** के भूगोल में प्रासाइके को यमुना के दक्षिण में बतलाया गया है तथा कालिंजर को इसकी राजधानी बतलाया गया है। कालिंजर राज्य की सीमा का विस्तार यमुना के दक्षिणी किनारे तक माना है। पहले यह परिक्षेत्र कुषाणों के आधीन रहा होगा।[67] वाकाटकों के समय में यह क्षेत्र बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता था। वाकाटक नरेश रूद्रसेन किसी युग में यहां का शासक था। जब वह संकट से घिर गया, उस समय उसका सहयोग उसके नाना ने किया। अन्त तक भारशिव वंशीय शासक भवनाग का सहयोग वाकाटकों के साथ बना रहा। इनका शासन अन्य क्षेत्रों के अलावा कालिंजर में भी था।[68] इतिहासकार वासुदेव विष्णु मिराशी के अनुसार इस क्षेत्र में उपलब्ध नचना के समीप अभिलेखों के अनुसार वाकाटको का प्रभाव इस क्षेत्र में पांचवीं शताब्दी तक मानते है।[69] समुद्रगुप्त की विजयों के फलस्वरूप यह क्षेत्र गुप्त साम्राज्य का अंग बन गया । कालिंजर समुद्रगुप्त से लेकर बुधगुप्त के पूर्व तक गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत रहा होगा।[70] तद्युगीन भौगोलिक ग्रंथों में भी इसका उल्लेख मिलता है। नन्दलाल डे के अनुसार बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भाग तथा जबलपुर का उत्तरी भाग चेदि-देश कहलाता था। इस समय कालिंजर चेदि

देश की राजधानी थी।[71] झाँसी गजेटियर में इस परिक्षेत्र का विवरण प्राप्त होता है।[72] सुधाकर पाण्डेय ने इस क्षेत्र पर पाण्डव वंशीय नरेश उदयन का अस्तित्व स्वीकार किया है।[73] उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार कल्चुरि नरेश कृष्णराज कल्चुरि का राज्य इस क्षेत्र तक रहा।[74] इसके साम्राज्य में मध्य प्रदेश एवं कालिंजर मंडल सम्मिलित रहा होगा। कल्याण के कल्चुरियों के अभिलेखों में इस वंश के प्रारम्भिक शासक का नाम कृष्ण मिलता है, जिसको कालिंजर विजय का श्रेय दिया जाता है।[75] व्हेनसांग के अनुसार यह क्षेत्र चि-चि -टो से सम्बन्धित था। इसका समर्थन अंग्रेज विद्वान कनिंघम ने भी किया है।[76] अयोध्याप्रसाद पाण्डेय के मतानुसार जुझौति देश में ब्राह्मणों की संख्या अधिक थी। ये लोग उत्तर गुप्तों के समय में स्वतंत्र हो गये और इस क्षेत्र में राज्य करते रहे।[77] एस0 के0 मित्रा ने भी इस क्षेत्र का वर्णन किया है। इन्होंने जुझौति और जैजाकभुक्ति का एकीकरण किया है।[78] चंदेलों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक अनुश्रुति है। इसके अनुसार चंदेलों का मूलस्थान कालिंजर था। इस अनुश्रुति के अनुसार-" कालिंजर के शासक ने एक दिन अपने पुरोहित से पूछा कि आज माह की कौन सी तिथि है? उसने उत्तर दिया कि आज पूर्णमासी है जबकि उस दिन अमावस्या थी। पण्डित को जब अपनी गलती मालूम पड़ी, तब वह बहुत गहरी निराशा में डूब गया। जब उसकी पुत्री को उसके दुख का कारण अवगत हुआ, तब उसने चन्द्रमा की स्तुति की तथा चन्द्रमा से उदित होने का अनुरोध किया ताकि उसके पिता का कथन सही हो। चन्द्रमा उसकी प्रार्थना पर उदित हुआ तथा अपने कार्य का पुरस्कार उसके सम्पर्क के रूप में प्राप्त किया। जब उसके पिता को यह ज्ञात हुआ तब उसने अपनी पुत्री को घर से निकाल दिया। इस कारण से वह जंगल में भ्रमण करने लगी, तभी उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। वहां पर एक बनाफर राजपूत था। उसने उसे देखा और अपने घर ले गया। उसके पिता को इस घटना से इतना अधिक दुख हुआ कि उसने अपने आपको पाषाण में बदल दिया। उसका नाम मनीराम था, इस कारण उसकी उपासना मनियादेव के नाम से प्रचलित है।[79] महाकवि **चन्दवरदाई** ने **पृथ्वीराजरासो** में चंदेल नरेश राहिल की प्रशंसा एक विजेता, कई दुर्गों, नगर तथा मंदिरों के निर्माता के रूप में की हैं।[80] प्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र ने शिशिर कुमार मित्रा तथा नेमी सघन बोस का विरोध किया है। वे राहिल से अधिक शक्तिशाली शासक हर्ष को स्वीकार करते है। उसने कई स्थलों पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके शक्ति का विस्तार किया।[81] यदि धंग के खजुराहो अभिलेख का अध्ययन किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिहार शासक क्षितिपाल देव को हर्ष ने पुनः गद्दी पर बैठाया था। इससे यह सिद्ध होता है कि चंदेल नरेश हर्ष बहुत शक्तिशाली था। रमाशंकर त्रिपाठी ने भी इस वंश के शासक हर्ष को ही शक्तिशाली शासक माना है। त्रिपाठी ने हर्ष का तादात्म्य चंदेल शासक हर्ष से किया जाना उचित माना है।[82] नीलकण्ठ शास्त्री ने कालिंजर नरेश यशोवर्मन की बहुत अधिक प्रशंसा की है। उनका मानना है कि यशोवर्मन ने कालिंजर दुर्ग गुर्जर प्रतिहारों से जीता था।[83] डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक ने भी यशोवर्मन देव को ही इस वंश का महत्वपूर्ण शासक माना है।[84] ऐतिहासिक जर्नल में एक अभिलेख का उल्लेख किया गया है जिससे यह

सिद्ध होता है कि कृष्णराज त्रतीय के समय तक कालिंजर परिक्षेत्र उसी के अधिकार में रहा। जूर अभिलेख उपरोक्त प्रशस्तियों की वास्तविकता को समर्थित करता है।[85] इतिहासकारों में इस बात को लेकर भिन्नता है कि इस क्षेत्र में राष्ट्रकूटों का अस्तित्व था अथवा नहीं।[86] डॉ0 अवस्थी कालिंजर परिक्षेत्र में राष्ट्रकूटों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और यह भी मानते हैं कि यशोवर्मन ने कालिंजर राष्ट्रकूटों से विजित किया।[87] इतिहासकार चिंतामणि विनायक वैद्य कानिघम, निमाई सघन बोस और जयदेव इस बात से सहमत हैं कि चंदेलों के शासक यशोवर्मन ने कालिंजर का प्रसिद्ध दुर्ग कलचुरियों से जीता था।[88] फरिश्ता के अनुसार चंदेल वंश के सम्राट धंग देव ने **'कालिंजराधिपति'** की उपाधि धारण की थी। मुस्लिम इतिहासकार चंदेलों को कालिंजर का शासक स्वीकार करते हैं।[89] महमूद गजनवी के आक्रमण को रोकने के लिए कालिंजर के चंदेल नरेश ने भी देशी राजाओं का साथ दिया था। नरेशों की यह संघ भारतीय इतिहास की दुर्लभ घटना है।[90] मुस्लिम इतिहासकार विद्याधर देव को एक महत्वपूर्ण शासक मानते है। इनका मानना है कि विद्याधर देव का सबसे बड़ा सहयोग विदेशी आक्रमण को रोकने के लिए हुआ। मुस्लिम **इतिहासकार इब्नुल-अथीर** ने ''बाँदा'' नाम से विद्याधर को सम्बोधित किया है।[91] इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक उदाहरण उपलब्ध होते है कि महमूद गजनवी और विद्याधर देव के सम्बन्ध मधुर रहे हैं। सन् 1029 ई0 में महमूद ने सेलजुक नामक शत्रु के लड़के को बंदी बनाकर कालिंजर भेजा था।[92]

यदि हम **'प्रबोधचन्द्रोदय'** को इतिहास के साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि विद्याधर के शासन के अन्तिम समय में चंदेल संकटपूर्ण स्थिति का सामना कर रहे थे। संकट को चेदियों की शक्ति के उत्कर्ष ने और अधिक बढ़ा दिया, जिसको कुछ समय के लिए विद्याधर ने दबा दिया था। चन्देलों के अधीन लिखे गये कृष्ण मिश्र के **''प्रबोधचन्द्रोदय''** नामक नाटक में उल्लेख है कि चेदि राजा ने चन्द्रवंश के राजाओं का वंश उखाड़ फेंका।[93] बिल्हड़ के **''विक्रमांकदेवचरित''** में भी चेदि शासक कर्ण को कालिंजर गिरि के शासक के लिए काल के समान बतलाया है।[94] कालिंजर और अजयगढ़ में जो अभिलेख परमार्दि देव के समय के मिले हैं उससे यह तथ्य उजागर होता है कि कालिंजर में पहले **''पृथ्वीराजरासो''** का आक्रमण हुआ, उसके बाद कुतुबुद्दीन ऐबक का आक्रमण हुआ। यह उल्लेख **''पृथ्वीराजरासो''** में मिलता है।[95] हिजरी संवत् 599 तदानुसार सन् 1202 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर आक्रमण किया। इस अभियान में उसके साथ साहिब-किरान शम्सुद्दीन अल्तमश भी था। कालिंजर का शासक, अभिशप्त परमार युद्ध क्षेत्र में सामना करने के उपरान्त निराश होकर दुर्ग में चला गया। बाद में आत्मसमर्पण करके उसने गले में पराधीनता का ग्रीवा अलंकरण धारण कर लिया किन्तु राज्य भक्ति का वचन देने के उपरांत उसे उसी रूप में ग्रहण कर लिया जिस रूप में सुबुक्तगीन द्वारा उसके पूर्वजों ने ग्रहण किया था। उसने कर और हांथी देने की शर्ते स्वीकार कर ली किन्तु इन शर्तों का पालन करने के पूर्व ही उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो गई। उसका मंत्री एवं दीवान अजयदेव था। वह उतनी सरलता से आत्मसमर्पण करने को तैयार नहीं था, जितनी

सरलता से उसके स्वामी ने कर लिया था। अपने शत्रुओं को कष्ट देता रहा। जब दुर्ग के अन्दर के सभी जलाशय सुखा दिये गये। तब अन्त में वह आत्म समर्पण के लिए बाध्य हुआ। कालिंजर दुर्ग जो विश्व भर में सिकन्दर की दीवार की भांति दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध था। कुतुबुद्दीन के अधिकार में आ गया। मन्दिर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिए गए, सौजन्य के स्थान, अक्षमाल के जप करने वालों के स्वर और प्रार्थना के लिए आमन्त्रित करने वालों की वाणी सबका अन्त हो गया। मूर्ति पूजा का नाम ही मिटा दिया गया। पचास हजार व्यक्ति दास बनाये गये। हांथी, पशु और अनगिनत शस्त्रास्त्र भी विजेता के हांथ लगे। कालिंजर का शासन हजबरूद्दीन हसन अर्नाल को सौंप दिया गया।[96] **तबकाते-नासिरी** में इस बात का उल्लेख मिलता है कि इल्तुतमिश 1233 ई0 में कालिंजर में आक्रमण करने के उद्देश्य से कालिंजर की ओर बढ़ा। कालिंजर का राजा अपनी स्थिति को सन्देहास्पद देखकर भाग गया। आक्रांता ने दुर्ग के निकटवर्ती क्षेत्र और उसके समीप के भू-भाग को अत्यधिक लूटा जो तद्युगीन मुद्रा के हिसाब से पच्चीस लाख से अधिक था।[97] प्रसिद्ध इतिहासकारों ने कालिंजर के नीलकण्ठ मंदिर को धार्मिक एवं वास्तुशिल्प की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर माना है।[98] कालिंजर का नीलकण्ठ मंदिर कालिंजर का प्रमुख आकर्षण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना ब्रिटिश शासन काल में हुई। उन ऐतिहासिक ग्रंथों में कालिंजर को सर्वश्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

ब्रिटिश शासन काल के बाद के ऐतिहासिक ग्रन्थों में कालिंजर-

ब्रिटिश शासन काल के पश्चात अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की गई। उन ग्रंथों में भी कालिजर के महत्व को ध्यान में रखा गया और इसकी सभ्यता एवं संस्कृति को आदिकालिक माना गया है। एम0 एल0 निगम ने अपनी पुस्तक में उन शैलचित्रों का उल्लेख किया है जो इस क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं।[99] उन पाषाण कालीन अस्त्र-शस्त्रों का भी उल्लेख किया है जो इस क्षेत्र में प्राप्त हुए है। एस0 डी0 त्रिवेदी ने अपनी पुस्तक में कालिंजर के महत्व को प्रमुखता प्रदान की है। उन्होंने प्रागैतिहासिक काल का जिक्र करते हुए इस क्षेत्र के प्राचीन महत्व को स्वीकार किया। उनके अनुसार कालिंजर क्षेत्र का ऐतिहासिक सर्वेक्षण सर्वप्रथम **काकबर्न** ने किया और उन्होंने यहां के गुफा चित्रों की खोज की, इसमें से कुछ गुफा चित्र कालिंजर और फतेहगंज में भी मिले है।[100] पं0 गोरेलाल तिवारी ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथ में कालिंजर को विशेष महत्व प्रदान किया है। उन्होंने अंग्रेजों के शासन के पश्चात कालिंजर परिक्षेत्र की स्थिति का वर्णन सविस्तार किया है।[101] डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल ने भी कालिंजर के महत्व को समझा और उसका वर्णन उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में किया।[102] दीवान प्रतिपाल सिंह ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इस बात के साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं कि कालिंजर एक प्राचीन स्थल था, जहां प्राचीन मकानों के खण्डहर उपलब्ध होते हैं। किले के ऊपर 'बुद्धि तालाब' है। कहते हैं कि चन्देल नरेश कीर्तिब्रम्ह ने उस सरोवर में स्नान किया था और कुष्ट रोग से मुक्त हो गया था। कीर्तिब्रम्ह का अस्तित्व 1241 ई0 में था बल्कि यहाँ 1137 ई0 का एक शिलालेख मिलता है।[103]

डॉ0 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने अपनी ऐतिहासिक पुस्तकों में कालिंजर को महत्व प्रदान किया है। उनके अनुसार सन् 1022 ई0 में कालिंजर पर महमूद गजनवी ने आक्रमण किया किन्तु वह इस दुर्ग को विजित नहीं कर सका। उसे कालिंजर नरेश से संधि करनी पड़ी।[104] इन्हीं की एक दूसरी पुस्तक में एक अन्य उदाहरण मिलता हैं। बाबर के पुत्र हुमायूँ ने कालिंजर पर आक्रमण किया किन्तु वह इसे बिना जीते ही वापस लौट गया।[105] डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे ने कालिंजर को महत्वूपर्ण स्थान प्रदान किया और इसे प्राचीनतम स्थल भी स्वीकार किया है।[106] कविमणि कृष्णदास ने अपनी रचना में इस बात का उल्लेख किया है कि छत्रसाल ने अपने जीवनकाल के अंतिम समय में कालिंजर परिक्षेत्र औरंगजेब से सन् 1690 में छीन लिया था। उसके पश्चात कई बार मुहम्मद बंगस ने इस क्षेत्र को अपने अधिकार में लेने का प्रयत्न किया किन्तु वह सफल नहीं हो सका। मुहम्मद बंगस ने बुन्देलखण्ड पर यह आक्रमण 1724 से प्रारम्भ किया और 1727 तक बराबर जारी रहा। इस युद्ध में बाजीराव पेशवा ने छत्रसाल की मदद की थी।[107] डॉ0 भगवानदास गुप्ता ने अपनी पुस्तक में बाँदा नवाब अलीबहादुर प्रथम के कालिंजर आक्रमण का उल्लेख किया है।[108] बाँदा गजेटियर में भी कालिंजर का उल्लेख सविस्तार मिलता है। इसमें कालिंजर दुर्ग तथा वहां उपलब्ध ऐतिहासिक स्थलों का वर्णन है।[109]

यदि समस्त ऐतिहासिक ग्रंथों का अवलोकन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिंजर का महत्व प्रागैतिहासिक काल से प्रारम्भ होता है क्योंकि इतिहासकारों ने इस क्षेत्र में अनेक प्राचीन स्थल खोजे है। इसके पश्चात सभ्यता के विकास के साथ यह परिक्षेत्र धर्म और राजनीति से जुड़कर महत्वपूर्ण स्थल हो गया। इस परिक्षेत्र में मौर्यों, नागों, पाण्डुवंशियों, कलचुरियों, चन्देलों एवं अन्य नरेशों ने शासन किया। कालिंजर परिक्षेत्र न केवल शक्ति एवं शैवमत के लिए प्रसिद्ध रहा बल्कि यह परिक्षेत्र नाग पंथियों और योगियों के लिए भी महत्वपूर्ण रहा। इस परिक्षेत्र ने जहां एक ओर धार्मिक समन्वय को जन्म दिया वहीं उत्कृष्ट वास्तुशिल्प के उदाहरण भी प्रस्तुत किये।

(4) कालिंजर के संदर्भ में किये गये शोध आदि-

लगभग सन् 1860 में जब अंग्रेजी शासन की स्थापना सम्पूर्ण भारतवर्ष में हो गई थी, उस समय अंग्रेज विद्वानों का ध्यान यहां के उन स्थलों की ओर गया जो पुरातात्विक महत्व के थे। अंग्रेज विद्वानों ने इस पर व्यापक सर्वेक्षण किया और अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत की। इस सर्वेक्षण के अन्तर्गत कालिंजर परिक्षेत्र पर भी विशेष कार्य हुए किन्तु ये सर्वेक्षण कार्य वास्तुशिल्प एवं अभिलेखों से ही सम्बन्धित थे। अंग्रेज विद्वानों ने अभिलेखों को इतिहास लेखन का प्रथम आधार माना। उसी आधार पर प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज भी की गई, जो तद्युगीन इतिहास को उजागर कर सकती थी। इससे बहुत कुछ साक्ष्य उभर कर सामने आये, जो यथार्थ पर आधारित थे किन्तु ये पूर्ण यथार्थ सम्मत नहीं कहे जा सकते थे। कहीं-कहीं पर इतिहास जानने के लिए परम्पराओं और जनश्रुतियों को भी इतिहास का आधार

बनाया गया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार **काकबर्न** ने इस क्षेत्र के शैलचित्रों पर विशेष कार्य किया। इसके पश्चात **वी0 ए0 स्मिथ, कनिंघम** जैसे विद्वानों ने इस परिक्षेत्र में प्राप्त ऐतिहासिक स्मारकों के आधार पर अपने शोध कार्य प्रस्तुत किये। ये शोधकार्य विभिन्न ऐतिहासिक जर्नलों में संग्रहीत किये गये। इनमें प्राप्त अभिलेखों, ताम्रपत्रों एवं मुद्राओं का वर्णन मिलता है किन्तु खेद का विषय है कि कालिंजर परिक्षेत्र के लिए अभी तक किसी विद्वान ने अलग से कोई ध्यान नहीं दिया। जिन विद्वानों ने कालिंजर पर पृथक पुस्तकों का सृजन किया वे न तो इतिहासकार थे और न इतिहास लेखन पद्धति से परिचित थे, इसलिए कालिंजर पर लिखी गई पुस्तकें महत्वपूर्ण होती हुई ऐतिहासिक दृष्टि से व्यर्थ प्रतीत होती है फिर भी हम इस कार्य के लिए श्री गोवर्धनदास त्रिपाठी , श्री हरप्रसाद शर्मा तथा श्री वासुदेव त्रिपाठी की प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने अपने हृदय में छुपे कालिंजर के प्रति अनुराग को पुस्तक के रूप में पर्णित करके एक महान कार्य किया। इससे अनुसंधानकर्ताओं को एक नवीन दृष्टि मिली।

सन् 1947 में भारतवर्ष आजाद हुआ। उसके पश्चात राष्ट्र की प्रगति के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण हुआ, उन योजनाओं के अन्तर्गत कालिंजर परिक्षेत्र को मार्गों और पुलों से जोड़नें का प्रयास किया गया ताकि इतिहास में अभिरूचि रखने वाले विद्वान व जिज्ञासू यहां तक पहुंच सकें और अधूरे शोध कार्य को पूरा कर सके। इस विषय में कुछ शोध कार्य किये गये। पहला शोध कार्य केशवचन्द्र मिश्र का था, जिन्होंने चंदेलों के विषय में शोध किया। उन्होंने यह साबित किया कि चंदेल युग में कालिंजर उनके आधीन था। इसके बाद डॉ0 अयोध्याप्रसाद पाण्डेय ने भी नवीन दृष्टिकोण अपनाकर चंदेलों पर शोध कार्य किया, जिसमें कालिंजर परिक्षेत्र को ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व प्रदान किया। जबलपुर के डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे ने इस परिक्षेत्र में बिखरी पुरातात्विक सामग्री पर शोध कार्य किया। इन्होंने पुरातात्विक सामग्री को अपने शोध का विषय बनाया जो यहां के मूर्तिशिल्प से सम्बन्धित थी। उन्होंने "अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाओं" पर अपना शोध कार्य किया जो प्रशंसनीय है। सतना निवासी डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल ने 'विन्ध्य क्षेत्र के ऐतिहासिक भूगोल' में कालिंजर के कई स्थलों का विषद वर्णन प्रस्तुत किया है। अनेक ऐसे नवीन ऐतिहासिक स्थलों की खोज की है जिनका वर्णन अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होता। ये नवीन प्रतीत होते हैं किन्तु कालिंजर के लिए किये गये ये शोध कार्य सर्वांगीण नहीं है, अधूरे प्रतीत होते हैं।

सन् 1987 के पश्चात कालिंजर को विकसित करने के लिए एक व्यापक योजना बनी। इस योजना को कार्य रूप देने के लिए एक बैठक कालिंजर में आयोजित हुई। बैठक अवश्य हुई मगर सन्तोष जनक कोई कार्य नहीं हुए। श्री राधाकृष्ण बुन्देली ने सन् 1989 में कालिंजर पर एक वीडियो फिल्म बनाने का शुभारम्भ किया और 1992 तक प्रशासन एवं जनता के सहयोग से बनीं। इस फिल्म में कालिंजर के इतिहास, लोक संस्कृति तथा परम्पराओं को नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया। यह फिल्म लोकप्रिय

भी हुई।

जब से पं0 जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय बाँदा में इतिहास विषय की स्नातकोत्तर कक्षाओं का शुभारम्भ हुआ, उसी समय से विभागाध्यक्ष (प्रो0) बी0 एन0 रॉय कालिंजर के प्रति विशेष चिंतित थे। उन्होंने कालिंजर को विकसित करने के लिए कालेज में अनेक ऐतिहासिक सेम्मिनारों का आयोजन किया इसके अतिरिक्त कुछ सेम्मिनारों के आयोजन कालिंजर में भी किये गये। (प्रो0) बी0 एन0 रॉय सर ने कालिंजर को विकसित करने के उद्देश्य से **''कालिंजर ए हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल''** नामक एक पुस्तक का सम्पादन किया, जिसमें श्रीमती आरती पाण्डे एवं डा0 लवकुश द्विवेदी ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया। यह पत्रिका सन् 1992 में पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय बाँदा द्वारा प्रकाशित की गई। पत्रिका के सम्पादक मण्डल में प्रो0 के0 डी0 बाजपेयी, सागर, डॉ0 ओमप्रकाश इलाहाबाद, डॉ0 जे0 एन0 पाण्डे, इलाहाबाद आदि सदस्य रहे। पत्रिका के प्रकाशन में पर्यटन विभाग उत्तर प्रदेश शासन ने अर्थ सहयोग प्रदान किया।

(प्रो0) बी0 एन0 रॉय ने कालिंजर की बहुत अधिक प्रशंसा की है। उनके मतानुसार किसी समय में कालिंजर सैन्य शक्ति का मुख्य केन्द्र था। धार्मिक दृष्टि से वह सम्पूर्ण भारतवर्ष में नीलकण्ठ मंदिर और कालभैरव की मूर्ति के कारण ही जाना जाता था। चंदेल युग में इसका सर्वाधिक विकास हुआ। इसकी ऐतिहासिक महत्ता से प्रेरित होकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग, दिल्ली एवं बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी ने इसके लिए व्यापक शोध सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ किया, ताकि यह क्षेत्र विश्व ऐतिहासिक धरोहर के रूप में मान्यता प्राप्त कर सके। इस प्रयास में काफी कुछ सफलता प्राप्त हुई, मगर यह सफलता पर्याप्त नहीं है, अधूरी है। इसी पत्रिका में अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के शोध प्रकाशित किये गये हैं, जिनमें नवीन दृष्टिकोण अपनाया गया है।

इस पत्रिका में के0 डी0 बाजपेयी का एक महत्वपूर्ण शोध पत्र है, जिसमें उन्होंने कालिंजर को पुरातात्विक महत्व का क्षेत्र घोषित किया है। उन्होंने अपने शोध पत्र में ऐसे नवीन स्थलों को शामिल किया है जिनका सम्बन्ध महाकाव्य काल, पुराण युग तथा बौद्धों एंव जैनियों से सम्बन्धित था। यह भगवान शिव का प्रमुख उपासना केन्द्र था। कालिंजर में तान्त्रिकों का भी विशेष स्थान रहा है।[110]

वी0 सी0 श्रीवास्तव ने अपने लेख में कालिंजर की संस्कृति को उभारने का प्रयास किया है। इनके अनुसार सम्पूर्ण भारत में एक विशिष्ट सांस्कृतिक एकता थी, जिसे कालिंजर में भी देखा जा सकता था। उन्होंने अपने लेख में खजुराहो, देवगढ़, कालिंजर, महोबा, ओरछा, बरूआसागर, सिरोन, खुर्द आदि स्थलों में प्राप्त सांस्कृतिक सम्पदा में कई समानताऐं प्राप्त की और यह बताने का प्रयत्न किया कि इस क्षेत्र में ऐसे स्थल मिले हैं जिनका सम्बन्ध बाल्मीकि, वेदव्यास, अत्रि, अगस्त्य से था। ऐतिहासिक काल में चंदेल नरेश धंग, विद्याधर, कीर्तिवर्मन, वीरसिंह आदि इस क्षेत्र में रहे। इस क्षेत्र के साहित्यकारों में कृष्ण मिश्र,

वत्सराज, तुलसीदास, केशवदास आदि का महत्वपूर्ण मुकाम रहा।[111]

'कालिंजर ए हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल' पुस्तक के सम्पादक तथा पं0 जे0 एन0 पी0 जी0 कालेज बाँदा के इतिहास विभागाध्यक्ष (प्रो0) बी0 एन0 रॉय ने अपने सुप्रसिद्ध लेख में कालिजर दुर्ग की प्रशासनिक व्यवस्था का उल्लेख किया है। इन्होंने इस बात को माना है कि यह दुर्ग चंदेलों के अधिकार में सन् 930-950 के मध्य आया तथा उन्होंने जो प्रशासनिक व्यवस्था यहां कायम की वह इस प्रकार से है-

1-राजा 2- आमात्य 3-राष्ट्र 4-दुर्ग 5-कोष 6-सेना 7-मित्रानि। चंदेलों ने अपनी दुर्ग रक्षा के लिए अनेक उपाय किये, साथ ही विभिन्न स्थानों में आठ दुर्गों का निर्माण कराया और 21 स्थानों में विजय पताका फहराई । जिन स्थानों में इनका राज्य था, उनमें खजूर वाटिका, वारिदुर्ग, नंदीपुरा, कीर्तिगढ़ दुर्ग, गोपीगिरि, कालिंजर, स्योंढ़ा आदि दुर्ग शामिल थे। चंदेल अपने समय के बहुत शक्तिशाली शासक थे।[112] इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के प्रवक्ता ने अपने लेख में इस बात को सिद्ध करने का प्रयास किया है कि चंदेलों के शासनकाल में कालिंजर परिक्षेत्र एक विशिष्ट संस्कृति का प्रतीक माना जाता था। चन्देलों की उत्पत्ति के संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान चन्दवरदाई ने 'पृथ्वीराजरासो' में वर्णित उस दंत कथा का उल्लेख किया हैं जिनमें चंदेलों को ब्राह्मण कन्या और चन्द्रमा से उत्पन्न होना बताया गया है। यह दंत कथा पृथ्वीराजरासो के महोबाखण्ड में है। अन्य कथाओं में चंदेलों को अग्नि से उत्पन्न राजपूत माना है। कुछ लोग इन्हें हूण, भारशिव एवं गौणों से सम्बन्धित बताते है लेकिन यदि सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से देखा जाये तो इस क्षेत्र में ब्राह्मणों का अस्तित्व ही सर्वोपरि रहा। जब चंदेल सत्ता में आये तो उन्होंने ब्राह्मणों को समुचित सम्मान दिया। कई जगहों में भूमिदान दी। नन्यौरा में एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है उसमें भी इस बात का उल्लेख है । यह ताम्रपत्र धंग के समय का है। इस युग में क्षत्रियों को भी प्रोत्साहित किया गया, जिन्होंने साम्राज्य वृद्धि में सहयोग किया। चंदेल युग में उन कलाकारों को समादर प्रदान किया गया, जिन्होंने चिरस्मरणीय वास्तुशिल्प को जन्म दिया।[113]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के रीडर जे0 एन0 पाण्डे ने अपने लेख में कालिंजर दुर्ग की भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया है। इनके मतानुसार कालिंजर दुर्ग एक पहाड़ी के ऊपर $25^{0}1$ अक्षांश उत्तर ओर $80^{0}29$ देशान्तर पूर्व में स्थित है। यह दुर्ग पन्ना पर्वत श्रेणी का एक भाग है। बाँदा मुख्यालय से इसकी दूरी 56 किलो मीटर है। प्रसिद्ध विद्वान अलेक्जेण्डर कनिंघम का उदाहरण देते हुए इन्होंने कहा कि पहली शताब्दी से चौथी शताब्दी तक तथा उसके पश्चात छठी एवं सातवीं शताब्दी तक इस दुर्ग का निर्माण हुआ। इसका धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व बढ़ा। दसवीं शताब्दी में यह दुर्ग शक्ति का मुख्य केन्द्र बन गया। यह दुर्ग शत्रु को उत्तर से दक्षिण जाने में बाधा उपस्थित करता था। कालिंजर दुर्ग की पहाड़ी की ऊंचाई लगभग 375 मीटर है। यहां के निचले स्तर से इसकी ऊंचाई 215 मीटर है। कालिंजर दुर्ग ऊपरी

सतह पर 6 किलो मीटर चौड़ा और 8 किलो मीटर लम्बा है। दुर्ग की निचली बस्ती में एक दीवार है जो बस्ती को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से बनाई गई थी। कालिंजर बस्ती में प्रवेश करने के लिए इस निचली दीवार में कामता, पन्ना एवं रींवा फाटक का निर्माण किया गया था। आज भी कालिंजर बस्ती को तरहटी नाम से पुकारा जाता है। कालिंजर में कई मुहल्ले हैं जैसे सदर बाजार, खुर्द बाजार, गोपाल सागर आदि। इसी के नजदीक कटरा, कालिंजर भी है। इसके पास के गांव मझगवां, सिद्धपुर, नौगवां आदि इन्होंने कालिंजर का प्रारम्भिक परिचय बहुत ही सुन्दर ढंग से दिया है। उन नदियों का भी उल्लेख किया है जो कालिंजर के आस-पास प्रवाहित होती है। इन्होंने लखनपुर सेहा का वर्णन किया है जो बागे नदी के किनारे लगभग यहां से 16 किलोमीटर दूर है। इनके वर्णानुसार इस परिक्षेत्र में सर्वेक्षण के दौरान अनेक मुद्राऐं भी मिली थी। यह नीलकण्ठ मंदिर का निर्माण गुप्त युग में स्वीकार करते है और कहते हैं कि उसका बाहरी भाग चंदेल नरेश कीर्तिवर्मन ने बाद में बनवाया था। उनके अनुसार जो भी वास्तुशिल्प यहां निर्मित हुआ उसमें वास्तुविज्ञान का सहारा लिया गया है।[114]

विद्वान एवं इतिहास के पूर्व प्रवक्ता (बाँदा) लवकुश द्विवेदी ने कालिंजर दुर्ग को एक ऐसा स्थल माना है जिसका अस्तित्व हर युग में रहा। भौगोलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए ये भी अपने पूर्व लेखक जे0 एन0 पाण्डे के दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं और यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से कालिंजर वास्तव में महत्वपूर्ण स्थल है। उनके मतानुसार वैदिक साहित्य में भी इसका उल्लेख मिलता है। कनिंघम का उदाहरण देते हुए ये कहते हैं कि वैदिक युग में कालिंजर श्राद्ध तीर्थ के नाम से विख्यात था। ऋग्वेद में दो नदियों का उल्लेख है जिन्हें सीता और असीता के नाम से पुकारा गया है जिनका अर्थ श्राद्ध तीर्थ से लगाया जाता है। इसी प्रकार विद्वान पालमी ने भी तमसिस क्षेत्र को कालिंजर से सम्बन्धित बताया था। ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में यह क्षेत्र चेदि महाजनपद का एक भाग था। धार्मिक दृष्टि से इसका महत्व था। इसके पश्चात यह क्षेत्र काली और शिव का संयुक्त तीर्थ स्थल बना। जैन साहित्य में भी कालिंजर का उल्लेख मिलता है किन्तु बौद्ध साहित्य में इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है। व्हेनसांग, अलबरूनी, फरिश्ता, हसन निजामी, इब्नबतूता एवं अन्य मुस्लिम इतिहासकारों ने कालिंजर के वर्णन अपनी पुस्तकों में प्रस्तुत किये है। कालिंजर का अस्तित्व गुप्त युग में भी रहा। भीटा में कुछ मुद्रायें मिली हैं, जिनमें कालिंजर भट्टारक अंकित है।प्रतिहारों के अभिलेख में कालिंजर मण्डल नाम का उल्लेख मिलता है। चंदेलों के कई लेखों में कालिंजर का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार बसु चेदि का स्थल था। उस समय इसे ब्रह्म तीर्थ के नाम से पुकारा जाता था। मौखरियों के पश्चात कुछ समय तक यह कलचुरियों के शासन काल में रहा। इसकी पुष्टि कालिंजर और डहाल के शासकों के अभिलेखों में मिलती है नागभट्ट द्वितीय के शासन काल तक यह क्षेत्र गुर्जर प्रतिहारों के अधिकार में रहा। उसके बाद चंदेल यहां के स्वतंत्र शासक हुए। सन् 1545 में यह क्षेत्र शेरशाह सूरी के अधिकार में आया, फिर सन् 1569 में इसे मुगल सम्राट अकबर ने अपने

अधिकार में ले लिया। सन् 1680 के लगभग मुगलों के खिलाफ बुन्देलों ने अभियान छेड़ा। उसके बाद यह क्षेत्र बुन्देलों के कब्जे में आ गया। कुछ समय पश्चात कायम जी चौब यहां का किलेदार नियुक्त किया गया। जब मुहम्मद बंगस ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया, उस समय बुन्देला नरेश की सहायता मराठा सरदार बाजीराव पेशवा ने की थी। छत्रसाल ने अपनी पुत्री मस्तानी कुंवर को बाजीराव को सौंप दिया था। मस्तानी के पौत्र अलीबहादुर प्रथम ने इस दुर्ग में 1802 में आक्रमण किया। इसकी मृत्यु भी यहीं हुई। सन् 1822 में कालिंजर दुर्ग अंग्रेजों के अधिकार में रहा।जब अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध 1857 की क्रान्ति हुई उस समय यह दुर्ग महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। इस समय अंग्रेज कैप्टन रेमिंगटन ने कालिंजर दुर्ग में शरण ली। तत्पश्चात यह दुर्ग 1947 तक अंग्रेजों के शासन में बना रहा। आज विविध दृष्टिकोणों से यह दुर्ग विचारणीय है।1. दुर्ग क्षेत्र, 2. धार्मिक दृष्टिकोण 3. शिव धर्म से सम्बन्धित परिक्षेत्र तथा उन ग्रंथों के अध्ययन की भी आवश्यकता है जिनमें इस क्षेत्र का वर्णन छिपा है।[115]

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की शोध छात्रा कु0 मधुमिता श्रीवास्तव ने कालिंजर की क्षेत्रीय संस्कृति में राष्ट्रीय एकता की भावना के दर्शन किये है। यह बात सराहनीय है। उनके मतानुसार भारतीय संस्कृति का जैसे-जैसे विकास हुआ वैसे-वैसे उसमें अन्य क्षेत्रीय संस्कृतियों का प्रभाव पड़ता गया और वे राष्ट्रीय एकता की भावना से जुड़ती गईं। वे कहती है कि कालिंजर इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि यहां की परम्परागत संस्कृति में राष्ट्रीय एकता के दर्शन किये जा सकते हैं। कालिंजर दुर्ग में जो समन्वित संस्कृति के साक्ष्य मिलते हैं, उनसे यह बात साफ जाहिर होती है कि इस क्षेत्र में हिन्दू धर्म से सम्बन्धित शिव धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म की मूर्तियां मिलती हैं, इसमें गणेश,नंदी ,कालभैरव, चामुण्डा, विष्णु, लक्ष्मी, नरसिंह, वाराह आदि की मूर्तियां है। यहां पर जो सात द्वार मिलते हैं। उनका सम्बन्ध सूर्य उपासना से लगाया जा सकता है, हो सकता है यह क्षेत्र कभी रवि क्षेत्र के नाम से जाना जाता था। ऐसा लगता है कि अशोक सम्राट ने जिस धर्म समन्वय की नीति को अपनाया उसका उदाहरण यहां मिलता है।[116]

कालिंजर क्षेत्र केवल इतिहास के लिए ही प्रसिद्ध नहीं था अपितु खनिज सम्पदा एवं वन औषधि की दृष्टि से भी इसका महत्व था। कालिंजर बाँदा जनपद में एक ऐसा स्थल है जहां नाना प्रकार की वन औषधियाँ मिलती है। इस क्षेत्र में कई विद्वानों ने शोध कार्य किये हैं। इनमें राय चौधरी, घोष, गुप्ता, खान एवं शर्मा, गोपाल और शाह, सिंह और सिन्हा ने शोध कार्य किये हैं। इनके अलावा नथवत और उन्याल ने भी यहां पर औषधियां खोजी। यह औषधियाँ निम्न हैं-

सीताफल- इसकी पत्तियां और बीज औषधि के काम आते हैं।

गुमाय- इसके बीज औषधि के काम आते हैं।

हरर- इसका उपयोग बुखार के लिए किया जाता है।

मदनमस्त- इसकी पत्तियां एवं जड़ उबाल कर पी जाती हैं। कंघी की पत्तियां भी उबालकर पी

जाती हैं।

गोरख इमली- इसका प्रयोग अस्थमा के लिए किया जाता है।

मारोफली- इसका उपयोग उदर रोग के लिए किया जाता है।

कुरिया बेल- इसका इस्तेमाल आवं रोग के लिए किया जाता है।

घुनचू- पत्तियां प्रदर रोग में दी जाती हैं।

इनके अलावा भी फलदू ,कूटा, सिंदूरी, नरगुण्डी, रूसो, सहसमूसली, लालपथरचटा, गूमा, लटजीरा, दुधई, शिखा आदि औषधियाँ यहां उपलब्ध होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि कालिंजर परिक्षेत्र स्वास्थ्य लाभ के लिए उपयोगी था। यहां यदि व्यापक खोज की जाये तो अन्य जीवन उपयोगी वस्तुऐं भी प्राप्त हो सकती है।[117]

पूर्व पुलिस उपअधीक्षक श्री तहसीलदार सिंह इतिहास के एक उत्कृष्ट विद्वान थे। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास कि पुराणों के रचयिता श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास यही के निवासी थे। उनका जन्म भी यहीं हुआ। उन्होंने स्वरचित 18 पुराणों में कालिंजर को विशेष स्थान प्रदान किया। इनके अनुसार महाभारत सबसे बड़ा महाकाव्य है जिसकी समतुलना विश्व का कोई अन्य महाकाव्य नहीं कर सकता। उनके शिष्य वैसम्पायन ने इस ग्रंथ को लिपि बद्ध किया। परम्परा के अनुसार श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास ने जिन पौराणिक कथाओं का संकलन किया, उनका लेखन कार्य उनके शिष्य ने ही किया। इसके पूर्व भी व्यास परम्परा पूरे भारतवर्ष में प्रचलित थी किन्तु खेद इस बात का है कि व्यास के जन्म से सम्बन्धित कोई बहुत बड़ा ऐतिहासिक उदाहरण नहीं मिलता। केवल यही अनुमान लगाया जा सकता है कि चेदि वंश के नरेश बसु का राज्य सुक्तमती नदी के किनारे सुक्तमती नगरी में था। बसु का सम्पर्क अद्रिका नामक एक कन्या से हुआ, जिससे एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्र का नाम मत्यराज एवं पुत्री का नाम मत्सगन्धा था, जो बाद में सत्यवती के नाम से प्रसिद्ध हुई। सत्यवती से ऋषि परासन का संसर्ग हुआ, जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कालान्तर में इस पुत्र का नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास हुआ। इनकी जन्म भूमि के विषय में खोज करने के प्रसास किये गये। प्रो0 के0 डी0 बाजपेयी के साथ राधाकृष्ण बुन्देली, तहसीलदार सिंह तथा डॉ0 लवकुश द्विवेदी शेरपुर स्योढ़ा गये वहां उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार उसे सुक्तमती नगरी घोषित किया। उसके बाद नरैनी क्षेत्र के अद्रि नामक ग्राम गये। वहां आस-पास के स्थलों में निवास करने वाले मल्लाहों की प्रचलित परम्पराओं का अध्ययन किया और वहां मिलने वाले साक्ष्यों के अनुसार अद्रि की जन्मभूमि घोषित की। तहसीलदार सिंह के अनुसार नरैनी तहसील का स्योढ़ा गांव जो केन के तट पर स्थित है, वही सुक्तमती नगरी है। के0 डी0 बाजपेयी ने भी इसकी पुष्टि की है। उसी आधार पर वेदव्यास की जन्म भूमि का निर्धारण किया गया है क्योंकि किसी न किसी रूप में वह भी यहां से सम्बन्धित थे।[118]

श्री जगन्नाथ पाल इस बात को स्वीकार करते है कि प्रागैतिहासिक काल में भी कालिंजर एक

महत्वपूर्ण स्थल रहा। उनके अनुसार कालिंजर के समीप पाषाण युगीन स्मृति चिन्ह विद्यमान हैं। इस परिक्षेत्र में प्रवाहित होने वाली अनेक सरितायें हैं। इसलिए निश्चित ही इन नदियों के किनारे पाषाण युगीन मानव निवास करता रहा होगा। प्रसिद्ध विद्वान काकबर्न का उदाहरण देते हुए वह इस बात को सिद्ध करते हैं कि यहां पाषाण युगीन हथियार थियोवाल्ड एवं काकबर्न ने तलासे।[119]

इस क्षेत्र के इतिहास पर विशिष्टीकरण रखने वाले सुशील कुमार सुल्लेरे का यह दृष्टिकोण नितान्त सत्य प्रतीत होता है कि पूर्व मध्य युग में कालिंजर राजनीतिक शक्ति का प्रमुख केन्द्र था। जिस समय चंदेलों का शासन इस क्षेत्र में स्थापित हुआ उस समय भारतवर्ष में बाहरी आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। चन्देलों ने अपने बाहुबल से कालिंजर, अजयगढ़, खजुराहो, महोबा, गोपगिरि, कीर्तिगिरि, मदनपुर आदि में अपने नगरों की स्थापना की और शक्ति का विस्तार किया। इन्होंने दुर्ग को भी बड़े अच्छे ढंग से परिभाषित किया। दुर्ग उस स्थल को कहते है जहां से छिपकर युद्ध किया जाये। सामान्य जन की रक्षा करे, मित्र को शरण दे, शत्रु का विनाश करे तथा अन्य विरोधियों से राष्ट्र की रखा करे, उस स्थल को दुर्ग कहते हैं। कालिंजर दुर्ग इन उद्देश्यों में बिल्कुल खरा उतरता है। प्रसिद्ध विद्वान के अनुसार महाभारत में कालिंजर को लोकविश्रुत पुराणों में कालिंजर को नागकरण स्थित तीर्थ आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। कुछ पौराणिक ग्रंथों में इसे ऊखल कहा गया है। बहुत से पुराणों में इसे तीर्थ स्थल, श्राद्धतीर्थ एवं साधना स्थल कहा गया है। अभिलेखीय साक्ष्यों से यह पुष्टि की जा सकती है कि यहां का शासक अपने नाम के साथ **'कालंजरपुरवराधीश्वर'** शब्द जोड़ता था। इस परिक्षेत्र में धंग, गंड आदि शक्तिशाली शासकों ने शासन किया। यहां के शासकों ने महमूद गजनवी जैसे आक्रमणकारियों का मुकाबला किया। महमूद का आक्रमण यहां सन् 1022 ई0 में हुआ। इस समय यहां का शासक विद्याधर था।[120]

हरिनारायण दुबे का मानना है कि कालिंजर पौराणिक युग में एक महान तीर्थ के रूप में स्वीकार किया जाता था। इस स्थल की प्राकृतिक रमणीयता प्रत्येक श्रृद्धालु को अपनी तरफ आकर्षित करती थी। व्यक्तियों को यहां शान्ति मिलती है। पुराण युग में मुख्य तीर्थ कालिंजर, प्रयाग, नैमिष, कुरूक्षेत्र गंगाद्वार, अवन्तिका, अयोध्या, मथुरा, अमरावती, सरस्वती, गंगासागर, संगम, कांती, सप्तगोदावरी, प्रभास, बद्रिकाआश्रम, पुरूषोत्तम, गोकर्ण, भृगुकच्छ, पुष्कर, श्रीपर्वत तथा धारा तीर्थ माने जाते थे। महाभारत में कालिंजर पर्वत को हिरण्य बिन्दु के नाम से पहचाना गया। इसका उल्लेख गौतम, वशिष्ठ, बौधायन तथा वशिष्ठ के धर्मसूत्र में भी मिलता है। यह केवल शक्ति तीर्थ के नाम से ही नहीं जाना जाता था बल्कि शिव तीर्थ के नाम से भी इसका महत्वपूर्ण स्थान था। इस समय अनेक तीर्थ स्थल महत्वपूर्ण थे- वस्त्रापथ (जूनागढ़ गिरनार), रूद्रकोटि, सुवणाक्ष, सिद्धेश्वर, महालय, गोकर्ण, रूद्रकर्ण, अमरकण्टक, महाकाल (उज्जैन), कायावरोहरण (कारवार गुजरात) कालंजरवन (कालउन्जर), शुकंवर्ण और स्थलेश्वर (थानेश्वर) आदि तीर्थ स्थल शिव उपासना के प्रमुख केन्द्र हैं।[121]

कालिंजर महत्वपूर्ण स्थल इसलिए भी है क्योंकि यहां का वास्तुशिल्प अत्यन्त उच्चकोटि का है। पुरातत्व विभाग झाँसी के प्रभारी अधिकारी श्री अम्बिकाप्रसाद सिंह का मानना है कि वास्तुशिल्प एवं पुरातत्व की दृष्टि से यदि यहां प्राप्त सामग्री का मूल्यांकन किया जाय तो यह अति विशिष्ट सामग्री सिद्ध होती है। यहां का दुर्ग ही वास्तुशिल्प की दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि का है । महाभारत में दुर्गों के छः प्रकार बताये गये हैं। धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्य दुर्ग, अब्दुर्ग एवं वनदुर्ग हैं। इन दुर्गों की पुष्टि अन्य पुराणों ने भी की है। कालिंजर दुर्ग के ऊपर जो समतल भाग है। वहां उपलब्ध गुहा मन्दिर (नीलकण्ठ) स्थापत्य शिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है। यहां प्राप्त मूर्तियों में सहस्रलिंगी शिव, रावण अनुग्रह आलिंगन बद्ध उमाहेश्वर की अत्यन्त उत्कृष्ट मूर्तियां है। यहां चतुर्भुजी शिव की मूर्तियां भी है। यहां रावण की एक ऐसी प्रतिमा मिली है, जिसमें उसे कैलाश पर्वत उठाता हुआ दिखाया गया है। यहां भगवान शिव की ऐसी भी मूर्तियाँ हैं जिसमें लिंग एवं शिवमूर्ति दोनों ही अंकित है। यह वास्तुशिल्प की दुर्लभ कलाकृतियां है।[122]

रमाशंकर पाण्डे कालिंजर के इतिहास को उजागर करते हुए इस बात को सिद्ध करना चाहते हैं कि इस परिक्षेत्र में जो अभिलेख मिले हैं वे यहाँ के इतिहास के प्रमाणित साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उनके मतानुसार कालिंजर से सम्बन्धित सर्वप्रथम अभिलेख विक्रमी संवत् 1011 का प्राप्त होता है। यह अभिलेख खजुराहो में उपलब्ध हुआ है इस अभिलेख के अनुसार यशोवर्मन देव ने कालिंजर को जीत लिया था। गुर्जर प्रतिहार वंश के प्रसिद्ध शासक मिहिर भोज का एक ताम्रपत्र मिलता है जिसमें कालिंजर मण्डल के संदर्भ में विवरण है। इसके पश्चात परमार्दिदेव के समय के अभिलेख भी यहां मिलते है। ये अभिलेख 1166-1202 तक के हैं । यहां के प्रमुख अभिलेखों में नीलकण्ठ स्तम्भ अभिलेख विक्रमी संवत् 1186 का है तथा द्वितीय अभिलेख खण्डित पाषाण स्तम्भ अभिलेख है। यह विक्रमी संवत् 1187 का है। यह अन्य अभिलेख जो नीलकण्ठ मंदिर के प्रवेश द्वार पर मिला है, वह विक्रमी सवंत 1188 का है। एक दूसरा अभिलेख जो कालिंजर शिलालेख के नाम से विख्यात है विक्रमी संवत् 1192 का है। यह अभिलेख नरसिंह प्रतिमा के बगल में अंकित है। कालिंजर की शैवगुफा में एक अभिलेख विक्रमी संवत् 1194 का प्राप्त हुआ है, जिसमें शिव की स्तुति है। एक अन्य अभिलेख शिलालेख के रूप में यहां मिला है, जो विक्रमी संवत् 1258 का है। यह अभिलेख एक चिकने पत्थर में है। इसमें शिव-पार्वती की स्तुति है। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले अभिलेख खजुराहो में प्राप्त अभिलेखों की संख्या से काफी कम है, फिर भी इन अभिलेखों का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व है।[123]

डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल कालिंजर दुर्ग के ऊपर स्थित मृगधारा नामक स्थल को पवित्र तीर्थ स्थल मानते है। वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि कालिंजर दुर्ग को बड़े-बड़े महर्षियों ने अपना तपस्थल बनाया इसकी महत्ता वेदों, महाकाव्यों, पुराणों, बौद्ध एवं जैन धर्म ग्रंथों में वर्णित है। मृगधारा नामक स्थल में एक विशाल शिलाखण्ड को काटकर दो कक्ष बनाये गये थे। यद्यपि उनका जीर्णोद्धार होता रहा है, फिर भी उसका

मूल स्वरूप विद्यमान है। उसकी पिछली भित्तिपर मृगों के समूह अंकित है। यहां सदैव जल धारा प्रवाहित होती रहती है। ऐसा अनुमान है कि इस स्थल पर कोटितीर्थ तालाब से पानी आता रहता है। यहां अंकित सात मृगों का आख्यान हिन्दू ग्रंथों के अतिरिक्त जैन ग्रंथ उत्तरायन में मिलता है। हरिवंश पुराण में इसका महत्व यह बतलाया गया है कि यहां श्राद्ध करने से पुण्य लाभ होता है। यहां अंकित सप्त हिरणों को विश्वामित्र के सात पुत्रों की संज्ञा दी गई है। वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र, पिंशुन, कवि, खसृम (आकाश में विचरने वाला) और पितृवर्ती है। उन्होंने इस स्थल को भागवत पुराण में वर्णित जड़भरत के आख्यान से भी जोड़ा जाता है।[124]

रमाकान्त तिवारी ने कालिंजर इतिहास पर प्रकाश डालते हुए इस बात को स्वीकार किया है कि उत्तर भारत में चंदेल, कलचुरि, परमार चौहान, गहड़वाल आदि राजवंशों का उदय हुआ इन्होंने अपने राज्य का उत्कर्ष करके कालिंजर क्षेत्र को भी प्रभावित किया है। सन् 950 ई0 से सन् 1308 ई0 तक चंदेलों का व्यापक उत्कर्ष हुआ। इन्होंने अपने राज्य का विस्तार ललितपुर, झाँसी, जालौन, हमीरपुर, बाँदा, दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर एवं पन्ना तक किया। इसके अतिरिक्त सागर, दमोह तथा ग्वालियर तक इनके राज्य का विस्तार हुआ। चन्देल राज्य में मड़फा, कालिंजर, अजयगढ़, महोबा, वीरगढ़, खजुराहो, देवगढ़ और गोपीगिरि प्रमुख दुर्ग थे। इन्होंने अपने दुर्गों में देवालय, उद्यान तथा राजमहल आदि स्थलों का निर्माण कराया। यह गढ़ सुदृढ़ होते हुए भी कभी-कभी पराजय का कारण बन जाते थे। बाहरी आक्रमणकारी इन दुर्गों को घेर लेते थे। 'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' नामक ग्रंथ से यह पता लगता है कि सन् 1170 से 1194 ई0 तक गहड़वाल वंश के शासक जयचन्द्र ने कालिंजर दुर्ग को घेरा किन्तु वह इसे जीत नहीं सका। इससे यह सिद्ध होता है कि रणनीति की दृष्टि से यह दुर्ग सुदृढ़ था। कालान्तर में युद्धनीति के परिवर्तित हो जाने के कारण शासकों को पराजय का मुंह देखना पड़ा क्योंकि वे युद्ध में विजयी होने के लिए जन्त्र-मन्त्र एवं पूजा-पाठ पर अधिक विश्वास करने लगे थे।[125]

डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय का ध्यान भी कालिंजर की ओर गया। उन्होंने 'कालिंजर के शौर्य स्मारक मूर्ति शिल्प और साहित्य' पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तक की संरचना सन् 1991 में की। इस लघु ग्रंथ में बहुत ही गम्भीरता से उन सभी पहलुओं पर विचार किया गया है जिनकी आवश्यकता कालिंजर विकास के लिए है।[126] इसी प्रकार तेज प्रकाश श्रीवास्तव ने बुन्देलखण्ड का प्राचीन दुर्ग कालिंजर पर अपना लघु शोध-प्रबन्ध सन् 1990 में प्रस्तुत किया। यह लघु शोध-प्रबन्ध भी कालिंजर दुर्ग के विषय में अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। इसमें कालिंजर का राजनीतिक इतिहास, धार्मिक महत्व , सामरिक महत्व, पुरावशेष, देव प्रतिमाऐं आदि वर्णित है।[127]

यदि हम (प्रो0) बी0 एन0 राय द्वारा सम्पादित "कालिंजर ए हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल" का गम्भीरता से अध्ययन करें, तो निश्चित ही हम श्री रॉय की बार-बार प्रशंसा करेंगे, क्योंकि हम इस ग्रंथ

को संकलन ग्रंथ न मानकर कालिंजर के लिए किये गये एक नवीन शोध के रूप में ही स्वीकार करते हैं। इस ग्रंथ संकलन में ख्याति प्राप्त इतिहासकारों ने अपने विविध दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं, जिसमें पुरापाषाण युगीन सभ्यता -संस्कृति से लेकर वर्तमान युग तक के कालिंजर के विषय में पूर्ण जानकारी हो जाती है। यह जानकारी धर्म, संस्कृति, राजनीति, पुरातत्व, खनिज सम्पदा से पूर्ण सम्बन्धित है। निश्चित ही इस ग्रंथ के समस्त लेखक और सम्पादक मण्डल धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने कालिंजर की लुप्त होती गरिमा को पुनः महिमामण्डित करने का भरपूर प्रयास किया है।

कालिंजर के संदर्भ में इतना सब कुछ होने के बावजूद भी ऐसा लगता है कि शोध की दिशा में अभी भी कुछ अधूरापन है। मेरी समझ में इसकी तरफ उपरोक्त विद्वानों का ध्यान नहीं गया। प्रश्न यह है कि जब कालिंजर इतिहास एवं पुरातत्व की दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण स्थल है तो फिर इस महान स्थल के प्रति पर्यटकों का ध्यान आकर्षित क्यों नहीं होता। जितनी अधिक मात्रा में पर्यटक ताजमहल देखने के लिए आगरा जाते हैं तथा खजुराहो भी पर्यटक अधिक से अधिक संख्या में जाते है उतनी ही संख्या में पर्यटक कालिंजर क्यों नहीं आते, जबकि यह चंदेलकालीन वास्तुशिल्प का उद्‌गम स्थल है और इसके आस-पास महत्वपूर्ण पुरासम्पदा बिखरी पड़ी है। कुछ मंदिर तो खजुराहों से भी अच्छे है। पाथरकद्दार में वेश्या की मजार हैदराबाद की चारमीनार जैसे ऐतिहासिक स्थल हैं। यदि कालिंजर पर शोध कार्य पर्यटन के आधार पर किया गया होता तो यह क्षेत्र निश्चित ही विकसित हो गया होता।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. ऋग्वेद, 7, 5, 37-39 ।
2. विष्णुपुराण, भाग 2, 329 ।
3. गरुणपुराण, 81, 18, 19 ।
4. वायुपुराण, 23, 104 ।
5. वही, 77, 93 ।
6. कूर्मपुराण, 36, 35-38 ।
7. वामनपुराण, 90, 27 ।
8. बाल्मीकि, रामायण, उत्तरकाण्ड, प्रशिप्त: सर्ग: 7, 2, 39 ।
9. वेदव्यास, महाभारत, 1, 63, 2, 58, 4, 11-12 ।
10. वही, आरण्यकपर्व, 3, 85, 13-15 ।
11. भागवतपुराण, 6, 4, 19, 2 ।
12. वही, 5, 8, 30 ।
13. जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग 17, पृष्ठ 15 ।
14. पद्मपुराण, भूमिखण्ड, 91, 36, 92, 1, 90, 34 ।
15. वही, आदिखण्ड, 38, 15, 39, 54, 91,36 ।
16. वही, उत्तरखण्ड, 237, 67 ।
17. वही, 132, 63 ।
18. स्कन्दपुराण, 4, 6, 25 ।
19. ब्रह्मपुराण, 2, 146, 1 ।
20. कनिंघम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 21, पृष्ठ 22 ।
21. अग्नि पुराण, 109, 23 ।
22. मत्स्य पुराण, 23,109, 181, 26-27, 13, 32 ।
23. हरिवंश पुराण, 1,21, 24-27 ।
24. वही, 1, 20-21 ।
25. देवीभागवत पुराण, उत्तरार्द्ध, 30, 62, 38-39 ।
26. कालंजर महात्म्य, अध्याय 1 ।
27. श्रीवास्तव, रमेशचन्द्र, बाँदा वैभव, बाँदा, 1994, पृ0 9-10 ।
28. कृष्णदास, बुन्देलखण्ड के कवि, प्रथम संस्करण, पन्ना, जेठ बदी 11 संवत् 2025, पृ0 11 ।

29. वही, पृ0 5 ।

30. वही, पृ0 9 ।

31. वही, पृ0 30 ।

32. वही, पृ0 50 ।

33. वही, पृ0 108 ।

34. भूषण, शिवराज, छन्द, 26-29 ।

35. सिंह, दीवान प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक, बनारस, 14 फरवरी सन् 1929, पृ0 268-274

36. त्रिपाठी, मोतीलाल 'अशान्त', बुन्देलखण्ड दर्शन, झाँसी, 1986, पृ0 2-5 ।

37. अजमेरी, मुंशी, बुन्देलखण्ड दर्शन, पृ0 10 ।

38. जलज, जवाहरलाल (गीतकार), कालिंजर दर्शन फिल्म, गीत संख्या 1 एवं 4 ।

39. वर्मा, वृन्दावनलाल, रानी दुर्गावती, झाँसी, समस्त ग्रंथ ।

40. श्रीवास्तव, रमेशचन्द्र, पूर्वो0, पृ0 85-96 ।

41. इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग 37, पृ0 135 ।

42. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1895, पृ0 255,: पाजिटर, एफ0 ई0, एन्श्येन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीसन्स, दिल्ली, 1962, पृ0 259, 269, 281 ।

43. कनिंघम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 2, पृ0 412-413, भाग 21, पृ0 58 ।

44. वाटर्स, भाग 2, पृ0 251 ।

45. राय, हेमचन्द्र, डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, भाग 2, कलकत्ता, 1936, पृ0 668 ।

46. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 20, पृ0 126 ।

47. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, भाग 44, पृ0 29-33 ।

48. आर्क्योलॉजिकल सर्वे इण्डिया एनुवल रिपोर्ट, 1936-1937, पृ0 88 ।

49. रोनाल्ड, फ्रेगमेन्ट अरबस, पृ0 186 ।

50. सचाऊ, भाग 1, पृ0 202 ।

51. गिब्स, अनुवाद, इब्नबतूता, पृ0 226 एवं 336 ।

52. विलसन, संस्कृत डिक्शनरी, पृ0 216-217 ।

53. पॉगसन, डब्ल्यू0 आर0, हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलाज, दिल्ली, 1974, पृ0 139 ।

54. फ्यूहरर, आर्क्योलॉजिकल सर्वे लिस्ट ऑफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज, पृ0 313 ।

55. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग 14, पृ0 310-313 ।

56. सेक्रिड बुक ऑफ दि ईस्ट, भाग 45, पाद टिप्पणी 3, पृ0 57 ।

57. एलिमेंट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, जिल्द 2, भाग 1, पृ0 82-84 ।

58. पाठक, विशुद्धानन्द, प्वालिटिकल हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, लखनऊ, 1990, पृ0 220 ।

59. जातक, जिल्द 2, पृ0 16, 176, 393,: जातक, जिल्द 5, पृ0 38,: जातक, जिल्द 6, पृ0 125, 265 ।

60. फ्यूहरर, ए0, दि मानूमेन्टल ऐण्टीकुटीज एण्ड इन्सकृप्सन्स इन दी नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध, बनारस, 1969, पृ0 154 ।

61. अबुलफजल, आइने अकबरी, कलकत्ता, 1949, भाग 2, पृ0 29 ।

62. बोस, निमाई सघन, हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज ऑफ जैजाकभुक्ति, कलकत्ता, 1956, पृ0 134 ।

63. भारतीय संस्कृति में मध्य प्रदेश का योगदान, पृ0 83 ।

64. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, भाग 1, बम्बई, 1960-1966, पृ0 248-250,: राय चौधरी, हेमचन्द्र, प्वालिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्श्येन्ट इण्डिया, छठा संस्करण, कलकत्ता, 1953, पाद टिप्पणी, पृ0 129 ।

65. जर्नल ऑफ गंगानाथ झा, अंक 32, भाग 1, 4, पृ0 21 ।

66. रेप्सन, ई0 जे0, दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग 1, दिल्ली, 1962, पृ0 153,: ऐज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 1 ।

67. स्टैटिस्टिकल डेस्क्रेप्टिव एण्ड हिस्टोरिकल एकाउन्ट्स ऑफ दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया, भाग 1, बुन्देलखण्ड, इलाहाबाद, 1974, पृ0 2 ।

68. वाकाटक-गुप्तयुग, पृ0 28 ।

69. स्टडीज इन इण्डोलॉजी, भाग 2, पृ0 167 ।

70. क्लासिकल एज, पृ0 179 ।

71. जाग्रफिकल डिक्शनरी ऑफ मेडुवल एण्ड एन्श्येन्ट इण्डियन, पृ0 14 ।

72. झाँसी गजेटियर, लखनऊ, 1965, पृ0 22 ।

73. मध्य भारती, भाग 9, अंक 9, खण्ड 1, पृ0 15 ।

74 इन्सकृप्सन्स इन सी0 पी0 एण्ड बरार, संख्या 208, 125,: एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 23, पृ0 116 और आगे, भाग 26, पृ0 227 तथा आगे ।

75. इन्सकृप्सन्स फ्राम हरिहर (मैसूर), एपीग्राफिया इण्डिका, भाग 28, पृ0 25,: पा0 टि0 एपीग्राफिया कर्नाटिका, भाग 11, नं0 42 का उद्धरण देशाई, पी0 बी0 के द्वारा राइस नं. 42,: मैसूर इन्सकृप्सन्स, पृ0 64 एवं स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ0 179 ।

76. बुलियनस, ह्वेनसांग, इन्डेक्स 3, पृ0 530, 408,: कनिंघम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 2, पृ0 412-413 ।
77. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण, प्रयाग, 1968, पाद टिप्पणी 7, पृ0 5 ।
78. मिश्रा, एस0 के0, अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, कलकत्ता, 1958, पृ0 3-4 ।
79. क्रुक, सम्पादक, ट्राइब्स एण्ड कास्टस ऑफ दि नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध, भाग 2, पृ0 196-197, इस कथा का सम्पादकन क्रुक ने सुमेरपुर एवं महोबा के अध्यापकों के नोट्स के आधार पर किया था- वह पृ0 196, पाद टिप्पणी 3 ।
80. चन्दवरदाई, पृथ्वीराजरासो, सम्पादक- मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या और श्यामसुन्दर दास, काशी, 1913, पृ0 26-27 ।
81. मिश्र, केशवचन्द, चन्देल और उनका राजत्व काल, वाराणसी, विक्रमी संवत् 2011, पृ0 70 ।
82. त्रिपाठी, रमाशंकर, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज टू दि मुस्लिम कान्टेस्ट, पृ0 256 ।
83. शास्त्री, नीलकण्ठ, प्रोसीडिंग्स ऑफ आल इण्डिया ओरिऐण्टल, कांग्रेस, 1946, पृ0 436-437 ।
84. पाठक, विशुद्धानन्द, पूर्वो0, पृ0 386 ।
85. जर्नल ऑफ बिहार- ओरिसा रिसर्च सोसायटी, 1928, पृ0 476 आगे ।
86. अल्टेकर, अनन्त सदाशिव, राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ0 113 ।
87. अवस्थी, राजपूत वंशों का इतिहास, पृ0 212-213 ।
88. वैद्य, चिंतामणि विनायक, हिस्ट्री ऑफ मेडुवल इण्डिया, 1924, भाग 2, पृ0 126,: कनिंघम, क्वायन्स ऑफ मेडुवल इण्डिया, पृ0 67-68,: बोस, निमाई सघन, पूर्वो0, पृ0 32 ।
89. फरिश्ता, तारीखे-फरिश्ता, अनुवाद- ब्रिग्स, भाग 1, पृ0 18 ।
90. स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ0 4 ।
91. निजामुद्दीन, अहमद ख्वाजा, तबकात-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद- वी0 दे0, कलकत्ता, 1887, पृ0 12,: अतहर, इब्न-उल, अल-तारीख-उल-कामिल, भाग 9, पृ0 115-116,: गर्दिजी, अबू सैयद, किताब जैमुल अकबर, सम्पादक, एम0 नाजिम, पृ0 76 ।
92. ब्राउनी, लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ परशिया, 1918, पृ0 170 ।
93. मिश्र, कृष्ण, प्रबोधचन्द्रोदय, अनुवाद- टेलर, निर्णय सागर प्रेस, पृ0 19 ।
94. बिल्हण, विक्रमांकदेवचरित, सम्पादक- व्हूलर, अध्याय 93, पृ0 18 ।
95. चन्दवरदाई, पूर्वो0, ।
96. निजामी, हसन, ताजुल-मा-अतहर, अनुवाद- इलियट, भाग 2, पृ0 231-232 ।

97. मिनहाजुद्दीन बिन सिराजुद्दीन, तबकात-ए-नासिरी, अनुवाद, एच0 जी0 रोबर्टी, अंग्रेजी अनुवाद, एच0जी0मेम्बरी, भाग 1, पृ0 732-733 ।

98. डिस्क्रपशन ऑफ दि एण्टीकुटीज ऐट कालिंजर, पृ0 21 ।

99. निगम, एम0 एल0, कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड, दिल्ली, 1983, पृ0 7 ।

100. त्रिवेदी, एस0 डी0, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, झाँसी, 1984, पृ0 10 ।

101. तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रयाग, विक्रमी सम्वत् 1990, पृ0 299-304।

102. अग्रवाल, कन्हैयालाल, विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सतना, 1987, पृ0 31 ।

103. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 374 ।

104. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, दिल्ली सल्तनत, आगरा, 1989, पृ0 59 ।

105. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, मुगलकालीन भारत, आगरा, 1981, पृ0 49 ।

106. सुल्लेरे, सुशील कुमार, अजयगढ़ और कालिंजर की देवप्रतिमाएं, दिल्ली, 1987, पृ0 7 ।

107. कृष्णदास, वीरचरितामृत, बुन्देलखण्ड भाष्कर महाकाव्य, छतरपुर, 1974, पृ0 164-180 ।

108. गुप्ता, भगवानदास, मस्तानी-बाजीराव और उसके वंशज बाँदा के नवाब, ग्वालियर, 1983, पृ0 62-63 ।

109. बाँदा गजेटियर, लखनऊ, 1977, पृ0 287-296 ।

110. रॉय, बी0 एन0, सम्पादक- कालिंजर ए हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल, इलाहाबाद 1992, पृ0 1-5 में उद्धत के0 डी0 बाजपेयी का लेख ।

111. वही, पृ0 6-15 में उद्धत बी0 सी0 श्रीवास्तव का लेख ।

112. वही, पृ0 16-23 में उद्धत बी0 एन0 रॉय का लेख ।

113. वही, पृ0 24-39 में उद्धत ओम प्रकाश का लेख ।

114. वही, पृ0 40-55 में उद्धत जय नारायण पाण्डे का लेख ।

115. वही, पृ0 57-67 में उद्धत लवकुश द्विवेदी का लेख ।

116. वही, पृ0 69-73 में उद्धत कु0 मधुमिता श्रीवास्तव का लेख ।

117. वही, पृ0 74-81 में उद्धत ए0 पी0 सक्सेना का लेख ।

118. सिंह, तहसीलदार, बर्थ प्लेस ऑफ महर्षि व्यास इन आइडेन्टीफिकेशन, पृ0 82-88 ।

119. रॉय, बी0 एन0, पूर्वो0, पृ0 1-8 में उद्धत जगन्नाथ पाल का लेख ।

120. वही, पृ0 9-15 में उद्धत सुशील कुमार सुल्लेरे का लेख ।

121. वही, पृ0 16-20 में उद्धत हरि नारायण दुबे का लेख ।

122. वही, पृ0 21-24 में उद्धत अम्बिका प्रसाद सिंह का लेख ।

123. वही, पृ0 25-30 में उद्धत रमाशंकर पाण्डे का लेख ।

124. वही, पृ0 31-36 में उद्धत कन्हैयालाल अग्रवाल का लेख ।

125. वही, पृ0 45-48 में उद्धत रमाशंकर तिवारी का लेख ।

126. पाण्डेय, रुद्रकिशोर, कालिंजर-शौर्य, स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य, 1991, पृ0 1-50 ।

127. श्रीवास्तव, तेज प्रकाश, बुन्देलखण्ड का प्राचीन दुर्ग कालिंजर (लघु-शोध), बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी, बाँदा, 1990, पृ0 1-78।

बड़ा दरवाजा (सातवाँ द्वार)

कालिंजर

सप्तम
अध्याय
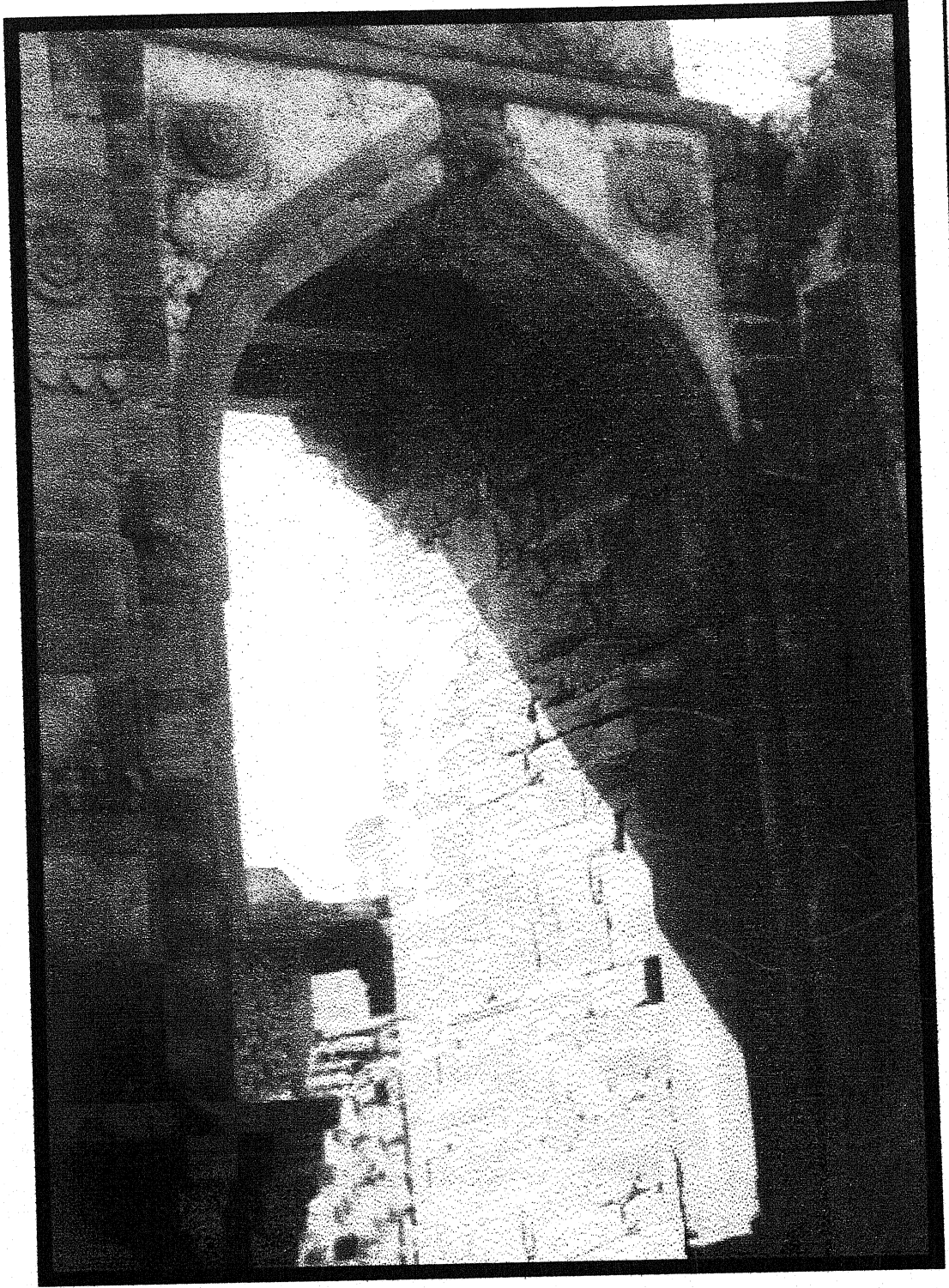
पर्यटन की दृष्टि से कालिंजर को विकसित करने के लिए किए गये कार्यों की समीक्षा-

कालिंजर धार्मिक दृष्टि से आदि कालिक स्थल है। शक्ति और शिव पर आस्था रखने वाले व्यक्ति यहां तीर्थाटन के उद्देश्य से हर युग में आते रहे हैं और अब तक आ रहे हैं। प्राचीन युग में पर्यटन को अलग से महत्व नहीं प्रदान किया गया था, अपितु प्रत्येक भारतीय के संस्कार में जो आश्रम व्यवस्था बनाई गई थी, उस आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत वानप्रस्थ को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। उसका प्रमुख उद्देश्य यह था कि 50 वर्ष की आयु के पश्चात व्यक्ति गृहस्थ आश्रम के भार से मुक्त हो जाये तथा 25 वर्ष तक भारत वर्ष के अनेक अंचलों का भ्रमण करके उनके संदर्भ में ज्ञान प्राप्त करे। 18 पुराणों में जिन तीर्थ स्थलों का उल्लेख किया गया है उनमें कालिंजर को भी प्रमुख स्थान दिया गया है।[1] इसलिए व्यक्ति वानप्रस्थ अवस्था में इन स्थानों में आता रहा है। इसके अतिरिक्त पितृ ऋणों से मुक्त होने के लिए व्यक्ति कोटितीर्थ एवं मृगधारा आदि स्थलों में पिण्डदान भी करता रहा है, इसलिए इस स्थल का धार्मिक एवं तीर्थ यात्रा की दृष्टि से सदैव महत्व रहा है।

यदि हम राजनीतिक परिवेश का अध्ययन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहा है। पौराणिक ग्रंथों में दुर्ग की जिन कोटियों का अध्ययन किया गया है उन कोटियों में कालिंजर दुर्ग आता है। यह दुर्ग एक पर्वतीय एवं वनीय दुर्ग है। यह निर्माण की दृष्टि से सुदृढ़ है। जब स्थल युद्ध प्रमुखता से लड़े जाते थे तब उस समय यह दुर्ग शत्रुओं को उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ने से रोकता था। अनेक अवसरों पर यह दुर्ग अजेय सिद्ध हुआ है। यहां तक कि महमूद गजनवी भी इसे आसानी से विजित नहीं कर सका। अंत में उसे यहां के चंदेल नरेश से संधि करनी पड़ी थी। चंदेल नरेशों के पतन के पश्चात यह सुदृढ़ दुर्ग उपेक्षा का शिकार बना।

सन् 1860 के पश्चात जब सम्पूर्ण भारत वर्ष में अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हो गई उस समय भारत वर्ष के कई ऐतिहासिक स्थलों की खोज की गई। इन क्षेत्रों में अनेक प्रकार के अनुसंधान किये गये। अंग्रेज विद्वानों ने इन स्थलों में निम्न अभिलेखों की खोज की। उपलब्ध भग्नावशेषों का अध्ययन वास्तुशिल्प के आधार पर एक महत्वपूर्ण स्थल माना गया। भगवान राम के समय में यह क्षेत्र कौशल राज्य का एक अंग था।[2] भगवान कृष्ण के समय में यह क्षेत्र चेदि राज्य का एक अंग था।[3] सम्राट अशोक के समय में यह क्षेत्र मौर्य वंशियों के आधीन रहा । फिर यह क्षेत्र पाण्डुवंशियों, नागवंशियों तथा भारशिवों के आधीन रहा। सम्राट समुद्रगुप्त के समय में यह विन्ध्य आटवीं के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद यह उत्तर गुप्तों के हांथ में रहा फिर यह वाकाटकों, कलचुरियों तथा गुर्जर प्रतिहारों के हांथ में रहा। चंदेलों के समय में इसकी शक्ति का विस्तार हुआ और यह महत्वपूर्ण स्थल बना।[4] चंदेलों के पतन के पश्चात यह क्षेत्र कुछ समय के लिए पृथ्वीराज के हांथ में गया। उसके पश्चात गुलामवंश के शासकों के आधीन हो गया।[5] कुछ समय के लिए

बघेल शासकों के आधीन रहा।[8] बघेलों के पश्चात यह क्षेत्र मुगलों के आधीन रहा। उसके बाद बुन्देला शासकों के आधीन रहा। सन् 1812 के पश्चात यहां अंग्रेजों की सत्ता प्रारम्भ हुई और वह 1947 तक बनी रही। वर्तमान समय में यह स्वतंत्र भारत का एक अंग है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस परिक्षेत्र का राजनीतिक दृष्टि से चिरकालिक महत्व रहा है।

सन् 1947 के पश्चात भारतीय सरकार का यह दृष्टिकोण रहा है कि जो स्थल धार्मिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक महत्व के हो, उनका विकास पर्यटन स्थल के रूप में किया जाये। विशेषकर ऐसे स्थल जो उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति करते हो तथा प्राकृतिक सुन्दरता से भी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम हो। उनका विकास किया जाये। आज 50 वर्षों के बाद अथक प्रयासों से सरकार का ध्यान कालिंजर विकसित करने की ओर गया तथा इस क्षेत्र को विकसित करने के उद्देश्य से व्यापक प्रयास भी हो रहे हैं।

1. पर्यटन की दृष्टि में कालिंजर-

यदि कोई भी व्यक्ति विश्व की विविधता के बारे में ज्ञान लाभ प्राप्त करना चाहता है तो उसके लिए भ्रमण अति आवश्यक है। यदि पुस्तकीय अध्ययन से व्यक्ति ज्ञानी बन सकता तो समस्त संसार ज्ञानी बन गया होता । पुस्तकीय ज्ञान केवल परानुभूति कराता है किन्तु वास्तविक ज्ञान स्वानुभूति के माध्यम से होता है। विश्व की विविधता और विचित्रता का बोध तभी हो सकता है जब व्यक्ति उन स्थानों को जाकर स्वतः देखे। जब वह उन स्थलों को देखता है तब उसे उस स्थान के बारे में यह अनुभूति होती है कि वह कैसा है, क्या है तथा उसकी उपलब्धि क्या है। संसार के सर्वप्रथम विश्व भ्रमणकर्ता महर्षि अगस्त्य थे, जिन्होंने कालिंजर में आश्रम बनाकर समस्त विश्व का भ्रमण किया था। इसी प्रकार महर्षि नारद भी एक विश्व भ्रमण कर्ता ही थे जो अपनी इच्छा शक्ति से कहीं भी पहुंच सकते थे। इस तरह हम देखते हैं कि ऋषि एवं संत जिसने भी भ्रमण की प्रवृत्ति को अपनाया वहीं श्रेष्ठ ज्ञान बन पाया। भगवान कृष्ण द्वैपायन व्यास जिन्होंने भ्रमणोपरान्त 18 पुराणों की रचना की थी। उन्होंने कालिंजर के महत्व को समझा तथा उनकी यह लालसा रही कि व्यक्ति कालिंजर परिक्षेत्र में भ्रमण करते रहें।

वर्तमान युग में परिस्थितयों में परिवर्तन हुआ। विज्ञान ने भौतिक सुख सुविधाओं में वृद्धि की। आवागमन के साधन बढ़े। अब व्यक्ति के लिए कोई ऐसा स्थान नहीं रहा जहाँ वह नहीं पहुंच सकता। विदेशों में रहनें वाला कोई भी व्यक्ति वायुयान और जलयान के माध्यम से भारतवर्ष तक आ सकता है। वह किसी भी स्थान से रेलमार्ग और स्थल मार्ग के माध्यम से कालिंजर तक सुगमता से पहुंच सकता है। यहाँ अब किसी प्रकार के आवागमन की असुविधा यात्रियों के लिए नहीं है। वैसे भी यात्री धार्मिक स्थल चित्रकूट तक की यात्रा प्रत्येक अमावस्या को करता है यदि वह चाहे तो अपनी यात्रा पर्यटन के उद्देश्य से कालिंजर तक भी बढ़ा सकता है।

चंदेलकालीन विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थलों को देखने के लिए प्रतिवर्ष हजारों यात्री खजुराहो आते हैं। यदि उन्हें प्रोत्साहित किया जाये तो वे कालिंजर भी आ सकते हैं। पर्यटकों को इस बात का आभास कराया जाना चाहिए कि जिन स्थलों को वे खजुराहो में देखते हैं उनके निर्माण की प्रेरणा कालिंजर से ही मिली है। यदि कालिंजर चंदेल शासकों की राजधानी न होता और उनके ऐश्वर्य वृद्धि का कारण न होता तो खजुराहो में इन स्थलों का निर्माण कैसे होता क्योंकि बिना सुदृढ़ आर्थिक सम्पन्नता के इनका निर्माण नहीं हो सकता था। कालिंजर परिक्षेत्र में भी खजुराहो जैसा वास्तुशिल्प सर्वत्र देखने को मिलता है।

सम्भव है कि पर्यटक इस कठिनाई का अनुभव करें कि कालिंजर में उन्हें वे सुख सुविधायें उपलब्ध न होंगी जो अन्यत्र उन्हें मिलती है ऐसा नहीं है । वर्तमान सरकार ने उनकी इस कठिनाई को दूर करने का प्रयास किया है। वहां ठहरने के लिए दुर्ग के ऊपर डॉक बंगले और मोटिल्स का निर्माण किया गया है तथा दुर्ग के नीचे रैनबसेरा और डॉक बंगले आदि हैं। दुर्ग में ऊपर तक जाने के लिए सड़क मार्ग का निर्माण भी कर दिया गया है जिससे पर्यटक अपने वाहनों से ऊपर तक जा सकता है। दुर्ग की पुरासम्पदा दिखाने के लिए यहां पुरातत्व विभाग के लोग सदैव विद्यमान रहते हैं। कालिंजर की पुरातात्विक सम्पदा खजुराहो से अधिक प्राचीन है। इस स्थल में उन्हें विविध संस्कृतियों के दर्शन एक साथ हो सकते हैं। इसलिए पर्यटन की दृष्टि से कालिंजर एक महत्वपूर्ण स्थल है।

2. पर्यटन का धार्मिक महत्व-

प्राचीनकाल से ही विश्व का मानव एक ऐसी महाशक्ति पर विश्वास करता रहा है जो अदृश्य होते हुए भी समस्त विश्व का संचालन करती है। वह शक्ति परमात्मा के नाम से जानी जाती है। सृष्टि के आदि काल से लेकर अब तक कालिंजर को महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल के रूप में जाना जाता है। अनेक धार्मिक उद्देश्यों को लेकर व्यक्ति यहां की मात्रा करता है। और पुण्य लाभ प्राप्त करता है। कालिंजर सभी देवी-देवताओं की उपासना का केन्द्र है।

यहां के धार्मिक विश्वास के आधार पर यह क्षेत्र काली की उपासना का केन्द्र था। कहते हैं जब सृष्टि में मातृकुल थे उस समय इस महाशक्ति ने पहले ब्रह्मा को जन्म दिया फिर विष्णु को जन्म दिया और अन्त में शिव को जन्म दिया। ब्रह्मा और विष्णु को महाशक्ति ने भष्म कर दिया और शिव द्वारा कथन स्वीकार करने पर शिव को जीवित छोड़ दिया। फिर उस महाशक्ति ने शिव को अपना तीसरा नेत्र दान में दे दिया, शिव ने उस तीसरे नेत्र से महाशक्ति को भष्म कर दिया और अपने दोनों बन्धुओं ब्रह्मा एवं विष्णु को जीवित कर लिया। तभी से यहां से शक्ति की उपासना समाप्त हो गई और शिव की उपासना प्रारम्भ हो गई।

अब यह स्थल शिव उपासना का महान केन्द्र बना। शिव उपासना इस क्षेत्र में सृष्टि के बीज के रूप में की जाने लगी। कालिंजर शिव पूजा के लिए प्रसिद्ध स्थल है। यहां नीलकण्ठेश्वर की मूर्ति है जो शिव उपासना का मुख्य आधार है। शिव जी के दर्शन के लिए लोग दूर-दूर से कालिंजर आते है। लोगों की यह

धारणा है कि भगवान नीलकण्ठ कालिजर पर्वत पर निवास करते हैं तथा प्राणियों को सभी प्रकार के फल प्रदान करते है।

नीलकंठस्तदारम्य गिरौ कालिञ्जरे स्थितः ।

सुक्षेत्रे वसतां चैव चतुर्वर्ण फलप्रदः।।[9]

भगवान शिव का उत्तम एवं पवित्र निवास स्थान का क्षेत्र चार मील विस्तृत है जो कालिजर नाम से प्रसिद्ध है एवं भगवान शिव के पास रहनें से मुक्ति मिलती है।

अर्द्ध योजन विस्तीर्णं सुक्षेत्र मम मन्दिरम् ।

कालिञ्जरेति विख्यातं मुक्तिदं शिव सन्निधौ।।[10]

कालिंजर के शिव क्षेत्र में सभी तीर्थ निवास करते हैं, यह परम्परा युगों-युगों से चली आ रही है। यह शिव स्थान मोक्ष प्रदान करता है।

सर्वतीर्था वसन्त्यत्र प्राप्तं चैव युगे-युगे।

कालिञ्जरे शिवे क्षेत्रे मुक्तिदं शिव सन्निधौ।।[11]

प्रत्येक युग में इस स्थल को अलग-अलग नामों से पुकारा गया है।

सद्युगे कीर्तिको नाम् त्रेतायां च महद्गिरिः।

द्वापरे पिंगले नाम कलौ कालिञ्जरो गिरिः।[12]

इस स्थल को महान शिव तीर्थ के रूप में स्वीकारा गया तथा नौ महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल जो भगवान शिव के नाम से विख्यात हैं, उनमें से एक तीर्थ कालिंजर भी है।

रेणुका, शूकरः, काशी, काली, काल वटेश्वरौ।

कालिञ्जर महाकाल, ऊखला नव मुक्तिदाः।।[13]

इस स्थल में शिव की अनेक मूर्तियां मिलती हैं जिसमें एकमुखी, पंचमुखी एवं सहस्रलिंगी मूर्तियां प्रमुख है। भगवान शिव की विशालतम प्रतिमायें कालभैरव एवं रूद्र के रूप में यहां प्राप्त होती है। यह क्षेत्र मुख्य रूप से शिव उपासना का केन्द्र ही जान पड़ता है। इसे शिव तत्व प्रधान क्षेत्र कहा जा सकता है।

इस क्षेत्र को सूर्य उपासना केन्द्र के रूप में भी स्वीकारा जाता है। इतिहासकारों का यह कथन है कि कालिंजर दुर्ग में प्रवेश करने के लिए जो सात द्वार मिलते है, वह काल अथवा समय का निर्धारण करते हैं। सूर्य की एक ऐसा गृह है। जिससे समय का मापना किया जा सकता है। किसी काल में यहाँ सूर्य उपासना की जाती थी। दुर्ग के ऊपर सूर्य मंदिर भी था। इस क्षेत्र में सूर्य की मूर्तियां मिली है इसलिए यह सम्भव है कि यह क्षेत्र काल उपासना का भी केन्द्र रहा होगा।

बुन्देलखण्ड में पंचदेवों की उपासना प्रमुखता से की जाती थी जिसका उदाहरण कालिंजर में भी देखने को मिलता है। इस परिक्षेत्र में शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश आदि की मूर्तियां भी पर्याप्त मात्रा में मिलती

है।[14] विष्णु के विविध स्वरूपों की मूर्तियां भी यहां मिलती है, जो इस बात का परिचायक है कि कालिंजर परिक्षेत्र में जहां एक देव विशेष की उपासना की जाती थी वहां पंचदेवों को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। यदि व्यक्ति गृहस्थ जीवन से ऊब जाता था तथा योग एवं तंत्र पर विश्वास रखता था तो वह यहां तपस्या के लिए भी आ सकता था क्योंकि इस परिक्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण ऋषियों की तपोभूमि रही है। जिन्होंने भारतीय संस्कृति में महान योगदान दिया है उनके स्मृति चिन्ह कालिंजर परिक्षेत्र में सर्वत्र विद्यमान है।[15]

दसवीं शताब्दी के पश्चात इस क्षेत्र में इस्लाम धर्मावलम्बियों का आगमन हुआ। दुर्ग के ऊपर और दुर्ग के नीचे इस्लाम धर्मावलम्बियों के अनेक स्थल मिलते है। शेरशाह सूरी के आक्रमण के दौरान जिन सैय्यद बन्धुओं ने अपनी कुर्बानी दी थी। वे शहीद के रूप में प्रसिद्ध है तथा उनकी दरगाहें भी यहां मिल जाती है। इसलिए इस्लाम धर्म को मानने वाले पर्यटक भी यहां आ सकते है।

कालिंजर में अधिकतर लोग पिण्डदान करने के उद्देश्य से यहां आते है। यहां आकर व्यक्ति पिण्डदान करता है, जिससे उसके पूवर्जों को मोक्ष मिल जाये और वह भी अपने पितृ ऋण से मुक्त हो जाये। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर का अत्यधिक धार्मिक महत्व है। प्राचीन काल से ही कालिजंर धार्मिक स्थल होने का गौरव प्राप्त किये हुए है और आज भी इसका धार्मिक महत्व कम नहीं हुआ है। शायद इसीलिए कालिंजर को अति प्राचीन समय से ही महान तीर्थ स्थल की संज्ञा मिली है।

3. पर्यटन का ऐतिहासिक महत्व-

ऐसा मालुम होता है कि कालिंजर क्षेत्र सभ्यता के विकास क्रम का आंखों देखा गवाह है। लगता है कि सृष्टि का प्रादुर्भाव इसी क्षेत्र में हुआ। जब मानव अन्य पशुओं की भांति स्वच्छन्द विचरण करता था तब इस क्षेत्र में उसका अस्तित्व था। यहां पुरापाषाण युग से लेकर अर्वाचीन काल तक के ऐतिहासिक स्थल प्राप्त होते है। कालिंजर क्षेत्र के ऐतिहासिक महत्व का वर्णन कालों के अनुसार किया गया है।

कालिंजर परिक्षेत्र में कालिंजर, मगरमुहा, रामचन्द्र पर्वत, बृहस्पति कुण्ड और सकरों में पुरापाषाण युगीन शैलचित्र एवं तद्युगीन प्रस्तर के औजार मिलते है जिनसे इस युग की सभ्यता और संस्कृति के विषय में पता चलता है और यह भी पता चलता है कि यहां पुरापाषाण युग से ही पैश्वनी, केन, बागे तथा यमुना के तट पर व्यक्ति निवास करता था।

वैदिक काल से लेकर पौराणिक युग तक के यहां के कई स्थल महत्वपूर्ण लगते थे। इन स्थलों में कालिंजर, चित्रकूट, बृहस्पति कुण्ड आदि का महत्वपूर्ण स्थान था। यहां पर अनेक महर्षियों के आश्रम रहे जिनका वर्णन वेदों[17] एवं पुराणों में मिलता है। भगवान श्री राम और पाण्डवों ने भी इस स्थल को सुशोभित किया। उस युग के स्मृति चिन्ह यहां आज भी मिल जाते हैं। इतिहास में इस बात के अनेक साक्ष्य भी मिलते हैं। यह स्थल महात्मा बुद्ध के पश्चात चेदि देश का अंग बना रहा। उसके बाद यह नाग, भारशिवों, गुप्तों आदि के हाथों में अधिक समय तक रहा। अनेक इतिहासकारों का यह मानना है कि नीलकण्ठ महादेव

मंदिर का निर्माण गुप्त युग में हुआ तथा बाहरी मण्डप का निर्माण चंदेल नरेशों ने करवाया। इससे यह ज्ञात होता है कि यहां गुप्तों एवं उसके पूर्वी शासकों का व्यापक प्रभाव था। उस युग के स्मृति चिन्ह नचना आदि स्थलों में अभी भी मिलते है। इस क्षेत्र में सर्वाधिक पुरावशेष चंदेल युग और उसके बाद के हैं, जो वास्तुशिल्प की दृष्टि से सर्वोत्तम कोटि के है। इनकी श्रेष्ठता और कोटि खजुराहो की वास्तुशिल्प जैसी है। यह मंदिर कालिंजर के अतिरिक्त लखनसेहा, किशनसेहा, बिलहरियामठ, मड़फा , रौलीगोड़ा तथा रसिन में मिलते है। इनकी निर्माण शैली तथा खजुराहो निर्माण शैली में कोई भी अन्तर नहीं है। इनका वास्तुशिल्प एक जैसा ही है। खजुराहो की सभी मूर्तियां कालिंजर से ही बनकर गई थीं। कालिंजर में ही यह पत्थर पाया जाता है।

कालिंजर क्षेत्र में चंदेलों के बाद का भी वास्तुशिल्प प्राप्त होता है। यह वास्तुशिल्प सल्तनतकाल, मुगलकाल और बुन्देलों के समय का है। सल्तनत एवं मुगलकाल के वास्तुशिल्प में राठौर महल, मजार ताल, शेरपुर स्योढ़ा के भग्नावशेष और पाथर कद्दार में प्राप्त वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट नमूने हैं। कालिंजर दुर्ग में बुन्देलों के समय की दो इमारतें मिलती है। प्रथम इमारत राजा अमान सिंह का महल तथा दूसरी इमारत चौबे महल है, जो उस युग के वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट नमूने हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से कालिंजर कई विशिष्ट घटनाओं से जुड़ा हुआ है, जिनके उदाहरण अलबरूनी की पुस्तक में मिलते हैं। जब महमूद गजनवी ने कालिंजर पर आक्रमण किया था, उस समय उसके साथ आये प्रसिद्ध लेखक अलबरूनी ने इस परिक्षेत्र का जीता जागता चित्र अपने ग्रंथ में प्रस्तुत किया। इसके अलावा पृथ्वीराजरासो एवं आल्हखण्ड में कालिंजर की घटनाओं को प्रमुखता के साथ प्रस्तुत किया है। कालिंजर में कुतुबुद्दीन ऐबक, हुमायूँ, शेरशाह सूरी, अकबर एवं औरंगजेब ने आक्रमण किये।यह सन् 1812 में अंग्रेजों के आधीन हो गया। इस प्रकार हम देखते है कि कालिंजर परिक्षेत्र अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ा हुआ है। इसलिए कालिंजर का पर्यटन की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व अधिक है।

4. पर्यटन का आर्थिक एवं औद्योगिक महत्व-

आज के युग में व्यक्ति निरर्थक भ्रमण नहीं करता बल्कि वह भ्रमण के माध्यम से कुछ लाभ अर्जित करने का प्रयत्न करता है। वह अपने भ्रमण में उन स्थलों की खोज करता है जो व्यवसायिक दृष्टि से उसके लिए महत्वपूर्ण है। कालिंजर परिक्षेत्र का भ्रमण यदि व्यक्ति व्यवसायिक दृष्टि से करता है। तो उसे यहां अनेक क्षेत्रों में आर्थिक लाभ भी प्राप्त हो सकता है। इस परिक्षेत्र में खनिज सम्पदा व वन सम्पदा उपलब्ध होती है, जिनसे वह अनेक उद्योगों को जन्म दे सकती है और लाभ प्राप्त करा सकती है।

1. हीरा-

कालिंजर परिक्षेत्र के अन्तर्गत पहाड़ीखेरा और बृहस्पति कुण्ड में उत्तमकोटि का हीरा मिलता है। यहां लोग अति प्राचीन काल से हीरा की खदानें लगाते रहे है और आज भी लगा रहे है। यदि पर्यटक हीरे का

व्यवसायी है तो वह इस परिक्षेत्र से लाभ उठा सकता है।

2. लोहा-

इस परिक्षेत्र में कीट पहाड़ी तथा चुम्बक पहाड़ी के समीप पर्याप्त मात्रा में खनिज लोहा मिलता हैं चंदेल युग में इसी लोहे से अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण बहुतायत से होता था यदि पर्यटक लोहे का व्यवसायी है तो वह उपलब्ध खनिज लोहे से लाभान्वित हो सकता है।

3. सोना-

कालिंजर के नजदीक ही कुठला जवारी के जंगलों के समीप एक ऐसा पत्थर मिलता है जिसका रंग लाल एवं चमकदार है। प्राचीन काल में लाल रंग के इस पत्थर से सोना बनाया जाता था, यदि पर्यटक सोने का व्यवसायी है तो वह यहां स्वर्ण खदाने लगवा सकता है।

4. इमारती पत्थर-

कालिंजर परिक्षेत्र में पर्तदार चट्टाने तथा ग्रेनाइट पत्थर अधिक मात्रा में मिलता है। इस पत्थर का प्रयोग प्राचीन काल से ही भवन निर्माण में होता रहा है। आज भी इसका उपयोग भवन निर्माण में होता है। ग्रेनाइट पत्थर सड़क आदि निर्माण के काम में आता है। इससे भी पर्यटक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

5. चूने का पत्थर-

कालिंजर परिक्षेत्र में चूना पत्थर बहुतायत में होता है। इसका उपयोग चूना बनाने के काम में होता है। इसी पत्थर से सीमेंट भी बनाया जाता है। पर्यटक इससे लाभ उठा सकते है।

6. इमारती लकड़ी-

यहां अनेक प्रकार की इमारती लकड़ी मिलती है, इनमें साखू, शीशम, सागौन तथा महुवा आदि की लकड़ी है। इस लकड़ी का प्रयोग दरवाजे, खिड़की, फर्नीचर आदि बनाने में किया जाता है। पर्यटक इनसे लाभान्वित हो सकता है।

7. वन औषधि-

कालिंजर में अनेक प्रकार की औषधियाँ मिलती है। इसके अलावा प्रचुर मात्रा में शुद्ध शहद भी मिलती है। मुख्य रूप से यहां हर्र, बहेरा, ऑवला, दशमूल आदि औषधियाँ प्राप्त होती हें। इन वन औषधियों से निम्न मर्जों के लिए औषधियों का निर्माण होता है। औषधि व्यवसायी पर्यटक इनसे लाभान्वित हो सकते हैं। कई लोग इनसे लाभान्वित हो चुके है और हो भी रहे है।[18]

8. पशुचर्म-

कालिंजर वन सम्पदा का धनी क्षेत्र है। यहाँ अनेक प्रकार के पशु विचरण करते रहते है। प्रमुख रूप से जंगली सुअर , नील गाय, शेर,चीता, बाघ, साभर, सियार, हिरण, बारह सिंहा आदि के पशु चर्म यहां आसानी से मिल जाते है। अगर व्यक्ति चर्म व्यवसायी है तथा चर्मों से विविध प्रकार की वस्तुओं का व्यापार

करता है तो वह लाभ अवश्य प्राप्त कर सकता है।

9. जल -जीव-

यहां चंदेल कालीन कई बड़े-बड़े सरोवर है इन सरोवरों में उत्तम कोटि की मछलियाँ मिलती है। मांसाहारियों के लिए ये मछलियां स्वादिस्ट लगती है। मछलियों का व्यापार करके पर्यटक इनसे लाभ प्राप्त कर सकता है। मछलियों के अतिरिक्त इन सरोवरों में अच्छे किस्म के बहुत से कछुए पाये जाते है जिनका प्रयोग विद्यालयों की प्रयोग शालाओं में किया जाता है। भाँति-भॉति के पक्षी भी इन सरोवरों के तटों पर विचरण करते हैं जो पर्यटकों के मनों को लुभाते है। इन सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं से व्यक्ति आर्थिक लाभ उठा सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि कालिंजर परिक्षेत्र में पर्यटन का आर्थिक महत्व भी सार्थक है। व्यक्ति जब इस परिक्षेत्र की वास्तविक स्थिति से परिचित होगा, तब वह पर्याप्त मात्रा में आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकेगा और बार-बार कालिंजर आने के लिए उत्सुक एवं प्रयासरत रहेगा।

5. कालिंजर को विश्व की ऐतिहासिक धरोहर बनाने के लिए किये गये प्रयत्न-

सन् 1947 में भारत वर्ष ब्रिटिश शासन के पंजे से मुक्त हुआ था। उस समय यह विचारधारा बनी कि राष्ट्र को गति देने के लिए कुछ योजनायें बनें उनमें से कुछ विविध योजनाओं का निर्माण किया जाये और ऐतिहासिक स्थलों के महत्व को उजागर किया जाये। इस बात को ध्यान में रखते हुए कालिंजर को विकसित करने के लिए योजनाएँ बनाई गई। प्रथम प्रयास उत्तर प्रदेश के राज्यपाल कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने किया। उन्हें विन्ध्य प्रदेश के राज्यपाल श्री के0एम0 सन्थानम ने पूरा सहयोग दिया। उनके सहयोग से कालिंजर को बाँदा एवं सतना मार्ग से जोड़ा गया ताकि पर्यटक यहां अपने संसाधनों से आ जा सके। यहां उपलब्ध बहुमूल्य पुरासम्पदा की सुरक्षा की ओर किसी व्यक्ति विशेष का ध्यान नहीं गया। इस क्षेत्र में बागे नदी के पुल का निर्माण हुआ तथा अन्य रपटे भी बने किन्तु जो गति प्रगति की होनी चाहिए वह नहीं हुई।

सन् 1985 के पश्चात कालिंजर वासी श्याम बिहारी छिरौलिया, अनन्त बिहारी अरजरिया, देवीदयाल बड़ेरिया, भगवान दास गुप्ता आदि के सहयोग से कालिंजर विकास परिसर का गठन किया गया। उत्तर प्रदेश की मंत्री श्रीमती प्रमिला बधवार को इस परिक्षेत्र में आमंत्रित किया गया उन्होंने कालिंजर विकास की जिम्मेदारी अपने हांथ में ली। इसी समय राधाकृष्ण बुन्देली भी कालिंजर विकास के महायज्ञ में सहयोग के लिए आगे आये। सन् 1987 में प्रशासन के सहयोग से समस्त प्रशासनिक अधिकारियों की बैठक कालिंजर दुर्ग के ऊपर राजा अमान सिंह महल में आयोजित की गई। इस समय बाँदा के जिलाधिकारी श्री राकेश गर्ग थे[19] बैठक में यह सुनिश्चित किया गया कि दुर्ग के ऊपर एक पहुंच मार्ग का निर्माण किया जाये तथा

यहां के सम्पूर्ण पुरातात्विक स्थल पुरातत्व विभाग के संरक्षण में दे दिये जाये। उसी समय से इस परिक्षेत्र में पुरातत्व विभाग के अधिकारी निवास करने लगे। कालिंजर दुर्ग के वास्तुशिल्प को उभारने के लिए राधा कृष्ण बुन्देली ने पुरातत्व विभाग की अनुमति से कई स्थलों के चित्र खींचे, उन चित्रों को पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त सूचना विभाग को भी उपलब्ध कराये गये। बुन्देली जी ने सन् 1989 में कालिंजर परिक्षेत्र पर वीडियों फिल्म बनाने का शुभारम्भ किया और यह 1992 में बनकर तैयार हो गई। यह फिल्म लखनऊ व दिल्ली दूरदर्शन से कई बार प्रसारित भी हुई। इस फिल्म को देखनें के बाद भारतवर्ष के अनेक पर्यटक कालिजर की पुरासम्पदा से प्रभावित हुए और वे यहां दर्शनार्थ आने-जाने लगे। सन् 1989 में ही पं0 जवाहर लाल नेहरू डिग्री कालेज, बाँदा के इतिहास विभागाध्याक्ष प्रो0 बी0एन0 रॉय भी अति उत्साहित हुए। उन्होने अपने छात्रों को इस दुर्ग का कई बार भ्रमण कराया। कालिंजर को प्रचारित-प्रसारित करने के लिए अथक प्रयास किये । आज भी इस कार्य में प्रयासरत हैं तथा उन्होंने एक पुस्तक प्रकाशित की। कालिंजर को विश्व ऐतिहासिक धरोहर घोषित करने से पहले यह आवश्यक था कि कालिंजर को निम्न सम्पर्क मार्गों से जोड़ा जाये इसलिए बदौसा-कालिंजर मार्ग, मड़फा-कालिंजर मार्ग, धरमपुर-कालिंजर मार्ग का निर्माण हुआ और रामनगर में बागे नदी के ऊपर पुल भी बनाया गया। अब यात्री खजुराहो से सीधा कालिंजर आ सकता है। इसके अतिरिक्त कालिंजर दुर्ग के ऊपर जाने के लिए एक मार्ग का निर्माण सन् 1992 में पूर्ण किया गया किन्तु खेद का विषय यह है कि इस परिक्षेत्र में अभी भी कई सुविधाओं का अभाव है। पर्यटकों को रूकनें के लिए जिस रैन बसेरा और दुर्ग के ऊपर होटल का निर्माण किया गया है। उसे अभी समुचित व्यवस्था से सुसज्जित नहीं किया गया। इसलिए कालिंजर क्षेत्र विश्व धरोहर के रूप में अभी तक यथोचित स्थान एवं मान्यता नहीं प्राप्त कर सका।

अ. दुर्ग की सुरक्षा-

कालिंजर में कालिंजर दुर्ग सबसे महत्वपूर्ण है। इस दुर्ग का निर्माण ईसा की पहली शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी के मध्य हुआ था। विविध प्राकृतिक आपदाओं को झेलनें के कारण यह दुर्ग अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण हो गया है। कई जगहों से इसकी प्राचीरें खण्डित हो गई हैं, यदि दुर्ग की सुरक्षा न की गई तो कुछ वर्षों में इसका नामोनिशान भी मिट जायेगा। जिस मार्ग का निर्माण दुर्गारोहण के लिए किया गया है उस मार्ग की वजह से भी दुर्ग के प्राचीरों को बहुत बड़ा नुकसान झेलना पड़ा है। मार्ग का निर्माण दुर्ग की सुरक्षा को ध्यान में रखकर नहीं किया गया।

कालिंजर दुर्ग के अतिरिक्त इस परिक्षेत्र में पथरीगढ़ दुर्ग, रसिन दुर्ग एवं मड़फा दुर्ग भी है। सुरक्षा की दृष्टि से इन दुर्गों की भी उपेक्षा की गई है। इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि कुछ समय के बाद ये दुर्ग असतित्व विहीन हो जायेंगे। यद्यपि इन दुर्गों की सुरक्षा के लिए पुरातत्व विभाग ने कालिंजर में अपने अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति की है जो इस पुरातन दुर्ग की रक्षा करते हैं किन्तु इन अधिकारियों एवं

कर्मचारियों को जनता का कोई सहयोग नहीं मिल पाता इसलिए इन स्थलों की सुरक्षा जिस ढंग से होनी चाहिए थी उस ढंग से नहीं हो सकी। जब तक प्रशासन और जनता दोनों जागरूक नहीं होंगे, उस समय तक दुर्ग की सुरक्षा कठिन प्रतीत होती है।

ब. ऐतिहासिक स्थलों की सुरक्षा-

कालिंजर परिक्षेत्र में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल है। इन स्थलों में शेरपुर स्योढ़ा, रनगढ़, रिसौरा, रामचन्द्र पर्वत, अजयगढ़, कालिंजर, देवपहाड़ी, गुढा, नौगवाँ, बृहस्पति कुण्ड, हुमायूँ की छावनी, सिधौरा, नरदहा, फतेहगंज, मड़फा, पाथरकछार, रौलीगोंडा आदि हैं। सन् 1987 के पश्चात इन स्थलों की सुरक्षा की जिम्मेदारी पुरातत्व विभाग को सौंपी गई किन्तु इस पुरासम्पदा को सबसे ज्यादा नुकसान स्थानीय लोगों से हो रहा है। ये लोग धन के प्रलोभन में इन स्थलों का उत्खनन करते हैं। इसके अतिरिक्त अपने भवन निर्माण आदि के लिए इन स्थलों को खोद कर यहां से प्राप्त पत्थर पटिया एवं ईटों आदि का प्रयोग करते हैं। कालिंजर दुर्ग के समीप कई स्थानों पर लगें हुए शिलालेखों को व्यक्तियों के घरों में देखा गया, जहां पर व्यक्ति उन्हें कपड़े धोने की पटिया के रूप में प्रयोग करते हैं। व्यक्तियों को ऐतिहासिक स्थलों के महत्व के विषय में समझाना होगा तभी इनकी सुरक्षा सम्भव है। अकेले पुरातत्व विभाग के कर्मचारी कुछ नहीं कर सकते हैं।

स. दुर्लभ मूर्तियों की सुरक्षा-

कालिंजर परिक्षेत्र में ऐसी अनेक दुर्लभ मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनकी सुरक्षा अनिवार्य है। ये मूर्तियां शक्ति, शिव, वैष्णव मत से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त पंचदेवों की उपासना से सम्बन्धित मूर्तियाँ भी मिलती हैं। कुछ मूर्तियाँ जैन एवं बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। इन सब के अलावा कालिंजर क्षेत्र में पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ यक्ष-यक्षणियों की मूर्तियाँ तथा कुछ मूर्तियाँ तांत्रिकों की भी मिलती हैं। पुरातत्व विभाग के अधिकारियों की नियुक्ति के पश्चात भी ये मूर्तियाँ अभी भी निम्न स्थानों में लावारिस पड़ी है। मुख्य रूप से बिलहरिया मठ, नरदहा, मड़फा, रसिन, रौलीगोड़ा आदि में इनकी कोई खास सुरक्षा व्यवस्था नहीं है। यहां मूर्ति चोर सक्रिय है जो दुर्लभ मूर्तियों को चुराकर कीमती दामों में शहरों में बेंचते हैं। आज से लगभग 20 वर्ष पहले बाँदा सदर अस्पताल का एक डॉ0 मूर्ति चोरों का सक्रिय सदस्य था। उसकी कार से बदौसा पुलिस ने कीमती मूर्तियां बरामद की थी। इसके अतिरिक्त अनेक सफेद पोस नेताओं ने यहां की मूर्तियाँ चुराकर अपने घरों में सजा ली, जिन्हें लखनऊ आदि शहरों में देखा जा सकता है। मूर्ति सम्पदा की सुरक्षा के लिए प्रशासन और जनता दोनों के सहयोग से विशेष सुरक्षा योजना बनानें की आवश्यकता है।

द. महलों एवं जलाशयों की सुरक्षा-

सम्पूर्ण कालिंजर में अनेक महल एवं जलाशय उपलब्ध हैं। कालिंजर दुर्ग के नीचे राठौर महल, रानी महल तथा मिश्रों के महल मिलते हैं। कालिंजर दुर्ग के ऊपर राजा अमान सिंह का महल एवं चौबे महल है।

इसके अतिरिक्त यहां वेंकटेश्वर मंदिर तथा जुझौतियों की बस्ती के अवशेष भी है इसी प्रकार रख-रखाव रसिन,मड़फा तथा अन्य क्षेत्रों में भी कई महल एवं जलाशय आदि है। इन स्थलों में पाथरकछार के स्थल सर्वाधिक आकर्षक है परन्तु अब ये सुरक्षा और रख-रखाव के अभाव में धीरे-धीरे नष्ट होने की स्थिति में है। यहां के नागरिकों द्वारा धन के लालच में बेवजह ही बहुत ज्यादा उत्खनन हो रहा है। इसलिए इनका विध्वंश होना सुनिश्चित सा है। यहां उपलब्ध चंदेल कालीन जलाशयों को भूमि के प्रलोभन के कारण सुखा दिया गया है। कुछ व्यक्तियों का उनमें कब्जा हो गया है, जो जलाशय पर्वत के ऊपर हैं वे मरम्मत के अभाव में नष्ट हो रहे है। कालिंजर दुर्ग के ऊपर वृद्धक तालाब, कोटितीर्थ तालाब, रामकटोरा ताल तथा मजार ताल की स्थिति ठीक नहीं है। स्वर्गारोहण ताल भी अब आकर्षण का केन्द्र नहीं रह गया। रसिन के अधिक ताल पर दबंग काबिज हो गये हैं तथा रसिन का चन्द्रामाहेश्वरी ताल भी सूख गया है। आवश्यकता इस बात की है कि यदि इन तालाबों की मरम्मत कर दी जाये और इनमें पुनः जल की पूर्ति कर दी जाये तो निश्चित ही यह तालाब जहां इस क्षेत्र को नवीन प्राकृतिक सौन्दर्यता प्रदान करेंगे, वहीं ये सरोवर इस सूखे परिक्षेत्र में निवास करने वाली जनता की प्यास भी बुझायेंगे और कृषि कार्यों में भी सहयोग प्रदान करेंगे।

य. हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथों की सुरक्षा-

कालिंजर क्षेत्र में अभी भी कई रियासतों में अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास हस्तलिखित ग्रंथ एवं ऐतिहासिक दस्तावेज है। इन ग्रंथों से कालिंजर के इतिहास के संदर्भ में जानकारी मिल जाती है। कुछ ग्रंथ बरौंधा स्टेट के जागीरदार, कुछ महत्वपूर्ण दस्तावेज पथरापालदेव के जागीरदार चौबे जी, कुछ ग्रंथ कामता रजोला रियासत के जागीरदार, कुछ ग्रंथ कालिंजर निवासी श्याम बिहारी छिरौलिया आदि लोगों के पास कालिंजर से सम्बन्धित ग्रंथ एवं दस्तावेज है। यदि इनसे सम्पर्क किया जाये तो ऐतिहासिक सामग्री आसानी से प्राप्त हो सकती है। इनके अतिरिक्त अगर पन्ना, अजयगढ़ तथा गौरिहार महाराज से भी सम्पर्क किया जाये तो यहां राजाओं के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथ हैं। आवश्यकता यह है कि इन ग्रंथों का एक स्थान पर एकत्रीकरण किया जाये तथा इनकी सुरक्षा की जाये ताकि इन ग्रंथों के लिए कालिंजर में एक उच्चस्तरीय संग्रहालय एवं पुस्तकालय स्थापित करा दिये जायें तो अति उत्तम होगा तथा व्यक्तियों को इधर-उधर भटकना नहीं पड़ेगा। संग्रहालय एवं पुस्तकालय दुर्ग के नीचे राठौर महल के समीप कहीं होना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी स्थल को विश्व ऐतिहासिक धरोहर बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रयत्न करना जरूरी है। आज जो भी स्थल विश्व धरोहर एवं पर्यटक स्थल है वह सब इन्हीं प्रयत्नों से है। इसलिए कालिंजर को विश्व ऐतिहासिक धरोहर बनाने के लिए उपर्युक्त वर्णित स्थलों, मूर्तियों, जलाशयों, दुर्गों ,महलो, ग्रंथों आदि की सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है तथा इनकी सुरक्षा के लिए प्रयत्न करना भी आवश्यक है। तभी कालिंजर विश्व धरोहर एवं पर्यटक स्थल बन सकता है।

6. पर्यटकों की दृष्टि में कालिंजर-

सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि कालिंजर जैसे महत्वपूर्ण प्रसिद्ध विश्व ऐतिहासिक स्थल की ओर पर्यटकों का ध्यान आकर्षित क्यों नहीं होता। निश्चित ही इसमें कहीं न कहीं कुछ कमी नजर आती है। या तो हम पर्यटकों को कालिंजर की ओर आकर्षित नहीं कर पाते या फिर यहां पर्यटकों को विशेष कठिनाई का अनुभव होता है जिसकी वजह से वह यहां आना नहीं चाहते। पर्यटक यह सोचते है कि यहां अन्य पर्यटन स्थलों की तरह कोई विशेष आकर्षण नहीं है। यहां वह ऐसा कुछ नहीं पाते जिन्हें देखकर उनके हृदय को प्रसन्नता हो और वे यह अनुभव करें कि जो रूपया कालिंजर जाने में उन्होंने व्यय किया उसका सार्थक उपयोग हुआ। ये सारे के सारे प्रश्न ऐसे हैं जो पर्यटको से सीधे जुड़े हुए है।

शोध छात्रा ने कुछ पर्यटकों से यह जानने के लिए सम्पर्क स्थापित किया कि कालिंजर के विषय में उनके क्या दृष्टिकोण है। शोध छात्रा ने बाँदा आये हुए कुछ व्यक्तियों से कालिंजर चलने के लिए आग्रह किया । उन्होंने सीधा प्रश्न किया कि वहां आवागमन के क्या साधन है, क्या वहां ठहरने के लिए आरामदेय स्थल हैं तथा वहां हम ऐसा क्या देखेंगे । शोध छात्रा ने कालिंजर के विषय में पूर्ण जानकारी दी, मगर वह किसी भी हालत में कालिंजर जाने के लिए तैयार नहीं हुए।

कालिंजर भ्रमण के लिए एक सज्जन आये, वे पुराने रास्ते से कालिंजर दुर्ग के ऊपर अपने साथियों के साथ चढ़ रहे थे और वे हर स्थल को बड़े गौर से देखते थे। मेरा सम्पर्क जब उनसे हुआ तो वे मुझसे प्रत्येक स्थल के विषय में पूछते थे। इस समय मैं स्थलों के संदर्भ में अनभिज्ञ थी। उनका यह मानना था कि कालिंजर वास्तव में बहुत ही अच्छा ऐतिहासिक स्थल है किन्तु अफसोस यह था कि ऐतिहासिक स्थलों के संदर्भ में कोई ऐसा गाइड यहां नहीं है जो इन स्थलों की जानकारी आने वाले पर्यटकों को दे सकें। इसलिए कोई पर्यटक यहां आने की चेष्टा नहीं करता, क्योंकि उन्हें कोई इस स्थल के विषय में जानकारी देने वाला विशिष्ट जानकार नहीं है।

श्रीमती प्रमिला बनर्जी कलकत्ता से अपने परिवार सहित कालिंजर भ्रमण के लिए आई और वे साधन द्वारा निर्मित नये मार्ग से अपने संसाधन से कालिंजर दुर्ग के ऊपर गईं, वे जल के अभाव में बेहोश हो गई। यहां जो पर्यटन विभाग के कर्मचारी मौजूद थे। वे एक बाल्टी पानी के दस रूपये की मांग कर रहे थे जबकि एक अन्य दल ने उन्हें पानी सुलभ कराया। शोध छात्रा का यह मानना है कि पुरातत्व विभाग के कर्मचारी और पर्यटन विभाग से जुड़े लोग पर्यटकों के साथ इसी प्रकार दुष्टता और ठगी का व्यवहार करेंगे तो कोई भी यात्री व पर्यटक कालिंजर दर्शन के लिए कभी नहीं आ सकता। इसके बाद उन लोगों ने कालिंजर बस्ती वालों से सम्पर्क स्थापित किया कि कोई भी पुस्तक कालिंजर के विषय में मिल जाये, मगर उन्हें किसी भी प्रकार की कोई पुस्तक नहीं मिली साथ ही पुरातत्व विभाग ने इन्हें महत्वपूर्ण स्थलों की फोटों भी नहीं लेने दी।

एक स्थानीय पर्यटक धार्मिक विचार धारा से ओतप्रोत हरपाल सिंह गौतम, अर्जुन सिंह जो ग्राम मरौली के रहने वाले है। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर पितृपक्ष में पिण्डदान करने के लिए कालिंजर गये। वहां उन्होंने वृद्धक क्षेत्र में स्नान किया और पिण्डदान की क्रिया कोटितीर्थ तालाब के समीप मृगधारा में सम्पन्न की। उन्होंने कालिंजर के धार्मिक महात्म्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की किन्तु उस समय जिस कठिनाई का अनुभव उन्हें हुआ उससे वे बहुत दुखी थे। दुर्ग के ऊपर आवश्यक वस्तुओं का अभाव था। वहां उन्हें किसी भी प्रकार की आवासीय व्यवस्था सुलभ नहीं हो सकी। उसका कहना है कि दुर्ग के ऊपर जो जलाशय है उनका जल पूरी तरह से प्रदूषित हो चुका है। जब तक वहां आवासीय व्यवस्था सुलभ न हो और दुर्ग के ऊपर शुद्ध जल प्राप्त न हो तब तक यहां जाना बिल्कुल व्यर्थ है।

मैंने रेखा गुप्ता एवं रीता गुप्ता से सम्पर्क किया। ये लोग भी कालिंजर के धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थलों को देखने के लिए गई थी। उन्होंने वहां के धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थलों तथा वहां के वास्तुशिल्प की प्रशंसा की और कुछ स्थलों को बहुत ही उत्तमकोटि का बताया किन्तु उन्होंने गहरा दुख व्यक्त किया कि दुर्ग के ऊपर किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं है तथा इस क्षेत्र में अराजक तत्वों का भी बोलबाला है। इसलिए कालिंजर जाने में खतरा मड़राता रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन महत्वपूर्ण यात्रियों से पर्यटन की वास्तविकता को जानने के लिए सम्पर्क स्थापित किया गया, उन्होंने कालिंजर के इतिहास तथा यहां के वास्तुशिल्प एवं प्रकृति की सुन्दरता की बहुत अधिक प्रशंसा की किन्तु साधनों के अभाव में उन्होंने यहां जाने की सलाह अन्य यात्रियों को नहीं प्रदान की, जिसके कारण यहां यात्रियों का आगमन अभी अन्य पर्यटन स्थलों की तरह नहीं हो पाया।

अ. आवागमन के साधनों का अभाव-

कालिंजर तक पहुंचने के लिए अब तक आसान मार्ग नहीं है। यहां पहुंचने के लिए पर्यटकों को बाँदा, कर्वी और सतना में शरण लेनी पड़ती है। कालिंजर केवल बाँदा-सतना मार्ग से ही जुड़ा हुआ है। जहां से लोगों को स्थल मार्ग के संसाधन मिल जाते है। पर्यटकों का यह विचार है कि यदि कालिंजर को बदौसा-भरतकूप के सड़क मार्ग से जोड़ दिया जाये और यहां के लिए रेलवे आउट एजेन्सी बसे संचालित की जायें तो यात्रियों की संख्या बढ़ सकती है। कालिंजर परिक्षेत्र को खजुराहो-पहाड़ीखेरा मार्ग, खजुराहो-सरबई-रामनगर मार्ग तथा खजुराहो-अजयगढ़-धरमपुर मार्ग से सीधा बसों का नियमित संचालन प्रारम्भ करा दिया जाये। चित्रकूट और कालिंजर में हवाई अड्डे का निर्माण करा दिया जाये तो निश्चित ही इस क्षेत्र में आवागमन के साधनों का अभाव दूर हो जायेगा और पर्यटकों की यात्रा भी बढ़ जायेगी।

ब. पर्यटकों की सुरक्षा व्यवस्था का अभाव-

पर्यटकों का यह मानना है कि कालिंजर एक ऐसा क्षेत्र है जहां अराजक तत्व बहुतायत संख्या में रहते है जिससे उन्हें सदैव भय बना रहता है। उन्हें यह भय रहता है कि वे अराजक तत्वों से अपनी जान-

माल की सुरक्षा नहीं कर सकता। उन्हें यह जानकारी है कि यह एक ऐसा क्षेत्र है जहां डकैत सदैव विचरण करते रहते है। इस स्थिति में कोई भी व्यक्ति वहां जाने के लिए तैयार नहीं है। उनका कहना है कि यदि प्रशासन वहां पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था करे तथा दुर्ग के ऊपर और नीचे तथा इस क्षेत्र के अन्य स्थलों में विशेष सुरक्षा चौकियां कायम करे तो यात्री वहां जाने का साहस जुटा सकता है।

स. पर्यटकों के मनोरंजन के साधनों का अभाव-

यदि व्यक्ति पर्यटक के रूप में कालिंजर जाता है तो वह परेशानी का अनुभव करता है। शाम को जब वह पर्यटक स्थलों को देखकर लौटता है तो उसके सामने एक समस्या खड़ी हो जाती है कि वह शाम और रात का समय किस प्रकार व्यतीत करे। यहां मनोंरंजन के साधनों की कोई व्यवस्था नहीं है यदि इन स्थलों पर मनोरंजन क्लब खोल दिये जाये या रंग शलाओं का निर्माण करा दिया जाये, जहां स्थानीय कलाकार अपनी लोक संस्कृति का प्रदर्शन करें, जिनसे पर्यटकों का मनोंरंजन भी होगा और क्षेत्र को आर्थिक लाभ भी होगा। इसके अतिरिक्त वहां आधुनिक मनोंरंजन के साधन भी सुलभ कराये जायें।

द. पर्यटकों की आवासीय व्यवस्था का अभाव-

जो भी बाहरी पर्यटक प्रचुर मात्रा में धन व्यय करके कालिंजर आता है उसकी इच्छा होती है कि उसे ठहरने के लिए उपयुक्त सुरक्षित स्थान उपलब्ध हो । जहां उसे आवास के अतिरिक्त उसकी इच्छानुसार भोजन भी मिले और अगर उसे आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित आवासीय व्यवस्था सुलभ नहीं होगी तो वह भविष्य में पुनः कालिंजर आने का प्रयास नहीं करेंगा। अभी तक जो आवासीय व्यवस्था इस परिक्षेत्र में उपलब्ध कराई गई है वह अपर्याप्त है। जो डाक बंगला दुर्ग के ऊपर एवं दुर्ग के नीचे है तथा पर्यटकों के आवास के लिए जिस रैन बसेरा का निर्माण नीचे किया गया है वह लापरवाही के कारण पूर्ण व्यवस्थित नहीं है। उस क्षेत्र में गन्दगी है, प्रकाश की व्यवस्था और सोने के लिए पलंग, चारपाइयां एवं बिस्तर भी नहीं है। इसलिए अब तक किये गये आवासीय व्यवस्था के प्रयास नगण्य लगते है।

न. पर्यटकों के लिए कालिंजर से सम्बन्धित प्रचार सामग्री का अभाव-

अभी तक ऐसा कोई साहित्य प्रकाशित नहीं हुआ जो कालिंजर के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व को उजागर करता हो। पुरातत्व विभाग ने भी यात्रियों की सुविधा के लिए अभी तक महत्वपूर्ण स्थलों के फोटों एलबम का निर्माण नहीं कराया इसलिए यहां आने वाला पर्यटक यहां की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक गरिमा से पूर्ण परिचित नहीं हो पाता। यहां के स्थानीय लोगों ने कुछ पुस्तकें कालिंजर महात्म्य पर लिखी हैं जिन्हें वह कार्तिक पूर्णिमा और शिवरात्रि मेले पर बेचते है। इन पुस्तकों से धार्मिक महत्व का पता तो चल जाता है किन्तु यहां के वास्तविक इतिहास पर ये पुस्तकें कोई प्रभाव नहीं डालती। यदि खजुराहो की भांति कुछ प्रसिद्ध मूर्तियों के माडल प्लास्टर आफ पेरिस के तैयार करा दिये जायें तो वह निश्चित ही यात्रियों को प्रभावित करेंगे। इनमें मिढ़की भैरव तथा नीलकण्ठ महादेव की मूर्तियों के मॉडल निश्चित ही तैयार कराये

जायें। इनके अलावा एक महत्वपूर्ण पुस्तक की संरचना कराई जाये और यात्रियों के लिए एलबम भी तैयार कराकर बेचे जाये। इनसे पर्यटन को प्रोत्साहन मिल सकता है।

य. पर्यटको के लिए उचित मार्ग दर्शकों (गाइडों) का अभाव-

सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र शिक्षा के अभाव से ग्रसित है। ज्यादातर व्यक्ति अपने व्यवसाय तथा कृषि कार्यों में लिप्त रहता है। उसे अपने अतीत में कोई लगाव नहीं है। वह केवल वर्तमान को ही देखता है और उसी को जीने के लिए सुख के संसाधन संकलित करता है। यदि यहां कोई पर्यटक कभी धोखे से भी आ जाता है तो उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कोई ऐसा जानकार व्यक्ति सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र में नहीं है जिसे यहां के ऐतिहासिक स्थलों के संदर्भ में पूर्ण जानकारी हो तथा ऐतिहासिक घटनाओं का उसे बोध हो ।श्याम बिहारी वैद्य उनके पुत्र अरविन्द और अनन्त बिहारी अरजरिया केवल तीन ही ऐसे व्यक्ति है जो थोड़ी बहुत जानकारी रखते है। यदि पर्यटन विभाग और पुरातत्व विभाग इस क्षेत्र को पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करना चाहता है तो उसका यह पहला कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह इतिहास से जुड़े हुए पढ़े लिखें व्यक्तियों को गाइड का प्रशिक्षण दिलवायें तथा यहां गाइडों की नियुक्ति करें। जब योग्य गाइड इस क्षेत्र में नियुक्त हो जायेंगे, उस समय यह सम्पूर्ण क्षेत्र पर्यटन स्थल के रूप में विकसित हो जायेगा।

र. कला, संस्कृति से जुड़ी हुई लोक कलाओं का अभाव-

यह परिक्षेत्र आदिवासियों की लोकसंस्कृति से जुड़ा हुआ है। इस क्षेत्र में खैरवार, गौण, बैगा, कोल, भील आदिवासी अलग-अलग क्षेत्रों में निवास करते है, जिनकी लोक संस्कृति अन्य व्यक्तियों से भिन्न है। यदि इनकी लोकसंस्कृति और लोककलाओं का प्रचार-प्रसार किया जाये तो निश्चित ही ये कलायें भी पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन सकती है। यहां गाये जाने वाले लेद, लमटेरा, देवीगीत, राई आदि को यदि वर्तमान परिवेश में विकसित किया जाये तो इनका प्रदर्शन बहुत अच्छा हो सकता है। नृत्य की दृष्टि से दिवाली नृत्य, देवी नृत्य, राई नृत्य, कुल्हाई आदि नृत्यों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके अलावा जो लोककलायें, लोकउद्योग, धातुकर्म, चर्मकर्म तथा मिट्टी कर्म से जुड़े हुए है, उन्हें भी प्रोत्साहित किया जाये। ये कलाकृतियाँ भी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। इस क्षेत्र में पत्थर से बनने वाली मूर्तियाँ एवं लकड़ी से बनने वाले खिलौनें भी पर्यटकों को लुभा सकते है। इसलिए यहां जिन लोककलाओं का, लोकसंस्कृति का अभाव है उस अभाव को दूर किया जाना चाहिए।

यदि पर्यटकों के दृष्टिकोण को समझा जाये और उसे ध्यान में रखा जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह परिक्षेत्र विविध दृष्टिकोणों से अभाव ग्रस्त है। पर्यटक अपनी सुविधा के लिए जिस व्यवस्था की मांग करते है वह सुविधा यहां सुलभ कराई जाये, तभी इस क्षेत्र का विकास समझ में आता है। कई पर्यटकों से शोध छात्रा ने सम्पर्क स्थापित किया है। उन सब पर्यटकों का यह दृष्टिकोण है कि सुविधाओं के अभाव में पर्यटकों का कालिंजर जा पाना सम्भव प्रतीत नहीं होता। अतः यह आवश्यक है कि इन सभी अभावों को दूर करके ही कालिंजर परिक्षेत्र को पर्यटन स्थल बनाया जा सकता है। यह कार्य कठिन अवश्य है मगर सम्भव है असम्भव नहीं।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. विष्णुपुराण, भाग 2, पृ0 329,: गरुणपुराण, 81, 18, 19,: वायुपुराण, 23, 104,: कूर्मपुराण, 36, 35, 38,: वामनपुराण, 90, 27,: महाभारत, 1, 63, 2, 58, 4, 11, 12,: भागवतपुराण, 6,4, 19,2: पद्मपुराण (भूमिखण्ड), 91, 36, 92, 1, 90, 34,: ब्रह्मपुराण, 132, 63,: अग्निपुराण, 109, 23,: मत्स्यपुराण, 23, 109,: हरिवंशपुराण, 1, 21,24,27,: मार्कण्डेयपुराण (उत्तरार्द्ध), 30, 62 ।
2. बाल्मीकि, रामायण, बालकाण्ड, 5-6 ।
3. वेदव्यास, महाभारत, पृ0 20, 50, 63, 33,: त्रिवेदी, एस0 डी0, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, प्रथम संस्करण, झाँसी, 1984, पृ0 1 ।
4. मिश्र, केशवचन्द, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी, विक्रमी संवत् 2011, पृ0 35-36,: पाण्डेय, अयोध्याप्रसाद, चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण, प्रयाग, 1968, पृ0 12-13 ।
5. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, सल्तनत कालीन भारत, आगरा, 1989, पृ0 81-82 ।
6. तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रयाग, विक्रमी सम्वत् 1990, पृ0 94-95 ।
7. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, मुगलकालीन भारत, आगरा, 1981, पृ0 155 ।
8. कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पन्ना खण्ड, भाग 3, पन्ना, संवत् 2039, पृ0 93, 116 ।
9. पद्मपुराण, पातालखण्ड, उमा-महेश्वर संवाद, श्लोक 4 ।
10. वही, श्लोक 7 ।
11. वही, श्लोक 15 ।
12. वही, श्लोक 28 ।
13. वही, श्लोक 26 ।
14. प्रमाणित ऐतिहासिक साक्ष्य मूर्ति रूप में दुर्ग के ऊपर राजा अमान सिंह महल में संग्रहीत हैं ।
15. बाणभट्ट, कादम्बरी, भाग 1, बनारस, 1997, पृ0 67-75 ।
16. त्रिवेदी, एस0 डी0, पूर्वो0, पृ0 9 ।
17. ऋग्वेद, 7, 5, 37, 39 ।
18. रॉय, बी0 एन0, सम्पादक, कालिंजर ए हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल, इलाहाबाद, 1992, पृ0 74-75 ।
19. पत्रांक- 1852, दिनाँक- 19/1/1991 ।

उपसंहार

उपसंहार

कालिंजर विश्व का सर्वाधिक प्राचीन स्थल है जो उत्तर प्रदेश में बाँदा जनपद से 56 किलो मीटर दूर है। कालिंजर पुरातात्विक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कालिंजर में एक उच्च पर्वतशिखर पर एक सुदृढ़ दुर्ग निर्मित है। इस दुर्ग के ऊपरी भाग में पुरातात्विक और ऐतिहासिक महत्व के कई स्थल विद्यमान है। ये स्थल पौराणिक काल से लेकर चंदेल युग और उसके बाद तक के है। दुर्ग के ऊपर राजप्रासाद, धार्मिक स्थल तथा जलाशय उपलब्ध होते हैं। दुर्ग के ऊपर ही बहुमूल्य मूर्ति सम्पदा भी प्राप्त होती है जो मूर्तिशिल्प की दृष्टि से खजुराहो की मूर्तिशिल्प जैसी है।

कालिंजर क्षेत्र में निम्न ऐतिहासिक साक्ष्य मिलते है। इन साक्ष्यों में दुर्ग अवशेष, प्रासाद अवशेष, धार्मिक स्थलों के अवशेष, जलाशय अवशेष, मूर्ति अवशेष तथा अभिलेख आदि प्रमुख हैं। इन साक्ष्यों के आधार पर कालिंजर की प्राचीनता का पता लगता है और ऐसा प्रतीत होता है कि यहां उपलब्ध पुरावशेष उसकी प्राचीनता एवं ऐश्वर्य की गौरवगाथा सतत् दोहराते हैं। कतिपय अन्य स्थानों में चंदेल कालीन तथा कल्चुरिकालीन अनेक मुद्रायें भी मिली है। इन मुद्राओं के माध्यम से भी यहां के प्राचीन ऐश्वर्य का पता लगता है। इसके अतिरिक्त कई जगहों में अनेक ऐसे ताम्रपत्र मिले हैं जिनमें कालिंजर नरेशों की दानवीरता झलकती है। कई जगहों पर प्राचीन आभूषण, बर्तन (भाजन) एवं वस्त्र इत्यादि मिले है, जिनसे यहां के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है इस युग में दो ग्रंथों का सृजन हुआ जो कालिंजर के चंदेल युग के विषय में सम्पूर्ण प्रकाश डालते है। प्रथम ग्रंथ जगनिक कृति आल्हखण्ड तथा द्वितीय ग्रंथ चन्दवरदाई कृति पृथ्वीराजरासो है। इन ग्रंथों को हम ग्रंथीय साक्ष्य के रूप में ग्रहण कर सकते है।

प्रकृति ने जो प्राकृतिक सौन्दर्य कालिंजर परिक्षेत्र को प्रदान किया है वह सौन्दर्य अन्य कहीं नहीं है। भौगोलिक दृष्टि से यह विन्ध्य आटवीं का एक भाग है जहां समशीतोष्ण जलवायु मिलती है। यहां की पर्वत श्रेणियों में नाना प्रकार के वृक्ष पल्लवित होते है जो इसके प्राकृतिक सौन्दर्य में वृद्धि करते है और छः ऋतुओं को जन्म देते हैं। मधुमास तथा शीतकाल की ऋतुओं में प्राकृतिक सुन्दरता में और अधिक वृद्धि हो जाती है। इतना सब कुछ होते हुए भी कालिंजर नाना प्रकार की समस्याओं से सदैव जूझता रहा है और आज भी जूझ रहा है। जब इसकी आर्थिक समृद्धि हुई तब उस समय इसे विदेशी और देशी आक्रमणकारियों ने लूटा और जब इसका अधोपतन हुआ तो उस समय इसे शासन की उपेक्षा सहनी पड़ी। इतना यशस्वी स्थल होते हुए भी कालिंजर आर्थिक दैन्यता एवं जन समस्याओं से ग्रसित है।

धार्मिक दृष्टि से कालिंजर महत्वपूर्ण स्थल है। अति प्राचीन काल में जब इस क्षेत्र ने पुराऐतिहासिक काल का अवलोकन किया तब उस समय यहां के निवासी प्रकृति के उपासक थे। इसके पश्चात जब मातृकुलों की स्थापना हुई उस समय इस परिक्षेत्र के निवासी मातृ शक्ति के उपासक बने। शैवमत की स्थापना के पूर्व तक यह क्षेत्र शक्ति स्थल बना रहा। इसके पश्चात यह स्थल शैव उपासना का केन्द्र बना।

सागर मंथन के पश्चात भगवान शिव ने यहीं विष का पान किया और यहीं विष का समन किया, जिसके कारण यहां भगवान शिव को नीलकण्ठ के नाम से पुकारा गया। शिव उपासना के साथ-साथ कालिंजर क्षेत्र सूर्य उपासना और पंचदेव उपासना का केन्द्र भी रहा। कालान्तर में यह क्षेत्र तान्त्रिकों और नागपंथियों से भी प्रभावित हुआ। वैष्णव उपासकों ने भी इस क्षेत्र में अपना प्रभाव छोड़ा। कालिंजर क्षेत्र में कई धार्मिक स्थल हैं। कालिंजर दुर्ग के ऊपर नीलकण्ठ मंदिर, मृगधारा, कोटितीर्थ, वृद्धक क्षेत्र, पाताल गंगा आदि है। दुर्ग के नीचे भी शैव और वैष्णव धर्म से सम्बन्धित अनेक धार्मिक स्थल मिलते है। इसके अतिरिक्त शेरपुर स्योढ़ा में आंग्लेश्वरी देवी का मंदिर, अजयगढ़ में गुप्तेश्वर एवं बाराही देवी मंदिर, कबीर गद्दी, मड़फा में गुढ़ा के हनुमान जी का मंदिर, शिव मंदिर, नौगवां में कबीर गद्दी, पाथरकछार में रक्तदंतिका और वीरगढ़ का देवी मंदिर तथा गरूण मंदिर एवं विष्णु मंदिर है। रसिन में चन्द्रामाहेश्वरी, कालीदेवी का मंदिर तथा सिधौरा में सिद्धदेवी के मंदिर आदि इस परिक्षेत्र में है जो धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनके अलावा भी अनेक ऐसे उपासना के केन्द्र हैं जिनका सम्बन्ध इस्लाम धर्म के पीर पैगम्बरों से है।

कालिंजर में कई तीज-त्योहार सम्पन्न होते है। इनमें मुख्य रूप से शिवरात्रि, मकर संक्रान्ति और बसंत पंचमी के त्यौहारों को अधिक धूमधाम से मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त यहां रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली तथा होली के त्योहार भी सम्पन्न होते है। कुछ त्योहार ऐसे भी हैं जो केवल यहां रहने वाली जन-जातियों के द्वारा ही मनाये जाते है। यहां धर्म और समाज से जुड़ी परम्पराएं अन्य स्थलों से बिल्कुल भिन्न है। यहां के लोग सामाजिक संस्कारों में अपनी प्राचीन परम्पराओं का निर्वाह करते हैं तथा सामाजिक रीति-रिवाजों का पालन भी तदानुसार करते है। यहां के लोगों की वेश-भूषा, रहन-सहन, आवासीय पद्धति की परम्परा भी अति प्राचीन है जो उन्हें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में मिली है। यहां के लोग मुख्य रूप से बनाफरी, कुडरी, कुल्हाई आदि भाषायें बोलते है। प्रकृति द्वारा प्राप्त वस्तुओं से अपना निर्वाह करते है।

कालिंजर क्षेत्र के निर्धन निवासी अपने मकान मिट्टी एवं पत्थरों से बनाते है। उनको बांस, खड़ियाँ, खप्पर इत्यादि से छाया करते है। धनी वर्ग के लोग इमारती पत्थरों तथा उपलब्ध भवन निर्माण सामग्री के आधार पर अपने मकान पक्के बनवाते है। मकानों में जल की समुचित व्यवस्था करते है। इस परिक्षेत्र में आर्य एवं अनार्य कुल दोनों प्रकार के व्यक्ति निवास करते है। सभी वर्णो के व्यक्ति अपने-अपने धर्मो का अनुपालन करते है। यहां रहने वाले व्यक्ति ज्यादातर सनातन हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। ये विविध देवी-देवताओं की उपासना करते है। साथ ही कुछ व्यक्ति इस्लाम एवं जैन धर्मावलम्बी हैं। वर्ण व्यवस्था की दृष्टि से यहां सर्वाधिक महत्व ब्राह्मणों का है। ब्राह्मण धर्म स्थलों के रक्षक तथा सभी प्रकार के धार्मिक और सामाजिक संस्कार कराने वाले होते है। क्षत्रिय जमींदार रहे है और जनता की रक्षा करते रहे है।विशेष जातियां जैसे नाऊ, बसोर एवं चर्मकार आदि जनता की सेवाओं में सदैव से रहते रहे हैं आज भी इनके

जीवन में कोई परिवर्तन नजर नहीं आता है।

यदि हम कालिंजर के राजनीतिक इतिहास पर दृष्टि डालते है तो हम इसके प्रथम ऐतिहासिक विकास काल को प्रागैतिहासिक काल से लेकर मौर्य काल तक सम्बन्धित करते हैं। इस क्षेत्र में रामचन्द्र पर्वत, मगरगुहा तथा कालिंजर के आस-पास पाषाण कालीन अस्त्र-शस्त्र एवं शैलचित्र मिले है। इससे यह सिद्ध होता है कि पुरापाषाण युग में भी यहां मानव बस्तियां थी। जब यहां का राजनीतिक विकास प्रारम्भ हुआ तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहां सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से सम्राट अशोक तक का अस्तित्व रहा। अनेक स्थलों पर तद्युगीन पुरावशेष मिले है मौर्य काल से लेकर सम्राट हर्ष के युग तक इसने कई राजनीतिक उत्थान-पतन देखे। कुछ वर्षों तक यहां पाण्डुवंशियों का राज्य रहा। इन्होंने कई वर्षो तक यहां राज्य किया इनके पश्चात नागवंशीय एवं भारशिव यहां के शासक रहे। समुद्रगुप्त के प्रयास प्रशस्ति-अभिलेख से ऐसा जान पड़ता है कि कि विन्ध्य आटवीं को समुद्रगुप्त ने नागवशिंयों से प्राप्त किया था। इससे यह ज्ञात होता है कि यहां गुप्तों का भी शासन रहा। ईसा की छठी शताब्दी में यह क्षेत्र सम्राट हर्ष वर्धन के अधिकार में आ गया इसकी जानकारी हमें बाणभट्ट द्वारा रचित ग्रंथों से होती है। गुर्जर प्रतिहारों का शासन यहां यंदेल नरेश नन्नुक देव के समय तक बना रहा। धीरे-धीरे इस क्षेत्र में चंदेल नरेश शक्तिशाली होते गये और वह यहां के स्वतंत्र शासक बन गये। इनके समय में मुसलमान आक्रमणकारी महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ। परमर्दि देव के समय में पहले दिल्ली नरेश पृथ्वीराज का आक्रमण हुआ फिर कुतुबुद्दीन ऐबक का आक्रमण हुआ। इन आक्रमणों के कारण चंदेल शासन अधोगति को प्रारम्भ हुआ। 12वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक यह क्षेत्र अनेक राजनीतिक घटनाओं से प्रभावित रहा और इनसे त्रस्त भी रहा। कभी ये सुल्तानों एवं मुगलों के अधिकार में आ जाता था तो कभी यहां के सामंत और हिन्दू शासक इस क्षेत्र को मुसलमानों से छीन लेते थे। जब हुमायूँ ने इस क्षेत्र में आक्रमण किया उस समय यहां का शासक राजा रूद्रप्रताप सिंह था, उसके बाद जब शेरशाह सूरी ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया उस समय यहां राजा कीर्ति सिंह चंदेल का शासन था। रानी दुर्गावती इनकी पुत्री थी। जब अकबर बादशाह ने अपने नवरत्नों में से बीरबल और तानसेन को यहां से प्राप्त किया तब उस समय यहां का शासक रामचन्द्र बघेल था। रामचन्द्र बघेल के बाद औरंगजेब के समय तक यह क्षेत्र मुगलों के आधीन रहा। 17वीं शताब्दी से 1947 तक कालिंजर अनेक राजनीतिक परिस्थितियों का शिकार होता रहा। सन् 1691 के लगभग यह क्षेत्र छत्रसाल के नेतृत्व में आ गया और छत्रसाल के उत्तराधिकारियों ने कायमजी चौबे और उनके वंशजों को यहां का उत्तराधिकारी बनाया। 1812 तक इस क्षेत्र में रामकिशन चौबे का अधिकार रहा फिर यह अंग्रेजों के आधीन होगा। सन् 1857 की क्रान्ति के मध्य क्रान्तिकारियों ने इस क्षेत्र को अपने अधिकार में लेना चाहा किन्तु वह सफल नहीं हो सके। 1947 तक यह क्षेत्र अंग्रेजों के आधीन बना रहा। सन् 1947 के पश्चात यह क्षेत्र स्वतन्त्र भारत के शासकों के आधीन रहा किन्तु यह सदैव उपेक्षा का शिकार ही बना रहा। इसने किसी भी राजनीतिक घटना क्रम को

नवीन गति प्रदान नहीं की। आज भी यह क्षेत्र अपनी प्राचीन ऐतिहासिक स्मृतियों को समेटे है किन्तु वर्तमान ऐतिहासिक गतिविधियाँ नगण्य हैं।

कालिंजर में ऐतिहासिक दृष्टि से कई स्थल दर्शनीय है जिनका सम्बन्ध पुरापाषाण युग से लेकर बुन्देलों के शासन काल तक से है। इन स्थलों में मड़फा, रौलीगोंड़ा, रसिन, बिलहरियामठ, कालिंजर, ऋषियन, शेरपुर स्योढ़ा, रनगढ़, अजयगढ़ तथा शोध छात्रा द्वारा खोजे गये अन्य ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थल विद्यमान हैं, जो यहां की गाथा को महिमा मण्डित करते हैं। यह स्थल ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं वास्तुशिल्प के आधार पर बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में कुछ ऐसे स्थल भी है जो प्राकृतिक दृष्टि से बहुत सुन्दर मालुम पड़ते है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक ये स्थल हमेशा पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इन स्थलों में भरकूप, व्यासकुण्ड, बानगंगा, पाथरकछार, बृहस्पति कुण्ड, लखनसेहा, किशनसेहा, सकरों एवं मगरमुहा ऐसे स्थल है जो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करने में सक्षम हैं। इन स्थलों में निम्न प्रकार की खनिज एवं वन सम्पदा प्राप्त होती है।

कालिंजर का महत्व ऐतिहासिकता एवं पौराणिकता के आधार पर बहुत प्राचीन जान पड़ता है। वेदों में इस स्थल को चेदि देश का अंग माना गया है। पुराणों में कोई ऐसा पुराण नहीं है जिसमें कालिंजर के महत्व को उजागर न किया गया हो। कालिंजर क्षेत्र को महातीर्थ और भगवान शिव को नव ऊखलों में से एक माना गया है। यदि व्यक्ति पौराणिक गाथाओं के अनुसार इस क्षेत्र का भ्रमण करता है और पिण्डदान करता है तो व्यक्ति को हजार गायों के दान का पुण्य मिलता है और उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

कई साहित्यिक ग्रंथों में कालिंजर के महत्व का वर्णन है मुख्य रूप से रूपकषटकम्, विक्रमांकदेवचरितम् तथा प्रबोधचन्द्रोदय में इस परिक्षेत्र का वर्णन विस्तार से किया गया है। इनके अलावा पृथ्वीराजरासों तथा आल्हखण्ड में कालिंजर की यशोगाथा वर्णित है। गोवर्धनदास त्रिपाठी, हरिप्रसाद शर्मा एवं वासुदेव त्रिपाठी ने कालिंजर पर साहित्यिक ग्रंथ लिखकर इसे गौरवान्वित एवं महिमामण्डित किया है। वृन्दावनलाल वर्मा ने रानी दुर्गावती में भी कालिंजर का वर्णन किया है।

ऐतिहासिक ग्रंथों में भी कालिंजर को कम महत्व नहीं दिया गया। सन् 1860 से लेकर जिन शोधपूर्ण सर्वेक्षण ग्रंथों की रचना की गई है उनमें कालिंजर का उल्लेख है। मुख्य रूप से आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, इण्डियन ऐन्टीक्वेरी आदि ग्रंथों में कालिंजर का वर्णन विस्तार से मिलता है। दीवान प्रतिपाल सिंह, मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' की किताबों में कालिंजर का वर्णन किया गया है।

कालिंजर के संदर्भ में अनेक शोध कार्य किये गये है। शोध कार्यों की प्रमुख भूमिका पं0 जवाहर लाल नेहरू डिग्री कालेज, बाँदा के इतिहास विभागाध्यक्ष (प्रो0) बी0 एन0 रॉय ने निभाई । इन्होंने कालिंजर ए हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। इसके अलावा शोध छात्रा को भी

उन्होंने ही प्रेरित किया कि वह कालिंजर को पर्यटन के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से इस पर शोध कार्य करे। शोध छात्रा ने उन्हीं के निर्देशों का पालन करते हुए यह कार्य पूर्ण किया।

वास्तव में कालिंजर पर्यटन के आधार पर उपयोगी है। यह किसी भी पर्यटक को धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अपनी ओर आकर्षित करता है। यदि पर्यटक धर्म एवं इतिहास से कोई मतलब नहीं रखता और वह एक व्यवसायी मात्र है तो भी वह खनिज सम्पदा को देखने के लिए यहाँ की यात्रा कर सकता है। पर्यटन योग्य बनाने के लिए यह सबसे बड़ी आवश्यकता है कि इस क्षेत्र में उपलब्ध दुर्गों की सुरक्षा की जाये तथा जो ऐतिहासिक स्थल यहां विद्यमान है उनकी सुरक्षा की जाये, उपलब्ध मूर्ति सम्पदा की सुरक्षा की जाये, महलो एवं जलाशयों की सुरक्षा की जाये, ऐतिहासिक साक्ष्य जानने के लिए अनेक रियासतों में प्राप्त हस्तलिखित ग्रंथों का संकलन किया जाये तथा उन्हें प्रकाशित करने का प्रयास किया जाये।

पर्यटकों की दृष्टि में अभी तक कालिंजर अभाव ग्रस्त है। यहां पर आवागमन के साधनों का व्यापक अभाव है। इस क्षेत्र में स्थल मार्ग, रेलमार्ग और वायुमार्ग का अभाव होने के कारण पर्यटक यहां नही आ पाते है। पर्यटन जिस सुरक्षा व्यवस्था की अपेक्षा करते है वह भी इन्हें सुलभ नहीं होती। पर्यटकों के मनोरंजन के लिए कोई साधन नहीं है तथा समुचित आवासीय व्यवस्था का अभाव है। इस परिक्षेत्र में कोई ऐसा ऐतिहासिक ग्रंथ एवं एलबम पर्यटकों को सुलभ नही होता जो इस परिक्षेत्र की पूरी-पूरी जानकारी करायें। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में ऐसे ज्ञानी व्यक्तियों का भी अभाव है जो पर्यटकों के मार्गदर्शक बनकर उन्हें समस्त क्षेत्रों का भ्रमण करा सकें। यहां अनेक प्रकार की लोकसंस्कृतियाँ है जो पर्यटकों को आकर्षित कर सकती है किन्तु उचित प्रोत्साहन न मिलने के कारण इनका विकास सम्भव नही हो सका। यही सब कारण है कि यह पर्यटकों को आकर्षित नहीं कर पाता है।

शोध छात्रा द्वारा सुझाये गये उपाय-

1. कालिंजर क्षेत्र के ऐतिहासिक स्थलों को विश्व ऐतिहासिक धरोहर घोषित किया जाये।
2. कालिंजर तक आगमन के साधनों का विकास तीव्रगति से किया जाये।
3. कालिंजर में पर्यटकों के आवास के लिए समुचित व्यवस्था हो।
4. कालिंजर में विकास प्राधिकरण की स्थापना तथा इसे मॉडलटाउन के रूप में विकसित किया जाये।
5. यहाँ पर जुड़ी हुई लोक संगीत परम्परा को विकसित करके समय-समय पर उसका प्रस्तुतिकरण हो।
6. कालिंजर के इतिहास को पर्यटन की दृष्टि से लिखकर उसका प्रचार-प्रसार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जाय।

7. कालिंजर महोत्सव आयोजन प्रतिवर्ष किया जाये और विदेशी पर्यटकों को आकर्षित किया जाय।
8. परम्परागत कुटीर उद्योगों को विकसित किया जाय।
9. कालिंजर की दुर्लभ मूर्तियों को धातु संगमरमर एवं प्लास्टर ऑफ पेरिस के माडल उपलब्ध कराये जाये।

शोध प्रबन्ध से उपलब्ध लाभ-

यह शोध प्रबन्ध वास्तविक रूप से शोध की एक नई उपलब्धि सिद्ध होगा। उसका मूल कारण यह है कि अभी तक इतिहास के शोध छात्र केवल पुरातात्विक स्थल और उससे सम्बन्धित ऐतिहासिक स्थलों को ही उजागर करते आये हैं किन्तु इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से एक नवीन उपलब्धि यह होगी कि यहां पल्लवित होने वाली लोक संस्कृति का अध्ययन इस शोध प्रबन्ध में सविस्तार किया गया है। वर्तमान समय में इसका प्रस्तुतिकरण सामान्य जनजीवन में जिस प्रकार होता है उसे भी प्रस्तुत किया गया है। मुख्य रूप से यह शोध प्रबन्ध जहां इतिहास धर्म और संस्कृति को उजागर करता है वहीं यह इनके प्रति पर्यटकों को भी अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करना है। यहां के निवासी तो इनको रातदिन देखते ही है। जब तक बाहरी व्यक्ति यहां के इतिहास धर्म एवं संस्कृति का अवलोकन नहीं करेगा उस समय तक यह स्थल सम्पूर्ण विश्व में लोकप्रिय नहीं हो सकता। इस प्रकार हम देखते है कि हमको इस शोध प्रबन्ध से निम्न लाभ मुख्य रूप से प्राप्त होते है-

1. कालिंजर के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व पर नया प्रकाश-

अभी तक जिन इतिहासकारों ने कालिंजर के इतिहास पर प्रकाश डाला है वह एकांगीय प्रतीत होता है।पहला वर्णन इतिहास की पुस्तकों में यहां के उन राजवंशों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने इस परिक्षेत्र में राज्य किया अथवा जिनके आक्रमण कालिंजर परिक्षेत्र में हुए। दूसरा वर्णन यहां पर प्रचलित धर्म के विषय में प्राप्त होता है जो पुराणों एवं धर्म ग्रंथों पर मिलता है। यहां आने वाले इतिहासकारों ने यहां प्राप्त पुरावशेषों, अभिलेखों, ताम्रपत्रों तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर यहां के इतिहास की रचना की। उन्होंने परम्पराओं, रीति-रिवाजों एवं जनश्रुतियों का वैज्ञानिक अध्ययन एवं उसका वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करने का प्रयत्न नहीं किया जिससे यह केवल पुरातात्विक महत्व का स्थल तो बना परन्तु व्यक्ति इसके प्रति पूर्ण उदासीन रहे। इसके अतिरिक्त व्यक्तियों का दृष्टिकोण केवल कालिंजर तक ही सीमित रहा। उनका ध्यान कालिंजर के आस-पास फैली पुरासम्पदा की ओर नहीं गया। मैने अपने शोध प्रबन्ध के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थलों की खोज की। उनके ऐतिहासिक साक्ष्य भी ढूढ निकाले। यह प्रबन्ध की एक नवीन उपलब्धि है। इस शोध में सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व पर अत्यधिक नया पन देखने को मिलेगा।

2. कालिंजर की ओर पर्यटकों को आकर्षित करने का प्रयास-

मेरा यह मानना है कि कालिंजर का ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व केवल इस क्षेत्र के निवासियों तक सीमित न रह जाये। यहां की सांस्कृतिक विरासत को देखनें के लिए विदेशी एवं भारतीय लोग यहां आयें और वह यहां की विशेषताओं का अवलोकन करें क्योंकि इस परिक्षेत्र की लोक संस्कृति अन्य स्थलों की लोक संस्कृति से भाषा, वेश-भूषा खान-पान, आभूषण और लोकाचार की दृष्टि से बिल्कुल भिन्न है। यहां पर पल्लवित होने वाली लोक संस्कृति जिनमें आर्यकुल और अनार्य कुल की संस्कृति समाहित है। यहां के तीज-त्योहार और तीज-त्योहारों में गाया जाने वाला संगीत पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। मैनें अपने शोध प्रबन्ध में आने वाले पर्यटकों की कठिनाईयों का अध्ययन किया है। उसे दूर करने के लिए समुचित उपाय भी सुझाये है, यदि प्रशासन तथा पर्यटन विभाग से जुड़े व्यक्ति उन पर ध्यान देगें तो निश्चित ही यह शोध प्रबन्ध पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल होगा।

3. कालिंजर से जुड़े हुए लोगों का आर्थिक एवं औद्योगिक विकास-

इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी युग में कालिंजर परिक्षेत्र धन-धान्य से परिपूर्ण था। यहां के नरेशों के पास किसी प्रकार की कोई कमी नहीं थी, इसलिए उन्होंने अपने अर्जित धन से सुदृढ़ दुर्गो, देवालयों और जलाशयों का निर्माण सम्पूर्ण जुझौति क्षेत्र में कराया। कालिंजर ने ऐसी मूर्ति सम्पदा को जन्म दिया जिसने वास्तुशिल्प की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्य चकित किया और अपनी तरफ आकृष्ट किया। जब हम इतिहास में यह वर्णन पढ़ते हैं कि यहां आक्रमण करने वाला महमूद गजनवी अरबों की सम्पत्ति लूट ले गया और यहां के नरेशों ने केवल छः माह में उस सम्पत्ति की आपूर्ति कर ली, इसके बाद इस परिक्षेत्र में पृथ्वीराज और कुतुबुद्दीन ऐबक ने भी आक्रमण किये उन्होंने भी इसे खूब लूटा। इतना लूटने के बाद भी यह क्षेत्र धनी बना रहा। वर्तमान स्थिति को देखते हुए उपरोक्त ऐतिहासिक कथनों पर विश्वास किसी प्रकार से नहीं होता क्योंकि यहां की भूमि की विषम बनावट और कृषि के कारण यह क्षेत्र अनुत्पादक होने के कारण गरीबी की मार झेल रहा है। अधिकांश व्यक्ति बेरोजगारी और सुरक्षा के अभाव में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

खनिज सम्पदा के आधार पर इस परिक्षेत्र का अवलोकन किया जाये तो वास्तव में कालिंजर परिक्षेत्र धनी है यहां सोना, हीरा, लोहा, चूने का पत्थर, इमारती लकड़ी इमारती पत्थर भरा पड़ा है। यदि प्रशासन ध्यान दे और यहां स्थापित प्राचीन लघु उद्योगों का फिर से उद्धार कराये तो यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो सकता है। मैने अपने शोध प्रबन्ध में उन उपायों को सुझाया है जिससे इस क्षेत्र के उद्योगों का विकास हो सकता है और उद्योगों से लाभ प्राप्त कर सकते है। उनके बनाये हुए सामान को बाहर के लोग भी खरीद सकते हैं यदि कालिंजर क्षेत्र और उसकी बस्तियों को आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित कर दिया जाये तो निश्चित ही वहां के निवासियों को लाभ हो सकता है।

मेरे शोध प्रबन्ध से भविष्य में निम्न लाभ प्राप्त हो सकते है-

1. कालिंजर क्षेत्र के इतिहास पर नवीन दृष्टि।
2. कालिंजर क्षेत्र के धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का व्यापक प्रचार-प्रसार।
3. उपलब्ध कलात्मक ऐतिहासिक सामग्री का समुचित संरक्षण एवं प्रदर्शन।
4. लोक कला एवं लोक संस्कृति का विकास।
5. उद्योग एवं खनिज सम्पदा से जुड़े हुए आर्थिक समृद्धि का विकास।
6. पर्यटन सुविधाओं का विकास।
7. सम्पूर्ण विश्व में कालिंजर का प्रचार-प्रसार एवं लोकप्रिय ऐतिहासिक क्षेत्रों में इसकी गणना।
8. अन्य शोध छात्रों को शोध द्वारा प्रोत्साहन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस शोध प्रबन्ध से इतिहासकारों सांस्कृतिक विदों शोध छात्रों एवं पर्यटकों को अत्यन्त लाभ होगा।

शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन एवं उसकी उपलब्धियाँ-

यह शोध प्रबन्ध वैज्ञानिक विषयों पर आधारित है इसलिए इसके मूल्यांकन के लिए किसी वैज्ञानिक विधि को अपनाने की आवश्यकता भी नहीं है। क्योंकि वैज्ञानिक विधि, प्रयोग शाला और उस पर किये गये प्रयोग तथा प्रयोग के उपरान्त निकाले गये परिणामों पर आधारित होती है परन्तु यह शोध प्रबन्ध भौतिक, रसायन, गणित और जीव-विज्ञान की कोटि का नहीं है इसलिए इस शोध प्रबन्ध के मूल्यांकन में विशिष्ट वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। यह विशद्ध सामाजिक विज्ञान से सम्बन्धित विषय है तथा इस विषय को ऐतिहासिक विषय के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसलिए सामाजिक विषयों के लिए जिन मूल्यांकन विधियों की आवश्यकता है, उन्हीं मूल्यांकन विधियों के अनुसार इस शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन किया गया है।

1. सामाजिक विज्ञान से सम्बन्धित इतिहास विषय-

यह शोध प्रबन्ध जिसका शीर्षक "कालिंजर का सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व तथा पर्यटन विकास की सम्भावनाएं " पूर्णरूपेण इतिहास विषय से सम्बन्धित है, चूंकि इस विषय को पर्यटन से जोड़ा गया है, इसलिए यह विषय भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करता है। भूतकाल की दृष्टि में इस शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत कालिंजर के गौरवमयी अतीत को उद्घाटित किया गया है ऐसे नवीन स्थलों की खोज की गई है जिसका वर्णन किसी भी ऐतिहासिक ग्रंथ में नहीं मिलता उन नवीन स्थलों से सम्बन्धित स्थलों की वास्तुशिल्प परम्पराओं ओर जनश्रुतियों के आधार पर ऐतिहासिक साक्ष्य खोजे गये है। आज भले ही ये साक्ष्य विश्वसनीय न हो किन्तु भविष्य में यह समुचित विश्वास जुटा लेगें जब अन्य छात्र यहाँ के ऐतिहासिक साक्ष्यों की खोज करेंगे तभी इसके साक्ष्य उजागर हो सकेंगे। जहाँ तक कालिंजर

परिक्षेत्र के वर्तमान का प्रश्न है तो कालिंजर का वर्तमान निराशाजनक है। ऐसा प्रतीत होता है कि अशिक्षा के कारण यहां के स्थानीय लोगों को अपनी पुरातन विरासत से कोई लगाव नहीं है जबकि पुरासम्पदा की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यन्त धनी हैं यदि वास्तुशिल्प और मूर्तिशिल्प के आधार पर इसका मूल्यांकन एवं सर्वेक्षण किया जाये तो यह बहुत ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल है। आवश्यकता यह है कि इस सम्पूर्ण क्षेत्र के प्रति लोगों में जागरूकता उत्पन्न की जाय तथा इसे विनाश से बचाया जाये। अभी यहाँ के निवासी अज्ञानवश या प्रलोभन वश इस क्षेत्र को नष्ट करते हैं तथा कुछ विनाश प्राकृतिक आपदाओं के कारण भी हो रहा है। इसी वजह से इसका वर्तमान अत्यन्त विनाशक प्रतीत होता हैं। कालिंजर परिक्षेत्र का भविष्य अत्यधिक सुनहरा हो सकता है यदि पुरतत्व विभाग और पर्यटन विभाग जागरूक हो जायें तो यहाँ का कायाकल्प हो सकता है। इधर-उधर बिखरी पुरासम्पदा का एकत्रीकरण कराया जाये और उनकी मरम्मत कराई जाये तथा इन क्षेत्रों को देखने के लिए प्रचार एवं प्रसार के माध्यम से आकर्षित किया जाये। सम्बन्धित स्थलों के संदर्भ में समुचित इतिहासों की साक्ष्यावली, परिचयात्मक पुस्तकों एवं एलबमों का प्रकाशन कराया जाये तभी यहां के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना की जा सकती है। कालिंजर में जो भी है वह अधिक प्राचीन है। प्राचीनतम के बाद भी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी वह अति महत्वूपर्ण है।

2. शोध के लिए अपनाई गई विधि-

अनुसंधान विज्ञान के अनुसार जो विधि सामाजिक विषयों से निर्धारित होती है उसी विधि का अनुशरण इस शोध प्रबन्ध में किया है। वह विधि निम्न बिन्दुओं पर आधारित है-

1. उपलब्ध स्थलों के दर्शन-

ऐतिहासिक ग्रंथों में कालिंजर परिक्षेत्र के जिन स्थलों का वर्णन है उन स्थलों का दर्शन मैंने स्वतः जाकर वहां किया। यहां उपलब्ध स्थल पूर्वपाषाण काल से लेकर गुप्तयुग चंदेलयुग और उसके बाद तक के हैं। इन स्थलों को देखनें के पश्चात इनके संदर्भ में वास्तुशिल्प के अनुसार इनका मूल्यांकन किया गया। गुणवत्ता की दृष्टि से शोध के लिए अपनाये गये दृष्टिकोण एवं सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध में इस दृष्टिकोण को बनाये रखा गया है।

2. नवीन स्थलों की खोज-

जब शोध छात्रा उपलब्ध ऐतिहासिक स्थलों का दर्शन एवं उनका मूल्यांकन कर रही थी, उस समय स्थानीय लोगों के परामर्श के अनुसार मैं उन स्थलों में भी गई जो ऐतिहासिक महत्व के होते हुए भी उपेक्षित थे। जब मैंने उन स्थलों को देखा और उनके संदर्भ में विशिष्ट जानकारियाँ प्राप्त की तो ऐसा प्रतीत हुआ कि यहां आने वाले इतिहासकारों का ध्यान इन स्थलों की ओर गया ही नहीं, इसलिए इन नवीन स्थलों के विषय में बहुत ही न्यायिक दृष्टिकोण अपनाकर मैंने इनके विषय में जानकारी हासिल की और उनका

अन्वेषण एवं सर्वेक्षण किया। ये स्थल वास्तुशिल्प और मूर्तिशिल्प के आधार पर मुझे महत्वपूर्ण प्रतीत हुए।

3. ऐतिहासिक साक्ष्यों का अध्ययन-

जो भी ऐतिहासिक स्थल इस क्षेत्र में मुझे मिले है उनके विषय में विविध ग्रंथों की खोज की गई तथा उनका विस्तृत अध्ययन किया गया। इन ग्रंथों में पौराणिक ग्रंथ, साहित्यिक ग्रंथ, खोज परख पत्र-पत्रिकायें तथा शोध प्रबन्धों का अध्ययन अत्यन्त विस्तार से किया गया। कुछ हस्तलिखित ग्रंथ और अप्रकाशित ग्रंथ भी अनेक स्थानों से मिले हैं जिनका अध्ययन इस शोध प्रबन्ध के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इन ग्रंथों ने इस परिक्षेत्र के विषय में मुझे एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया जिससे यह शोध महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत हो सकता है। बहुत से ग्रंथों में साक्ष्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है जिनसे मैं सहमत नहीं हो सकी।

4. ऐतिहासिक सामग्री का अध्ययन-

कालिंजर परिक्षेत्र में प्रचुर मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री हैं। इस सामग्री के अन्तर्गत मैंने अनेक स्थलों में प्राचीन मुद्रायें, अभिलेख, ताम्रपत्र, अस्त्र-शस्त्र, आभूषण एवं वस्त्र देखें। इसके अतिरिक्त अनेक चित्र भी प्राचीन युग के देखने को मिले। उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर कालिंजर के कई युगों का इतिहास, वेशभूषा, वस्त्राभूषण, युद्ध कौशल (अस्त्र-शस्त्र) आदि के विषय में जानकारी प्राप्त हुई जिसका उल्लेख मैंने अपने शोध प्रबन्ध में यत्र-तत्र किया है।

5. परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों का अध्ययन-

यह सम्पूर्ण परिक्षेत्र कुछ ऐसी परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों का अनुपालन करता है जो अन्य क्षेत्रों में देखनें को नहीं मिलती है ऐसा लगता है कि हजारों वर्षों से यहां के निवासी परम्पराओं और रीति-रिवाजों का अनुपालन कर रहे हैं। इनके अध्ययन से यहां पर प्रचलित धर्म, अन्धविश्वास एवं सामाजिक व्यवस्था का पता लग जाता है।

6. कालिंजर के ऐतिहासिक स्थलों का अन्य ऐतिहासिक स्थलों से तुलनात्मक मूल्यांकन-

यदि हम कालिंजर दुर्ग की समतुलना भारतवर्ष में प्राप्त अन्य दुर्गों से करते हैं तो कालिंजर का दुर्ग विश्व और भारतवर्ष का प्राचीनतम और सर्वश्रेष्ठ दुर्ग मालुम होता है। वास्तुशिल्प के आधार पर भी दुर्ग उच्चकोटि का है। दुर्ग की प्राचीरें अन्य दुर्गों से अधिक सुदृढ़ है। प्रतिरक्षात्मक विज्ञान के अनुसार भी यह दुर्ग अत्यन्त श्रेष्ठ है। यहां प्राप्त राजप्रासाद और धार्मिक स्थल वास्तुशिल्प की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ मालुम होते है किन्तु रख-रखाव की दृष्टि से इनकी स्थिति अत्यन्त जर्जर है। यहां जो मूर्तियां उपलब्ध होती हैं वे मूर्तियां अन्य स्थलों में प्राप्त चंदेल युगीन मूर्तियों जैसी ही है किन्तु कुछ मूर्तियां इतनी श्रेष्ठ है कि खजुराहो में प्राप्त मूर्तियां भी उतनी अच्छी नहीं कहीं जा सकती। इसलिए शोध छात्रा की दृष्टि में कालिंजर

दुर्ग और इस परिक्षेत्र की पुरासम्पदा अन्य ऐतिहासिक स्थलों से श्रेष्ठ मालुम होती है। कहा जाता है कि कालिंजर से ही मूर्तियां बनकर खजुराहों व अन्य जगहों को जाती थी। शायद इसीलिए कालिंजर को मूर्ति निर्माण का केन्द्र माना जाता है।

3. पर्यटन सम्बन्धी दृष्टिकोण-

पर्यटन के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इस क्षेत्र का मूल्यांकन किया जाये तो यह निश्चित है कि यदि अन्य क्षेत्रों में पर्यटक केवल ऐतिहासिक एवं पुरासम्पदा को देखने के लिए ही आता है और उससे सन्तुष्ट होकर चला जाता है तो कालिंजर परिक्षेत्र में भी आने वाला यात्री बहुउद्देश्यों के साथ इस परिक्षेत्र की यात्रा कर सकते है। यहां पर उसके आने का उद्देश्य इतिहास एवं पुरातत्व महत्व के स्थलों को देखना भी हो सकता है। प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त स्थलों को देखना खनिज सम्पदा से व्यवसायिक लाभ उठाना हो सकता है किन्तु यह तभी सम्भव है जब यहां आवागमन के साधनों का विकास हो तथा सुविधायें सुलभ हों।

शोध के सम्बन्ध में शोध छात्रा का निजी दृष्टिकोण-

निःसंदेह कालिंजर भारतवर्ष का एक ऐसा स्थल है जिसका महत्व धर्म, संस्कृति और इतिहास की दृष्टि से बहुत अधिक हैं। वेदों से लेकर समस्त धर्म ग्रंथों में कहीं न कहीं उसका विवरण उपलब्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथों में भी इसका विवरण प्राप्त हो जाता है। वर्तमान स्थिति में कालिंजर जैसा महत्वपूर्ण क्षेत्र अपने दुर्दिन को आद्र नेत्रों से देख रहा है। हम कितने ही महान रहे हो, हमारा वर्तमान क्या है। इस पर विचार करना बहुत आवश्यक हो जाता है। जब एक शोध छात्रा के रूप में कालिंजर दुर्ग का अवलोकन मैंने किया तो मुझे उसे देखकर अत्यन्त दुख का अनुभव हुआ और लगा कि पुराऐतिहासिक काल से लेकर वर्ममान काल तक के इतिहास को संजोये रखने वाला कालिंजर दुर्ग पूर्ण रूपेण उपेक्षित हैं। न तो इसके संरक्षण के विषय में स्थानीय निवासी कोई अभिरूचि ले रहे हैं और न प्रशासन ही इस पर कोई ध्यान दे रहा है। यहां के दुर्ग को देखकर ऐसा लगा कि वास्तव में यह दुर्ग वास्तुशिल्प की दृष्टि से बेजोड़ है तथा यहाँ उपलब्ध भग्नावशेष व मूर्तियां वास्तुशिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं, यदि इस पर जल्दी ध्यान न दिया गया तों यह महत्वपूर्ण पुरासम्पदा विनाश को प्राप्त हो जायेगी। इसलिए मुझे लगा कि इतिहास की छात्रा होने के नाते इस पर शोध कार्य किया जाना अति आवश्यक है।

कालिंजर पर शोध करना मेरे लिए कोई सरल बात नहीं थी। उसका मूल कारण यह था कि केवल भग्नावशेषों को देखकर अथवा उपलब्ध मूर्ति सम्पदा को देखकर कोई भी शोध छात्रा शोध कार्य नहीं कर सकता। ऐतिहासिक साक्ष्यों को अनुमानित साक्ष्यों के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। सबसे बड़ी कठिनाई वास्तुशिल्प संदर्भ का काल निर्धारण होता है। जो वास्तुशिल्प की शैली पर निर्भर करता है। विविध वास्तुशिल्प की उपलब्धि के कारण इसे एक काल विशेष का नहीं कहा जा सकता है। विविध शासक जिन्होंने कालिंजर परिक्षेत्र में शासन किया, उन्होनें अपनी अभिरूचि के अनुसार वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट नमूनों

का निर्माण कराया, जिन्हें देखकर कालिंजर की सांस्कृतिक और धार्मिक महत्ता परिलक्षित होती है जिन्हें विशिष्ट राजनैतिक घटनाक्रमों से जोड़ा जा सकता है। कालिंजर के वास्तुशिल्प के विषय में ऐसी कोई विशिष्ट पुस्तक प्राप्त नहीं होती है जिसके आधार पर उसका वास्तविक विश्लेषण किया जा सकता है।

जहां तक धर्म और संस्कृति का प्रश्न है इस परिक्षेत्र में पुरापाषाण युग से लेकर विविध धर्म स्थल भग्नावशेष के रूप में उपलब्ध होते हैं। विविध वर्णनों के अनुसार इस परिक्षेत्र को शक्ति क्षेत्र, शिव उपासना क्षेत्र तथा सूर्य उपासना क्षेत्र के रूप में प्रसिद्धि उपलब्ध हुई थी। कालान्तर में यह परिक्षेत्र पंचदेवों की उपासना का केन्द्र बना तथा कुछ सिद्ध संतों ने इसे तांत्रिकों का क्षेत्र बना दिया । अब तक धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि को उजागर करने वाली कोई ऐसी विषय सामग्री उपलब्ध नहीं हुई जिसके आधार पर यहां उपलब्ध धर्म और संस्कृति का विश्लेषण किया जाता है। कालिंजर की धर्म एवं संस्कृति के संदर्भ में ऐसी बहुत कम पुस्तकें प्राप्त होती है जिनका प्रयोग शोध कार्य के लिये ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में किया जाता है।

राजनीतिक घटनाक्रम में भी कालिंजर के ऐतिहासिक साक्ष्य किसी ऐसी प्रमाणित पुस्तक में प्राप्त नहीं होते जिसे पूर्णरूपेण सत्य माना जा सकता। पाली जातकों, जैन ग्रंथों, मौर्यकालीन इतिहासों तथा वाकाटकों और गुप्तों के इतिहास से सम्बन्धित पुस्तकों में कालिंजर का वर्णन यदा-कदा मिल जाता है। कतिपय अभिलेखों में भी कालिंजर के संदर्भ में जानकारी दी गई है किन्तु एक क्रम से राजनीतिक घटना का वर्णन नहीं मिल पाता है। उपलब्ध साहित्यिक ग्रंथों को ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में शोध छात्रा के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। मुख्य रूप से पृथ्वीराजरासो, आल्हखण्ड, अलबरूनी के अभिलेखों व आइने अकबरी आदि में इस परिक्षेत्र का वर्णन अवश्य मिलता है किन्तु इन ग्रंथों को ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करना मेरे लिए अत्यन्त कठिन था। अपने शोध को पूरा करने के लिए विषय सामग्री से सम्बन्धित ग्रंथों का अभाव मुझे खटका, जिसने मेरे लिए शोध कार्य में बड़ी कठिनाई उत्पन्न कर दी ।

कालिंजर में प्रचलित जनश्रुतियों, जन परम्पराओं, लोक कथाओं का भी मैने विषद् अध्ययन किया तथा समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों धार्मिक उत्सवों और धार्मिक संस्कारों का भी अध्ययन किया किन्तु यहां के लोग अशिक्षित हैं। इतिहास और संस्कृति के प्रति उनमें कोई अभिरूचि नहीं है। इसलिए वे कुछ भी बतलाने में असमर्थ रहें। केवल कुछ व्यक्तियों के दिशा निर्देशों के आधार पर मैंने अपना शोध कार्य अत्यन्त कठिनाई से पूरा किया । ऐतिहासिक साक्ष्यों को संकलित करने में मुझे बहुत अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा तथा पुस्तकीय संग्रह के लिए मुझे उत्तर-प्रदेश के कई पुस्तकालयों का सहारा लेना पड़ा व राजकीय संग्रहालयों को देखना पड़ा।

मेरा यह शोध कार्य जहां एक ओर कालिंजर की पुरासम्पदा का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से मूल्यांकन करता है और उसकी विशिष्टता को उजागर करता है वहीं दूसरी ओर यह शोध प्रबन्ध उन तमाम

इतिहास प्रेमियों को ओर ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें अपनी पुरासंस्कृति और ऐतिहासिक धरोहर से प्रेम है को आकर्षित करता है कि वे यहां पर्यटन के उद्देश्य से आवें और उस अतीत की परिकल्पना करें। जब कालिंजर एक साधन सम्पन्न राज्य के रूप में ऐश्वर्य का सुख भोग रहा था। तब इसके ऐश्वर्य से विविध देशी तथा विदेशी शासक इसकी ओर आकर्षित हुए। इन शासकों ने विविध समयों पर आक्रमण किये, जिससे उस युग में नवीन ऐतिहासिक घटनाऐं इससे जुड़ती रही। निश्चय ही पर्यटक इस परिक्षेत्र में आकर अति प्रसन्न होगा, और मेरा शोध कार्य पर्यटकों को आकर्षित करने का भी काम करेगा।

मैंने अपने शोध कार्य के माध्यम से ऐसे अनेक सुझाव प्रशासन को दिये है जिनके माध्यम से वे इस क्षेत्र का पर्यटन के रूप में विकास कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि एक बाहरी पर्यटक को जिन सुख-सुविधाओं की आवश्यकता हो, वे सुख-सुविधायें पर्यटन विभाग के अधिकारी वहां उपलब्ध करायें।

मैं अपने पूज्य मार्ग दर्शक प्रो0 बी0एन0 रॉय को अत्यन्त महत्वपूर्ण योग्य गुरू समझती हूँ जिन्होंने पूर्ण अभिरूचि के साथ शोध में आने वाली समस्त कठिनाइयों का निराकरण कराया तथा इस कार्य को पूरी दिलचस्पी के साथ पूरा कराने में सहयोग किया। हमारे गुरू प्रो0 बी0एन0रॉय को भी कालिंजर की पुरासम्पदा से विशेष स्नेह व लगाव है।

सन्दर्भ
ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

मौलिक ग्रंथ

1.		अग्निपुराण-
2.	अबुल फजल	आइने अकबरी,कलकत्ता, 1949 ।
3.		अभिनव नाट्यशास्त्र-
4.		उपनिषद (ज्ञानखण्ड)-
5.		ऋग्वेद-
6.		ऋकसंहिता-
7.		कल्याण-तीर्थांक
8.		कूर्मपुराण-
9.	कौटिल्य	अर्थशास्त्र
10.		गणेशपुराण-
11.		गरुणपुराण-
12.	गोस्वामी तुलसीदास	रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड ।
13.	चन्दवरदाई- पृथ्वीराजरासो, सम्पादक	मोहनलाल, विष्णुलाल पाण्ड्या और श्यामसुन्दरदास, काशी, 1913।
14.		चरकसंहिता-
15.		छान्दोग्य उपनिषद-
16.	जगनिक, भाट-	परमालरासो (आल्हखण्ड), सम्पादक-मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या और श्यामसुन्दर दास,
17.		बनारस, 1913 ।
18.		देवतांक- कल्याण
19.		देवी भागवतपुराण
20.		नरसिंहपुराण अंक
21.		पद्मपुराण
22.	पण्डित, मिहिरचन्द	शुक्रनीति, बम्बई, 1930 ।
23.		परासर माध्यवीय
24.		पालिजातकम् ।
25.	फरिश्ता	तारीखे फरिश्ता, अनुवाद- ब्रिग्स ।

26. बाणभट्ट — कादम्बरी, अंग्रेजी अनुवाद- इ0 वी0 कौबेल, लन्दन, बनारस, 1997 ।

27. बाणभट्ट — हर्षचरित ।

28. बालभारत प्रथम

29. बाल्मीकि रामायण

30. ब्रम्हाण्डपुराण

31. ब्रम्हावैवर्तपुराण

32. भागवतपुराण

33. मत्स्यपुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1986 ।

34. मध्य भारती

35. मनुस्मृति

36. महाभारत

37. मिनिहाजुद्दीन बिन सिराजुद्दीन — तबकाते-नासिरी, अनुवाद- एच0 जी0 रोबर्टी, अंग्रेजी अनुवाद- एच0 वी0 मेम्बरी ।

38. मिरासी- — कलचुरी नरेश और उनका काल, अनुवाद वा0 वि0, भोपाल, 1965 ।

39. मिश्र, कृष्ण — प्रबोधचन्द्रोदय, अनुवाद- टेलर, निर्णय सागर प्रेस ।

40. लालकवि — छत्रप्रकाश ।

41. लिंगपुराण

42. व्यासस्मृति

43. वत्स — रूपकषटकम् ।

44. वराहपुराण

45. वृहदारण्यक

46. वृहस्पति अपरार्क

47. विल्हण — विक्रमांकदेवचरित, सम्पादक- जार्ज व्हूलर,बम्बई, 1875।

48. वायुपुराण

49. वामनपुराण

50. विष्णुपुराण

.51. विद्धसालभंजिका

52. व्हेनसांग- बुलियनस इन्डेक्स ।

53. वृहद्संहिता

54. शिवपुराण

55. स्कन्दपुराण

56. हनुमान अंक

57. हरिवंशपुराण

58. हिन्दू धर्मकोष

सिक्के, अभिलेख एवं विदेशी विवरण

1. कनिंघम - जनरल क्वायन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया

2. श्रीवास्तव, ए0 के0 - काइण्ड स्टाफ ऑफ कुषाण काइन्स यू0 पी0 ।

3. - इन्सकृप्सन्स इन सी0 पी0 एण्ड बरार ।

4. - इन्सकृप्सन फ्राम हरिहर (मैसूर)

5. - उपलब्ध अभिलेख

6. - उपलब्ध ताम्रपत्र

7. कनिंघम, ए0 - आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट ।

8. - कालिंजर के चन्देल अभिलेख

9. - चरखारी अभिलेख

10. - नन्यौरा अभिलेख

11. पन्त, पी0 सी0 - इण्डियन आर्क्योलाजी ए रिब्यू, सं0 1955-1956, 1961-1962 ।

12. फ्यूहरर- - दि मानूमेन्टल एण्टीकुटीज एण्ड इन्सकृप्सन्स दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध, बनारस, 1969।

13. फ्यूहरर - आर्क्योलाजिकल सर्वे लिस्ट ऑफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज।

14. ब्रिग्स - जर्नल ऑफ दि र्वायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन, लन्दन, 1909 ।

15. - महोबा अभिलेख

16. मिरासी, वी0 वी0 - कापर्स इन्सकृप्सनम् इण्डिकेरम् वॉफोर्थ, 1955 ।

17. - वीरवर्मा का अजयगढ़ प्रस्तर अभिलेख ।

कोष एवं विश्वकोष

1. - आक्सफोर्ड डिक्शनरी
2. - इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिया
3. - जागृफिकल डिक्शनरी ऑफ मेडुवल एण्ड एन्श्येन्ट इण्डिया ।
4. - डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स ।
5. विलसन - संस्कृत डिक्शनरी ।

गजेटियर

1. - इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (पुराना) ।
2. - ईस्टर्न बुन्देलखण्ड गजेटियर ।
3. - जालौन गजेटियर ।
4. - झाँसी गजेटियर ।
5. - डिस्टिक गजेटियर ऑफ यू0 पी0, बाँदा, भाग 11, हमीरपुर, भाग 12 ।
6. नोट्स आन दि स्टोन एज इम्प्लीमेन्ट्स फ्रॉम खाजी हिल्स एण्ड दि बाँदा एण्ड नैल्लोर डिस्टिक्ट्स 1879।
7. - पन्ना गजेटियर ।
8. - बम्बई गजेटियर, भाग 1 ।
9. - बाँदा, गजेटियर ।
10. - बुन्देलखण्ड गजेटियर ।
11. - बंगाल गजेटियर, भाग 1-2 ।
12. ड्रेक-ब्रॉकमैन, डी0 एल0 - बाँदा गजेटियर, (यूनाइटेड प्राविंसेज ऑफ आगरा एण्ड अवध, गजेटियर), 1929।
13. वरन, दंयली प्रसाद - गजेटियर ऑफ इण्डिया उ0 प्र0, डिस्टिक गजेटियर बाँदा, लखनऊ, 1988 गौरमेन्ट उ0 प्र0 ।
14. -स्टेटिकल डिस्क्रमटिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट्स ऑफ दि नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज ऑफ इण्डिया, भाग 1, बुन्देलखण्ड ।

15. -सेन्ट्रल इण्डिया गजेटियर ।

सहायक ग्रंथ

1. अग्रवाल, कन्हैयालाल - विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सतना, 1987 ।
2. अतहर, इब्न-उल - अल-तारीख-उल-कामिल, भाग 9 ।
3. अब्बास, सखानी - तवारीखे शेरशाही ।
4. अब्दुल, हलीम - हिस्ट्री ऑफ लोदी सुल्तान ऑफ देलही एण्ड आगरा, दिल्ली, 1974
5. अल्टेकर, अनन्त सदाशिव - राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स ।
6. अलबरूनी - किताब-उल-हिन्द, अंग्रेजी अनुवाद- ई0 सी0 संचाउ, लन्दन (अलबरूनीज इण्डिया) ।
7. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द - राजस्थान का इतिहास ।
8. ओम प्रकाश - कालिंजर थ्रू इथनो क्लासिकल डिक्टोमी ।
9. इरविन, विलियम - लेटर मुगल, कलकत्ता, 1922 ।
10. इलियट, एच0 एम0 एण्ड डाउसन, जे0 - हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड- बाई ईट्स ऑन हिस्टोरियन्स, वाल्यूम 2, इलाहाबाद ।
11. इलियास, सैयद मुहम्मद - तारीख-ए-बुन्देलखण्ड ।
12. ईश्वरीप्रसाद - प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म एवं दर्शन, पांचवा संस्करण, इलाहाबाद, 1990।
13. उपाध्याय, बलदेव - संस्कृत, साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1983 ।
14. उपाध्याय, वासुदेव - प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, बनारस, 1961 ।
15. कनिंघम, ए0 - दि एन्श्येन्ट जागृफी ऑफ इण्डिया, बनारस, 1963 ।
16. कार्नाक, रिवेट, एच0 - स्टोन इम्प्लीमेन्ट्स फाउण्ड इन बाँदा डिस्टिक, 1882।
17. क्रुक, सम्पादक - टाइब्स एण्ड कास्टस ऑफ दि नार्थ-वेस्टर्न प्राविंसेज एण्ड अवध, भाग 2 ।
18. - कालंजर महात्म्य ।
19. कृष्ण कवि - बुन्देलखण्ड का इतिहास (वीरचरितामृत) ओरछा खण्ड, तीसरा भाग, छतरपुर, 1974 ।

20. कृष्ण कवि - बुन्देलखण्ड के कवि, प्रथम संस्करण, पन्ना, जेठ बदी 11 संवत् 2025 ।

21. कृष्ण कवि - बुन्देलखण्ड का इतिहास, पन्ना खण्ड, दूसरा भाग, छतरपुर ।

22. गर्दिजी, अबू सैयद - किताब-जैमुल-अकबर, सम्पादक- एम0 नाजिम ।

23. गिब्स, अनुवादक - इब्नबतूता ।

24. गुप्त, नर्मदा प्रसाद एवं वीरेन्द्र - आल्हखण्ड शोध और समीक्षा ।

25. गुप्त, जगदीश - प्रागैतिहासिक चित्रकला, दिल्ली, 1967 ।

26. गुप्ता, भगवानदास - मस्तानी-बाजीराव और उनके वंशज बाँदा के नवाब, ग्वालियर 1983।

27. गैरोला, वाचस्पति - भारतीय संस्कृति और कला, लखनऊ ।

28. गोखले, बी0 जी0 - प्राचीन भारत का इतिहास ।

29. चटर्जी एवं दत्त - भारतीय दर्शन, कलकत्ता, 1953 ।

30. चटोपाध्याय, सतीशचन्द्र एवं दत्त, धीरेन्द्र मोहन - भारतीय दर्शन, पटना, 1982 ।

31. चैतन्य, कृष्ण - संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास, अनुवाद- विजय कुमार ।

32. चौधरी, एस0 वी0 - सिविल रिवीलयन इन दि इण्डियन न्यूटनीज, 1857-1859, कलकत्ता, 1957 ।

33. चौबे, हेमराज - युगल विनय, चित्रकूट, संवत् 2042 ।

34. चौरसिया, अरुणेन्द्र - बुन्देलखण्डी लोक संगीत में सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक तत्व (अप्रकाशित शोध) 1994 ।

35. जलज, जवाहरलाल (गीतकार) - कालिंजर दर्शन फिल्म, गीत सं0 1-4 ।

36. जोशी, आर0 वी0 - स्टोन एज इन्डूस्ट्रीज ऑफ दमोह एरिया, जिल्द 17, 1961 ।

37. तिवारी, गोरेलाल - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रयाग, विक्रमी संवत् 1990 ।

38. थियोवाल्ड, डब्ल्यू0 - सेल्ट्स फाउण्ड इन बुन्देलखण्ड प्रोसीडिंग्स ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1862 ।

39. दत्ता एवं सक्सेना - गुप्तकालीन भारत, भाग 11 ।

40. दिव्य, अम्बिका प्रसाद - जय दुर्ग का रंग महल ।

41. द्विवेदी, चन्द्रधर, सम्पादक - कामद-क्रान्ति, बाँदा, 1972 ।

42. द्विवेदी, गौरीशंकर - बुन्देलखण्ड वैभव, भाग 1 ।

43. द्विवेदी, हजारीप्रसाद - अशोक के फूल (निबन्ध संग्रह), इलाहाबाद, 1985 ।

44. दीक्षित, आर0 के0 - चन्देलाज ऑफ जैजाकभुक्ति, दिल्ली, 1977 ।

45. निगम, एम0 एल0 - कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड, दिल्ली, 1983 ।

46. निजामी, मुहम्मद - दि लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सुल्तान महमूद गजनवी, अनुवाद- कैंब्रिज, 1903 ।

47. निजामुद्दीन, अहमद ख्वाजा - तबकात-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद- वी0 दे0 कलकत्ता, 1887 ।

48. निजामी, हसन - ताजुल-मा-अतहर भाग 2, अनुवाद इलियट

49. पन्त, पी0 सी0 - प्री हिस्टोरिकल उत्तर प्रदेश, दिल्ली, 1982 ।

50. पर्सीब्राउन - इण्डियन आर्ची-टेक्चर ।

51. पागसन, डब्ल्यू0 आर0 - हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलाज, प्रथम संस्करण, दिल्ली, 1828, 1974 ।

52. पाजिटर, एफ0 ई0 - एन्श्येन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, दिल्ली, 1962।

53. पाठक, विशुद्धानन्द - उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास, लखनऊ, 1990।

54. पाण्डे, विमलचन्द - प्राचीन भारत का इतिहास, मेरठ, 1983-1984 ।

55. पाण्डे, विमलचन्द - प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1984।

56. पाण्डेय, अयोध्याप्रसाद - चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण, प्रयाग, 1968 ।

57. पाण्डे, रामबली - हिन्दू संस्कार, तृतीय संस्करण, वाराणसी, 1985 ।

58. पाण्डेय, रुद्रकिशोर - कालिंजर-शौर्य, स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य, 1991।

59. पाण्डे, ए0 बी0 - लेटर मेडुवल इण्डिया, इलाहाबाद, 1963 ।

60. पाण्डे, राजबली - प्राचीन भारत ।

61. पाल, जगन्नाथ - आर्क्योलाजी ऑफ सदर्न उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद,

1986 ।

62. पुरी, बैजनाथ - द हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहार, बाम्बे, 1957 ।

63. पोतदार, दत्तावामन - बाजीराव इन दि लैण्ड ऑफ ब्रेव बुन्देलाज ।

64 बघेला, हेत सिंह - उत्तरी भारत का इतिहास, जयपुर, 1978 ।

65 बर्न, आर0 - दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 1957 ।

66 बाजपेयी, के0 डी0 - जागृफिकल इन साइक्लोपीडिया ऑफ एन्श्येन्ट एण्ड मेडुवल इण्डिया, बनारस, 1967।

67 बाजपेयी, के0 डी0 - कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वाल्यूम 2, 1960 ।

68 बाजपेयी, के0 डी0 - हिस्ट्री ऑफ मेडुवल इण्डिया, भाग 3 ।

69 बाजपेयी, के0 डी0 - हिस्ट्री ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया ।

70 बाजपेयी, के0 डी0 - युगों-युगों में उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1995 ।

71 बुन्देली, राधाकृष्ण - बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, प्रथम संस्करण, बाँदा, 1989 ।

72 बुन्देली, राधाकृष्ण, निर्देशक - कालिंजर दर्शन वीडियो फिल्म, कैसिट नं0 2 ।

73 बुलक- अल-तारीख-उल कामिल ऑफ इब्न-उल-अथीर-1874।

74 बोस, निमाई सघन - हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज ऑफ जैजाकभुक्ति, कलकत्ता, 1956 ।

75 ब्राउनी - लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ परशिया, 1918 ।

76 भण्डारकर, डी0 आर0 - क्रोनिकल लेक्चर्स, कलकत्ता, 1918 ।

77 भार्गव, मोतीलाल - नाना साहब ।

78 भूषण, -शिवराज भूषण।

79 भूषण - छत्रसाल दशक ।

80 मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0 - दि हिस्ट्री एण्ड कल्चरल ऑफ इण्डियन पीपुल, बम्बई, 1960-1966 ।

81 मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड अल्टेकर, ए0 एस0 - दि वाकाटक गुप्ता एज, दिल्ली, 1960 ।

82 मजूमदार, आर0 सी0 - जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटस, जिल्द 10, कलकत्ता, विश्वविद्यालय ।

83 मजूमदार, आर0 सी0 - दि सिपॉय म्यूटिनी एण्ड दि रिवोल्ड ऑफ एट्टनी फिफ्टी सेवन, कलकत्ता, 1957 ।

84 मजूमदार, आर0 सी0 - एन्श्येन्ट इण्डिया, दिल्ली, 1964 ।

85 मजूमदार, आर0 सी0 - हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूमेन्ट इन इण्डिया, कलकत्ता, 1962 ।

86. महाजन, बी0 डी0 - प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, दिल्ली, 1960।

87. मिश्र- अम्बिका प्रसाद - खजुराहो की अतिरूपा ।

88. मिश्र, लक्ष्मीप्रसाद - बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास, भाग 1, 1990।

89. मिश्र, केशवचन्द - चन्देल और उनका राजत्व काल, वाराणसी, विक्रमी संवत् 2011 ।

90. मित्रा, एस0 के0 - दि अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, कलकत्ता, 1958 ।

91. मुखर्जी, आर0 के0 - हिन्दू सिविलाइजेशन, बम्बई, 1961 ।

92. मुनीलाल - अकबर, दिल्ली, 1980 ।

93. मुंशी, कन्हैयालाल, माणिकलाल - कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास, बम्बई ।

94. मुंशी, कन्हैयालाल, माणिकलाल - दि ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश, भाग 1, विद्याभवन, 1920 ।

95. मोहम्मद, कासिम- -तारीख-ए-फरिश्ता, अंग्रेजी अनुवाद- आर0 जे0 ब्रिग्स, कलकत्ता, 1991 ।

96. राय, बाबू गुलाब - भारतीय संस्कृति, आगरा, 1968 ।

97. राय, हेमचन्द्र - दि डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नादर्न इण्डिया, कलकत्ता, वाल्यूम एक, 1931-वाल्यूम दो, 1936 ।

98. राय, बी0 एन0 - कालिंजर ए हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल, इलाहाबाद, 1992 ।

99. राय चौधरी, हेमचन्द एच0 सी0 - प्वालिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्श्येन्ट इण्डिया, कलकत्ता, वाल्यूम 2, 1953 ।

100. रिवी, एस0 एस0 ए0 - फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश, वाल्यूम 4, लखनऊ, 1956 ।

101. रे, एच0 सी0 - दि डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, वाल्यूम 2, नई दिल्ली, 1973 ।

102. रेप्सन, ई0 जे0 - दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वाल्यूम 1, दिल्ली,

1962 ।

103. रोनाल्ड- -फ्रेंगमेन्ट अरबस ।

104. रौलेट, ए0 बी0 एम0 - फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल, इलाहाबाद, 1961 ।

105. लाल, के0 एस0 - टु लाइट ऑफ दि सुल्तान, बाम्बे, 1963 ।

106. लाल, बी0 बी0 - आर्क्योलाजी इन इण्डिया, 1950 ।

107. लाल, बी0 सी0 - जाग्रफी ऑफ अर्ली बुद्धिज्म ।

108. लुइस - फोट्स ऑफ इण्डिया ।

109. लूनिया, बी0 एन0 - पूर्व मध्यकालीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, इन्दौर ।

110. लेथ, ब्रिगेड रोपर - द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया मेकमिलन एण्ड कम्पनी, लन्दन, 1893 ।

111. लेथियेटरे - इण्डियन, पेरिस, 1889 ।

112. लोगेन, ए0 सी0 - ओल्ड चिब्ड स्टोन्स ऑफ इण्डिया ।

113. वर्मा, वृन्दावनलाल - रानी दुर्गावती, झाँसी ।

114. वार्टस, टी0 - आन व्हेनसांग ट्रविल्स इन इण्डिया, वाल्यूम 2, दिल्ली, 1961 ।

115. विलियम, इरविन - बंगस नवाब ऑफ फरुखाबाद ।

116. विलियम, ई0 - हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ।

117. विद्यालंकार, सत्यकेतु - मौर्य साम्राज्य का इतिहास श्री सरस्वती सदन, मंसूरी।

118. वेगड़े, प्रभाकर वी0 - फोर्ट एण्ड पैलेसेज ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली ।

119. वैद्य, चिन्तामणि विनायक - हिस्ट्री ऑफ मेडुवल हिन्दू इण्डिया, भाग 2, देलही, 1979, 1924, 1929 ।

120. शर्मा, हरिप्रसाद - कालिंजर, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, 1968 ।

121. शर्मा, आर0 के0 - कलचुरीज एण्ड देयर टाइम्स, देलही, 1980 ।

122. शर्मा, वी0 आर0 - भारतीय सप्लीमेन्ट, भाग 2, 1964 ।

123. शर्मा, दशरथ -राजस्थान थ्रूदि एजेज, अजमेर, 1966

124. शर्मा, दशरथ -लेक्चर्स आन राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर, दिल्ली, 1970।

125. शास्त्री, मंगलदेव - भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा), वाराणसी।

126. शास्त्री, के0 एन0 - भारत और मुस्लिम आक्रमण, वाराणसी, 1974 ।

127. शुक्ल, द्रिनेन्द्रनाथ - भारतीय साहित्य, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, काँग्रेस, 1946।

-स्टडीज इन इण्डोलाजी, भाग 2, नागपुर, 1960 ।

128. सरकार, यदुनाथ - फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर, भाग 1, कलकत्ता, 1932 ।

129. सावरकर, विनायक दामोदर - 1857 का भारतीय स्वतंत्रता समर, आगरा, 1957 ।

130. साहनी, अली बहादुर - बाँदा नवाब ।

131. स्मिथ - रिवेलियस रानी ।

132. स्मिथ, वी0 ए0 - दी अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ।

133. स्मिथ, वी0 ए0 - अकबर द ग्रेट मुगल, देलही, 1958 ।

134. सिंह, दीवान प्रतिपाल - बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग 1, बनारस, 14 फरवरी सन् 1929 ई0 ।

135. सिंह, महेन्द्रप्रताप - प्रमाणावली और छत्रसाल ।

136. सिंह, अम्बिका प्रसाद - कालिंजर दुर्ग तथा कुछ विशिष्ट कलाकृतियाँ, प्रभारी क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई, झाँसी।

137. सुल्लेरे, सुशील कुमार - अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाएं, दिल्ली, 1987 ।

138. सेन, एस0 एन0 - एट्टीन फिफ्टी सेवन (1857), कलकत्ता, 1957 ।

139. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल - दिल्ली सल्तनत, प्रकाशक- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1989 ।

140. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल - मुगलकालीन भारत, आगरा, 1981 ।

141. श्रीवास्तव, रमेशचन्द - बाँदा वैभव, बाँदा, 1994 ।

142. श्रीवास्तव, भगवानदास - बाँदा का बागी नवाब अलीबहादुर, द्वितीय ।

143. श्रीवास्तव, जगदीश सहाय - समाज दर्शन की भूमिका ।

144. श्रीवास्तव, के0 सी0 - प्राचीन भारत की संस्कृति ।

145. श्रीवास्तव, तेजप्रकाश - बुन्देलखण्ड का प्राचीन दुर्ग कालिंजर, लघु शोध,

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, 1990 ।

146. हबीबुल्ला, ए0 बी0 एम0 - दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, इलाहाबाद, 1961 ।

147. हैग, डब्ल्यू0 - दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग 3, देलही, 1958 ।

148. त्रिपाठी, गोवर्धनदास - कालिंजर दर्शन, इलाहाबाद ।

149. त्रिपाठी, मोतीलाल 'अशान्त' - बुन्देलखण्ड दर्शन, झाँसी, 1986 ।

150. त्रिपाठी, वासुदेव - वीरों का गढ़ कालिंजर, प्रथम संस्करण, दतिया, भाग 1, 1956, भाग 2, 1996 ।

151. त्रिपाठी, भागीरथी प्रसाद - बुन्देलखण्ड की प्राचीनता, विद्गोष्ठी, वाराणसी, 1965।

152. त्रिपाठी, रामप्रसाद - राइज एण्ड फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर, इलाहाबाद, 1960 ।

153. त्रिपाठी, रमाशंकर - हिस्ट्री ऑफ कन्नौज टू दि मुस्लिम कान्केस्ट ।

154. त्रिपाठी, सोमदत्त - छत्रसाल ।

155. त्रिवेदी, एस0 डी0 - बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, राजकीय संग्रहालय, झाँसी, 1984।

जर्नल एवं शोध पत्र/पत्रिकायें

1. -आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट

2. -आर्क्योलाजिकल सर्वे इण्डिया ऐनुवल रिपोर्ट- 1935-1936 ।

3. -इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, फरवरी 1873 ।

4. -इण्डियन ऐन्टीक्वेरी हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया ।

5. -इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली ।

6. -एनुअल रिपोर्ट ऑव् आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑव् इण्डिया,- (1911-12,1903) ।

7. -एपीग्राफिया इण्डिका ।

8. -एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी ।

9. कार्नाक, रिवेट, एच0 -प्रोसीडिंग्स ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल,

1882 ।

10. -कार्पस- इन्सक्रप्सनम् इण्डिकेरम्, भूमिका, 1955 ।

11. -कार्पस- कर्ण का बनारस अभिलेख ।

12. -जर्नल ऑफ दि र्वायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल ।

13. -जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग 2, 1879, 1895 ।

14. -जर्नल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग 17, 1848 ।

15. -जर्नल ऑफ गंगानाथ झा, भाग 1 ।

16. -जर्नल ऑफ बिहार, ओरिसा रिसर्च सोसायटी, 1928।

17. -जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री ।

18. -डिस्कृप्शन ऑफ दि एन्टीकुटीज एट कालिंजर ।

19. -दि मानूमेन्टल ऐन्टीकुटीज एण्ड इन्सक्रप्सन्स इन दि नार्थ वेस्ट प्राविंसेज एण्ड अवध ।

20. -दि जर्नल ऑव् दि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, भाग 5, 1940 ।

21. देशाई, पी0 वी0 का उद्धरण- -राइस पा0 टि0 एपिग्राफिया करनाटिका ।

22. मेनन, पी0 के0 वी0- -जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, वाल्यूम 14, भाग 1, 1967 ।

23. -मैसूर इन्सक्रप्सन्स ।

24. स्मिथ, वी0 ए0- -पिग्मी फिलन्ट्स दि इण्डियन एन्टीक्वेरी ।

25. स्मिथ- -जर्नल ऑफ दि रवायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन, लन्दन, 1909 ।

26. स्मिथ, दे0- -इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, 1908 ।

पत्रिकायें-

1. -उत्तर प्रदेश वार्षिकी, 1987-1988 ।

2. -उत्तर प्रदेश वार्षिकी, 1993-1994 ।

3. -उत्तर प्रदेश की पुरासम्पदा ।

4. -ऐतिहासिक स्थानावली।
5. जैन, दशरथ, सम्पादक- -उत्सर्ग, प्रथम संस्करण, छतरपुर, अप्रैल 1978 ।
6. -ऐतिहासिक स्थानावली ।
7. दत्त, आर0 पी0- -इण्डिया टुडे ।
8. -नवीन स्थल की खोज ।
9. शास्त्री, नीलकण्ठ- -प्रोसीडिंग्स ऑफ आल इण्डिया ओरिएन्टल ।

21/8/2001

॥ कालिंजर ॥

भैरवी

कालिंजर
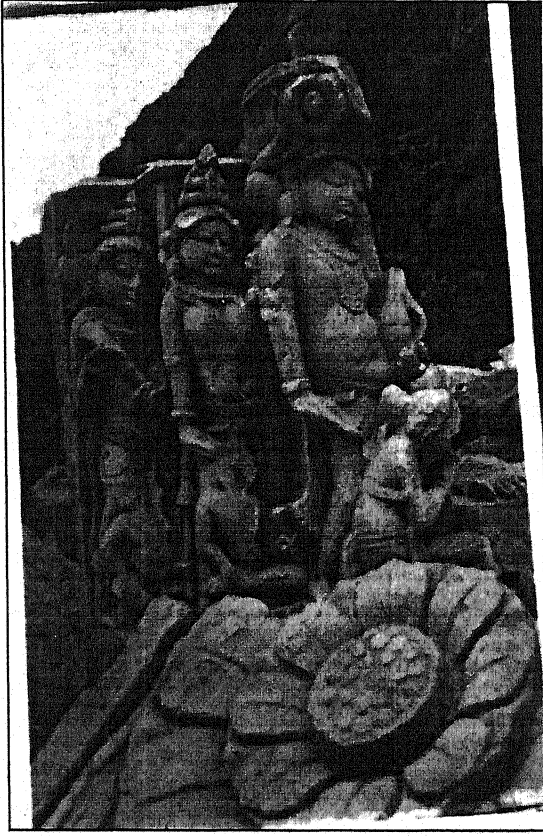
जैन प्रतिमाएं
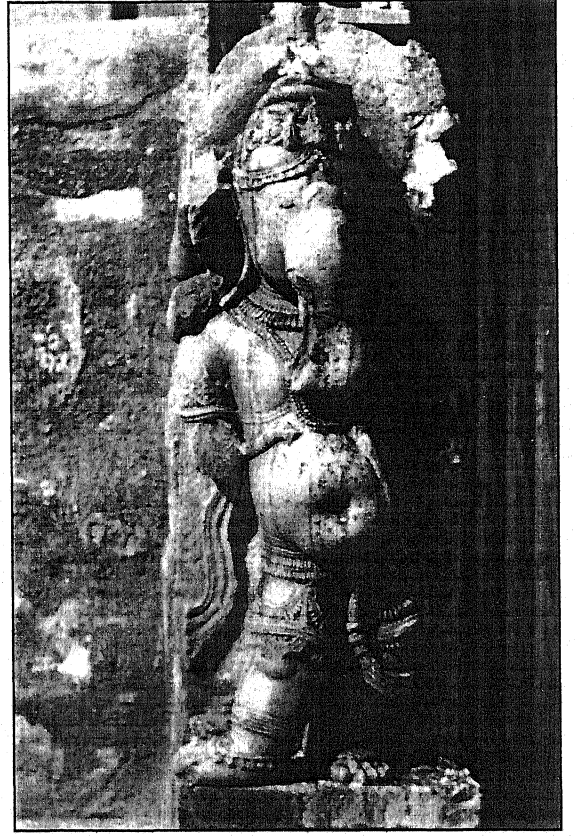
गणेश मूर्ति नीलकण्ठ मन्दिर
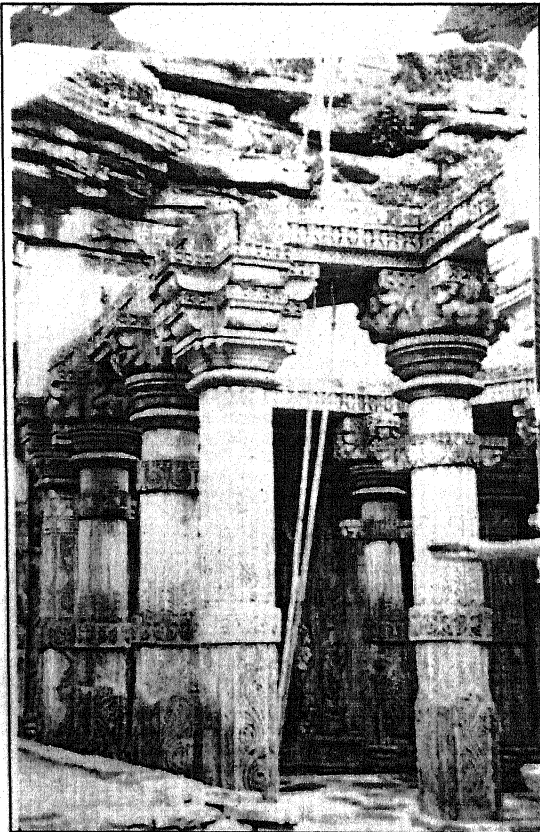
नीलकण्ठ मन्दिर (प्रवेश द्वार)
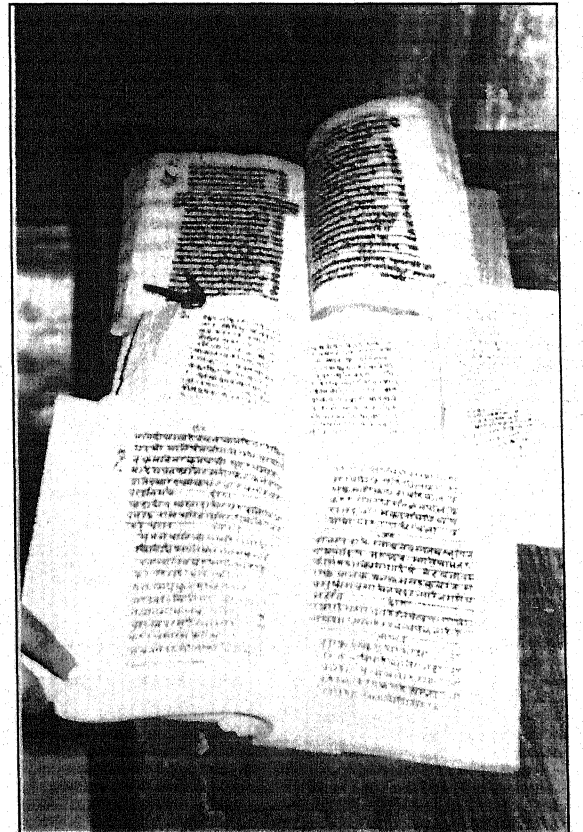
पाण्डुलिपियां

कालिंजर

शेषशायी विष्णु मतोला सिंह मयूजियम
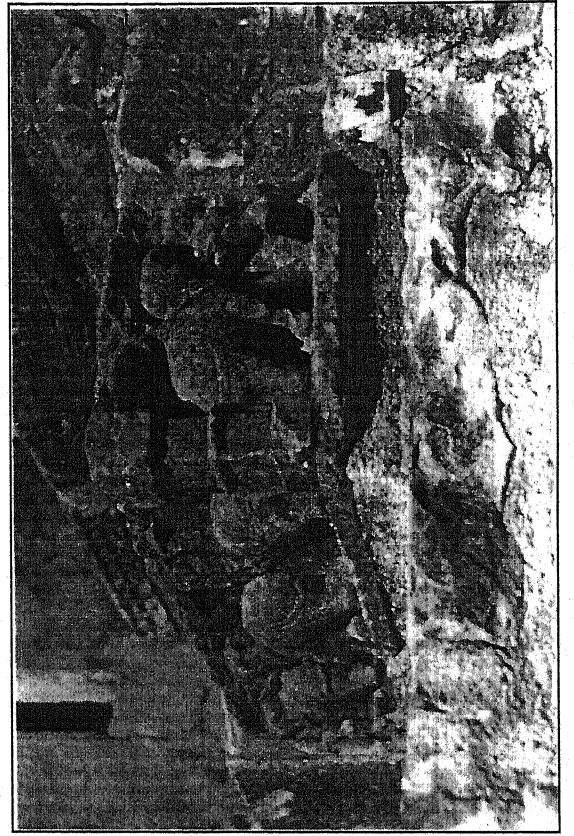
हस्ति समूह (मूर्ति बेल्ट)
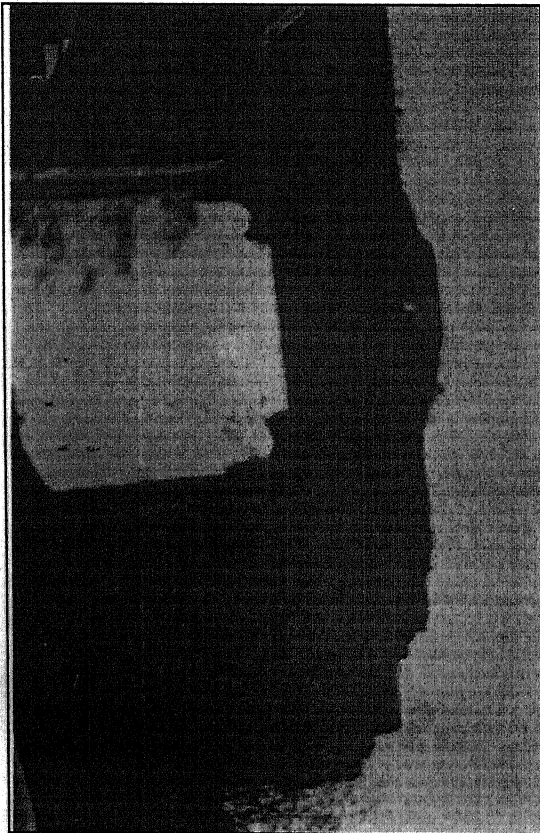
पन्ना फाटक
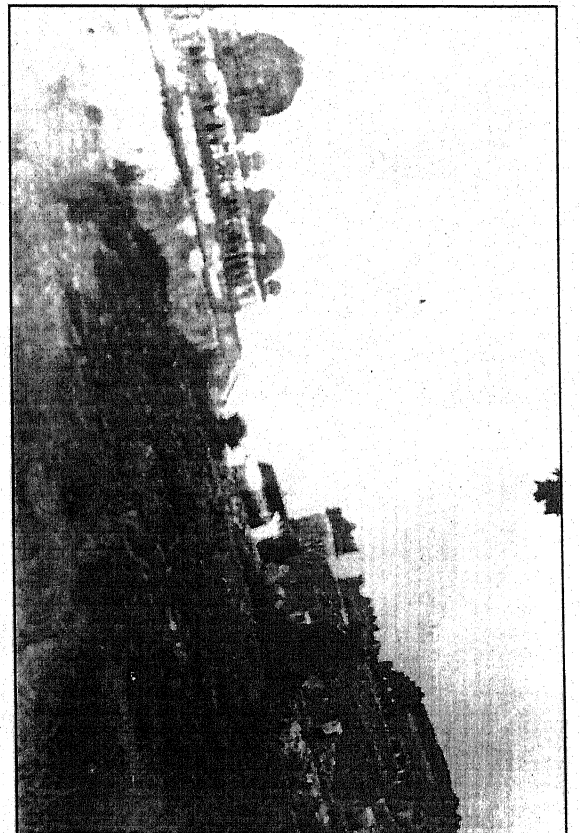
रानी महल (वेंकटेश्वर मंदिर)

कालिंजर

भैरव

देव प्रतिमाएं (मूर्तिबेल्ट)
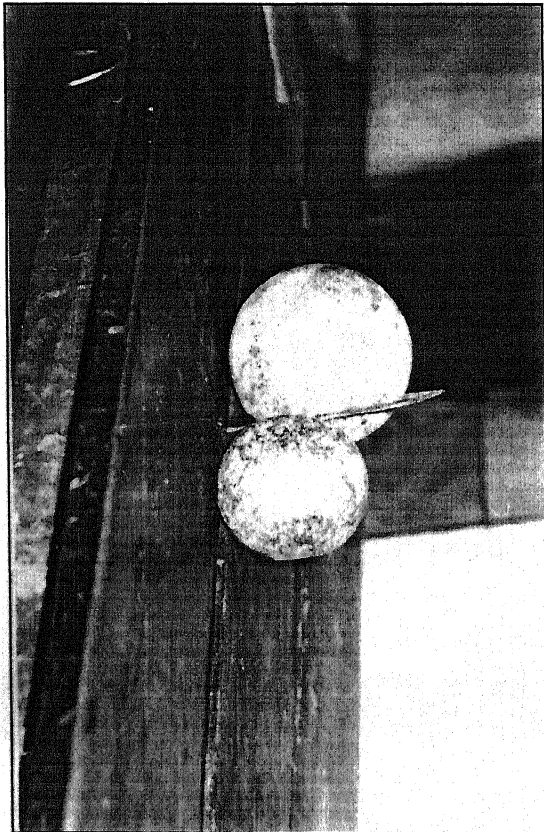
तोप के गोले
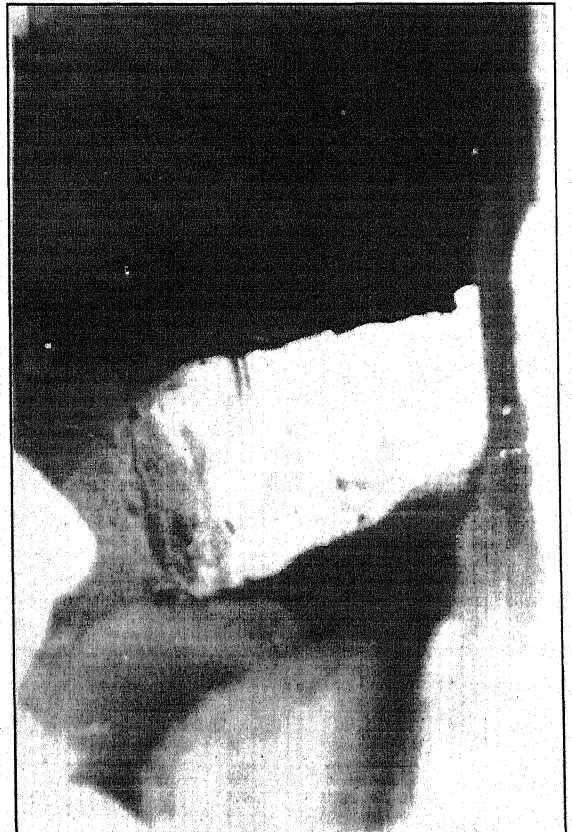
पाताल गंगा

कालिंजर
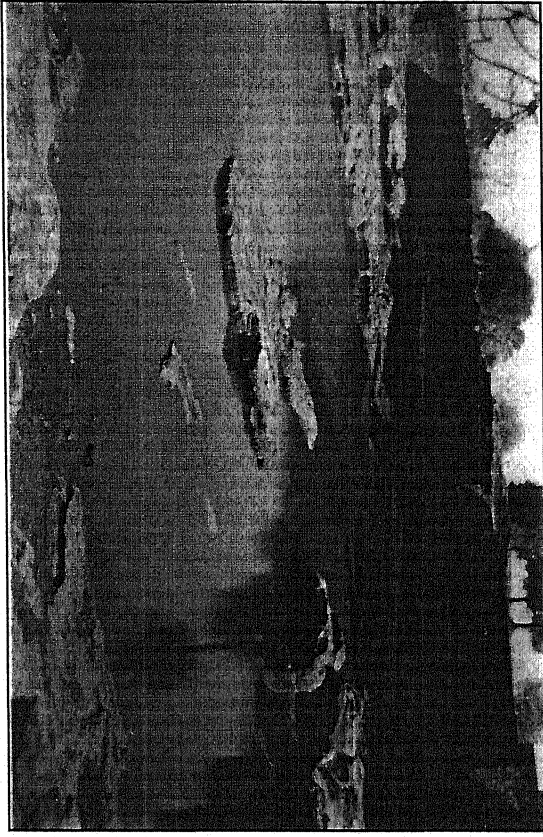
कोटतीर्थ तालाब
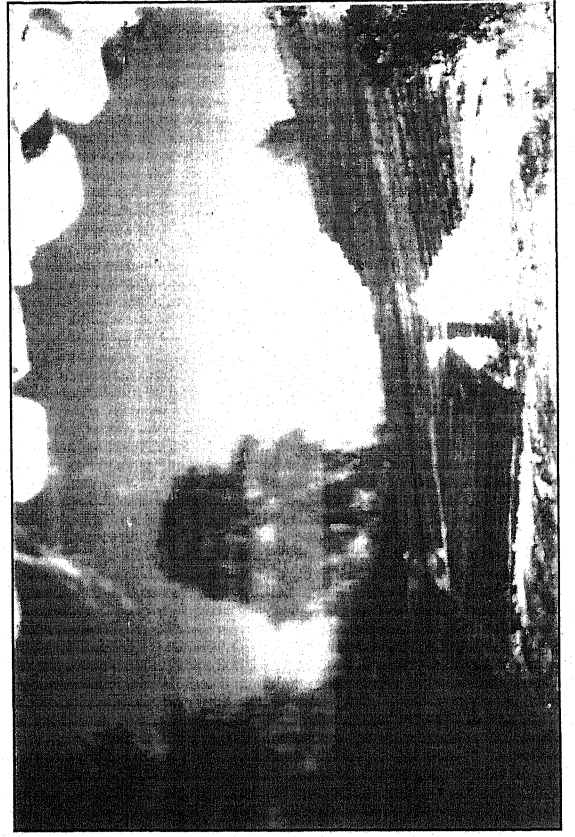
वृद्धक क्षेत्र (बुडढा-बुडढी) तालाब
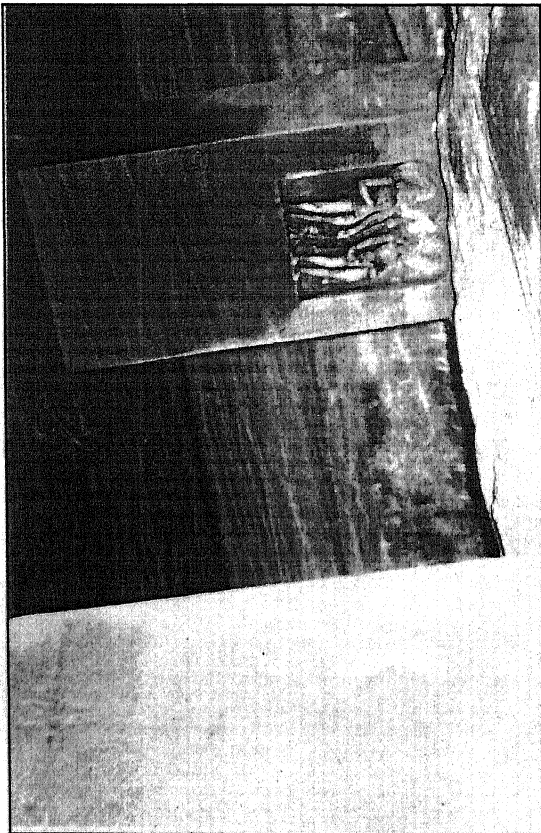
सरग्वाह नीलकण्ठ मन्दिर
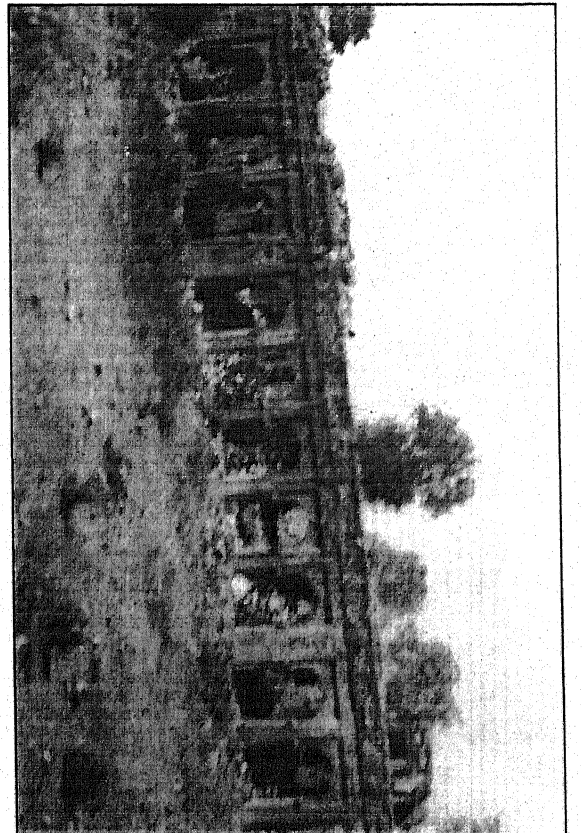
जौहरा

कालिंजर
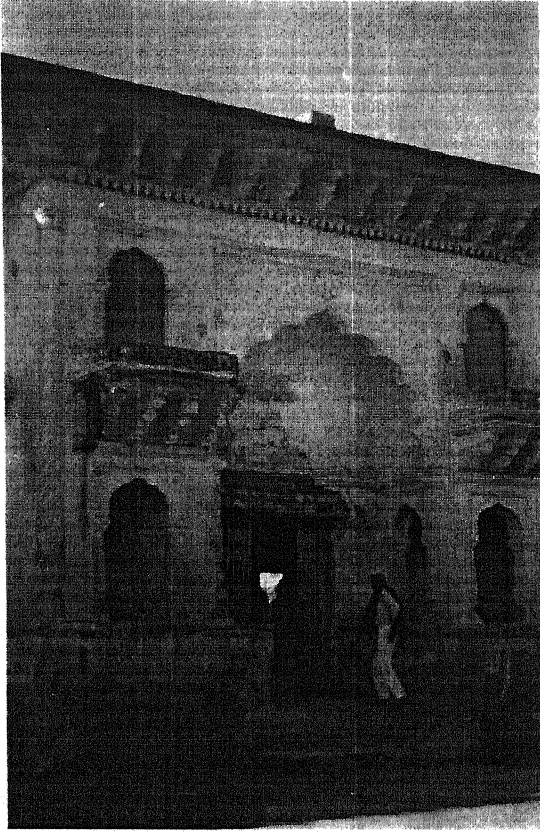
राजा अमान सिंह महल
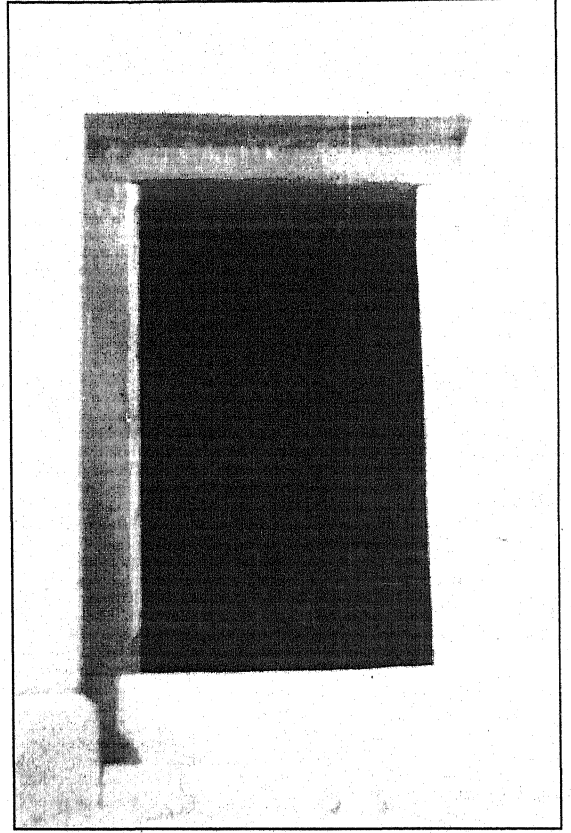
मृगधारा

कालभैरव
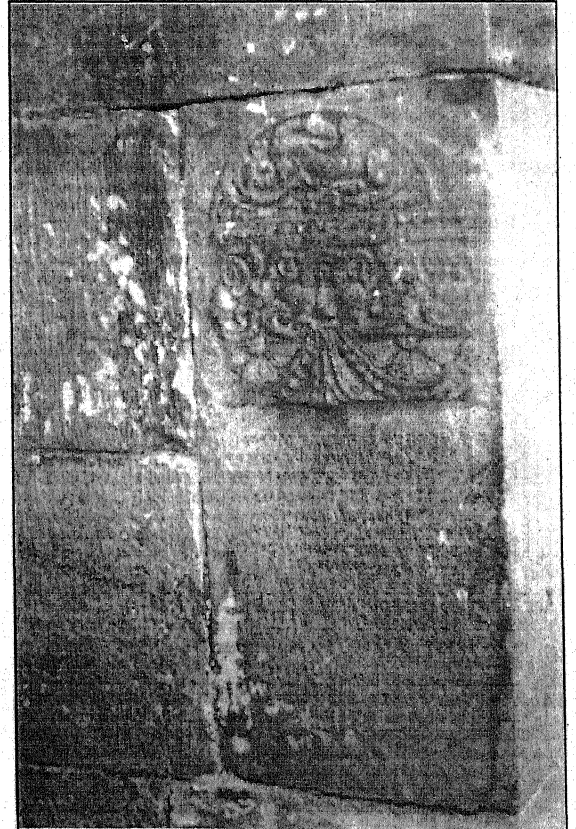
नीलकंठ मन्दिर

शार्दूल (संग्रहालय)
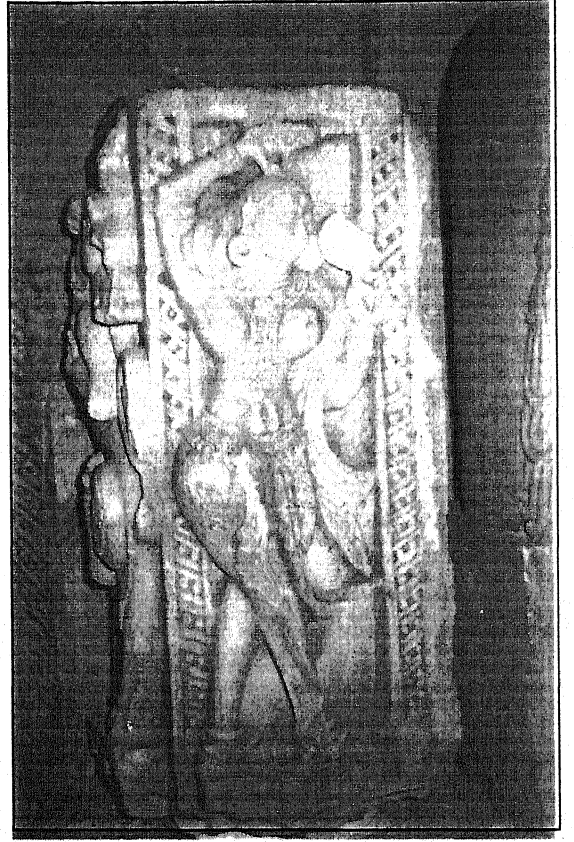
शालिभंजिका (संग्रहालय)
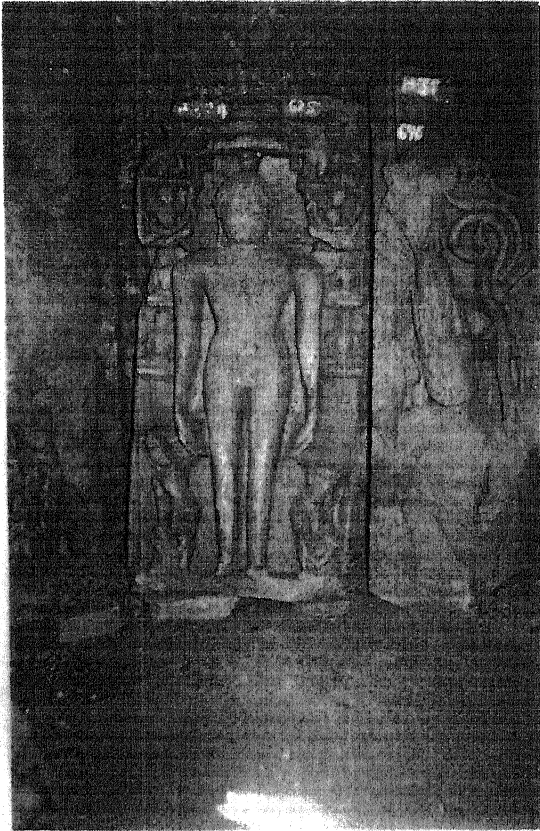
जैन मूर्ति (संग्रहालय)
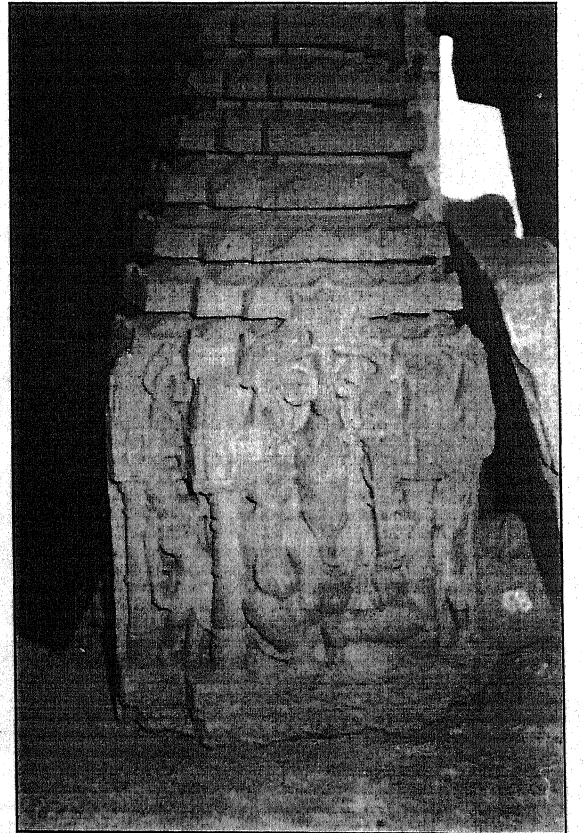
शिखर मूर्ति (संग्रहालय)

चतुर्मुखी शिवलिंग

सहस्रलिंगी शिव

कालिंजर
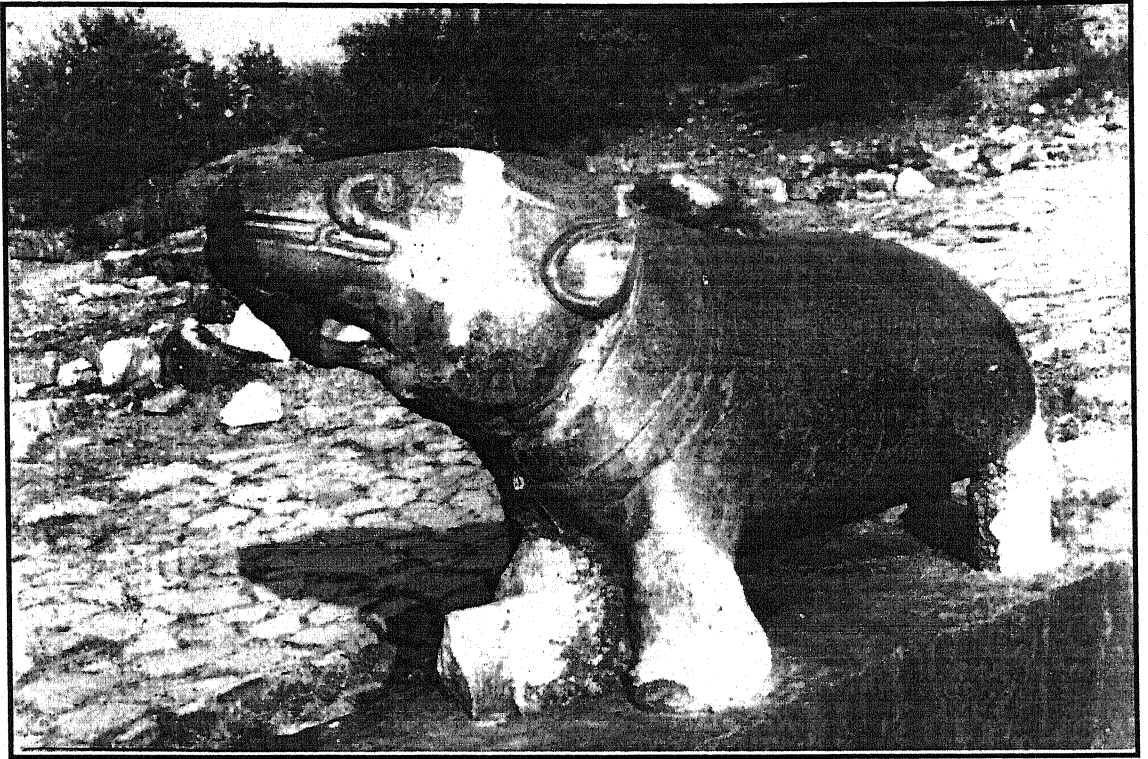
वाराह
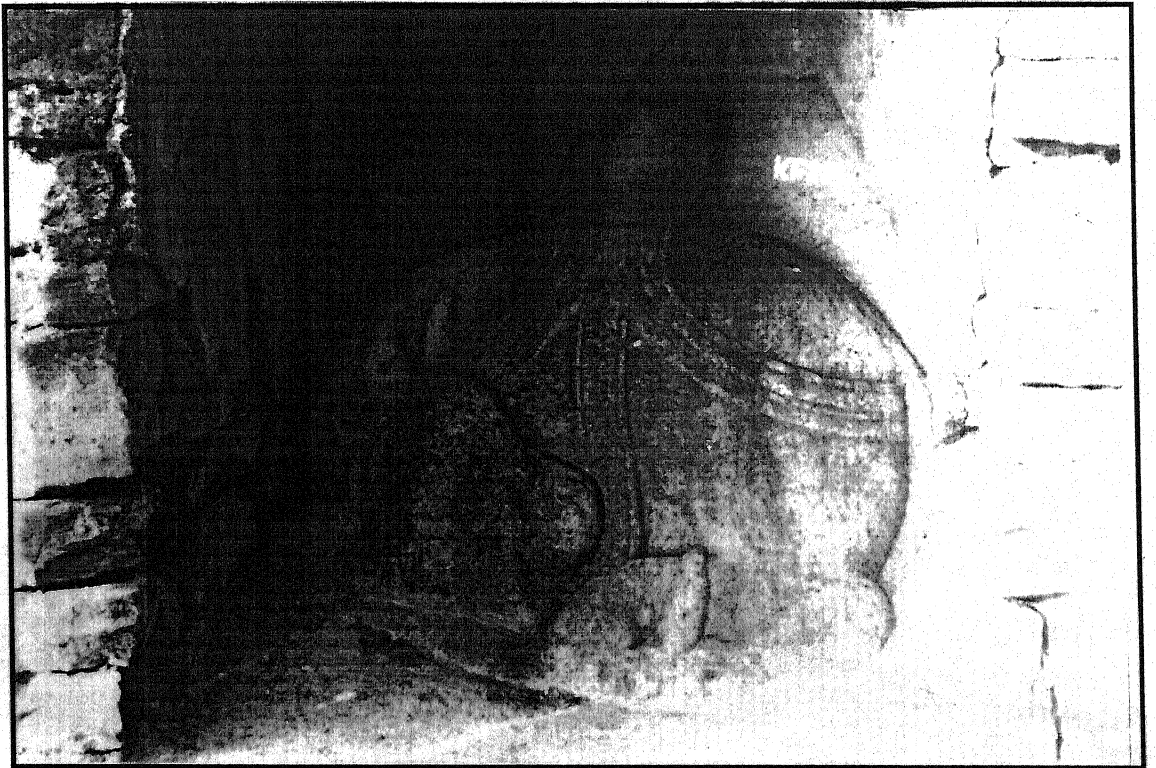
नादिया
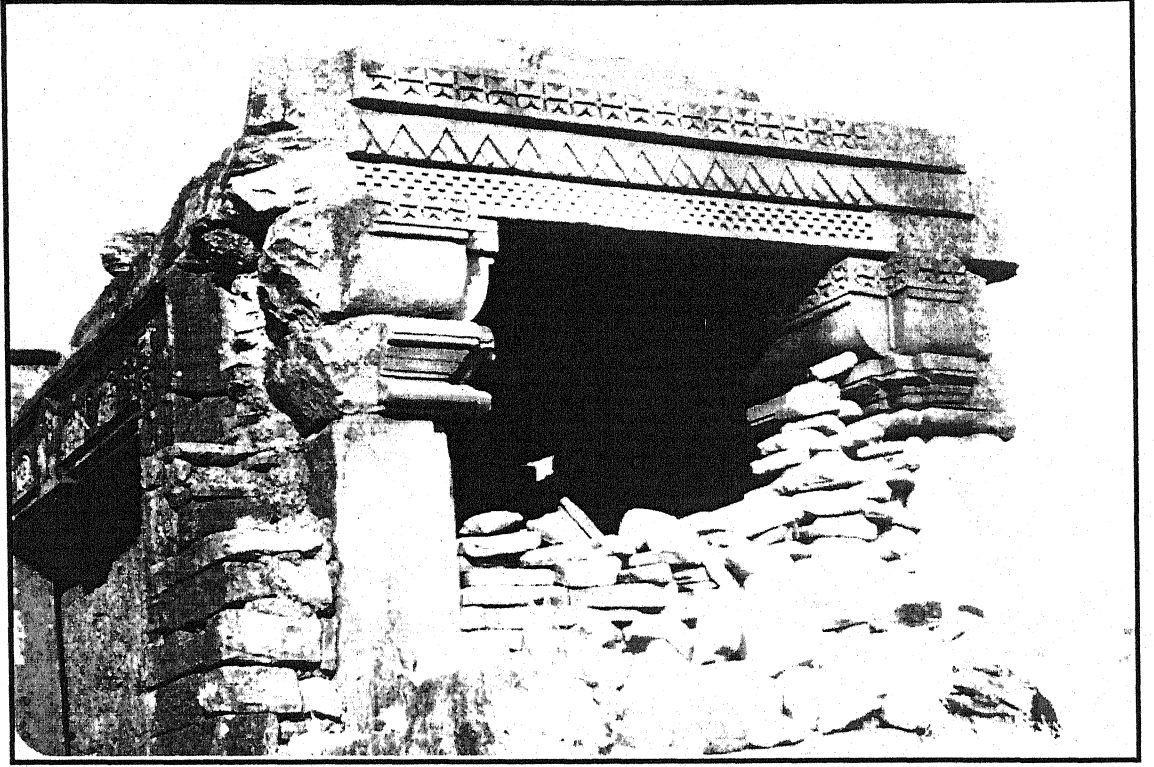
हांथी दरवाजा (मड़फा)

जैन मन्दिर (मड़फा)

कालिंजर दुर्ग

कामता द्वार
हनुमान द्वार
श्रवण मूर्ति
सुरसरि गंगा
नीलकण्ठ मन्दिर
बड़ा दरवाजा
कोटी तीर्थ
मृग धारा
पन्ना दरवाजा
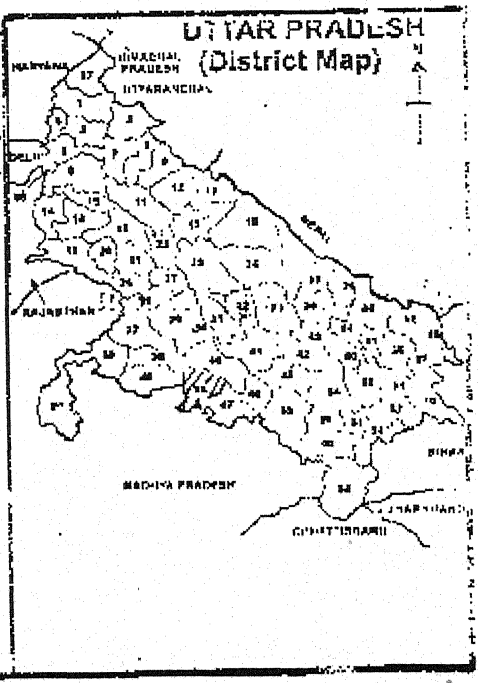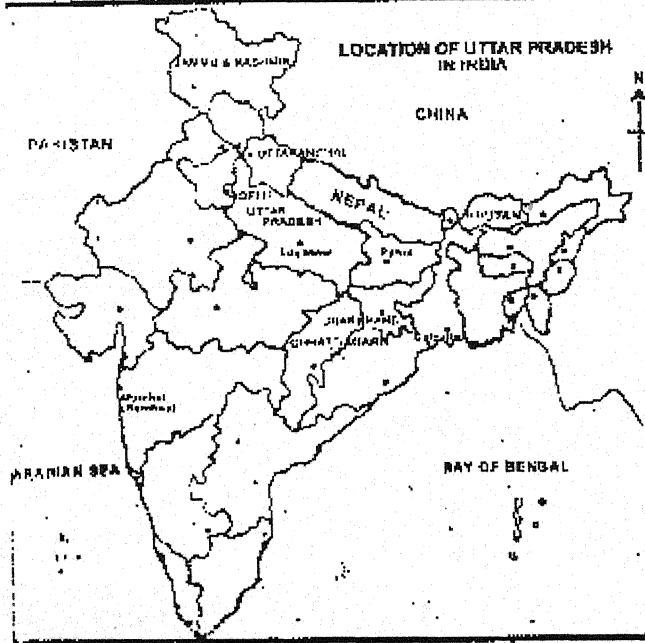
चन्देलकालीन
बुन्देलखण्ड
प्राचीन नाम
वर्तमान नाम
अभिलेख
मन्दिर
भवन
तड़ाग
दुर्ग
कालपी
महोबा
मैहर
मदनपुर
दूधई
कालिंजर
अजयगढ़
खजुराहो